1.3

केनोपनिषद्

08 उपनिषद

भारतीय संस्कृति में जितना महत्त्वपूर्ण स्थान वेदों, पुराणों रामायण, गीता, महाभारत आदि ग्रंथों का है, उतना ही महत्त्व उपनिषदों का भी है। उपनिषदों में हिंदू धर्म के हर विषय का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है।

उपनिषद कुल संख्या में 108 हैं। हमने उन 108 उपनिषदों को अपने पाठकों के लिए अत्यंत सरल और सुगम भाषा में इस पुस्तक में प्रस्तुत किया है।

—प्रकाशक

from
Brajesh

डायमंड पाकेट बुक्स द्वारा प्रकाशित

धार्मिक व पूजा पाठ की अनुपम पुस्तकें

रामचरितामृत	35.00	पद्म पुराण	25.00	लक्ष्मी उपासना	25.00	महाभारत	25.00
आरती संग्रह	15.00	वराह पुराण	25.00	काली उपासना	25.00	सिखों के दस गुरु	25.00
गजानन	20.00	कूर्म पुराण	25.00	विष्णु उपासना	25.00	श्रीमद् भागवत गीता	25.00
गीता सार	20.00	ब्रह्म पुराण	25.00	रुद्राक्ष उपासना	25.00	शिरडी के साईं बाबा	30.00
वेदान्त दर्शन	20.00	मार्कण्डेय पुराण	25.00	शिव उपासना	25.00	कथा सरित सागर	60.00
मीमांसा दर्शन	20.00	मत्स्य पुराण	25.00	नवग्रह उपासना	25.00	योग वशिष्ठ	40.00
सांख्य दर्शन	20.00	गरुड़ पुराण	25.00	भैरव उपासना	25.00	अष्टावक्र गीता	30.00
न्याय दर्शन	20.00	ब्रह्माण्ड पुराण	25.00	गणेश उपासना	25.00	दशावतार	20.00
वैशेषिक दर्शन	20.00	अग्नि पुराण	25.00	दुर्गा उपासना	25.00	चाणक्य नीति	30.00
युग प्रवर्तक गौतम बुद्ध	25.00	स्कन्द पुराण	.25.00	शनि उपासना	25.00	महामात्य चाणक्य	30.00
कार्तिक महात्म्य भा.टी.	35.00	नारद पुराण	25.00	ऋग्वेद	30.00	चाणक्य सूत्र	30.00
कार्तिक महात्म्य	25.00	हरिवंश पुराण	25.00	सामवेद	30.00	कौटिल्य अर्थशास्त्र	25.00
मनुस्मृति	30.00	श्री विष्णु पुराण	25.00	यजुर्वेद	30.00	आर्य पुष्पांजलि	25.00
विदुर नीति	30.00	श्रीमद् भागवत पुराण	25.00	अथर्ववेद	30.00	गुरु वशिष्ठ	20.00
भर्तृहरि शतक	25.00	श्री शिव पुराण	25.00	उपनिषद 108	60.00	दुर्गा सप्तशती	25.00
अनेकता में एकता	20.00	श्री देवी भागवत पुराण	25.00	सुख सागर	30.00	नीलकंठ	20.00
रामलीला नाटक	30.00	ब्रह्मवैवर्त पुराण	25.00	भारत के प्रमुख तीर्थ	20.00	प्रजापति, ब्रह्म	20.00
गणेश पुराण	25.00	कल्कि पुराण	25.00	जैकारां शेरांवाली का	20.00	भगवान परशुराम	20.00
वायु पुराण	25.00	हनुमान उपासना	25.00	व्रत पर्व और त्योहार	25.00	सत्य साईं बाबा	30.00
भविष्य पुराण	25.00	गायत्री उपासना	25.00	रामायण	25.00		
लिंग पुराण	25.00	सरस्वती उपासना	25.00	वाल्मीकि रामायण	25.00		

डाक व्यय प्रति पुस्तक 5/- कोई सी तीन पुस्तकें मंगवाने पर डाकव्यय फ्री।
आर्डर के साथ 10/- एडवांस डाक टिकट भेजें, पुस्तकें V.P.P. से मंगवायें।
डायमंड पाकेट बुक्स, X-30, ओखला इन्ड्रस्टियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली-110020

१०८ उपनिषद्

डॉ० भवान सिंह राणा

MOHAN PUSTKALAYA
19, Books Market,
Ludhiana -141008
PH:-(S) 725824

डायमंड पाकेट बुक्स (प्रा.) लि.
X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-2
नई दिल्ली –110 020

महिलाओं की अपनी पत्रिका

गृहलक्ष्मी

पारिवारिक मासिक पत्रिका

© प्रकाशकाधीन

प्रकाशक :
डायमंड पॉकेट बुक्स (प्रा.) लि.
एक्स-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फ़ेस-2
नई दिल्ली– 110 020
फोन: 011-6822803; 6822804, 6841033
फैक्स: 011-6925020

वितरक :
पंजाबी पुस्तक भंडार
257, दरीबा कलां, दिल्ली– 110 006

संस्करण : 1998

मूल्य : 100.00

स्पेशल ईफेक्टस :
ग्राफ़िक्स बी, मेरठ– 250 005

प्रिंटर्स : आदर्श प्रिन्टर्स, नवीन शाहदरा

---

108 UPNISHAD : Dr. BHAWAN SINGH RANA 100.00

अनुक्रमणिका

1. ईशोपनिषद ...7
2. केनोपनिषद ...10
3. कठोपनिषद ...14
4. प्रश्नोपनिषद ...22
5. मुंडक उपनिषद ...28
6. मांडुक्य उपनिषद ...33
7. ऐतरेयोपनिषद् ...35
8. तैत्तरीयोपनिषद् ...37
9. छांदोग्य उपनिषद् ...44
10. श्वेताश्वेतरोपनिषद् ...80
11. गर्भोपनिषद् ...86
12. मुद्गलोपनिषद् ...88
13. अक्ष्युपनिषद् ...90
14. अध्यात्मोपनिषद् ...92
15. मैत्रायणी उपनिषद् ...95
16. शिवसंकल्प उपनिषद् ...100
17. आश्रम उपनिषद् ...101
18. द्वयोपनिषद् ...102
19. वज्रसूचिका उपनिषद ...103
20. अथर्वशिरोपनिषद् ...104
21. स्कंद उपनिषद् ...106
22. सर्वसार उपनिषद् ...107
23. शुकरहस्योपनिषद् ...109
24. मंत्रकोपनिषद् ...111
25. प्रणव उपनिषद् ...112
26. निरालंबोपनिषद ...113
27. गायत्री उपनिषद् ...115
28. अमृतनादोपनिषद् ...118
29. एकाक्षरोपनिषद् ...120
30. नादविंदूपनिषद् ...121
31. तुरीयातीतोपनिषद् ...123
32. योगराजोपनिषद् ...124
33. आत्मपूजोपनिषद् ...125
34. ब्रह्म उपनिषद् ...126
35. ब्रह्मविद्या उपनिषद् ...128
36. क्षुरिकोपेनिषद् ...132
37. योगतत्त्वोपनिषद् ...133
38. सुबालोपनिषद ...141
39. मंडल ब्राह्मणोपनिषद् ...151
40. कौशीतकी ब्राह्मणोपनिषद ...156
41. जाबालदर्शनोपनिषद ...167
42. हंसोपनिषद ...177
43. स्वसंवेद्योपनिषद ...179
44. जाबाल्योपनिषद् ...180
45. मैत्रेयोपनिषद् ...181
46. शांडिल्योनिषद् ...184
47. परब्रह्मोपनिषद् ...192
48. कठरुद्रोपनिषद् ...195
49. कुंडिकोपनिषद ...197
50. अरण्योपनिषद् ...199
51. संन्यासोपनिषद ...200
52. नारद परिव्राजकोपनिषद् ...205
53. पैंगलोपनिषद ...222
54. महावाक्योपनिषद ...228
55. आत्मबोधोपनिषद ...229
56. कैवल्योपनिषद ...231
57. ब्रह्मविंदूपनिषद ...233
58. आत्मोपनिषद ...234
59. पंचब्रह्मोपनिषद ...236
60. शारीरकोपनिषद ...238

61. शाटयायनीयोपनिषद ...239
62. याज्ञवल्क्योपनिषद ...241
63. जाबालोपनिषद ...243
64. परमहंस उपनिषद ...244
65. निर्वाणोपनिषद ...245
66. परमहंस परिव्राजकोपनिषद ...247
67. भिक्षुकोपनिषद ...250
68. अवधूतोपनिषद ...251
69. योगचूड़ामणि उपनिषद ...253
70. महोपनिषद ...261
71. त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद ...282
72. अद्वयतारक उपनिषद ...288
73. पाशुपत ब्रह्मोपनिषद ...290
74. प्राण अग्निहोत्रोपनिषद ...294
75. योग कुंडलिनी उपनिषद ...296
76. ध्यानविंदु उपनिषद ...302
77. अक्षमालिका उपनिषद ...307
78. रुद्राक्ष जाबालोपनिषद ...309
79. राम पूर्वतापिनी उपनिषद ...313
80. गोपाल पूर्वतापिनी उपनिषद...319
81. कृष्ण उपनिषद ...321
82. गणपति उपनिषद ...323
83. नृसिंहपूर्वतापिनी उपनिषद ...325
84. नृसिंह षट्चक्रोपनिषद ...332
85. दक्षिणामूर्ति उपनिषद ...333
86. शरभ उपनिषद ...336
87. रुद्रोपनिषद ...338
88. कालाग्नि रुद्रोपनिषद ...339
89. नील रुद्रोपनिषद ...340
90. रुद्र हृदयोपनिषद् ...342
91. गरुड़ोपनिषद् ...345
92. लांगूलोपनिषद् ...347
93. गायत्री रहस्योपनिषद् ...348
94. सावित्री उपनिषद् ...351
95. सरस्वती रहस्योपनिषद् ...353
96. देवी उपनिषद् ...358
97. बहु ऋचोपनिषद् ...360
98. सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद् ...361
99. त्रिपुरोपनिषद् ...364
100. सीता उपनिषद् ...366
101. राधा उपनिषद् ...368
102. तुलसी उपनिषद् ...369
103. नारायण उपनिषद् ...370
104. सूर्य उपनिषद् ...371
105. भावनोपनिषद् ...373
106. चतुर्वेदोपनिषद् ...375
107. चांक्षुष उपनिषद् ...376
108. कलि संतरणोपनिषद् ...377

□

1. ईशोपनिषद

शांति पाठ :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

वह ब्रह्म पूर्ण है, यह कार्य जगत भी पूर्ण है । उसी पूर्ण से इस पूर्ण की उत्पत्ति हुई है, अतः उस पूर्ण से इस पूर्ण को निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है ।

(1) इस परिवर्तनशील जगत में यह जो कुछ भी चराचर दिखाई पड़नेवाली वस्तुएं हैं, ईश्वर उन सब में व्याप्त है । अतः उसका त्यागभाव से उपभोग करना चाहिए । जो वस्तु आपके पास नहीं है, उसका लोभ मत करो । भला यह धन किसका है ?

(2) इस विश्व में जन्म लेकर श्रेष्ठ पुरुषार्थ करते हुए सौ वर्ष तक जीवित रहने की इच्छा करनी चाहिए । इस प्रकार (पूर्व श्लोक तथा इस श्लोक में वर्णित) सभी उपदेशों के अनुसार आचरण करो । इससे अतिरिक्त उत्थान के लिए कोई मार्ग नहीं है । जो मनुष्य सांसारिक भोगों को भोगते हुए भी कर्म मार्ग का परित्याग नहीं करता, उसे कर्म से उत्पन्न दोष नहीं छूते ।

(3) जो लोग केवल शारीरिक बल प्रदर्शन अर्थात परपीड़न के लिए प्रसिद्ध हैं; जिनमें आदर्श मानवीय मार्ग को समझने की शक्ति नहीं है, वे वस्तुतः असत मार्ग में लगे हैं; वे अज्ञान के अंधकार से व्याप्त हैं । वे वस्तुतः आत्मघाती हैं । प्राण त्याग करने के बाद भी वे आसुरी लोकों को प्राप्त होते हैं ।

(4) वह ब्रह्म एक है, चंचलता रहित है, सबसे प्राचीन है, स्फूर्ति प्रदान करनेवाला है और मन से भी तेज चलनेवाला है । आंख, जिह्वा, कान आदि इंद्रियां उस तक नहीं पहुंच सकतीं । वह स्थिर रहने पर भी अन्य दौड़ते हुए लोगों से आगे बढ़ जाता है । मां के गर्भ में रहनेवाला जीव उसी ब्रह्म के आधार से अपने पूर्व में किए हुए कर्म फल को प्राप्त करता है ।

(5) वह पूर्ण ब्रह्म समस्त सृष्टि को गति देते हुए भी स्वयं चंचलता रहित है । वह दूर भी है (अज्ञानियों के लिए) और पास भी है (ज्ञानियों के लिए) । वह इस चराचर जगत में प्रत्येक के अंदर भी है और बाहर भी है । क्योंकि ज्ञानी लोग उसे अपने अंदर देखते हैं और अज्ञानी नहीं देखते ।

(6) जो मनुष्य सभी प्राणियों की आत्मा के अंदर आत्मा है, ऐसा अनुभव करता है और समस्त प्राणियों में उसी एक आत्मा का विश्वासपूर्वक अनुभव करता है, उसे किसी प्राणी के प्रति घृणा नहीं रहती ।

(7) इस प्रकार की अवस्था में पहुंचने पर ज्ञानी मनुष्य को आत्मा सर्वभूतमय है—ऐसा अनुभव होता है । इस प्रकार का अनुभव होने पर उसे मोह बांध नहीं सकते ।

(8) वह आत्मा सर्वत्र व्यापक है, शरीर रहित है, स्नायु एवं व्रण हीन है, शुद्ध, निष्पाप और तेजोमय है । इंद्रिय ज्ञान से परे है, मनीषी है, विजयी और स्वयंजन्मा है । उसने अनादिकाल से सभी इंद्रियों (जीभ, आंख, नाक, कान और त्वचा) तथा उनके विषयों (रस, देखना, सूंघना, सुनना और स्पर्श) की व्यवस्था की है ।

(9) जो—आत्मा नहीं है—इस प्रकार की अविद्या के अनुयायी हैं, वे अज्ञान के प्रगाढ़ अंधकार में प्रवेश करते हैं । साथ ही जो केवल आत्मज्ञान में ही डूब जाते हैं, वे अविद्या[1] के उपासक से भी अधिक गहन अंधकार में जाते हैं, क्योंकि सांसारिक सुखसाधन भी जीवन-यात्रा के निर्वाह हेतु आवश्यक हैं ।

(10) विद्या अर्थात् आत्मज्ञान से आत्मा की उन्नति होती है । अविद्या से सांसारिकता प्राप्त होती है । अतः इन दोनों का फल भिन्न-भिन्न है । ऐसा हमने धीरोदात्त मनीषियों से सुना है, जिन्होंने हमें इस विषय का उपदेश दिया था ।

(11) विद्या से आत्मबल बढ़ता है और अविद्या से सांसारिक उन्नति प्राप्त होती है । जो इन दोनों को समान रूप से जानता है, वह अविद्या से अकाल मृत्यु को दूर करता है तथा विद्या से अमरत्व प्राप्त करता है ।

(12) जो असंभूति (पृथकतावाद) की बात करते हैं, वे गहन अंधकार में प्रवेश करते हैं, और जो केवल संघवाद के ही उपासक हैं (व्यक्तिगत स्वतंत्रता के विरोधी हैं), वे असंभूतिवादियों से भी प्रगाढ़ अंधकार को प्राप्त करते हैं[2] अतः संघवाद और वैयक्तिक स्वतंत्रता—(संभूति एवं असंभूति) दोनों की अतिवादिता उचित नहीं है ।

(13) संघवाद और असंभूतिवाद, इन दोनों के फल भिन्न-भिन्न हैं—ऐसा कहा गया है । ऐसा हमने धीरे पुरुषों से सुना है, जिन्होंने हमें यह उपदेश दिया था ।

(14) जो संघवाद और असंघवाद दोनों के समुचित प्रयोग को जानता है, वह असंघवाद से अपनी अकाल मृत्यु (रोग आदि) को दूर करके संघवाद से अमरता प्राप्त करता है ।

(15) स्वर्णमय पान से सत्य का मुख बंद पड़ा है । भौतिकता सत्य को ढक देती है । हे परमात्मा ! सत्यधर्म का पालन करने के लिए तू उसे खोल दे । सत्यधर्म का पालन करने के लिए स्वर्ण अर्थात् धन-संपत्ति का लोभत्याग करना अनिवार्य है । तात्पर्य यह है कि धन संपत्ति का लालच व्यक्ति को सत्य से विमुख कर देता है । अतः हे परमात्मा तू हमें लोभ से बचा ले ।

---

1. उपनिषदों में अविद्या शब्द का अर्थ वैद्यक, रसायन तंत्र आदि भौतिक विज्ञानों से है तथा विद्या शब्द का अर्थ अध्यात्म विद्या है ।
2. संघवाद की चरमवादिता व्यक्तिगत स्वतंत्रता को नष्ट कर देती है । इस चरमवादिता के कारण ही हिटलर जैसे अधिनायकों का अभ्युदय हुआ था, जो विश्वयुद्ध का कारण बना । कांट, हीगल आदि पाश्चात्य विचारक इसी विचारधारा के प्रबल समर्थक थे ।

(16) हे पोषक द्रष्टा नियामक, तेज स्वरूप, प्रजापालक ईश्वर ! अपनी किरणों को एक ओर समेट लो (इनकी चकाचौंध मुझे देखने नहीं देती); और जो तेरा परम कल्याणकारक तेजस्वी स्वरूप है, उसे मैं देखता हूं। यह जो इस शरीर में प्राणों को धारण करनेवाला भक्त है, वह मैं ही हूं।

(17) हमारा यह आत्मा अपार्थिव और अमृतरूपी शक्तिवाला है, और यह शरीर अंत में भस्म होनेवाला है। अतः हे कर्म करने वाले पुरुष अपने द्वारा किए जानेवाले कर्मों का ध्यान कर। सर्वरक्षक आत्मा का ध्यान कर हे कर्म करनेवाले पुरुष किए हुए कर्मों का ध्यान कर।

(18) हे अग्निस्वरूप ईश्वर हमें उत्तम मार्ग से अभ्युदय की ओर ले चल। हे देव ! तू हमारे सभी कर्मों को जानता है। हमारे पास से कुटिल पापों को दूर कर। हम तुझे विशेष रूप से नमन करते हुए तेरी स्तुति करते हैं।

□

2 केनोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ अप्यायंतु ममांगानि वाक्प्राणचक्षुषः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोद निराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तुतदात्मानि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि संतु ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

मेरे अंग पुष्ट हों तथा मेरे वाक, प्राण चक्षु, श्रोत्र, बल और संपूर्ण इंद्रियां पुष्ट हों । यह सब उपनिषद विद्या ब्रह्म है । मैं ब्रह्म का निराकरण न करूं, ब्रह्म मेरा निराकरण न करे । इस प्रकार हमारा परस्पर अनिराकरण हो । उपनिषदों में जो धर्म है, वह आत्मज्ञान में लगे हुए मुझ में निहित हो, वह मुझ में निहित हो । त्रिविध तापों की शांति हो ।

प्रथम खंड

(1) यह मन किसकी इच्छा से प्रेरित होकर अपने विषयों में गिरता है ? यह प्राण किसके द्वारा प्रयुक्त होने पर चलता है ? यह वाणी किसके द्वारा इच्छा किए जाने पर बोलती है ? कौन देव नेत्रों तथा कानों को प्रेरित करता है ?

(2) जो कानों का भी कान, मन का भी मन और वाणी की भी वाणी है, वही प्राणों का भी प्राण और चक्षु का भी चक्षु है । इस तथ्य को जानकर धीर पुरुष मृत्यु के पश्चात मुक्त होकर अमर हो जाते हैं ।

(3) उस ब्रह्म तक आंखें, वाणी और मन पहुंच ही नहीं सकते । अतः उस ब्रह्म के विषय में शिष्य को किस प्रकार उपदेश देना चाहिए, यह हम नहीं जानते; यह हमारी बुद्धि में नहीं आता । वह विदित एवं अविदित से अन्य ही है, ऐसा हमने अपने पूर्व पुरुषों से सुना है, जिन्होंने हमें उसका उपदेश दिया था ।

(4) जो वाणी से प्रकाशित नहीं हो सकता, किंतु जिससे वाणी प्रकाशित होती है उसी को ब्रह्म समझना चाहिए । यह जिस विशेष नाम युक्त ईश्वर (जैसे इंद्र, अग्नि, वायु, विष्णु, रुद्र आदि) की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है ।

(5) जिसके विषय में मन मनन नहीं कर सकता, परंतु जिसकी सत्ता से मन मनन करने की सामर्थ्य रखता है, ऐसा कहा जाता है, उसी को ब्रह्म समझो । जिस विशेष नामयुक्त ईश्वर की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है ।

(6) जिसे कोई नेत्र नहीं देखता, किंतु जिसकी सहायता से नेत्र अपने विषय को देखते हैं, उसी को ब्रह्म समझो, जिस विशेष नाम युक्त ईश्वर की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं ।

(7) जिसे कोई कान नहीं सुनता, परंतु जिसकी सहायता से कान सुनने का कार्य करते हैं, उसी को ब्रह्म समझो। जिस विशेष नामधारी ईश्वर की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है।

(8) जो नासिका में स्थित प्राण वायु का विषय नहीं बन सकता, अपितु जिससे प्राण अपने विषय (सूंघना) कार्य करते हैं, उसी को ब्रह्म समझो। जिस विशेष नामधारी ईश्वर की लोग उपासना करते हैं, वह ब्रह्म नहीं है।

द्वितीय खंड

(1) 'यदि तुम यह समझते हो कि तुम ईश्वर को अच्छी तरह जानते हो, तो निश्चय ही तुम ब्रह्म का अल्प रूप ही जानते हो। इसका जो रूप तुम जानते हो और जो रूप देवताओं में जाना जाता है, वह भी अल्प ही है। अतः तुम्हारे लिए ब्रह्म विचार करने योग्य है।' इस पर एकांत में विचार करने के अनंतर शिष्य ने कहा कि 'वह अब ईश्वर को जान गया है।'

(2) मैं न तो यह मानता हूं कि मैं ब्रह्म को अच्छी तरह जान गया हूं और न यही समझता हूं कि उसे नहीं जानता हूं। इसलिए मैं उसे जानता भी हूं और नहीं भी जानता हूं। हम शिष्यों में ब्रह्म के विषय में जिसकी यह धारणा है कि मैं उसे जानता भी हूं और नहीं भी जानता हूं, वही ब्रह्म को जानता है।

(3) ब्रह्म जिसे ज्ञात नहीं है, उसी को ज्ञात है। जिसको ज्ञात है, वह उसे नहीं जानता, क्योंकि वह जाननेवालों का बिना जाना हुआ और न जाननेवालों का जाना हुआ है। अन्य वस्तुओं के समान दिखाई न पड़ने के कारण वह इंद्रियों का विषय नहीं बन सकता।

(4) सभी इंद्रियां ब्रह्म की सत्ता से ही कार्य करती हैं, अतः प्रत्येक इंद्रिय के विषय से उसका ही बोध होता है, इसी से वह जाना जाता है, यही उसका ज्ञान है। इसी ब्रह्मज्ञान से अमरता प्राप्त होती है। अमरता स्वयं से ही प्राप्त होती है; विद्या तो केवल अज्ञान के अंधकार को दूर करने में सहायक सिद्ध होती है।

(5) यदि इसी जन्म में ब्रह्म को जान लिया जाए, तब तो ठीक है। यदि ऐसा न हो पाए तो यह प्राणी के लिए सर्वाधिक हानि की बात है। ज्ञानी लोग प्रत्येक प्राणी में ब्रह्म की सत्ता को देखकर, मृत्यु के पश्चात अमर हो जाते हैं।

तृतीय खंड

(1) यह प्रसिद्ध है कि पूर्व कथित लक्षणोंवाले परब्रह्म ने देवताओं के लिए विजय प्राप्त की थी। कहते हैं कि उस ब्रह्म की विजय से देवताओं ने विजय प्राप्त की थी।

(2) तब देवताओं ने सोचा यह विजय उनके निजी प्रयत्नों से मिली है। कहते हैं— वह ब्रह्म देवताओं के मनोभावों को जान गया और उनके सामने यक्ष के रूप में प्रादुर्भूत हुआ। यक्ष के रूप में आए हुए उस ब्रह्म को देवता लोग नहीं पहचान सके कि यह कौन है?

(3) वे देवता अग्नि से बोले, 'हे अग्नि यह ज्ञात करो कि यह यक्ष कौन है ?' अग्नि ने स्वीकृति दे दी।

(4) अग्नि यक्ष रूपी ब्रह्म के पास गया, यक्ष ने अग्नि से पूछा, 'तुम कौन हो।' इस पर अग्नि ने उत्तर दिया, 'मैं अग्नि हूं। मेरा नाम जातवेदास भी है।'

(5) इस पर यक्ष ने पूछा, 'हे जातवेदास, तेरे नाम के अनुरूप तुझमें कौन-सी शक्ति है ?'

अग्नि ने उत्तर दिया, 'पृथ्वी में दिखाई देनेवाले इस समस्त चराचर को मैं जला सकता हूं। आकाश में स्थित वस्तुएं भी मुझसे जल सकती हैं।'

(6) यक्ष ने अग्नि को एक तिनका दिया और कहा, 'इसे जलाकर दिखाओ।'

अग्नि उस तिनके में प्रविष्ट हुआ, किंतु अपनी संपूर्ण शक्ति से भी उसे न जला सका और लौटकर देवताओं के पास चला आया तथा उनसे बोला, 'यह यक्ष कौन है ? मैं इस तथ्य का पता न लगा पाया।'

(7) तदनंतर देवताओं ने वायुदेव को आज्ञा दी, 'हे वायु, अब तुम मालूम करो कि यह यक्ष कौन है ?'

वायु 'बहुत अच्छा' कहते हुए चल पड़ा।

(8) वायु यक्ष के पास गया। इस पर यक्ष ने प्रश्न किया, 'तुम कौन हो ?' यह पूछे जाने पर वायु ने कहा, 'मैं वायु हूं, मुझे मातरिश्वा भी कहते हैं।'

(9) तब यक्ष ने पूछा, 'हे वायु ! तुझमें क्या शक्ति है ?' वायु ने कहा, 'पृथ्वी में जो कुछ भी है, उसे मैं उड़ा सकता हूं।'

(10) तब यक्ष ने एक तिनका देते हुए वायु से कहा, 'इसे उड़ाओ,' इस पर वायु तिनके के पास गया, किंतु अपनी पूरी शक्ति से भी उसे उड़ा नहीं सका। तब वह भी देवताओं के पास लौट आया और बोला, मैं इस बात को नहीं जान पाया कि यह यक्ष कौन है ?'

(11) तब देवताओं ने इंद्र से कहा, 'हे मेघवन ! अब तुम इस बात का पता लगाओ कि यह यक्ष कौन है ?' 'बहुत अच्छा' कहकर इंद्र यक्ष के पास गया, किंतु यक्ष इंद्र के सामने से अंतर्धान हो गया।

(12) जिस आकाश में वह यक्ष अंतर्धान हुआ था, इंद्र भी वहीं गया। वहीं उसने उस शोभामयी स्त्री हिमालय की पुत्री उमा (ब्रह्म विद्या) से पूछा, यह यक्ष कौन है ?'

चतुर्थ खंड

(1) उस विद्या देवी ने स्पष्ट शब्दों में कहा, 'यह ब्रह्म है, इसकी विजय से ही तुम महिमामय हुए हो।' ऐसा कहते हैं कि तभी इंद्र ने जाना कि वह ब्रह्म था।

(2) अग्नि, वायु और इंद्र इन तीनों देवताओं ने ही सबसे पहले यह जाना कि 'यह ब्रह्म है।' तथा इन तीनों ने ही सर्वप्रथम उसका स्पर्श किया था। वे अन्य देवताओं से श्रेष्ठ माने गए।

(3) इंद्र ने सर्वप्रथम समीपस्थ ब्रह्म का स्पर्श किया और जाना कि यह ब्रह्म है; अतः वह सभी देवताओं में प्रमुख माना गया।

(4) यह उस ब्रह्म का उपासना-संबंधी उपदेश है, जो पलक झपकने अथवा विद्युत चमकने के समान उत्पन्न हुआ। यह उस ब्रह्म का अधिदेवता रूप है।

(5) अब अध्यात्म उपासना का उपदेश इस प्रकार है—मन को गतिमान कहा जाता है। यह ब्रह्म इस प्रकार मन से ही बार-बार ब्रह्म का स्मरण होता है तथा निरंतर संकल्प किया जाता है।

(6) वह ब्रह्म ही वन अर्थात् भजन करने योग्य है, अतः उसकी वन नाम से उपासना करनी चाहिए। जो उसे इस तरह जानता है, उसी को सभी प्राणी अच्छी तरह चाहने लगते हैं।

(7) शिष्य द्वारा गुरु से उपनिषद् शिक्षा के विषय में अनुरोध किया गया। अतः इस शिक्षा को देने के बाद गुरु ने कहा—'मैं तुम्हें ब्रह्मविषयक उपनिषद् का ज्ञान दे चुका हूं। अब तुम्हें ब्रह्म जाति संबंधी उपनिषद् का ज्ञान दूंगा।

(8) उस ब्राह्मी उपनिषद् की तप, दम, कर्म, वेद और संपूर्ण वेदांग (व्याकरण, ज्योतिष, छंद आदि) यह सब प्रतिष्ठा है तथा सत्य उसका घर है।

(9) जो निश्चयपूर्वक इस उपनिषद् को इस प्रकार जानता है, वह अपने पापों को नष्ट करके अनंत और महान स्वर्गलोक में प्रतिष्ठित होता है।

□

3. कठोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सहनाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहे।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

परमात्मा हम दोनों (गुरु एवं शिष्य) की एक साथ रक्षा करे, एक साथ हमें उपभोग प्रदान करे। हम साथ ही पराक्रम करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो। हम द्वेष न करें।

प्रथम अध्याय

प्रथम वल्ली

(1) वाजश्रवा के पुत्र उद्दालक ने यज्ञ में प्रबल फल की कामना से अपना सब कुछ दान कर दिया। उनका नचिकेता नाम का एक पुत्र था।

(2) ब्राह्मण दान में मिली बूढ़ी गायों को ले जा रहे थे, तब बालक नचिकेता के मन में इन गायों के प्रति दयाभावना उत्पन्न हुई। अतः उसने विचार किया।

(3) ये गाएं अपने जीवन का पानी पी चुकी हैं, घास चर चुकी हैं, इनका दूध दुहा जा चुका है तथा अब ये अत्यंत दुर्बल एवं प्रजनन शक्ति रहित हो चुकी हैं। इस प्रकार की गाएं ब्राह्मणों को दान में देने से उन्हें क्या सुख मिलेगा?

(4) पिता के इस व्यवहार को देखकर बालक नचिकेता ने पूछा, 'पिताजी ! जब आप इन बूढ़ी गायों को ब्राह्मणों को दान में दे रहे हैं, तो मुझे किसे देंगे? बालक के बार-बार यही प्रश्न पूछे जाने पर खिन्न होकर पिता ने कहा, 'मैं तुझे मृत्यु को दूंगा।'

(5) अपने प्रिय पुत्र के प्रति ऐसे वचन कहे जाने पर बालक ने मन में सोचा कि पिता के शब्द मिथ्या सिद्ध न हों। अतः उसने कहा—

(6) आप अपने पूर्वजों और अन्य साधु-महात्माओं के जीवन का अवलोकन कीजिए तथा उन्हीं के अनुसार अपने वचन को मिथ्या सिद्ध नहीं होने दीजिए, क्योंकि मनुष्य फसलों के समान ही जीर्ण होकर मृत्यु को प्राप्त होता है तथा पुनः जन्म लेता है। अतः अपने वचन का पालन कीजिए।

(7) अपने वचन को पूर्ण करने के लिए पिता ने पुत्र को यम के पास भेज दिया। यम के सभासदों ने उससे कहा, 'अपने तेज से घरों को जलाता हुआ जिस तरह साक्षात अग्नि के समान यह ब्राह्मण आपके यहां आया है, अतः आप पांव धोने हेतु जल देकर अर्थात् समुचित साक्षात्कार करके उसे शांत कीजिए।

(8) जिसके घर में ब्राह्मण भूखा रहता है, उसकी सभी इच्छाएं, प्रतीक्षाएं, सत्संग से प्राप्त फल, सत्य वाणी बोलने का फल, यज्ञ आदि करने से प्राप्त फल, पुत्र, पशु आदि सब नष्ट हो जाते हैं।

(9) तब यम ने कहा, 'हे ब्राह्मण अतिथि ! आपने मेरे यहां अनशन करते हुए तीन रात्रियां व्यतीत की हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूं। आप कुपित न हों। मेरा कोई अमंगल न हो। अतः आप मुझसे कोई तीन वर मांग लीजिए।'

(10) नचिकेता ने कहा, 'हे मृत्यु ! यदि आप मुझे वर देना चाहते हैं, तो प्रथम वर यह दीजिए कि मेरे पिता का मेरे प्रति क्रोध शांत हो जाए और वह मुझसे प्रसन्न हो जाएं। यहां से घर लौटने पर वह मुझे पहचान लें। तीन वरों में यही प्रथम वर मुझे दीजिए।

(11) यम ने कहा, 'हे नचिकेता मुझे मृत्यु के पास से लौटे हुए तुमको सामने देखकर तुम्हारे पिता पहले की तरह ही प्रसन्न हो जाएंगे।'

(12) नचिकेता ने पुनः कहा, 'स्वर्गलोक में न तो हे मृत्यु तुम्हारा भय है और न वृद्धावस्था का। वहां भूख और प्यास का बंधन भी नहीं है। अतः वहां मनुष्य सदा प्रसन्न रहता है।'

(13) हे मृत्यु स्वर्गलोक को प्राप्त करने की साधनभूत उस अग्नि के ज्ञान को मुझे दीजिए, जिससे देवपद की प्राप्ति होती है। यह अग्नि विज्ञान को वर ही मेरा द्वितीय वर है।

(14) यम ने कहा, 'नचिकेता ! उस स्वर्गप्रद अग्नि का मैं तुम्हें उपदेश देता हूं। तुम उसे एकाग्र मन होकर जान लो। अनंत लोक में प्रतिष्ठा देनेवाली, विद्वानों द्वारा गुप्त रखी हुई और मेरे द्वारा कही गई इस अग्नि को जानो।'

(15) मृत्यु ने जगत की उत्पत्ति के प्रथम कारण उस अग्नि का उसके सभी नियमों और प्रयोगों की विधि सहित नचिकेता को उपदेश दिया। नचिकेता ने उस समस्त उपदेश को फिर यम के समक्ष दोहराया तब यम संतुष्ट हुआ।

(16) इस पर संतुष्ट होते हुए यम ने कहा, 'मैं तुम्हें यह आशीर्वाद देता हूं कि जिस अग्नि विद्या का मैंने तुम्हें उपदेश दिया है, वह तुम्हारे ही नाम से (नाचिकेत अग्नि) जानी जाएगी और विविध वर्णोंवाली तथा शब्द करनेवाली इस माला को भी ग्रहण करो।

(17) इस नाचिकेत अग्नि का तीन बार स्तवन करनेवाला माता-पिता और गुरु इन तीनों से ज्ञान प्राप्त करनेवाला जन्म और मृत्यु के बंधन से मुक्त हो जाता है।

ब्रह्म से उत्पन्न इस प्रशंसनीय ज्ञान का साक्षात्कार करनेवाला मनुष्य परम शक्ति को प्राप्त करता है।

(18) जो तीन नाचिकेत अग्नि की उपासना करता है और इसे ठीक-ठीक जानकर यज्ञ करता है, वह मृत्यु के बंधन और शोक से मुक्त होकर स्वर्गलोक में आ नंद प्राप्त करता है।

(19) यम बोले, 'हे नचिकेता स्वर्ग प्राप्त करने की साधन इस अग्नि का वरदान मैंने तुम्हारे कहने पर दिया तथा यह अग्नि तुम्हारे ही नाम से प्रसिद्ध होगी, यह वर मैंने प्रसन्न होकर तुम्हें दिया है। अब तुम अपना तीसरा वर मांगो।'

(20) नचिकेता ने पूछा, 'कुछ लोग कहते हैं कि मृत्यु के उपरांत आत्मा इस शरीर को छोड़कर दूसरी देह धारण कर लेती है तथा कुछ अन्य लोग इसे नहीं मानते; अतः यहां इस विषय में मुझे संदेह

जैसा हो रहा है। कृपया आप मुझे अपना शिष्य मानते हुए, तृतीय वर के रूप में इसी विद्या का ज्ञान दीजिए।'

(21) यम ने कहा, 'प्राचीन काल में देवताओं को भी इस विषय में संशय हुआ था; आज तुम भी इसी संशय के विषय में समाधान चाहते हो। आत्मा-संबंधी यह प्रश्न अत्यंत कठिन है, तुम इसे नहीं समझ पाओगे; अतः इसके स्थान पर कोई दूसरा वर मांग लो।'

(22) नचिकेता ने कहा, 'देवताओं ने भी इस प्रश्न पर शंका की थी, और हे मृत्यु आप भी इसे कठिन कहते हैं, इस प्रश्न के विषय में आपके समान उपदेशक दूसरा नहीं हो सकता इसके समान कोई दूसरा वर नहीं हो सकता।'

(23) यम ने कहा, 'हे नचिकेता तुम सौ-सौ वर्ष की आयुवाले पुत्रों और पौत्रों का वर मांग लो; जितने चाहो हाथी, घोड़े और सोना मांग लो, जितनी चाहो भूमि मांग लो और अपने लिए इच्छित आयु मांग लो, किंतु यह वर न मांगो।

(24) इससे भी अधिक जो कुछ भी तुम चाहो और जितनी अवधि के लिए चाहो, धन अथवा भूमि, तुम मांगो मैं सहर्ष देने को तैयार हूं।

(25) जो-जो भी वस्तुएं संसार में दुर्लभ हैं, वह सब कुछ तुम मांग लो। मनुष्यों द्वारा सर्वथा अप्राप्य वाहनों और रथों से युक्त सुंदर अप्सराएं मांग लो और उनसे अपनी सेवा कराओ, किंतु मरण विषयक इस प्रश्न को न पूछो।

(26) इन सब काम भोगों की निंदा करते हुए नचिकेता ने कहा, 'ये सब काम-भोग आज हैं, तो कल नहीं रहेंगे। हे मृत्यु ! मनुष्य की सभी इंद्रियां धीरे-धीरे तेजहीन हो जाती हैं। कितनी ही लंबी आयु क्यों न मिले वह भी नष्ट होनेवाली है। यह सब रथ आदि वाहन और नृत्यगीत आदि आप अपने ही पास रहने दें।

(27) मनुष्य को चाहे कितना ही धन क्यों न मिले, वह की संतुष्ट नहीं हो सकता। हे मृत्यु मैंने तुम्हारे दर्शन कर लिए हैं और एक-न-एक दिन सभी को आपके पास आना होता है। अतः असीमित धन भी व्यर्थ ही है। तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही मानव जीवित रह सकता है। इस सबको देखते हुए मैं आपसे यही वर चाहता हूं।

(28) अजर और अमर लोक को प्राप्त करने का उपाय जान जाने पर कौन ऐसा मनुष्य होगा, जो वृद्धावस्था और मृत्युवाली इस पृथ्वी की गति को जानते हुए अल्पकालिक जीवन के राग-रंग और आमोद-प्रमोद में मन लगाएगा।

(29) अतः हे मृत्यु इन कामादि प्रलोभनों को छोड़कर आप मेरे द्वारा चाहे गए इस मृत्यु विषयक वर को ही मुझे दीजिए। इस गूढ़ वरदान के अतिरिक्त आपसे कुछ नहीं मांगता।

द्वितीय वल्ली

अनेक प्रकार से नचिकेता की परीक्षा लेने के बाद यम ने कहना प्रारंभ किया कि हे नचिकेता ! 'श्रेय (कल्याणकारक) और प्रेय (प्रिय लगनेवाला) दो भिन्न-भिन्न मार्ग हैं। यह दोनों अनेक प्रकार

से पुरुष को बंधन में डालते हैं। इनमें श्रेय का वरण करनेवाला व्यक्ति कल्याण को प्राप्त करता है तथा प्रेय का वरण करनेवाले के कल्याण की हानि होती है। बुद्धिमान मनुष्य श्रेय एवं प्रेय पर भली-भांति विचार करके श्रेय (श्रेयस्कर) मार्ग को अपनाता है, किंतु मूर्ख व्यक्ति अपने योगक्षेम के वहन हेतु प्रेय का मार्ग अपनाता है।

अतः हे नचिकेता तुमने प्रिय काम भोगों की तुलना में इस श्रेयस्कर (मृत्यु विद्या) मार्ग का वरण किया है। बड़े-बड़े लोग (जो वस्तुतः मूर्ख हैं) इस वित्तमयी माया में डूब जाते हैं, किंतु तुम इससे उबर गए हो।

यह श्रेय और प्रेय विषयक विद्याएं एक दूसरे से दूर और विपरीत गुणोंवाली हैं। हे ब्रह्म विद्या के इच्छुक नचिकेता मैं समझता हूं कि कामनाएं तुम्हें डिगा नहीं पाई हैं।

अपने को धीर और पंडित माननेवाले अविद्या के अंधकार में डूबे हुए एक व्यक्ति द्वारा दूसरे व्यक्ति का मार्गदर्शन कराया जाना ठीक उसी प्रकार है, जैसे एक अंधे द्वारा दूसरे अंधे का मार्गदर्शन। इस प्रकार वह दोनों ही वास्तविक मार्ग से भटक जाते हैं।

धन के लोभ में डूबे हुए मूर्ख व्यक्ति को प्रमाद के कारण स्वर्गलोक-प्राप्ति का मार्ग अच्छा नहीं लगता है। इस लोक के अतिरिक्त दूसरा लोक नहीं है, ऐसा मानने वाले मूर्ख लोग बार-बार मुझ मृत्यु को प्राप्त करते हैं।

जिस आत्मा के विषय में बहुत से लोगों ने सुना भी नहीं है और सुनकर भी बहुत से लोग इसके विषय में कुछ नहीं जानते हैं। इसके विषय में बोलनेवाला भी विरला ही होता है और इसे प्राप्त करनेवाला भी विरला ही होता है। किसी कुशल आचार्य द्वारा उपदेश प्राप्त किया हुआ इसको जानने वाला तो कोई एक ही होता है।

इस जिस आत्मा के विषय में तुमने मुझसे प्रश्न किया है, वह अनेक बार चिंतन किए जाने पर भी सरलता से समझा जानेवाला नहीं है। साथ ही कोई सामान्य व्यक्ति भी इसके विषय में कुछ नहीं बता सकता। इसे तर्क से नहीं समझा जा सकता। किसी आत्मसाक्षात्कार किए हुए आचार्य की कृपा से ही इसका अनुभव किया जा सकता है।

यह सुबुद्धि तर्क द्वारा प्राप्त नहीं होती। इसका उपदेश कोई आत्मा को जानने वाला आचार्य ही दे सकता है। अतः हे प्रिय सत्यवादी धैर्यशाली नचिकेता ! तुमने यह ज्ञान मुझसे कृपावश प्राप्त किया है, क्योंकि तुम जैसा प्रश्नकर्ता विश्व में कोई दूसरा नहीं होगा। (1-9)

नाशवान वस्तुओं से अनश्वर (आत्मतत्त्व) की प्राप्ति नहीं हो सकती। मैं जानता हूं कि यह धन-संपत्तियां अनित्य हैं। इसलिए मैंने भी धन-धान्यादि अनित्य सुखों का परित्याग करके इस चिरस्थायी नचिकेता अग्नि को प्राप्त किया है। (10)

तुमने समस्त कामनाओं को, विश्वभर की प्रतिष्ठा को अनंत यज्ञों के फल को, आत्मज्ञान के अंत को, परम अभय पद को, प्रशंसनीय अणिमा आदि सिद्धियों को तथा महान गति को प्राप्त कर लिया है। हे नचिकेता तुम अपने धैर्य से सभी सांसारिक भोगों से ऊपर उठ गए हो।

उस गूढ़ दुर्लभ दर्शन हृदय गुहा में प्रविष्ट ब्रह्म को अध्यात्मिक योग से देखने पर साधक हर्ष एवं शोक से मुक्त हो जाता है। तुम्हारे जैसे लोग इस ज्ञान को सुनकर ग्रहण करके फिर उस पर विचार करके जानकर ब्रह्म को प्राप्त कर लेते हैं। अतः तुम्हारे लिए परम धाम का द्वार खुल गया है। (11-13)

नचिकेता ने कहा, 'हे यम जिस परमात्मा को तुम धर्म-अधर्म, भूत-भविष्य तथा कर्म-कारण से परे कहते हो, उसके विषय में बताओ।' (14)

यम ने बताया, 'जिसकी महिमा को वेद बताते हैं, जिसका समस्त तप अभ्यास करते हैं और जिसकी प्राप्ति हेतु ब्रह्मचारी व्रत पालन करते हैं, उस 'ओम' के विषय में मैं संक्षेप में तुम्हें बताता हूं। यही अक्षर ब्रह्म, परम ब्रह्म है। इसे जानकर सभी कुछ मिल जाता है। इसी का आंबन श्रेष्ठ एवं परम पुनीत है। इस आलंबन को जानकर ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। न तो यह आत्मा उत्पन्न होता है और न मरता है। न इससे कोई पैदा होता है। नश्वर शरीर में रहने पर भी यह शाश्वत अजन्मा, पुराना और नित्य है। मारने या मरनेवाला यदि स्वयं को हंता या मरा समझते हैं, तो यह उनका अज्ञान है, न तो कोई किसी को मारता है और न कोई मरता है। प्राणी की गुणों में स्थित आत्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म तथा महान से भी महान है। परमात्मा की कृपा से ही कोई शोकरहित साधक उसे देख सकता है। यह बैठा हुआ भी दूर तथा सोया हुआ भी चारों ओर चला जाता है। मेरे सिवा इसे अन्य कौन समझा सकता है ? यह शरीरों में अशरीर एवं अस्थिरों में स्थिर है। इस महान विभु को जाननेवाला कभी दुःखी नहीं होता। यह प्रवचनों, बुद्धि या बहुत सुने जाने पर भी प्राप्त नहीं होता। केवल उसी की कृपा से यह प्राप्त होता है। दुश्चरित्र, असंयमी और स्थिर व्यक्ति उसे अपनी सूक्ष्म बुद्धि द्वारा भी नहीं देख सकता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि प्राणी जिसके भोजन बन जाते हैं और मृत्यु जिसका उपसेचन बनती है, ऐसे परमात्मा को कौन जान सकता है ? (15-25)

तृतीय वल्ली

परम गुहा में स्थित लोक में अपने कर्मफलों को भोगते हुए छाया और प्रकाश के समान ब्रह्मवेत्ता तथा तीन बार नाचिकेत अग्नि का सेवन करके पंचयज्ञों को करनेवाले भी ऐसा कहते हैं कि प्रकृति-रूपी वृक्ष पर स्थित जीवन और ब्रह्म-रूपी दो पक्षी हैं। इनमें एक फलों का स्वाद लेता है और दूसरा न खाते हुए भी साक्षी जैसा है। हे नाचिकेत अग्नि यज्ञ कर्ताओं को संसार सागर से पार करने के साथ ही इसमें रहनेवाले मनुष्यों को भी अक्षर ब्रह्म को जानने की शक्ति दो। शरीर को रथ जीवात्मा को सवार, बुद्धि को सारथी तथा मन को लगाम समझो। इंद्रियां को घोड़े, शब्दादि विषयों को मार्ग तथा जीवात्मा को विद्वानों ने भोक्ता कहा है। विवेकहीन बुद्धि तथा असंयमी मनवाले की इंद्रियां अप्रशिक्षित सारथी के समान स्वछंद हो जाती है। विवेकशील बुद्धि तथा संयमित मन व्यक्ति की इंद्रियां कुशल सारथी के घोड़ों के समान वश में रहती हैं। अविवेकी बुद्धि तथा असंयमित मनवाले पापी को परम पद प्राप्ति नहीं होती; वह सदा जन्म-मृत्यु के चक्र में घूमता रहता है। इसके विपरीत विवेक बुद्धि, संयमी मन तथा पवित्र आत्मा जन्म-मृत्यु चक्र से छूटकर परमपद प्राप्त करता है। विवेकी सारथी के समान बुद्धिवाला मन-रूपी लगाम वश में रखकर संसार

से मुक्त होकर परमपद पाता है। इंद्रियों से विषय, विषयों से मन तथा मन से बुद्धि शक्तिशाली है और आत्मा सबसे शक्तिशाली और श्रेष्ठ है। (9-10)

आत्मा से अव्यक्त, अव्यक्त से परम पुरुष श्रेष्ठ है और इससे कुछ भी श्रेष्ठ नहीं है। यही पराकाष्ठा और परम गति है। उन सभी प्राणियों में गूढ़ आत्मा प्रकाशित नहीं होता। केवल सूक्ष्मदर्शी ही अपनी सूक्ष्म बुद्धि से उसे देखते हैं। ज्ञानी व्यक्ति वाणी को मन से, मन को ज्ञान से, ज्ञान को बुद्धि से, बुद्धि को आत्मा से तथा आत्मा को प्रशांत आत्मा के साथ जोड़े। उठो, जागो और श्रेष्ठ जनों की संगति से परमेश्वर को जानो। विद्वानों ने इसकी प्राप्ति के मार्ग को छुरे की धार के समान तेज कहा है। शब्द, स्पर्श आदि पांच विषयों के ज्ञान से दूर परमात्मा आदि—अंतहीन, नित्य अव्यय तथा आत्मा से भी श्रेष्ठ है। इसके ज्ञान से मनुष्य मृत्यु के मुख से बच जाता है। (11-15)

यमराज द्वारा नचिकेता से कहे गए इस पुराण आख्यान को कहकर या सुनकर विवेकी पुरुष ब्रह्मलोक में स्थान पाता है। जो पवित्रता के साथ ब्राह्मणों की सभा में अथवा श्राद्ध के समय इस रहस्य विद्या को कहता है, वह अनंत शक्तिवाला बनता है। (16-17)

द्वितीय अध्याय

प्रथम वल्ली

स्वयंभू परमात्मा ने इंद्रियों के द्वार बाहर की ओर बनाए हैं, अतः ये बाह्य वस्तुओं को ही ग्रहण कर सकती हैं, अंतरात्मा को नहीं देख सकतीं। विरले ही धैर्यशाली अमृत्व की इच्छा से चक्षुद्वार को अंदर को प्रेरित करके परमात्मा के दर्शन किए। बुद्धिहीन बाह्य विषयों में फंसकर मृत्युपाश में बंधते हैं, बुद्धिमान सत्य स्वरूप को जानकर इनमें नहीं पड़ते। जिस परमेश्वर की प्रेरणा से मानव शब्द आदि विषयों और सुखों का अनुभव करता है, उसी की प्रेरणा से वह यह भी जानता है कि यहां क्या शेष रहता है। स्वप्न के तथा जागृत अवस्था के दृश्यों को मनुष्य जिसके द्वारा देखता है, उस परमात्मा को जानकर धीर लोग शोक मुक्त हो जाते हैं। इस जीवनदाता भूत-भविष्य के शासक परमात्मा को अपने समीप देखकर उसकी निंदा न करनेवाला उसी के समान हो जाता है। यह आत्मा तप तथा जल से भी पहले जन्मा है और हृदय गुहा में प्रवेश करके पंचभूतों के साथ स्थित परमात्मा को देखता है। यही वह जीव है। प्राणों सहित जो देवी अदिति पैदा होकर हृदय गुहा में प्रविष्ट होती है, यह वही है। नारी के गर्भ में रक्षित शिशु के समान अरणियों में विद्यमान अग्नि सदृश सर्वत्र व्याप्त परमात्मा प्रतिदिन स्तुति करने योग्य है। (1-8)

सूर्य का उदय और अस्त होना सब ईश्वर के कारण है, ऐसे ब्रह्म का कोई उल्लंघन नहीं कर सकता। लोक-परलोक में एक ही ब्रह्म है। इसे अलग-अलग माननेवाले अज्ञानी बार-बार मृत्यु को प्राप्त होते हैं। अंतर्मुखी होने से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है उसमें भिन्नता देखना उचित नहीं है। हृदयाकाश में स्थित अंगुष्ठ मात्र जीव के मध्य ब्रह्म निवास करता है। उस ब्रह्म के साक्षात्कार से साधक प्रसन्न रहता है। अंगुष्ठमात्र इस निर्विकार ज्योति के समान ही ब्रह्म सबका स्वामी और सदा एक समान रहनेवाला है। गुण और गुणी एक-दूसरे से पृथक् नहीं हो सकते। अतः गुणी ईश्वर गुण सृष्टि में सर्वत्र व्याप्त है। जैसे दुर्ग में बरसा हुआ जल पर्वत के विभिन्न स्थानों में जाता है, वैसे ही

विभिन्न धर्म के जीव उसे विभिन्न रूप में देखते हुए भी उसी के पीछे दौड़ते हैं । जैसे वर्षा का जल जलाशयों में पहुंचकर उन्हीं जैसा हो जाता है, वैसे ही परमात्मा का ज्ञाता भी उसी के समान हो जाता है । (9-15)

द्वितीय वल्ली

चैतन्य रूप परमात्मा का नगर (शरीर) ग्यारह द्वारों (छिद्रों)वाला है । इस परमात्मा का ज्ञाता निःशोक होकर जन्म-मृत्यु के चक्र से छूटकर उसी के समान हो जाता है । परम धाम में स्थित परमात्मा योनियों में तथा अंतरिक्ष में रहनेवाला भी है । वही आहुति देने वाला है । अतिथि है, वही मनुष्यों, देवताओं आदि में है । जल, पृथ्वी, श्रेष्ठकर्म आदि में प्रकट होनेवाला भी वही महान सत्य है । प्राणों को ऊपर उठानेवाले तथा स्वयं देह में नीचे निवास करनेवाले उस परमेश्वर की सभी देवता उपासना करते हैं । देह में विद्यमान तथा एक से दूसरे देह में जानेवाले आत्मा के देह को छोड़ने पर क्या शेष रहता है ? यही वह परमेश्वर है । देहधारी केवल प्राण एवं अपान से ही जीवित नहीं रहता । यह देह भी गूढ़ सनातन ब्रह्म पर आश्रित है । हे नचिकेता तुम्हें अप्रकट सनातन विद्या बताता हूं कि देह के मरने पर आत्मा कैसे रहता है ? अपने-अपने कर्मों के अनुसार जीवात्मा योनि धारण करते हैं । कोई वृक्ष, लता आदि स्थावर भी बन जाते हैं । परमेश्वर का कोई भी अतिक्रमण नहीं कर सकता । वह विभिन्न भोगों को निर्माता है, सोने पर भी जागता है और उसी शुद्धस्वरूप अविनाशी ब्रह्म में समस्त लोक स्थित हैं । (1-8)

एक ही होते हुए भी अंतरात्मा रूप परमेश्वर विभिन्न देहों में प्रविष्ट होकर अनेक प्रकार का बना है । संपूर्ण विश्व में स्थित वह अग्निरूप बाहर भी है और अंदर भी । वायु रूप में भी वह इसी प्रकार है । सारे लोकों का नेत्र सूर्य जैसे प्राणियों के नेत्र दोषों से प्रभावित नहीं होता, वैसे ही परमात्मा भी प्राणियों के दुःखों आदि में लिप्त नहीं होता । वह सबमें स्थित होते हुए भी उनसे बाहर है । सबके देहों में रहकर उन पर नियंत्रण रखनेवाला एक ही परमेश्वर अनेक रूप धारण करता है । अपने अंदर स्थित उस ब्रह्म का निरंतर दर्शन करने से विद्वानों को शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है; अन्यों को नहीं । वह नित्यों का नित्य तथा चेतनों का चेतन है । अकेला होते हुए भी वह अनेकों कार्य करता है । आत्मा में स्थित इस ब्रह्म को जो धैर्यशाली देखते हैं, वे शाश्वत शांति को प्राप्त करते हैं; अन्य नहीं । वह अनिर्वचनीय ब्रह्म ऐसा ही है । उसे कैसे समझाया जाए ? वह प्रकट होता है या उसकी अनुभूति होती है । वहां सूर्य, चंद्रमा, तारे या विद्युत भी प्रकाशित नहीं होते । अग्नि का तो वश ही क्या ? ये सब उसी के प्रकाश से प्रकाशमान हैं । संपूर्ण विश्व उसी से प्रकाशवाला है । (9-15)

तृतीय वल्ली

नीचे जड़ और ऊपर शाखाओंवाला यह सनातन पीपल का वृक्ष है, वही चैतन्य है, वही ब्रह्म है, उसी को अमृत कहते हैं । इसी ब्रह्म में समस्त लोक आश्रित हैं । इसका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता । उसी से यह जगत है तथा उसी से प्राणी गतिमान हैं । भयंकर वज्र के समान शक्तिशाली इस परमात्मा के ज्ञान से अमृत्व प्राप्त होता है । इसी के भय से अग्नि और सूर्य तपते हैं तथा इसी से वायु, इंद्र एवं मृत्यु क्रियाशील हैं । देहांत से पूर्व ही परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त करना उचित है,

अन्यथा युगों तक योनियों में जाना पड़ता है। दर्पण के समान निर्मल मन होने पर भी पितृलोक में स्वप्न के समान ईश्वर दीखने लगता है, गंधर्व लोक में जल के समान तथा ब्रह्म लोक में तो धूप-छांव की तरह सब पृथक् दिखाई देने लगता है। पृथक्-पृथक् स्थिति और इंद्रियों के विभिन्न भावों को जो उनके उदय और अस्त को जान लेता है कि ये नाशवान एवं क्षणिक हैं, वह मनीषी दुःखी नहीं होता। इंद्रियों से मन, मन से बुद्धि, बुद्धि से जीवात्मा तथा इससे भी अव्यक्त उत्तम है। अव्यक्त से व्यापक परम पुरुष बड़ा है। इसका ज्ञाता जीवन मुक्त होकर अमृत्व पाता है। इसका यथार्थ रूप सामने नहीं आता, क्योंकि आंखें इसे देख नहीं सकतीं। यह केवल चिंतन, पवित्र हृदय तथा बुद्धि द्वारा ही देखा जा सकता है। उसका ज्ञाता अमर हो जाता है। जब मन और पांचों ज्ञानेंद्रियां नियंत्रित हो जाती हैं और बुद्धि स्थिर हो जाती है तो यह अवस्था परमगति कहलाती है। (9-10)

इंद्रियों की स्थिरता को योग कहते हैं। तब प्रमाद नहीं रहता, किंतु यह उदय-अस्तशील है अतः इसका निरंतर अभ्यास करना चाहिए। न तो यह मन से प्राप्त होता है और न ही वाणी या नेत्रों से, अतः केवल 'ब्रह्म है', ऐसा कहने भर से इसकी प्राप्ति नहीं होती। निश्चयपूर्वक उसका अस्तित्व स्वीकार करके तत्त्व भाव सें उसे प्राप्त करें, तभी उसका तत्त्व भाव प्रकट होता है। हृदय की सभी कामनाएं नष्ट होने पर साधक अमर होकर यहीं ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। जब इसी लोक में हृदय की सभी ग्रंथियां कट जाती हैं, तो यहीं अमृत्व को प्राप्त करता है। यही निश्चय नियम है। हृदय स्थित एक सौ एक नाड़ियों में से एक मूर्छा की ओर जाती है और इससे साधक ऊर्ध्व लोक में पहुंचकर अमृत्व प्राप्त करता है। अन्य सौ नाड़ियां प्राणों के साथ निकलकर विभिन्न गतियां प्राप्त करती हैं। अंगुष्ठ मात्र अंतरात्मा पुरुष सदा प्राणियों के हृदय में स्थित रहता है। उसे मूंज के तंतु के समान अपने से पृथक् कर उसी को अमृतमय समझो। यग द्वारा कही गई इस विद्या को पाकर नचिकेता मृत्युबंधन से मुक्त होकर ब्रह्मरूप बन गया। इस अध्यात्म विद्या का ज्ञाता भी वैसा ही हो जाता है। (11-18)

□

4. प्रश्नोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभ्यः शृणुयामः देवा भद्रं पश्येमातक्षिभिर्यजत्राः
स्थिरेरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदांयुः ।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

हम कानों से कल्याणमय वचन सुनें, नेत्रों से कल्याणमय चीजों को देखें और दृढ़ अंगोंवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करें। इंद्र हमारा कल्याण करें, पूषा हमारा कल्याण करें। अमंगल नाशक गरुड़ और वृहस्पति हमारा कल्याण करें। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दुःख शांत हों।

प्रथम प्रश्न

भारद्वाज पुत्र सुकेशा, शिवि पुत्र सत्यकाम, गर्ग गोत्रीय सौर्यायणी, कौशल गोत्रीय अश्वलायन, भार्गव और कात्यायन गोत्रीय कबंधी परम ब्रह्मनिष्ठ ऋषि ब्रह्म की जिज्ञासा से परमात्मा का अनुसंधान करते हुए समिधाएं लेकर पिप्पलाद ऋषि के पास आए। उन्हें पिप्पलाद ऋषि ने आज्ञा दी कि वे श्रद्धा सहित ब्रह्मचर्य का पालन करके एक वर्ष तक तप करें तभी वे अपनी जिज्ञासा प्रकट करें और तब यदि संभव हुआ तो उनके उत्तर दिए जाएंगे। ऐसा ही करने के बाद सर्वप्रथम कबंधी ने उनके पास जाकर पूछा, 'भगवन किस कारण से यह प्रजा विभिन्न रूपों में प्रकट होती है ?' इस पर महर्षि पिप्पलाद बोले, प्रजा उत्पन्न करने की इच्छा से प्रजापति ने तपस्या करके सबसे पहले एक जोड़ा उत्पन्न किया, एक रयि तथा दूसरा प्राण, जिससे यह जोड़ा अनेक प्रकार की सृष्टि उत्पन्न करे। वस्तुतः सूर्य ही प्राण है और चंद्रमा ही रयि है। विश्व में मूर्त एवं अमूर्त जो कुछ भी है, वह सब रयि का ही स्वरूप है। इसलिए मूर्तमान को रयि ही मानना चाहिए। रात्रि की समाप्ति होने पर उदय होनेवाला सूर्य प्राणों को अपनी किरणों में धारण करता हुआ पूर्व दिशा में उदित होता है। वही सूर्य दक्षिण को, पश्चिम को, ऊपर-नीचे सभी दिशाओं को प्रकाशित करके सभी प्राणियों के प्राणों को अपनी किरणों में धारण करता है। ऐसा यह उदय होनेवाला सूर्य वैश्वानर अग्नि, विश्वरूप तथा प्राण-अग्नि रूप है। इसी बात को ऋचाओं ने भी कहा है। (1-7)

विश्वरूप, सबके आधार, सबके द्वारा जाने गए सबके आधार, तपते हुए, एकमात्र ज्योति, जो हजारों किरणों से सैकड़ों प्रकार से व्याप्त हैं, सृष्टि के समस्त प्राणियों के लिए प्राण स्वरूप हैं, उदय को प्राप्त होते हैं (8)। वर्ष ही प्रजापति है जो दो अयन (उत्तरायण एवं दक्षिणायन) वाला है। अतः इस लोक में जो लोग इच्छित कामना की पूर्ति के लिए इसे कर्म मानकर उपासना करते हैं, वे चंद्रमा

के ही लोक को प्राप्त करते हैं। और वे ही जब पुनः लौटकर आते हैं, तो संतान की इच्छा करनेवाले वे ऋषि दक्षिण में जाते हैं। यही रयि अर्थात् पितृयान नामक मार्ग है ऐसे व्यक्ति ब्रह्मचर्य सहित तपस्या करके श्रद्धा सहित अध्यात्म विद्या प्राप्त करके परमेश्वर का अनुसंधान करके उत्तरायण से सूर्यलोक में पहुंच जाते हैं। यही सूर्य प्राणों का निवास स्थान है, यही अविनाशी है, भय से रहित है तथा यही परम गति भी है। ऐसा करनेवाले साधक जन्म लेकर संसार में नहीं आते हैं। उनका जन्म-मृत्यु बंधन छूट जाता है। (1-10)

सबके जानने योग्य परम ब्रह्म पांच पांवोंवाला, बारह आकृतियोंवाला, स्वर्ग से भी ऊंचे स्थानवाला, जल को उत्पन्न करनेवाला है, जो सात चक्रों (पहियों) तथा छः अरों (रथ के बीच की लकड़ियां)वाले विलक्षण रथ पर आरूढ़ होता है। मास (महीना) प्रजापति का रूप है। शुक्ल एवं कृष्ण पक्ष इसके दो प्राण हैं। दूसरा पक्ष—कृष्ण पक्ष रयि है। इसमें सांसारिक भोगों से संबंधित अनुष्ठान आदि कर्म संपन्न किए जाते हैं, किंतु ऋषि लोग निष्काम कर्म करनेवाले होते हैं। अतः वे समस्त कर्म शुक्ल पक्ष में ही करते हैं। (11-12)

दिन एवं रात्रि प्रजापति रूप हैं। दिन प्राण तथा रात्रि रयि है। अतः दिन में रति कर्म करनेवाले व्यक्ति अपने प्राणों को नष्ट करते हैं। इसके प्रतिकूल रात्रि में यह कर्म करनेवाले को उसका कर्म हानिकारक नहीं होता। वह ब्रह्मचारी ही माना जाता है। अन्न भी प्रजापति का स्वरूप है। इसी से वीर्य बनता है। वीर्य से ही समस्त प्राणियों की उत्पत्ति होती है। प्रजापत्य व्रत का आचरण करनेवाले लोग मिथुन को जन्म देते हैं। जो व्यक्ति तपस्वी होते हैं तथा ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हैं और सत्य का आचरण करते हैं, वे ब्रह्म लोक प्राप्त करने के अधिकारी होते हैं। जो व्यक्ति कुटिल आचरणवाले, मिथ्या का आश्रय लेनेवाले तथा सांसारिक माया के वशीभूत होते हैं, उन्हें ब्रह्मलोक की प्राप्ति कदापि नहीं हो सकती। (13-15)

द्वितीय प्रश्न

इसके पश्चात् विदर्भ देश के भार्गव ऋषि ने पिप्पलाद ऋषि से पूछा, 'भगवन् प्रजा को कितने देवता धारण करते हैं? उनमें कितने प्रकाशित करनेवाले हैं? तथा इन सबमें श्रेष्ठ कौन है? (1)

महर्षि ने उत्तर दिया, 'आकाश सबसे महान है। वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, वाणी, मन, चक्षु तथा कान, सभी देवता ही हैं। वे सब प्रकट होकर कहने लगे कि इस देह को उन्होंने ही धारण किया है, अतः इसके आश्रय वे ही हैं। प्राण उन सबमें वरिष्ठ था। अतः वह बोला, 'गलतफहमी में मत रहो। मैं ही प्राण, अपान व्यान, उदान तथा समान अपने इन पांच रूपों से प्राणी के देह को आश्रय प्रदान करता हूं और उसे धारण करता हूं।' किंतु अन्य देवता उसकी बात नहीं माने। जैसे मधुमक्खियां छत्ता छोड़ देती हैं और राजा (वस्तुतः रानी) के बाहर निकलने पर सभी मधुमक्खियां छत्ता छोड़ देती हैं और राजा के ठहरने पर रुक जाती हैं, उसी प्रकार प्राण भी गर्व के साथ बाहर निकलने लगा। और उसके निकलते ही वाणी, मन, नेत्र आदि भी बाहर निकलने लगे। जब प्राण रुक गया, तो ये सभी रुक गए। इससे प्राण श्रेष्ठ सिद्ध हो गया। तब वाणी, मन आदि देवताओं ने उसकी स्तुति की। प्राण

को तपानेवाला अग्नि है। वही सूर्य है, वही मेघ है, वही वायु है, वही पृथ्वी तथा रयि है तथा सत-असत तथा अमृतमय भी यही प्राण है। (2-5)

रथ के पहियों—नाभि में लगे अरों के समान ऋचाओं में, यजुष में, साम में, यज्ञ में तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि सभी में प्राणों का ही आधार बना हुआ है। अतः हे प्राण तू ही प्रजापति है, तू ही गर्भ में है, जो विचरण करता है और माता-पिता की आकृति में तू ही उत्पन्न करनेवाला है अतः हे प्राण! ये सभी देहधारी तुझे बलि अर्पित करते हैं। तू देह में रहनेवाले पांचों प्राणों के साथ में प्रतिष्ठित है। देवगणों के लिए बह्नि श्रेष्ठ है, पितर गणों के लिए स्वधा प्रथम वस्तु है, ऋषियों के श्रेष्ठ अथर्वा और अंगिरस द्वारा इस सत्य को प्रमाणित किया गया है। हे प्राण तुम्हीं इंद्र हो, और तुम ही सब तरह से रक्षा करनेवाले रुद्र हो, तुम्हीं अपने तेज से अंतरिक्ष में विचरण करते हो और तुम्हीं समस्त तारा आदि ज्योतियों के स्वामी हो। हे प्राण! स्वरूप सूर्य जब तुम जल बरसाते हो तो तुम्हारी यही प्रजा यह सोचकर प्रसन्न हो जाती है कि पर्याप्त अन्न उपजेगा। (6-10)

हे प्राण! तुम एक अकेले व्रात्य होकर भी ऋषि हो। सारा विश्व तुम्हारी ही संपत्ति है। हम तुम्हारे लिए आद्य जीव को प्रदान करते हैं; तुम उसके उपभोग करनेवाले हो। तुम ही हमारे पिता हो और व्योम में विचरण करनेवाले मातरिश्वा भी तुम्हीं हो। तुम्हारा यह जो स्वरूप शरीरों में, वाणी में, कानों में तथा नेत्रों में प्रतिष्ठित है और जो मन में प्रतिष्ठित है, उसे कल्याण से संयुक्त करो। हमारी इन देहों से निकलकर बाहर निकलने का प्रयत्न मत करो। इस विश्व में और ऊपर स्वर्ग लोक में जो कुछ भी विद्यमान है, वह सब प्राण के ही नियंत्रण में है। अतः हे प्राण तू माता और पिता के समान हमारी रक्षा कर और हमें धन-संपत्ति तथा सद्‌बुद्धि से युक्त कर।'

तृतीय प्रश्न

इस प्रश्न के बाद ऋषि आश्वलायन ने महर्षि पिप्पलाद से पूछा, 'भगवन इस प्राण की उत्पत्ति किससे हुई है और यह स्वयं को किस विधि से देहों में प्रतिष्ठित रखता है? तथा अपने को विभाजित करते हुए भी यह कैसे इनमें स्थित रहता है? किस प्रकार यह बाह्य जगत को और किस प्रकार अध्यात्म जगत अर्थात् मन एवं श्रोत्र, वाक, चक्षु आदि इंद्रियों को धारण करता है? किस प्रकार यह देहों से निष्क्रमण करता है? (1)

अश्वलायन के इस प्रश्न से महर्षि पिप्पलाद अत्यंत प्रसन्न हुए और बोले, 'तुमने अत्यंत जटिल विषय से संबंधित प्रश्न पूछा है। तुम वस्तुतः वेदों के ज्ञाता तथा ब्रह्मनिष्ठ ऋषि हो, अतः मैं तुम्हारे प्रश्न का उत्तर देता हूं। तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर इस प्रकार हैं—जैसे पुरुष की छाया सदा उसका अनुगमन करती है, वैसे ही यह प्राण भी है, जो आत्मा अर्थात् परमात्मा से उत्पन्न होता है और उसी के प्रति यह आश्रित भी है और मन के संकल्प के अनुसार ही यह प्राणियों के इस शरीर में प्रविष्ट होता है। जैसे सम्राट शासन-तंत्र के सम्यक् संचालन के लिए विभिन्न स्तरों पर अधिकारियों की नियुक्ति करता है, उसी प्रकार यह प्राण भी पांच प्रकार के वायु को (प्राण, अपान, व्यान, उदान एवं समान) शरीर के विभिन्न भागों में स्थित रहता है। यह स्वयं मुंह तथा नाक से चक्षु एवं श्रोत्रेंद्रिय में विद्यमान रहता है। देह के मध्य भाग में यह समान वायु के रूप में स्थित रहता है। प्राण का समान

नामक यही अंश अन्न को विभिन्न भागों तक पहुंचाता है। उसी से यह सप्तार्चिष (ज्वाला) के रूप में प्रकट होता है। वायु तथा उपस्थ में प्राण अपान वायु की नियुक्ति करते हैं। (2-5)

यह आत्मा हृदय में विद्यमान रहता है। हृदय में से ही एक सौ नाड़ियों का समूह निकलता है। इन सौ नाड़ियों में प्रत्येक की सौ-सौ शाखाएं निकली हैं तथा इन दस हजार नाड़ियों में से पुनः बहत्तर हजार नाड़ियां प्रत्येक शाखा से निकलती हैं। इनमें व्यान वायु संचरण करता है। (6)

इन समस्त नाड़ियों के अतिरिक्त सुषुम्ना नाम की एक नाड़ी और होती है। इसकी गति उदान वायु की ओर होती है। इसी से मनुष्य पुण्य के प्रति अभिमुख होता है, इस पर यही उसे पुण्य लोक की प्राप्ति कराती है। मनुष्य यदि पाप करनेवाला होता है, तो यही उसे अधो योनियां प्राप्त कराती है। इस प्रकार यह पाप तथा पुण्य, दोनों कर्मों से मनुष्य को इस लोक में स्थित रखती है। (7)

आदित्य ही बाह्य प्राण है, जो हमारे चक्षु विषयक प्राणों पर कृपा करता हुआ उदय होता है। भूमि रूपी ईश्वर मनुष्य के अपान वायु को सुस्थित करता है। आकाश समान वायु का प्रतिरूप है। आकाश में स्थित वायु व्यान वायु का ही बाह्य रूप है। तेज ही उदान है। जिसका देह अथवा तेज शीतलता को प्राप्त हो जाता है उसकी समस्त इंद्रियां मन सहित विलीन हो जाती हैं। तब उसे अन्य देह की प्राप्ति होती है। जैसा मानसिक संकल्प आत्मा का होगा, उसी संकल्प के अनुरूप वह प्राणों से युक्त होगा। तेज से युक्त होकर प्राण इस संकल्प के अनुसार ही आत्मा को विभिन्न योनियों की प्राप्ति कराता है जो विद्वान यहां वर्णित इस रहस्य को जान लेता है, उसकी वंश-परंपरा कभी नष्ट नहीं होती तथा वह अमृत्व को प्राप्त करता है। कहा गया है कि जो मनुष्य प्राणों की उत्पत्ति, स्थिति तथा स्थानों को जान लेता है और इसके पांचों भेदों के अध्यात्म को जान लेता है, उसे निःसंदेह अमृत्व की प्राप्ति होती है। (8-12)

चतुर्थ प्रश्न

इसके अनंतर गर्ग गोत्रीय सौर्यायणी ने प्रश्न किया—मनुष्य देह में स्थित कौन-कौन देवता सोते हैं? तथा कौन जागते रहते हैं? कौन देवता स्वप्न देखते हैं? तथा किसे सुख का अनुभव होता है? और सभी देवगण किसमें प्रतिष्ठित होते हैं? (1)

महर्षि पिप्पलाद ने उत्तर दिया, 'गार्ग्य सौर्यायणी सुनो—जिस प्रकार अस्त होते हुए सूर्य की समस्त किरणें उसी तेजोमंडल रूप सूर्य में एकीभूत होकर लीन हो जाती हैं तथा उसके उदय होने पर पुनः प्रसारित हो जाती हैं, उसी प्रकार समस्त इंद्रियां मनरूपी परमेश्वर में लीन हो जाती हैं। तब यह देहधारी पुरुष न तो देखता है, न सूंघता है, न स्वाद लेता है, न बोलता है और न ही स्पर्श करता है। इसी प्रकार आनंद का अनुभव, विचरण, मूत्र-पुरीषोत्सर्ग आदि क्रियाएं भी नहीं करता। इस प्रकार इंद्रियों के विषयों का रुक जाना ही इनका सो जाना है। इस शरीर रूपी पुर (नगर) में पांच अग्नियों का निवास स्थान है, ये पांचों प्राण रूप में जागृत रहते हैं। इनमें अपान गार्हपत्य अग्नि है, व्यान अन्वाहार्य पवन नामक अग्नि है। गार्हपत्य अग्नि द्वारा ले जायी जानेवाली अग्नि ही प्राण है, यहं अग्नि आह्वनीय है। शरीरधारी जो निःश्वास और उच्छवास लेते हैं, ये दो आहुतियों के सदृश समान नामक प्राणों का भेद विशेष है। उन्हें भली-भांति समान रूप में संतुलित रखने के कारण ही

इसे समान कहा जाता है, अतः यही ऋत्विक है। मन यजमान स्वरूप है और अभीष्ट फल ही उदान है, जो इस मनरूपी यजमान को दिन-प्रतिदिन हृदय गुहा में स्थित ब्रह्म की ओर ले जाता है। यह आत्मारूपी देव स्वप्न में भी अपनी महिमा का अनुभव कराता है। देखे हुए को बार-बार पुनः देखता है, सुने हुए और उसके अर्थ को बार-बार सुनता है। विभिन्न स्थानों और दिशाओं में सुनी हुई और अनुभवजन्य बातों को फिर-फिर अनुभव करता है। देखे-अनदेखे, सुने-अनसुने, अनुभूत-अननुभूत तथा सत एवं असत सभी विषयों को बार-बार सुनता है, अनुभव करता है तथा उन पर विचार करता है, अर्थात् उन्हें पहले न करने पर देख लेता है। (2-5)

तेज से अभिभूत तनवाला यह जीवात्मा स्वप्नों को नहीं देखता किंतु उस काल में यह इस सुख का संपूर्ण अनुभव करता है।

हे सौम्य ! जैसे अनेकों पक्षी एक ही वृक्ष का आश्रय लेते हुए उसमें निवास करते हैं, वैसे ही यह सभी तत्त्व परमेश्वर रूपी वृक्ष का आश्रय लिए हुए हैं। पृथ्वी तत्त्व तथा उसकी मात्रा, जल और उसकी तन्मात्रा तेज और तेजोमात्रा, वायु और वायुमात्रा तथा आकाश और आकाशमात्रा, नेत्र और दर्शनीय वस्तुएं, कान और सुनने योग्य विषय, नासिका और सूंघने योग्य सुगंध, रसना (जीभ) और रस, त्वचा और स्पर्श योग पदार्थ, वाणी और बोलने योग्य शब्द, हाथ और लेने योग्य पदार्थ, उपस्थ और रति आदि विषय, पायु और पुरीष, पांव और जाने योग्य स्थान, मन और विचार करते योग्य विषय, बुद्धि और जानने योग्य, अहंकार और उसका कार्य, चित्त और चिंतनीय बातें, तेज और उसका विषय, प्राण और धारण करने के योग्य पदार्थ, यह सब परमात्मा के अधीन हैं। (6-8)

यह देखनेवाला, सूंघनेवाला, स्वाद आदि लेनेवाला, मननशील, ज्ञाता और कर्ता विशुद्ध ज्ञानवाला आत्मा पुरुष भी उस परम अविनाशी आत्मा में ही प्रतिष्ठित है। जो इस परम अक्षर (अविनाशी) छाया शून्य, विदेह, अलोहित शुभ्र अनश्वर परमात्मा को जानता है, वह भी सर्वज्ञ बनकर उसी के समान सर्वरूप बन जाता है। अतः कहा गया है कि जो विशुद्ध ज्ञान स्वरूप देहवाले सभी प्राणियों में स्थित उस परमात्मा को जान लेता है, वह सर्वज्ञ बन जाता है तथा उसी सर्वस्वरूप में प्रविष्ट हो जाता है। उसी में सभी इंद्रियां, पांचों प्राण आदि भी प्रतिष्ठित हैं। (9-11)

पंचम प्रश्न

इस समाधान के बाद राजा शिवि के पुत्र सत्यकाम ने अपना प्रश्न किया— 'भगवन ! प्राणांत होने तक जो समुचित प्रकार से 'ओम' का अभ्यास करता है, वह इसके द्वारा किस लोक को प्राप्त होता है ?' (1)

तब महर्षि पिप्पलाद बोले—'यह 'ओम' परब्रह्म भी है तथा अपरब्रह्म भी। इसे जाननेवाला मनुष्य इतने मात्र से ही ब्रह्म के एक रूप को प्राप्त कर लेता है यानि वह एक ही मात्रावाले इस 'ओंकार' का ध्यान करे, तो वह इसकी महिमा से तुरंत ही जगत में प्रकट हो जाता है। ऋग्वेद की ऋचाएं उस मनुष्य की देह को प्राप्त करती हैं, वह तपस्या से, ब्रह्मचर्य से तथा श्रद्धा से संपन्न होकर महिमाशाली बन जाता है। दो मात्राओंवाले ओंकार का ध्यान करने से चंद्रलोक प्राप्त होता है। यजुर्वेद के मंत्रों की सहायता से वह इस लोक को प्राप्त करता है। वहां पर वह सुखों-ऐश्वर्यों का

उपभोग करता है तथा पुनः इस लोक में जन्म लेकर नहीं लौटता। तीन मात्राओंवाले इस ओंकार रूप परमात्मा का ध्यान पुरुष को तेजस्वी सूर्य से संपन्न कराता है; वह सूर्यलोक प्राप्त कराता है। सांप की केंचुल के समान वह पुरुष पापों से मुक्त हो जाता है। तब सामवेद उसे ब्रह्मलोक की प्राप्ति कराता है। समस्त प्राणियों में प्रशंसनीय एवं श्रेष्ठ बनकर वह परम पुरुष का साक्षात्कार करता है। कहा गया है कि ओंकार की तीनों मात्राएं आपस में संबद्ध रूप में रहती हैं,उन्हें एक-दूसरे से पृथक् नहीं किया जा सकता,इस तथ्य का ज्ञाता पुरुष सुदृढ़ संकल्पवान और परमेश्वर को जाननेवाला बन जाता है। इसकी एक मात्रावाली उपासना उपासक को ऋचाओं द्वारा मृत्यु लोक को प्राप्त करानेवाली होती है,दो मात्राओंवाली उपासना करनेवाले साधक को यजुर्वेद के मंत्रों द्वारा अंतरिक्ष लोक प्राप्त कराती है तथा ओंकार का उपासक श्रुतियों द्वारा ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। इस लोक में केवल पुरुष ही है,जिसे जाना जाता है। विद्वान साधक ओंकार के ध्यान से अजर (कभी वृद्ध न होनेवाला), अमर (कभी न मरनेवाला) और अभय,ऐसे परम शांत एवं श्रेष्ठ परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। (2-7)

षष्ठम् प्रश्न

अंत में भारद्वाज सुकेशा ने महर्षि पिप्पलाद से प्रश्न किया,'भगवन ! जो प्रश्न मैं पूछ रहा हूं, मुझसे कोशल के राजकुमार हिरण्यनाभ ने यही प्रश्न पूछा था कि क्या तुम (सुकेशा) सोलह कलाओंवाले पुरुष को जानते हो ? मैं इस प्रश्न का उत्तर नहीं जानता। अतः उसे न बता सका। झूठ बोलना मुझे उचित नहीं लगा, क्योंकि झूठ बोलनेवाला जड़ सहित सूख जाता है। इसलिए राजकुमार बिना अपने प्रश्न का उत्तर पाए ही चला गया; और जब यही प्रश्न मैं आपसे पूछ रहा हूं। कृपया बताएं कि वह सोलह कलाओंवाला पुरुष कहां रहता है। (1)

महर्षि पिप्पलाद बोले,'सौम्य ! जिस पुरुष में सोलह कलाएं उत्पन्न होती हैं,वह इसी देह में रहनेवाला है। उसने एक बार अपने मन में विचार किया कि किसके निकल जाने पर मैं भी इस देह से निकल जाऊंगा तथा किसके कारण मैं स्वयं भी प्रतिष्ठित रहूंगा। उसने सर्वप्रथम प्राणों को बनाया और फिर श्रद्धा को। इसके बाद उसने आकाश,वायु,तेज,जल और पृथ्वी इन पांच महाभूतों को,फिर मन इंद्रियां और अन्न का निर्माण किया। अन्न से वीर्य की उत्पत्ति हुई। इसके बाद तप, मंत्र,कर्म,लोक और नाम को बनाया। जैसे समस्त नदियां समुद्र की ओर बहती हुई उसमें जाकर मिल जाती हैं,और तब उनका स्वतंत्र अस्तित्व (नाम और रूप) भी मिट जाता है,बिलकुल उसी तरह परमात्मा की सोलह कलाएं उसी को प्राप्त होकर उसी में लीन हो जाती हैं। इस पर उनके नाम,रूप आदि सभी समाप्त हो जाते हैं। इतने पर भी वह परमेश्वर कलारहित तथा अनश्वर ही है। (2-5)

जैसे रथ के पहिए के अरों का आधार पहिए की नाभि होती है,वैसे ही इन कलाओं का आधार परम पुरुष को ही समझना चाहिए। इसे जान लेने पर तुम मृत्यु से व्यथित नहीं होओगे।' (6)

अंत में महर्षि पिप्पलाद ने उन सभी ऋषियों को संबोधित करते हुए कहा,'उस परम ब्रह्म को मैं इसी रूप में जानता हूं कि वही सब कुछ है। उसके अतिरिक्त अधिक कुछ भी नहीं है।' तब उन ऋषियों ने महर्षि की अर्चना की और बोले,'आपने हमें अविद्या से पार कर दिया है। अतः आप ही वास्तविक अर्थों में हमारे पिता हैं। हे महर्षि आपको हम बार-बार नमस्कार करते हैं। (7-8)

□

5. मुंडक उपनिषद

शांति पाठ :

> **ॐ भद्रं कर्णेभ्यः शृणुयाम: देवा भद्रं पश्येमातक्षिभिर्यजत्राः**
> **स्थिरेरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।**
> **स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः**
> **स्वास्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु ।**
> **ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।**

हे देवताओ ! हम कानों से कल्याणकारी वचन सुनें, आंखों से कल्याणकारक दृश्य देखें, समस्त अंगों सहित शरीर से देवताओं के समान आयु को प्राप्त करें । यशस्वी इंद्र हमारा कल्याण करें, सूर्य हमारा कल्याण करें तथा अरिष्टनाशक वृहस्पति हमारा कल्याण किरें ।

प्रथम मुंडक

प्रथम खंड

समस्त देवताओं में सर्वप्रथम ब्रह्मा पैदा हुए । वह समस्त विश्व के रचयिता तथा उसके रक्षक हैं । सभी विद्याओं की आधार ब्रह्म विद्या का उपदेश उन्होंने सर्वप्रथम अपने ज्येष्ठ पुत्र अथर्वा को दिया ।

अथर्वा ने यह उपदेश अंगी को दिया । फिर यह विद्या अंगी से भारद्वाज गोत्रीय सत्यवहा को, सत्यवहा से अंगिरा को प्राप्त हुई ।

एक बार एक संपन्न गृहस्थ शौनक अंगिरा के पास आया । उसने अंगिरा से पूछा, 'भगवन, जिसको जान लेने से समस्त ज्ञान प्राप्त हो जाता है, वह क्या है ?'

अंगिरा ने कहा कि दो विद्याएं जानने योग्य हैं, एक परा तथा दूसरी अपरा । इनमें चारों वेदों तथा शिक्षा कल्प आदि में कही गई विद्या अपरा है और अक्षर का ज्ञान परा विद्या है ।

वह जो अदृश्य, अग्राह्य है, गोत्र, वर्ण, चक्षु, कान, हाथ, पैर आदि से हीन है और नित्य, वविभु, सर्वगत, अति सूक्ष्म तथा अव्यय है, जो सबका कारण है, उसे विवेकशील लोग चारों ओर देखते हैं ।

जिस प्रकार मकड़ी जाले को बुनती है और स्वयं निगल जाती है, जैसे पृथ्वी में औषधियां तथा पुरुष के शरीर में केश लोमादि उत्पन्न होते हैं, उसी प्रकार इस अक्षर से यह संपूर्ण ब्रह्म उत्पन्न होता है ।

तप एवं ज्ञान से ब्रह्म अन्न उत्पन्न करता है । अन्न से क्रमशः प्राण, मन, सत्य, लोक, कर्म एवं अमृत फल उत्पन्न होते हैं । जो सर्वज्ञ है, सर्व ज्ञानमय है, उसी से यह ब्रह्म, वस्तुओं के नाम, रूप और अन्न उत्पन्न हुए हैं ।

द्वितीय खंड

जिन मंत्रों से कवि-ऋषियों ने कर्म को देखा, वही सत्य है। त्रेता युग में इन कर्मों का विस्तार हुआ। सत्य की इच्छा करते हुए इन कर्मों का सदैव पालन करो। यही सच्चा मार्ग है। इसकी प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हो जाने पर उसे निरंतर आगे बढ़ाता रहे।

जिसका अग्निहोत्र दैनिक, मासिक अथवा चतुर्मासिक और आग्रायण इन कर्मों से रहित अथवा विद्वानों के सत्कार और अतिथि की पूजा के बिना किया जाता है, उसकी सात पीढ़ियां नष्ट हो जाती हैं।

अग्नि की काली, कराली, मनोजुवा सुलोहिता सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी और विश्वरुचि, यह सात जिह्वाएं अथवा लपटें हैं। यज्ञ में इन्हें आहुति दें। जो व्यक्ति इन चमकती जिह्वाओं को उचित समय तक आहुतियां देता है, उसे सूर्य की किरणें देवों के स्वामी परमात्मा के पास ले जाती हैं। और उसे ले जाती हुई यह आहुतियां मधुर वाणी में उससे मानो कहती हैं कि यह तुम्हारे ही सुंदर कर्मों का फल है।

अठारह प्रकार के निम्न स्तरीय यज्ञ रूपी कर्मों को करनेवाले लोगों को जरा, जन्म और मरण से कोई नहीं बचा सकता। मूर्ख लोग इन्हें करते हुए प्रसन्न होते हैं।

अज्ञान के अंधकार में रहनेवाले स्वयं को धीर और पंडित माननेवाले मूर्ख लोग एक अंधे के द्वारा ले जाए जाते हुए दूसरे अंधे के समान नष्ट हो जाते हैं। अविद्या में रहकर भी अपने को कृतार्थ समझनेवाले मूर्ख सांसारिकता में इतने मग्न हो जाते हैं कि उन्हें यही ज्ञान नहीं रहता कि वे क्या कर रहे हैं। अंत में उनका पतन ही होता है।

अपनी इच्छाओं की पूर्ति को ही परम लक्ष्य माननेवाले, दूसरी किसी भी बात को ठीक न माननेवाले मूर्ख लोग्र श्रेष्ठ वस्तु की केवल पीठ को ही छू सकते हैं, जबकि वे समझते हैं कि उन्होंने बहुत बड़ा काम कर लिया है। अंत में उन्हें हीन लोक प्राप्त होता है।

तपस्वी, श्रद्धासहित काम करने वाले शांत चित्त लोग, जो जीवनयापन को भिक्षा में मिली वस्तु समझते हैं, वे सूर्य द्वारा श्रेष्ठ आत्माओं के पास पहुंचते हैं।

इस कर्ममय लोकों को समझकर विद्वान व्यक्ति इसके प्रति उदासीन हो जाता है। संसार के सभी पदार्थ अनित्य हैं, इनसे हमारा कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता। यह विचार करके व्यक्ति को किसी वेदज्ञ और ब्रह्मज्ञ गुरु के पास कुछ भेंट लेकर जाना चाहिए।

वह गुरु उस शांति चित्त तथा जितेंद्रिय शिष्य को ऐसी ब्रह्म विद्या का उपदेश दे, जिससे उसे उस अक्षर पुरुष, जो एकमात्र सत्य है, का ज्ञान हो सके।

द्वितीय मुंडक

प्रथम खंड

सत्य है कि जिस प्रकार सुंदर प्रदीप्त अग्नि से उसी के रूपवाली चिनगारियां निकलती हैं, उसी प्रकार उस अक्षर ब्रह्म से नाना प्रकार की वस्तुएं उत्पन्न होती हैं। वह निश्चय ही दिव्य, अमूर्त पुरुष बाह्य और अंतर में विद्यमान है। वह अजन्मा, अप्राण, मनरहित विशुद्ध तथा श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ है।

इसी अक्षर ब्रह्म से प्राण, मन, इंद्रियां आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी उत्पन्न होती है।

अग्नि, जिसका मस्तक है, सूर्य-चंद्र नेत्र हैं, दिशाएं कान हैं, जिसकी वेद प्रसिद्ध वाणी है, वायु प्राण है, समस्त विश्व हृदय है, जिसके चरणों में पृथ्वी है वह देव सभी प्राणियों का आत्मा है। उस अक्षर ब्रह्म से अग्नि पैदा होती है। जो सूर्य में अग्नि की तरह समिधा बनकर जलती है, उसी से पृथ्वी में पर्जन्य और औषधियां उत्पन्न होती हैं। उसी से स्त्रियों में सींचा जानेवाला तथा प्रजा की उत्पत्ति का कारण वीर्य पुरुषों में पैदा होता है।

उसी से ऋक, यजुष, सामवेद, समग्र यज्ञ, क्रतु दक्षिणा, संवत्सर, यजमान तथा जहां तक सोम पवित्र करता है और सूर्य पहुंचता है, सब लोक जन्म लेते हैं। उसी से बहुत सारे देवता, साध्य, मनुष्य, पशु एवं पक्षी उत्पन्न हुए। उसी से श्रद्धा, सत्य ब्रह्मचर्य तथा अन्य जीवन विधियां उत्पन्न हुईं।

परमात्मा से ही सातों प्राण, सातों अग्नियां, उनके सातों विषय, उन्हें पूर्ण करनेवाले कर्म और इन सात विषयों के स्थान उत्पन्न हुए। यह सातों शक्तियां इच्छाएं उनके साधन और इच्छाएं मानव शरीर में हैं।

इसी से समस्त समुद्र, पर्वत, नदियां, वनस्पतियां आदि उत्पन्न होती हैं। यह जो समस्त भूतों (प्राणियों) की गुहा में उपस्थित रहता है। इसे जो जान लेता है, उसका अज्ञान का अंधकार नष्ट हो जाता है।

द्वितीय खंड

शरीर की गुहा में विचरण करनेवाला महान पद को प्राप्त वह ब्रह्म इसके प्रति समर्पित और संयुक्त है। इस शरीर की प्राण आदि तथा पलक झपकना आदि क्रियाएं उसी के प्रति समर्पित हैं। उस ब्रह्म को सत-असत से भिन्न, विज्ञान से परे तथा प्रजाओं से ऊपर समझना चाहिए।

जो दीप्तिमान एवं सूक्ष्म से भी सूक्ष्म है, जिसमें समस्त लोक और उनके प्राणी निहित हैं, वह बड़े से भी बड़ा अक्षर ब्रह्म है, वह वेद है, प्राण हैं, मन है और सत्य है। वह अमृत और जानने योग्य है।

विद्वानों द्वारा उपनिषद् रूपी धनुष पर उपासना का बाण चढ़ाकर उसके भाव के प्रति दत्तचित्त होकर ध्यान करना चाहिए। उस अक्षर ब्रह्म के लक्ष्य का संधान करना चाहिए। इसके लिए ओंकार धनुष है, आत्मा तीर है, ब्रह्म लक्ष्य है दत्तचित्त होकर लक्ष्य वेध करना चाहिए।

जिसमें द्यौ; पृथ्वी, अंतरिक्ष मन और समस्त प्राणों सहित ओतप्रोत है। अन्य सब बातों को छोड़कर उसी एक आत्मा को जानो। वही अमरता का साधन है।

रथ के पहिए में लगे अरों के समान, शरीर की सभी नाड़ियां हृदय से जुड़ी होती हैं। हृदय में अनेक प्रकार से प्रकट होनेवाला परमात्मा शरीर में विचरण करता है। उसका ओम नाम से चिंतन करो वही अज्ञान को दूर करके कल्याण करेगा।

जो सदा, सर्वत्र और सर्वज्ञ है, जिसकी महिमा पृथ्वी एवं ब्रह्मपुर दोनों में है, वह संपूर्ण व्योम में विद्यमान है। वह इस मनोमय प्राण एवं शरीर को ले जानेवाला अन्न में उपस्थित तथा हृदय को

स्पंदित करनेवाला है। विद्वान उसे ज्ञानचक्षुओं से देखते हैं वह आनंदमय और अमरत्व प्रदान करनेवाला है। उस ब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर हृदय ग्रंथि खुल जाती है,संशय दूर हो जाता है तथा कर्मफल नष्ट हो जाते हैं।

स्वर्णमय कोश (ज्ञान कोश) से परे कलाहीन ब्रह्म विराजमान है,वह निर्मल एवं ज्योति रूप है। केवल आत्मज्ञानी ही उसे जान सकते हैं।

वहां न तो सूर्य का प्रकाश पहुंच सकता है,न चंद्रमा का,न तारों का,तब अग्नि की तो गणना ही करना व्यर्थ है। उसी के प्रकाश से अन्य सब वस्तुएं प्रकाशित होती हैं। वह अमृतमय ब्रह्म ही सामने-पीछे,दाएं-बाएं,नीचे-ऊपर फैला हुआ है। वही सब कुछ और श्रेष्ठ है।

तृतीय मुंडक

प्रथम खंड

दो सुंदर पंखोंवाले पक्षी साथ-साथ मैत्री से एक ही वृक्ष के आश्रय में रहते हैं,उनमें से एक सुंदर स्वादिष्ट फलों को खाता है और दूसरा देखता रहता है।

परमात्मा के साथ समान प्रकृति के आश्रय से रहनेवाला जीवात्मा अपनी हीन कामनाओं से मोहित हो जाता है,किंतु जब वह परमात्मा से संयुक्त होता है,तो उसका मोह दूर हो जाता है।

जब वह ईश्वर को देखता है तथा उसे पा लेता है,तब वह पाप-पुण्य से छूट जाता है,उसके से सब समान रूप हो जाते हैं।

जो समस्त प्राणियों में विद्यमान है और उनमें कार्य करने की सामर्थ्य पैदा करता है,वह प्राण है। इस तथ्य को जान लेने पर विद्वान आत्मप्रशंसा नहीं करता। वह आत्मा के विषय में ही चिंतन करता हुआ ब्रह्मवेत्ताओं में श्रेष्ठ कहलाता है।

वह सत्य,तप,ब्रह्मचर्य तथा सम्यक् ज्ञान से इसी देह के अंदर निर्मल,ज्योतिर्मय आत्मा को देखता है,जिससे उसके दोष नष्ट हो जाते हैं। इसकी सत्य की जय होती है,अनृत (मिथ्या) की नहीं, सत्य से ही ईश्वर प्राप्ति का मार्ग होता है। इसी से कर्म तत्त्व को जाननेवाले ऋषि उस परम निधान को प्राप्त करते हैं।

वह आत्मा तत्त्व वृहद,दिव्य और अचिंतनीय रूपवाला भी है और सूक्ष्मतम भी है। वह अत्यंत दूर भी है तथा इस देह के भीतर भी है। ज्ञानवान गुहा में स्थित इसे देख सकते हैं।

इसे न आंखें देख सकती हैं और न वाणी इसके विषय में कुछ कह सकती है। अन्य इंद्रियों से या कर्म से भी यह अप्राप्य है। इस विशुद्ध सत्त्व को जो इंद्रियां रहित है,केवल ध्यान अर्थात् अनुमान से अनुभव किया जा सकता है।

प्राण,अपान आदि पांच प्रकार के प्राणों से युक्त शरीर में यह आत्मा सचेतन हो जाता है। प्राणों से पहले चित्त और फिर चित्त से आत्मा प्रकाशित होता है।

यह विशुद्ध आत्मा जिस-जिस लोक की इच्छा करता है,वह लोक उसे प्राप्त हो जाता है। इसीलिए ज्ञानी लोग यत्नपूर्वक कामना करते हैं।

द्वितीय खंड

वह आत्मज्ञानी उस संपूर्ण जगत को जान लेता है, जो ब्रह्मा की सृष्टि का आधार है, जो उस सर्वज्ञ पुरुष की निष्काम भाव से उपासना करता है वह जन्म मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है।

कामनाओं इच्छा करनेवाला अनेक बार जन्म लेकर उन कामनाओं को प्राप्त करता है, किंतु जो निष्काम भक्ति करता है, उसकी कामनाएं लीन हो जाती हैं, उसे मोक्ष प्राप्त होता है।

ईश्वर की प्राप्ति प्रवचनों से, तप से या अधिक सुनने से नहीं होती। यह जिसकी इच्छा करता है, वही इसे प्राप्त कर लेता है। उसके अनुरूप ही यह अपनी आत्मा को बना लेता है।

दुर्बल इसे प्राप्त नहीं कर सकता और न ही प्रमादी या तप और संन्यास के गुणों से हीन कोई व्यक्ति इसे प्राप्त कर सकता है। अतः पूर्वकथित उपायों से यत्न करने पर विद्वान ब्रह्मधाम को प्राप्त करता है।

वह आत्मा जो ज्ञान प्राप्त कर चुका हो, जिसकी आसक्ति, राग आदि नष्ट हो गए हों और जो धीर और परम शांति प्राप्त कर चुका हो, वह सबमें प्रवेश कर सकता है।

जिन्होंने वेदांत के ज्ञान को सही-सही अर्थों में जान लिया हो, संन्यास का पालन करते हुए शुद्ध आत्मावाले ऐसे यती लोग अंतकाल में जन्म-मरण से मुक्त होकर उच्च स्थान को प्राप्त करते हैं।

उसकी दस इंद्रियां तथा पांच प्राणरूपी पंद्रह कलाएं अपने-अपने अधिदैव के पास लौट जाती हैं। उसके कर्म विज्ञान मय हो जाते हैं तथा आत्मा परम अनश्वर परमात्मा से एकाकार हो जाता है।

यथा सभी नदियां अपने-अपने नाम एवं आकार का परित्याग करके समुद्र में विलीन हो जाती हैं, इसी प्रकार विद्वान नाम एवं रूप से मुक्त होकर उस दिव्य परम पुरुष को प्राप्त कर लेता है।

जो परम ब्रह्म को जान लेता है, वह ब्रह्म से एकाकार हो जाता है। उसके कुल में कोई भी ऐसा पैदा नहीं होता जो ब्रह्म को न जानता हो। वह शोक एवं पाप से परे हो जाता है। गुहा ग्रंथि से मुक्त होकर अमरता प्राप्त करता है।

जो क्रियावान हो, क्षोत्रिय हो, ब्रह्म निष्ठ हो, एक ऋषि यज्ञ को स्वयं करनेवाला हो, श्रद्धावान हो अथवा जो शिरोव्रत करनेवाला हो, उसी को इस ब्रह्म विद्या का उपदेश देना चाहिए। इस सत्य का उपदेश प्राचीन काल में अंगिरा ऋषि ने दिया था। जो शिरोव्रत का पालन नहीं करता वह इस विद्या का अधिकारी नहीं है। महान विद्वान ऋषियों को नमस्कार।

□

6 माडुक्य उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभ्यः श्रृणुयामः देवा भद्रं पश्येमातक्षिर्यनत्राः
स्थिरेरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्ताक्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

यह जो परमात्मा का ओम नामक ऐसा अक्षर नाम है, सब उसी का व्याख्यान है । भूत, भविष्य और वर्तमान, यह सब ओंकार ही है तथा इन तीनों कालों से अन्य जो कुछ भी है, वह भी सब यह ओंकार परमात्मा ही का स्वरूप है ।

निश्चय ही यह सब ब्रह्म ही है । यह आत्मा महान है यह चार चरण (अवस्थाओं) वाला है । जागृतावस्था इसका प्रथम चरण है । परमात्मा, जीवात्मा, तीनों गुण, तेज और जीवों का कर्मफल, यह सात अंग उन्नीस मुखोंवाली वैश्वानर अग्नि से खायी जा रही हैं । इसके सात अंग तथा उन्नीस मुख हैं ।

स्वप्नावस्था ब्रह्म की अंतः प्रज्ञ अवस्था होती है । यह भी सात अंग तथा उन्नीस मुखोंवाली होती है । इसमें सूक्ष्म अवस्था में वैश्वानर अग्नि का तेज काम करता है । यह ब्रह्म की दूसरी अवस्था है । जब पुरुष सोया होता है, तो वह कोई कामना नहीं करता और स्वप्न भी नहीं देखता । इसे सुषुप्ति की अवस्था कहते हैं । यह अवस्था एकीभूत आ नंदमय अवस्था होती है । आनंद का उपभोग करता हुआ संकीर्ण प्रज्ञा रखता हुआ तथा भोग करता हुआ रहने पर यह विशेष ज्ञान की तृतीय अवस्था होती है । यह प्रज्ञानधन अवस्था, जिसे अंतः प्रज्ञ चेतना कहते हैं, ईश्वर है, सर्वज्ञ है और सब प्राणियों का उत्पत्ति का कारण है ।

चतुर्थ अवस्था अंतः और बाह्य दोनों ओर से अचेतन अवस्था होती है । यह संकीर्ण ज्ञानवाली भी नहीं होती है, दिखाई पड़नेवाली भी नहीं होती । यह व्यवहार रहित अग्राह्य, लक्षण हीन विचारातीत, अवर्णनीय, एक सार रूप शांत तथा कार्य-जगत रूपी प्रपंचवाली होती है । इसमें वह कल्याणमय अकेला होता है । यह परमात्मा का चौथा चरण (अवस्था) होता है । इस अवस्था में आत्मतत्त्व विशेष जानने योग्य होता है ।

वह परम ब्रह्म और यह आत्मा, दोनों ही ओम अक्षर के समान है, जो मात्राओं से युक्त है । पाद ही मात्रा और मात्रा ही पाद (चरण) है । यह ओम् अ, उ और म से बना है ।

जागृत अवस्था वैश्वानर है, ओम् में प्रथम अ ही अक्षर रूप है । जो उसे जान जाता है, वह अपनी समस्त कामनाओं को प्राप्त कर लेता है ।

स्वप्न की अवस्था में परमात्मा का वह तेज, ओम के मध्य में जो 'उ' है, दोनों के ऊपर चढ़ जाता है। जो इस ज्ञान को जान जाता है, वह ज्ञान की राशि बन जाता है। उसके कुल में कोई ब्रह्म ज्ञान से हीन नहीं होता।

सुषुप्तावस्था पूर्ण अज्ञानावस्था है। ओम में तीसरी मात्रा 'म' है। यह पिए हुए की अर्थात् ब्रह्म ज्ञान को इच्छानुसार पीकर उसमें लीन होने की अवस्था है। जो इसे जान जाता है (पिया हुआ) वह ब्रह्म में लीन हो जाता है।

चतुर्थ अवस्था मात्रा रहित है, यह अवस्था व्यवहार रहित एवं शांत प्रपंच की अवस्था है। वह कल्याणकारक अकेला ओंकार आत्मा ही है। जो इस तथ्य को जान जाता है, वह जीवात्मा आत्मा (परमात्मा) में प्रवेश कर जाता है।

□

7. ऐतरेयोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठा मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्य एधि। वेस्य मे आणीस्थ। श्रुतं मे प्रहासी। अनेनाधीतेताहोरात्रांसंघ-धाम्यमृतं वदिव्याज्ञि। सत्यं तन्मामवत् तद्वक्तारभवतु अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

हे परमात्मा ! मेरी वाणी और मन परस्पर स्थित हो । तुम मेरे लिए प्रत्यक्ष होओ और वेदों का ज्ञान लाओ । मैं श्रुत ज्ञान को न भूलूं श्रेष्ठ शब्द बोलूं और रात-दिन एक कर दूं । मैं सदा सत्य बोलूंगा । ब्रह्म मेरा और आचार्य का रक्षक हो ।

प्रथम अध्याय

प्रथम खंड

सृष्टि पूर्व केवल परमात्मा ही था । उसने लोकरचना का विचार किया तथा स्वर्ग आदि की रचना की । स्वर्ग के ऊपर उनका आश्रय स्थान द्यू लोक अम्म और अंतरिक्ष मरीचि है । यह पृथ्वी मर्त्यलोक तथा नीचे के लोक जल कहलाते हैं । लोक रचना के बाद उसने दिगपालों का विचार किया तथा जल से एक ज्योर्तिमय पुरुष प्रकट हुआ ॥3 ॥ उसे देखकर परमात्मा ने तप किया । तब तेजस्वी देह अंडे के समान बनी । उसमें मुख, वाणी और अग्नि पैदा हुए, फिर नासिका और प्राण की उत्पत्ति हुई । प्राण से वायु, नेत्र से छिद्र तथा चक्षु उपजे । चक्षु से सूर्य जन्मा । फिर कर्ण छिद्र और श्रवण- शक्ति तथा इससे दिशाएं बनीं । पुनः त्वचा और रोम बने । रोमों से औषधियां, हृदय से मन, मन से चंद्र जन्मा । नाभि प्रकट हुई । इससे अपान और अपान से मृत्युदेव जन्मे फिर उपस्थ से रेतस और रेतस से जलोत्पत्ति हुई ।

द्वितीय खंड

परमात्मा से उत्पन्न देवता समुद्र में आए । उन्हें भूख का अनुभव हुआ । उन्होंने परमात्मा से अन्नादि खाने के लिए शरीर मांगा ॥1 ॥ परमात्मा ने गाय और अश्व के शरीर दिखाए । उन्हें यह शरीर स्वीकार्य नहीं थे । मानव देह दिखाने पर वे संतुष्ट हुए ॥2 ॥ परमात्मा ने उन्हें इसमें प्रवेश की आज्ञा दी ॥3 ॥ अग्नि वाणी बना, वायु प्राण, सूर्य चक्षु, दिशाएं कान, औषधियां रोम, चंद्रमा मन, मृत्यु अपान तथा जल रेत बना, सब शरीर के स्थानों में स्थित हो गए ॥4 ॥ भूख-प्यास ने भी स्थान मांगा । परमात्मा ने उन्हें देवताओं की हवि में भाग दिया ॥5 ॥

तृतीय खंड

लोक-लोकपालों की रचना के बाद परमात्मा ने उनके लिए अन्न बनाने की सोची ॥1 ॥ उसने जल को तपाया, उससे अन्न की मूर्ति निकली ॥2 ॥ अन्न पराङ्मुख होने लगा । वाणी इसे ग्रहण न

कर सकी। यदि ऐसा होता, तो अन्न के वर्णन मात्र से ही तृप्ति हो जाती ॥3 ॥ घ्राण भी इसे ग्रहण न कर पाया, ऐसा होने पर सूंघने से ही तृप्ति हो जाती ॥4 ॥ आंख, कान, त्वचा, मन और उपस्थ भी इसे ग्रहण न कर सके यदि ऐसा होता, तो देखने-सुनने आदि से ही तृप्ति हो जाती ॥5-9 ॥ अपान इसे ग्रहण करने में समर्थ हो गया। तब अपान वायु ही अन्न ग्रहण करने लगा। यही अन्न द्वारा देह की रक्षा करता है ॥10 ॥

अब परमात्मा ने सोचा अपनी विभिन्न इंद्रियों से मनुष्य भले ही कार्य कर ले, किंतु मैं इसके देह में कहां से प्रवेश करूं ॥11 ॥ तब उसने मनुष्य को मूर्धा अर्थात् विद्वति को चीरकर उसमें प्रवेश किया। यही आनंदप्राप्ति का द्वार है। परमेश्वर के हृदय, ब्रह्मधाम तथा ब्रह्मांड तीन आश्रय हैं, तीन स्वप्न हैं ॥12 ॥ मानवरूप से प्रकट पुरुष ने पांच भूतों को देखकर कहा, यहां दूसरा कौन है ?' तब उसने परमब्रह्म को ही वहां देखा और उसके दर्शन से प्रसन्न हुआ ॥13 ॥ वह परमात्मा इंद्र नाम से प्रसिद्ध है। वह इंद्र परोक्षभाव से इंद्र कहलाता है। देवता परोक्षप्रिय कहे जाते हैं ॥14 ॥

द्वितीय अध्याय

प्रथम गर्भ बनता है। सभी अंगों से व्यक्त होनेवाला तेज वीर्य है, जो पुरुष शरीर में रहता है तथा सिंचन द्वारा स्त्री गर्भ में स्थित होता है। वह इसका पहला जन्म है ॥1 ॥ स्थापित गर्भ स्त्री अंग सदृश बनने से स्त्री को कष्ट नहीं होता। वह उसका पोषण करती है ॥2 ॥ उत्पन्न होने तक स्त्री फिर पुरुष बालक का आत्मवत् पालन करती है। सारा लोक ऐसा करता है। यह उसका द्वितीय जन्म है ॥3 ॥ पुण्य कर्मों से पिता का प्रतिनिधि रूप पुत्र होता है। कर्तव्य पूर्ण होने पर पिता मृत्यु को प्राप्त होता है। फिर जन्म लेकर लौटता है। यही तृतीय जन्म है ॥4 ॥ वात ऋषि का कथन है कि वह गर्भ में देवताओं के अनेक जन्मों को जान चुके हैं। ज्ञानप्राप्ति से पहले वह दृढ़ पिंजरे में बंधे थे। वह बाज के समान उन्हें काटकर मुक्त हुए हैं। वामदेव ने उदरस्थ ही यह कहा ॥5 ॥ अतः वामदेव देहांत पर स्वर्ग में पहुंचे और अमर हो गए ॥6 ॥

तृतीय अध्याय

हमारा उपास्थ कौन है ? मनुष्य जिससे देखता, सुनता आदि है वह आत्मा कौन है ॥1 ॥ हृदय ही मन है। ज्ञान, आदेश, विज्ञान, प्रज्ञा, मेघ आदि सभी परमात्मा की सत्ता का बोध कराती हैं ॥2 ॥ ब्रह्म, इंद्र आदि देवता, पंच महाभूत और अंडज, स्वदेज तथा डार्दभज प्राणी एवं सभी स्थावर-जंगम सभी परमात्मा की सत्ता से कार्य करते हैं। सभी लोकों आदि का वही आश्रय है ॥3 ॥ ब्रह्म को जान लेने पर स्वर्ग के सब भोगों की प्राप्ति तथा अमरत्व प्राप्त होता है ॥4 ॥

□

8. तैत्तरीयोपनिषद्

शिक्षा वल्ली

प्रथम अनुवाक

मित्र, वरुण, अर्यमा, बृहस्पति और विष्णु हमारे लिए कल्याणकर हों। ब्रह्म और वायु तुम्हें नमस्कार हो। तुम प्रत्यक्ष ब्रह्म हो। मैं तुम्हें प्रत्यक्ष ब्रह्म और ऋत कहूंगा। वह मेरी तथा आचार्य की रक्षा करे। त्रिविध तप शांत हों।

द्वितीय अनुवाक

अब शिक्षा वर्णन होगा। वर्ण, स्वर, मात्रा, बल, साम और संधि—यह वेद-शिक्षा का अध्याय कहा गया है।

तृतीय अनुवाक

हम दोनों (गुरु-शिष्य) के यश की, ब्रह्म और तेज की बुद्धि हो। हम लोकों, ज्योतियों आदि का वर्णन करेंगे। यह सब महासंहिता है। प्रथम लोक विषयक है। पृथ्वी पूर्व तथा स्वर्ग उत्तर दिशा रूपी है। इन दोनों की संधि वायु दोनों का संधान है। यह लोक विषयक वर्णन है।

अग्नि पूर्वरूप एवं आदित्य उत्तर रूप है। जल इनकी संधि है, विद्युत संयोजक है—यह ज्योति विषयक संहिता है।

गुरु पूर्वरूप, शिष्य उत्तररूप है और विद्या संधि है। प्रयत्न संधान है—यह विद्या संहिता है।

माता पूर्व रुप, पिता उत्तररूप, संतति संधि एवं प्रजननकर्म संधान है—यह संतति विषयक संहिता है।

अधो हनु पूर्व, अपरि हनु उत्तर, वाणी संधि एवं जीभ संधान है—यह आत्मविषयक संहिता है।

यह महासंहिताएं हैं, इन्हें जाननेवाला प्रजा, पशु आदि से स्वर्ग में प्रतिष्ठित होता है।

चतुर्थ अनुवाक

वेदों में श्लाध्य 'ओम' विश्वरूप है, अमृतमय है। इंद्र मुझे मेधावी बनाएं। हे ईश्वर मैं अनश्वर ब्रह्म से युक्त होऊं। मेरी देह तेजोमय, वाणी मधुर एवं कर्णगत शब्द शुभ हों। तू मेधामय ब्रह्म की निधि सदृश है, अतः मैं सुने उपदेश को न भूलूं।

रोमावली गाएं मुझे प्रदानकर, जो अन्न-वस्त्र आदि देती है।

कपटहीन ब्रह्मचारी मेरे पास आएं। वे प्रामाणिक व्रतों को करनेवाले इंद्रिय जयी तथा संयमी हों।

मैं अधिक यज्ञ करूं, धनवानों में श्रेष्ठ बनूं। हे ईश्वर मैं तेरा ध्यान करूं तू मुझ में प्रविष्ट हो तुम सहस्र शाखावाले हो।

यथा जल निम्नगामी है, माह वर्षों में लय हो जाते हैं, वैसे ही सभी ओर से ब्रह्मचारी मेरे समीप आएं। ईश्वर तू सबका आश्रय है। तू मुझमें आविष्ट हो।

पंचम अनुवाक

भूः भुवः स्वः—यह तीन व्याहृतियां है। यह चतुर्थ व्याहृति महाचमस ने इसे सर्वप्रथम जाना वही आत्मा है। सभी देवता उसके अंग हैं। 'भू' यह लोक है। 'भुवः' अंतरिक्ष है। 'स्वः' स्वर्ग है 'मह' आदित्य है। इसी से सब लोकों की महिमा है।

भूः भुवः स्वः और यह क्रमशः अग्नि, वायु, सूर्य और चंद्र है चंद्रमा सब ज्योतियों का भूल है भूः भुवः स्वः और महः क्रमशः ऋक, साम, यजुर्वेद तथा ब्रह्म है। ब्रह्म से ही सब वेदों का महत्त्व है।

यह चारों क्रमशः प्राण, अपान, व्यान तथा अन्न हैं। अन्न से ही प्राणशक्ति है। इन चारों चार-चार के भेद से सोलह व्याहृतियों को जाननेवाला ब्रह्मवेत्ता तथा देवकृपा का भागी होता है।

षष्ठ अनुवाक

उस अंतःहृदय के आकाश में यह हिरण्यमय पुरुष रहता है। तालुओं से लटकता मांसपिंड है वह इंद्र योनि है, जहां यह अवसान काल में 'भूः' अग्नि में रहता है। 'भुवः' 'स्वः' और 'महः' क्रमशः वायु, आदित्य और ब्रह्म में लीन हो जाते हैं।

इससे वह अपना राज्य प्राप्त करता है तथा वनस्पति प्राप्त करता है। वाणी, नेत्र चक्षु तथा विज्ञान का आधिपत्य भी उसे मिलता है।

ब्रह्म आकाश सदृश विस्तृत है। वह सत्यात्मक तथा प्राणों और मन को सुख देनेवाला अनश्वर है। अतः उसकी उपासना करो।

सप्तम अनुवाक

पृथ्वी, अंतरिक्ष, स्वर्ग, दिशाएं, अवांतर दिशाएं, अग्नि वायु, आदित्य इत्यादि सब आधिभौतिक है। प्राण, अपान, नेत्र आदि आध्यात्मिक हैं। इसे कहकर ऋषि बोले यह सब पांक्त है। पांक्त द्वारा पांक्त की आपूर्ति होती है।

अष्टम अनुवाक

ओम् ही ब्रह्म, विश्व तथा अनुकृति है। सामगान भी ओम है। इसी का उच्चारण करते हुए शास्त्राध्ययन होता है। इसी से प्रतिगर प्रारंभ करता है ब्रह्मा यज्ञानुमति देता है तथा इसी से अग्निहोत्र की आज्ञा दी जाती है। 'ओम्' का उच्चारण करके अध्ययन करनेवाला ब्राह्मण ब्रह्म को प्राप्त करने की बांत कंरता है। इसके प्रभाव से ब्रह्म प्राप्ति संभव है।

नवम अनुवाक

सत्याचरण, स्वाध्याय सत्य के साथ ही तप, दमन (इंद्रियों का), मन को वश में करना, शमन, अग्निहोत्र, अतिथि सत्कार, मानवीय व्यवहार, संतान उसका प्रजनन आदि भी उचित है। इन्हें विधिपूर्वक करें। सत्य श्रेष्ठ है। राथीतर पुत्र सत्यवाचा का यही मत है। तपोनिष्ठ ऋषि के मन में तप ही श्रेष्ठ है। नाक ऋषि स्वाध्याय को श्रेष्ठ तथा तप मानते हैं।

दशम अनुवाक

मैं विश्व-वृक्ष का उच्छेदक हूं। मेरी कीर्ति गिरि सदृश है। जिस प्रकार सूर्य में शस्योत्पादक शक्ति है, उसी प्रकार मैं भी अमृत, द्रव्य तथा मेघरूप हूं। यह त्रिशंकु के अनुभूत वचन है।

एकादश अनुवाक

वेदाध्ययन की समाप्ति पर आचार्य शिष्य को उपदेश देता है। सत्य बोलो, धर्माचरण करो, स्वाध्याय से प्रमाद मत करो। प्रिय गुरुदक्षिणा-संतति क्रम को मत तोड़ो। सत्य, धर्म, श्रेष्ठकर्म, स्वाध्याय, प्रवचन तथा देवपितृ कार्यों से प्रमाद मत करो।

माता, पिता, आचार्य तथा अतिथि को देवता समझो। श्रेष्ठ कर्मों का, चरितों का अनुसरण करो, अन्यों का नहीं। श्रेष्ठ जनों को उच्च आसन दो, श्रद्धा से दान दो, अश्रद्धा से नहीं। सौम्यता से दो, लज्जा से नहीं। भय से नहीं, विवेक से दो।

जिन कार्यों में संशय हो, वहां श्रेष्ठ जनों का आचरण करना चाहिए। उचित-अनुचित की शंका - आदि होने पर भी ऐसा ही करो। यही आदेश है, यही उपदेश है, उपनिषद है तथा अनुशासन है। इसी का पालन करो।

द्वादश अनुवाक

मित्र, वरुण, अर्यमा, इंद्र एवं विष्णु हमारे लिए कल्याणकर हों। हे ब्रह्म और वायु! तुम्हें नमस्कार! तुम प्रत्यक्ष ब्रह्म हो, तुम्हें ऐसा कहा गया है। तुम्हें ऋत एवं सत्य कहा गया है। परमात्मा ने मेरी और आचार्य की रक्षा की है।

ब्रह्मानंद वल्ली

हम दोनों गुरु-शिष्य साथ-साथ रक्षा कर्म करें, उपभोग करें, पराक्रम करें तथा हमारा अध्ययन तेजस्वी हो। हम विद्वेष न करें। त्रिविध तापों की शांति हो।

प्रथम अनुवाक

कहा गया है कि ब्रह्मवेत्ता परमात्मा को प्राप्त करता है। ब्रह्म सत्य, अनंत और ज्ञानमय है। वह परम आकाश और हृदय गुहा में स्थित है—यह जाननेवाला ब्रह्म के साथ ही भोगों का उपभोग करता है। परमात्मा से आकाश उत्पन्न हुआ फिर वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी, औषधियां, अन्न, रेतस और मनुष्य क्रमशः (अपने से पूर्व लिखित तत्त्व से) उत्पन्न हुए। पुरुष रसवाला है। मनुष्य का सिर पक्षरूप है। बाहु दक्षिण और वाम पंख, आत्मा मध्य अंग तथा पांव पूंछ है।

द्वितीय अनुवाक

प्राणी अन्न से उत्पन्न होते हैं, जीवित रहते हैं तथा लय हो जाते हैं। यह भूतों में श्रेष्ठ सर्व औषधि हैं। अन्न को ब्रह्म मानकर कामना करनेवाले इसे अवश्य पाते हैं। प्राणी अन्न से बढ़ते हैं तथा इसे खाते हैं। अन्न भी भूतों को खा जाता है, अतः वह अन्न है। प्राणमय आत्मा अन्न रसमय देह से भिन्न आकार नहीं है। उस आत्मा का प्राण सिर, व्यान दक्षिण और अपान वाम पंख है। आकाश आत्मा, पृथ्वी पूंछ है।

तृतीय अनुवाक

देवता तथा मनुष्य, पशु आदि प्राणों के कारण ही क्रियाशील हैं। प्राण वस्तुतः आयु है। प्राण रूपी ब्रह्म के उपासक पूर्ण आयु पाते हैं। यही शरीरस्थ आत्मा है। भीतर निवास करनेवाला आत्मा प्राणमय पुरुष से भिन्न है। देह उसी से व्याप्त एवं उसी का आकार है। यजु:, ऋक तथा सामवेद सिर और दक्षिण एवं वाम पक्ष हैं। आदेश आत्मा है। अथर्वा तथा अंगरिस द्वारा प्रकाशित अथर्व मंत्र पूंछ एवं प्रतिष्ठा है।

चतुर्थ अनुवाक

मन सहित वाणी जिसे प्राप्त किए बिना लौट आती है, उस ब्रह्मानंद का ज्ञाता कभी भयभीत नहीं होता। पूर्व कथित यह शरीर ही आत्मा है। पूर्वोक्त मनोमय पुरुष के अंदर स्थित आत्मा विज्ञानमय है। यह देह आत्मा में व्याप्त है। वह पुरुषाकृति के समान है। श्रद्धा उसका सिर है। ऋत दक्षिण तथा सत्य वाम पक्ष है। योग आत्मा है, मह पूंछ एवं प्रतिष्ठा है।

पंचम अनुवाक

विज्ञान यज्ञ एवं कर्म का विस्तार करता है। देवता ब्रह्म रूप विज्ञान के उपासक हैं। विज्ञान को ब्रह्म रूप जानने में प्रमाद न करनेवाला सदेह पापों को त्यागकर सब भोगों को पाता है। शरीरस्थ आत्मा ही परमात्मा है। विज्ञानमय जीवात्मा से भिन्न देहस्थ परमात्मा है। यह उससे पूर्ण व्याप्त है। परमात्मा पुरुषाकृति है। इच्छा मोद-प्रमोद, आनंद एवं ब्रह्म क्रमशः उसके सिर, दाएं-बाएं पंख, मध्य देह तथा पूंछ एवं आश्रय स्थान हैं।

षष्ठ अनुवाक

जो ब्रह्म के अस्तित्व में शंका करता है, वह असत्य होता है। ब्रह्म के अस्तित्व को जाननेवाला सज्जन समझा जाता है। पूर्वोक्त विज्ञानमय देह उसकी आत्मा है। अब प्रश्न होता है कि अज्ञानी और ज्ञानी पुरुष मृत्यु के पश्चात् परलोक जाते हैं अथवा नहीं—परमेश्वर ने प्रकट होना चाहा। उसने तप किया इससे तेजस्वी होकर उसने जगत रचा और उसी में प्रविष्ट हुआ। फिर वह साकार एवं निराकार बना। निरुक्त, अनिरुक्त, आश्रयरूप, चैतन्य, अचेतन और सत्य स्वरूप बना। विद्वानों के अनुसार देखा, सुना तथा अनुभूत ही सत्य होता है। अदृश्य होने के कारण उसके विषय में शंका होती है, अतः वह मिथ्या भी हुआ।

सप्तम अनुवाक

पहले विश्व असत् रूप था, फिर सत् रूप बना। स्वयं प्रकट होने के कारण यह सुकृत कहलाता है। सुकृत ही रस है। प्राणी इसी से आनंदित होते हैं परमात्मा गगन सदृश व्यापक, सबके प्राणों का आधार उन्हें सचेष्ट करनेवाला तथा सबको सुखदाता है। जब प्राणी अदृश्य निराकार और निराश्रय परमात्मा का आश्रय पाता है, तो उसे आश्रय पद मिल जाता है। परमात्मा से किंचित भेद रखने पर जीव भयमुक्त नहीं हो सकता। यही भय अहंकारी विद्वान को भी होता है।

अष्टम अनुवाक

भय से ही वायु गतिशील है, सूर्योदय होता है तथा इंद्र, अग्नि और यम क्रियाशील हैं। अब आनंद विषयक वर्णन है—सदाचारी शिष्ट, अध्येता, बलिष्ठ युवक को संपन्न पृथ्वी मिल जाए तो यह एक सांसारिक आनंद है। मानव के सौ आ नंद गंधर्व के एक आनंद समान हैं। वे शुद्धचेता श्रोत्रिय को स्वभाव से प्राप्य हैं। मानव गंधर्व आनंद देवगंधर्व के आनंद समान है, नष्ट कामना श्रोत्रिय को यह स्वभाव से प्राप्य है। स्थायी पितृलोक प्राप्त पितरों के सौ आनंद आजानज देवताओं का एक आनंद है। कामना मुक्त वेदज्ञ को यह स्वभाव से प्राप्त है। आजानज देवों के सौ आ नंद कर्म देवों के एक आनंद तुल्य हैं। कामना मुक्त तथा देवत्व प्राप्त पुरुष को यह सहज प्राप्य हैं। कर्म देवों के सौ आनंद देवताओं के एक आनंद के समान हैं। निष्काम वेदज्ञ को यह स्वभावतः प्राप्य हैं। देवों के सो आनंद इंद्र के एक आनंद के समान हैं। इंद्र के सौ आनंद बृहस्पति का एक आनंद है, बृहस्पति के सौ आनंद प्रजापति के एक आनंद के समान, प्रजापति के सौ आनंद ब्रह्मा के एक आनंद के समान हैं। निष्काम वेदज्ञ इसे स्वभावतः प्राप्त करता है।

मानव और सूर्य में निहित 'वह' एक ही है। इसका ज्ञाता लोक को त्याग कर अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनंदमय आत्मा को पार कर लेता है।

नवम अनुवाक

जहां से मन सहित वाणी बिना उसे प्राप्त किए लौट आती है, उस ब्रह्मानंद का ज्ञाता कभी भयभीत नहीं होता। विज्ञ इसका विचार नहीं करते कि उसने श्रेष्ठ कर्म अथवा पाप क्यों नहीं किए या करता रहा, अथवा पाप पुण्य पर विचार करके ज्ञानी अपनी रक्षा करता।

भृगुवल्ली

प्रथम अनुवाक

पिता वरुण के पास जाकर भृगु ने ब्रह्म ज्ञान की प्रार्थना की। वरुण ने कहा कि अन्न, प्राण, चक्षु, श्रोत्र, मन, वाणी सब ब्रह्म प्राप्ति के द्वार हैं। जिसे लेकर प्राणी जन्मते हैं, जीवित रहते हैं और देहांत होने पर, जिसमें प्रवेश पाते हैं, वही ब्रह्म है। यह सुनकर भृगु तप करने लगे।

द्वितीय अनुवाक

अन्न ब्रह्म है, तप के बाद यह ज्ञान हुआ। वस्तुतः प्राणी अन्न से, उत्पन्न होते हैं, जीवित रहते हैं और मृत्यु होने पर उसी में प्रविष्ट हो जाते हैं। यह जान कर भृगु पुनः वरुण के पास गए और पूर्वोक्त प्रश्न किया। वरुण ने कहा, 'तप ही ब्रह्म है' इसे जानो। भृगु ने फिर तपस्या की।

तृतीय अनुवाक

प्राणों को ब्रह्म मानो । समस्त भूत प्राणों से ही जीवित रहते हैं, मृत्यु होने पर इन्हीं में मिल जाते हैं । यह विचार कर भृगु पुनः पिता के पास गए और ब्रह्म ज्ञान की प्रार्थना की । वरुण बोले, 'ब्रह्म को तप से जानो । तप ही ब्रह्म है ।' भृगु ने पुनः तपस्या की ।

चतुर्थ अनुवाक

मन ब्रह्म है । मन से ही प्राणी जन्म लेते हैं, जीवित रहते हैं और मृत्यु पर इसी में लीन हो जाते हैं । ऐसा विचार करके पुनः वरुण के पास जाकर ब्रह्म ज्ञान मांगा । वरुण ने पुनः तप को ब्रह्म बताया और जानने को कहा । भृगु पुनः तप करने चले गए ।

पंचम अनुवाक

विज्ञान ब्रह्म है । इसी से प्राणी जन्मते तथा जीवित रहते हैं । मृत्यु पर इसी में लय हो जाते हैं। ऐसा मानकर वह वरुण के पास गए फिर पूर्वोक्त याचना की । वरुण ने पुनः पूर्वोक्त उत्तर दिया और भृगु तप करने चल पड़े ।

षष्ठ अनुवाक

आनंद ही ब्रह्म है । इसी से प्राणी जन्म लेते हैं, जीवित रहते हैं तथा मृत्युपरांत इसी में लय हो जाते हैं । इसका निश्चय होने पर भृगु ब्रह्म ज्ञानी हो गए । भृगु की अनुभूत तथा वरुण द्वारा उपदिष्ट विद्या परम व्योम के रूप में स्थित है । इसका ज्ञाता ब्रह्म स्थित हो जाता है तथा अन्न, संतान, पशु कीर्ति आदि से संपन्न बनता है ।

सप्तम अनुवाक

अन्न की निंदा नहीं करनी चाहिए । अन्न व्रत है, प्राण हैं शरीर इसका भोक्ता है । शरीर एवं प्राण परस्पर आश्रित हैं । अन्न-अन्न में स्थित है । ऐसा जाननेवाला अन्न, संतान, पशु, ब्रह्मचर्य तथा कीर्ति से प्रतिष्ठित होता है ।

अष्टम अनुवाक

अन्न की उपेक्षा न करें । जल ही अन्न है । तेज अन्न भोगी है । जल एवं तेज एक दूसरे में निहित हैं । इस प्रकार अन्न, अन्न में निहित है । इस तथ्य का ज्ञाता, महान ज्ञाता । अन्न संतान आदि से प्रतिष्ठित होता है ।

नवम अनुवाक

अन्न वृद्धि करें, यह व्रत है । पृथ्वी ही अन्न है । पृथ्वी-आंकाश एक-दूसरे पर आश्रित हैं। अन्न, अन्न में प्रतिष्ठित है । इस तथ्य का ज्ञाता अन्न कीर्ति आदि से मुक्त होता है ।

दशम अनुवाक

गृह में आए को निराश न करें, यह व्रत है। बहुत अन्नवान बनें, अतिथि सेवा तत्पर बनें। उसका उत्तम श्रेणी का आदर करनेवाला स्वयं भी उत्तम श्रेणी का, मध्यम श्रेणी का आदर करनेवाला मध्यम श्रेणी, निम्न श्रेणी का आदर करनेवाला भोजन कराने वाला निम्न श्रेणी का ही सत्कार या भोजन पाता है। उसका ज्ञाता अतिथि सत्कार करने वाला होता है।

परमेश्वर वाणी में, प्राणापान में, होम में, पांवों-गुदा में क्रमशः क्षेत्र, योगक्षेत्र, कर्म, गति तथा विसर्जन शक्ति के रूप में है। यह आध्यात्मिक उपासना वर्णन है। वृष्टि में, विद्युत में, पशुओं में, नक्षत्रों में, उपस्थ में क्रमशः तृप्ति, शक्ति, तेज, ज्योति, प्रजनन शक्ति के रूप में है। सहानुभूति एवं आकाश सबका आश्रय हैं—यह परमात्मा की दैवी उपासना है।

परमेश्वर को सबका आश्रय रूप माननेवाला उपासक आश्रय युक्त हो जाता है उसे महान मानकर उपासना करनेवाला महान बन जाता है। उसे नम योग्य मानकर, मन रूप मानकर, ब्रह्म मानकर तथा दुष्ट नाशक मानकर उपासना करनेवाला क्रमशः महान, मनस्वी, ब्रह्ममय तथा शत्रुओं और विद्वेषियों से हीन हो जाता है—जो इस पुरुष में है, वह सूर्य ही है, वह एक ही है, ऐसा ज्ञाता परलोक में पहले अन्नमय आत्मा को पाकर क्रमशः प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा अंत में आनंदमय आत्मा को प्राप्त कर अभीष्ट रूप को प्राप्त होता है। सब लोकों में विचरण करता हुआ सामगान में तल्लीन होता है।

आश्चर्य है कि मैं अन्न हूं और अन्न का उपभोग करता हूं। इनका संयोजक, सत्यरूप, देवों से भी पूर्व जन्मा, ब्रह्म में प्रतिष्ठित, अमृतनाभि रूप हूं। जो मुझे दान देता है, मेरी रक्षा करता है, मैं अन्न रूप में अन्न भक्षण करता हूं, मैं निखिल जगत का तिरस्कारक हूं, मेरा तेज सूर्य जैसा है। इस प्रकार का ज्ञानी भी वैसा ही सामर्थ्यवान बन जाता है।

□

9. छांदोग्य उपनिषद्

शांतिपाठ :

अध्यायंतु ममांगनि वाक्प्राणचक्षुषः क्षोत्रमथो बार्मिद्रियाणि सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषद माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोद निराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरतेय उपनिषत्सुधर्मास्ते मयि संतु ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

मेरे अंगवाक, प्राण, चक्षु, कान, बल समस्त इंद्रियां वृद्धि को प्राप्त हों । उपनिषद् ब्रह्मरूप हैं, यह ब्रह्म मेरा तथा मैं ब्रह्म का त्याग न करूं । इस प्रकार ब्रह्मरत रहते यहां प्रतिपादित धर्म की प्राप्ति हो । त्रिविध ताप शांत हों ।

प्रथम अध्याय

प्रथम खंड

'ओम्' इस अक्षर की उद्गाता उपासना करता है । वही परमात्मा प्रतीक है ॥1 ॥ समस्त भूतों का रस पृथ्वी तथा पृथ्वी का जल है । जल का रस औषधियां, औषधियों का मानवदेह, मानव का वाणी, वाणी का ऋचा, ऋचा का साम तथा साम का सार 'ओम्' है ॥2 ॥ इस गणना में आठवां यह 'ओम्' सब रसों के सार परमात्मा का प्रतीक है । अतः इसे परमात्मा समझें ॥3 ॥ कौन ऋचा है? कौन साम ? ॥4 ॥ उत्तर है—वाणी ऋचा, प्राण, साम तथा ओम् उद्गीथ है । ऋचा रूप और साम रूप प्राण का युगल प्रसिद्ध है ॥5 ॥

यथा—स्त्री-पुरुष युगल मिलना चाहते हैं, वैसे ही वाणी (ऋचा) तथा प्राण (साम) युगल 'ओम्' से मिलकर पूर्णकाम होते हैं ॥6 ॥ जो इस प्राप्ति के रहस्य को जानते हैं तथा जानकर 'ओम्' की उपासना करते हैं, वह कामनापूर्ण करानेवाला बन जाता है ॥7 ॥ यह 'ओम्' स्वीकृति रूपी भी है, क्योंकि अनुमति देने में भी 'ओम्' कहा जाता है । यह समृद्धि का मूल माना जाता है । इस तथ्य को जानकर 'ओम्' का उपासक समृद्धिशाली बनता है ॥8 ॥ इस 'ओम्' से ही तीनों वेदों की यज्ञविधियां प्रचलित हैं । अध्वर्य इसी का मंत्र सुनाता है, श्रोता प्रशंसा करता है और उद्गाता ज्ञान करता है, यह सब कार्य इसी की पूजार्थ किए जाते हैं ॥9 ॥ जो इसे जानता है, समझता है वह इसी के लिए कर्मशील रहता है । विज्ञान एवं कर्म पृथक्-पृथक् हैं । विज्ञान युक्त की गई उपासना ही अधिक शक्तिवती है, यह अक्षर यही कहता है ॥10 ॥

द्वितीय खंड

देव-असुर प्रजापति की दोनों संतानों में युद्ध होने लगा, तो देवों ने 'ओम्' की उपासना द्वारा ही असुरों को हराना चाहा ॥1 ॥ तब उन्होंने घ्राणशक्ति में स्थित 'ओम्' की उपासना की, किंतु असुरों ने उसे पापभ्रष्ट कर दिया । इसीलिए वह सुगंध-दुर्गंध दोनों को ग्रहण करती है ॥2 ॥ फिर

देवों ने वाणी रूपी ओम् की उपासना की ॥3 ॥ फिर नेत्र रूपी 'ओम्' की ॥4 ॥ इसके बाद क्षेत्ररूपी 'ओम्' की उपासना की ॥5 ॥ (असुरों ने हर बार उसे पापं से भ्रष्ट कर दिया इसीलिए वाणी सत्य-असत्य दोनों भाषण करती है, नेत्र उचितानुचित सब देखते हैं और कान भला-बुरा सब सुनते हैं ।)

तब देवों ने मन की 'ओम्' के रूप में उपासना की । असुरों द्वारा इसे भी पापी बना देने पर ही मन सत् और असत् दोनों का विचार करता है ॥6 ॥ अंत में देवताओं ने प्राण को 'ओम्' मानकर उपासना की, असुरों ने इसे भी अपवित्र करना चाहा, किंतु उसके समीप ज़ाते ही वे पत्थर से टकराए मिट्टी के टुकड़े सदृश टूट गए ॥7 ॥ असुर प्राणों को नहीं हरा पाए, अत: प्राण ही उपास्य हैं । जो अधम 'ओम्' को जाननेवाले का अहित करता है, वह मिट्टी के ढेले के समान नष्ट हो जाता है । इस मर्म का ज्ञाता अभेद्य पाषाण तुल्य होता है ॥8 ॥ शुद्ध होने से प्राण द्वारा मानव सुंगध-दुर्गंध अनुभव नहीं करता है । इससे मनुष्य जो भी खाता-पीता है, यह सभी इंद्रियों की रक्षा करता है, अंतिम समय में प्राण द्वारा अन्न त्यागने पर, इंद्रियों की शक्ति भी देह से चली जाती है ॥9 ॥

पूर्व काल में अंगिरा ने प्राण रूप 'ओम्' की उपासना की, अत: प्राण आंगरिस या समस्त अंगों का रस कहलाए ॥10 ॥ बृहस्पति ने प्राण रूप 'ओम्' की उपासना की । अत: प्राण बृहस्पति (बृहती-वाणी का पति) कहलाए ॥11 ॥ आयास्य ऋषि ने 'ओम्' की इसी रूप में उपासना की । अत: प्राण आयास्य (आस्य—मुख से निकला) कहलाए ॥12 ॥ हालंबरा पुत्र बक ऋषि ने इसी रूप में 'ओम्' की उपासना की । नैमिष वन में ऋषियों की कामना पूर्ति हेतु उद्‌गीथ गायन किया ॥13 ॥ इस तत्त्व का ज्ञाता निश्चय ही कामनाओं की पूर्ति करता है । यह प्राण की आध्यात्मिक उपासना है ।

तृतीय खंड

यह तपनेवाला आदित्य 'ओम्' की उपासना करता है । उदय होकर उद्‌गीथ गायन करता है । वह अंधकार भय का भी विनाश करता है ॥1 ॥ सूर्य प्राणों के समान ही गुणोंवाला है । दोनों में उष्णता है । अस्त होते समय सूर्य स्वर कहलाता है, प्राण भी स्वर है । अत: दोनों की 'ओम्' रूप में उपासना करनी चाहिए ॥2 ॥ 'व्यान' की भी उद्‌गीथ के रूप में उपासना की जाती है । श्वास ग्रहण प्राण है, वायु को मुक्त करना 'अपान' है । इन दोनों के बीच की अवस्था 'व्यान' है, यही वाणी है । इसी अवस्था में वाणी का स्पष्ट उच्चारण संभव है ॥3 ॥ वाणी ही ऋचा है । श्वास गति रोककर ऋचा का उच्चारण करता है । ऋचा ही साम है । श्वास गति रोककर सामगायन होता है । साम ही उद्‌गीथ है । अत: मनुष्य श्वास गति को अवरुद्ध कर इसका गायन करता है ॥4 ॥ इसके अतिरिक्त शक्ति साध्य कर्म (अग्नि मंथन, लक्ष्य विशेष तक दौड़ना, धनुष खींचना) भी व्यानावस्था में ही किए जाते हैं । अत: व्यानावस्था में उद्‌गीथ उपासना करें ॥5 ॥

उद्‌गीथ की उपासना इसके अक्षरों से भी की जाती है । प्रथम वर्ण प्राण रूप है, प्राण शक्ति से ही ऊपर उठ जाता है । दूसरा अक्षर 'गी' वाणी है, तीसरा 'थ' अन्न रूप है, जो सबका आधार है ॥6 ॥ या 'उद्' स्वर्ग, 'गी' अंतरिक्ष एवं 'थ' पृथ्वी है, अथवा अग्नि आदि को ग्रहण करने से

आदित्य 'उत्' है, वायु 'गी' है तथा अग्नि 'थ' है या फिर 'उत' 'गी' तथा 'थ' क्रमशः ऋक, साम एवं यजुर्वेद हैं। इस मर्म का ज्ञाता उपासक प्राणों के रहस्य को जानकर वेदों का ज्ञाता बनता है, बहुत से भोग और भोगने की शक्ति प्राप्त करता है ॥7॥ साम द्वारा उपासना करनेवाला तथा उसका चिंतन करनेवाला ऋचा के ऋषि देवता तथा छंद का भी चिंतन करे तथा स्तोत्र, दिशा एवं देवता का भी चिंतन करे ॥8-11॥ साम, ऋचा आदि के ध्यान के साथ ही स्वनाम, पितृनाम, गोत्रादि कामना आदि का भी चिंतन करते हुए परमात्मा की स्तुति करनेवाला शीघ्र मनोवांछित फल प्राप्त करता है ॥12॥

चतुर्थ खंड

'ओम्', इस अक्षर को उद्गीथ रूप में उपासना करनेवाला और यज्ञ में उसका उच्च स्वर से गायन करनेवाला सात्त्विक वृत्तिवाला है। इसी 'ओम्' की व्याख्या यहां है ॥1॥ सात्त्विक देवता तामसी मृत्यु से डरकर तीनों वेदों में प्रविष्ट हुए, अतः सब छंद आच्छादन करनेवाले कहलाए ॥2॥ जैसे मछली पकड़नेवाला जल में मछली की स्थिति जान लेता है, मृत्यु ने भी वैसे ही देवों को वेदों में प्रविष्ट हुआ जाना। देवता भी इस तथ्य को जान गए, अतः वे 'ओम् में प्रवेश कर गए ॥3॥ इस प्रकार ऋक, साम एवं यजुर्वेद को जानकर कोई भी 'ओम्' का उच्चारण करता है। स्वर होते हुए भी यह ब्रह्म का स्वरूप है, अतः इसमें प्रविष्ट होने से देवता अमर-अभय हो गए ॥4॥ कोई भी व्यक्ति 'ओम्' के इस स्वरूप को जानकर इसमें प्रवेश करने से मृत्यु भय से मुक्त हो जाता है ॥5॥

पंचम खंड

उद्गीथ ही प्रणव (ओम्) है और प्रणव ही उद्गीथ है, आदित्य भी प्रणव है ॥1॥ एक बार कौषीतकि ऋषि ने अपने पुत्र को बताया कि इसी आदित्य का ध्यान करने से तुम मेरे पुत्र हुए हो। तुम भी इसकी उपासना करोगे, तो तुम्हारे अनेक पुत्र होंगे ॥2॥ आध्यात्मिक दृष्टि से सूर्योपासना का वर्णन इस प्रकार है—हमारा प्राण श्वास के रूप में 'ओम्' की ही उपासना करता है ॥3॥ कौषीतकि ऋषि ने पुनः अपने पुत्र से पूर्वोक्त बात कही ॥4॥ प्रणव ही उद्गीथ और उद्गीथ ही प्रणव है, दोनों में अभेद है। इसे जानकर यज्ञकर्ता प्रणव के श्रेष्ठ विधान से उद्गाता की भूलों को सुधार देता है ॥6॥

षष्ठम् खंड

यह पृथ्वी ऋचारूप है, अग्नि समरूप है। यह अग्नि ऋचा पर सुव्यवस्थित है। पृथ्वी का 'स' और अग्नि के 'अम' से 'साम' गायन होता है ॥1॥ अंतरिक्ष ही ऋक है, वायु साम है और यह ऋक पर स्थित है ॥2॥ स्वर्ग ऋक और आदित्य साम है, जो ऋक पर स्थित है, जिसका गान किया जाता है ॥3॥ नक्षत्र ऋक तथा चंद्रमा साम है। यह साम ऋक में स्थित है, जिसका गान किया जाता है। नक्षत्र 'सा' और चंद्रमा 'म' है, दोनों मिलकर साम बनते हैं ॥4॥ आकाश में आदित्य की शुभ्र आभा है वह ऋक है, नील वर्ण साम है, जो ऋक पर स्थित है। इसी का गान किया जाता है ॥5॥ शुभ्र और नील आभा क्रमशः 'सा' और 'म' है। दोनों मिलकर साम हैं। आदित्य के मध्य में दृश्मान स्वर्णिम दाढ़ीवाला चमकीले केशोंवाला तेजस्वी देहवाला पुरू प्रकाश रूप है ॥6॥ इसके नेत्र कमल सदृश हैं। नाम उत् है। उसका उपासक पापमुक्त हो जाता है ॥7॥ ऋक और सामवेद तथा

उद्गाता इसी का गान करते हैं। यह ऊंचे लोकों का नियामक तथा इच्छित फलदाता है। 'ओम्' की आधिदैविक उपासना यही है ॥8 ॥

सप्तम खंड

आध्यात्मिक उपासना इस प्रकार है कि यह वाणी ही ऋक है और घ्राण 'साम' है। ॥1 ॥ नेत्र ऋक है और आत्मा साम है ॥2 ॥ सोम ऋक है और मन साम ॥3 ॥ नेत्र का श्वेत प्रकाश ऋक तथा कृष्ण वर्ण साम है ॥4 ॥ (प्रत्येक ऋचा के संदर्भ में ऋक स्थित है, तथा पूर्व तत्त्व सा और बाद का म है दोनों मिलकर साम होते हैं—अन्वय होगा)। नेत्र में दिखाई देनेवाला पुरुष ही ऋक, साम और यजुर्वेद। वही सबका कारण है। आदित्य पुरुष के समान ही नाम-गुणवाला है ॥5 ॥

यही परम पुरुष पृथ्वी के नीचे लोकों का नियंता तथा इच्छित फलदाता है। वीणा में इस परम पुरुष का गायन करनेवाले को धन प्राप्ति होती है। जो इस उद्गीथ तथा पूर्ववर्णित दोनों पुरुषों के लिए सामगान करनेवाला आदित्य लोक तथा उससे ऊपर के लोकों को प्राप्त करता है। वह देवताओं, पृथ्वी लोक तथा नीचे के लोकों के भोगों को भी प्राप्त करता है। यह सब जाननेवाला उदगाथा यजमान से कहता है, 'तेरी कौन-सी इच्छापूर्ति हेतु सामगान करूं। वह गायन से इच्छापूर्ण कर लेता है ॥7-9 ॥

अष्टम खंड

शीलवान के पुत्र शिलक, चिकितायन पुत्र दालभ्य तथा जीवल पुत्र प्रवाहण—ये तीनों ऋषि उद्गीथ गान में कुशल थे। एक दिन मिलकर वे अपने ज्ञान की चर्चा करने लगे ॥1 ॥ वे एक स्थान पर बैठे। प्रवाहण ने कहा, 'आज्ञा हो तो मैं प्रश्न करूं?' दालभ्य ने स्वीकृति दे दी। ॥3 ॥ शिलक ने पूछा, 'उद्गीथ का आश्रय क्या है?' दालभ्य—'स्वर।' शिलक—'स्वर का आश्रय' दालभ्ये—'प्राण'। शिलक ने फिर कहा, 'प्राण का आधार' दालभ्य—'अन्न का आश्रय?' दालभ्य ने कहा—'अन्न का आश्रय जल है, जिसके बिना अन्नोत्पत्ति संभव नहीं है ॥4 ॥ 'जल का आश्रय' इस प्रश्न पर दालभ्य ने कहा— 'स्वर्ग, क्योंकि जल स्वर्ग से बरसता है।' शिलक द्वारा स्वर्ग का आधार पूछने पर दालभ्य ने कहा—'स्वर्ग अनतिक्रमणीय है। हम साम की स्थिति स्वर्ग से मानते हैं और स्वर्ग भाव से उसे पूजते हैं ॥5 ॥

फिर शिलक ने दालभ्य से पूछा, 'तुम्हारा साम उचित नहीं। यदि कोई अविवेकी शास्त्रार्थी तुम्हें कहे कि तुम्हारा मस्तक गिर जाए, तो यह अभी गिर जाए। दालभ्य ने कहा—'मैं भी आपसे साम की स्थिति जानना चाहता हूं।' शिलक की स्वीकृति मिलने पर दालभ्य ने पूछा—'स्वर्ग का आधार क्या है?' शिलक—'स्वर्ग लोक का पोषण होता है।' दालभ्य—इस लोक का आश्रय कौन है? शिलक—'पृथ्वी सबका आधार है। अतः इसका अतिक्रमण नहीं करना चाहिए। पृथ्वी की स्तुति की जाती है। साम पृथ्वी का आधारवाला है ॥6 ॥ प्रवाहण ने कहा—'तुम्हारा साम अतार्किक है। अतः कोई तुमसे सिर गिरने को कहे, तो तुम्हारा सिर गिर जाए।' शिलक द्वारा इस रहस्य पर पूछने की आज्ञा मांगी गई। प्रवाहण ने सहमति दी।

नवम खंड

शिलक ने पूछा—'इस लोक का आश्रय कौन है?' प्रवाहण ने कहा—'चराचर आकाश से ही पैदा होते हैं तथा उसी में विलीन हो जाते हैं, अतः लोक का आश्रय आकाश है। परमात्मा जीवों से महान है। अतः त्रिकाल में वही सबका आश्रय है ॥1॥ वही श्रेष्ठातिश्रेष्ठ और अनंत है। इस रूप में इसे समझकर उद्‌गीथ के उपासक निरंतर वृद्धि और श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त होते हैं ॥2॥ एक समय अविधन्वा ऋषि ने उदर-शांडिल्य को यह रहस्य बताते हुए कहा था, 'जब तक तेरी संतानें इस रहस्य को जानती रहेंगी, उनका यह लोक तथा परलोक श्रेष्ठ रहेगा ॥3॥ इस रहस्य का ज्ञाता दोनों ही लोकों में क्रमशः उन्नत स्थान पाता है ॥4॥

दशम खंड

कुरू देश में ओलावृद्धि के परिणाम स्वरूप अकाल पड़ गया, तब उषस्ति ऋषि अपनी पत्नी के साथ दीनावस्था में महावतों के गांवों में रहते थे ॥1॥एक महावत उड़द खा रहा था। उषस्ति ने उससे भिक्षा मांगी। महावत ने कहा, 'जिन उड़दों को मैं खा रहा हूं, इसके अलावा मेरे पास कुछ नहीं है।' ऋषि ने कहा, 'यही उड़द दे दो।' महावत ने उड़द देते हुए कहा, 'इन्हें खाकर जल पी लो।' ऋषि बोले, 'जल पीने से जूठे का दोष लगेगा।' महावत ने कहा, 'उड़द भी तो जूठे हैं।' ऋषि बोले 'उड़द न खाने से मैं मर सकता था, किंतु जल तो मुझे अन्यत्र भी मिल जाएगा।' उषस्ति ने आधे उड़द खाकर आधे पत्नी को दिए। वह पहले ही अच्छा भोजन पा चुकी थी। उसने उड़द को रख दिया ॥2-5॥

दूसरी प्रातः उठने पर ऋषि ने पत्नी से कहा, कुछ भोजन मिल जाए तो फिर कुछ काम करूं पास में एक राजा यज्ञ कर रहा है, वह मुझे यज्ञ में ऋत्विज बना सकता है ॥6॥ पत्नी ने रखे हुए उड़द दे दिए। उन्हीं को खाकर ऋषि यज्ञ में पहुंचे। उन्होंने प्रस्तोता, उद्‌गाता तथा ऋत्विज से क्रमशः (पृथक्-पृथक्) कहा—जिस देवता की तुम स्तुति तुम (उद्‌गान और प्रतिहरण) उसे जाने बिना करोगे तो तुम्हारा सिर गिर पड़ेगा।' यह सुनकर सभी ने यज्ञ बंद कर दिया ॥7-11॥

एकादश खंड

तब उषस्ति से राजा ने कहा, 'मैं आपका, परिचय जानना चाहता हूं।' ऋषि बोले, 'मैं चक्र का पुत्र उषस्ति हूं।' राजा बोला, 'मैं आपके यश से परिचित हूं। पहले मैंने आपको खोजा, आप नहीं मिले, तब अन्यों का वरण करना पड़ा। कृपया अब मेरे यज्ञ को संपूर्ण करें।' ऋषि ने सहमत होते हुए कहा, 'प्रस्तोता आदि कार्य करें। जितना धन सबको मिलाकर मिले उतना ही मुझे भी मिले।' राजा सहमत हो गया ॥2-3॥ प्रस्तोता, उद्‌गाता तथा ऋत्विज तीनों उनके पास आए। उन तीनों ने क्रमशः उनसे कहा, 'आपने मुझसे कहा कि जिस देवता की तुम स्तुति (उद्‌गान या प्रतिहरण) करते हो, यदि उसे नहीं जानते तो तुम्हारा मस्तक गिर जाएगा। कृपया बतलाइए वह देवता कौन है? ॥4॥ उन्होंने प्रस्तोता से कहा, 'वह देवता प्राण है। प्रलय के समय सब इसी में समा जाते हैं। 'समस्त प्राणी आदित्य का गान करते हैं। वही उद्‌गीथ से संबंधित आदि। तुम्हारा देवता है

प्रतिहर्ता से कहा, 'प्रतिहरण विषयक देवता है। अन्न ग्रहण करने से ही जीवन संभव है।' (अतः तुम इसे न जानते हुए यदि स्तुति, उद्‌गान अथवा प्रतिहरण करते, तो तुम्हारा सिर गिर पड़ता) ॥5-9 ॥

द्वादश खंड

अन्न हेतु अलौकिक श्वानकृत उद्‌गान प्रारंभ होता है। एक समय बक और ग्लाव ऋषि स्वाध्याय हेतु गांव के बाहर पानी के पास बैठे। उनके स्वाध्याय से संतुष्ट एक अलौकिक कुत्ता प्रकट हुआ। फिर छोटे-छोटे अनेक कुत्तों ने आकर उस कुत्ते से कहा, 'हम भूखे हैं, अतः अन्न के लिए आप उद्‌गीथ गायन कीजिए।' सफेद कुत्ता बोला, 'कल प्रातः यहां आना।' इस विस्मयकारी घटना से आकृष्ट वक और ग्लाव भी दूसरे दिन प्रातः वहां पहुंचे। जैसे बाहष्पवमान में सम्मिलित स्तुति करते हैं, वैसे ही कुत्ते भी एक-दूसरे की पूंछ को मुंह से पकड़कर घूमने लगे। फिर बैठकर हिंकार गाने लगे—ॐ खाइए, ॐ पीजिए, ॐवरुण, प्रजापति हमें अन्न दो। हमारे लिए अन्न लाओ (1-5) ॥

त्रयोदश खंड

साम विषयक एक उपासना, इसमें 'हाउ', 'हाई', 'अथ', 'इह' और 'ई' को क्रमशः पृथ्वीलोक, वायुलोक, चंद्रमा, आत्मा और अग्नि के लिए प्रयुक्त समझकर यह उपासना करनी चाहिए।

'ऊ', 'ए' 'औहोवि' 'हि' 'स्वर', 'या' और 'वाक' क्रमशः आदित्य, आ मंत्रण बोधक, विश्वेदेवा, प्रजापति, प्राण, अन्न और विराट स्वरूप समझना चाहिए। नेरहवां 'हूं' है, जिसे सबमें व्याप्त कारण रूप समझना चाहिए। इस स्त्रोत को समझकर उपासना करनेवाले की वाणी स्वयं अपना रहस्य प्रकट कर देती है। वह व्यक्ति बहुत अन्नवाला तथा भोगने की शक्तिवाला होता है।

द्वितीय अध्याय

प्रथम खंड

मनीषियों का कथन है, अशेष श्रेष्ठ साम ही है। साम की सब उपासना श्रेष्ठ हैं। अश्र साम नहीं है। यदि कोई कहे कि वह साम द्वारा सम्राट के पास गया, तो इससे श्रेष्ठ भावना व्यक्त होती है। 'असाम' द्वारा जाना इसके विरुद्ध समझा जाता है। स्वयं के अनुभव से साम प्राप्त हुआ खेदजनक है। साम की साधुता को जानकर इसकी उपासना करने से शीघ्र श्रेष्ठ कर्म की प्राप्ति होती है(1-4) ॥

द्वितीय खंड

लोक में पांच प्रकार की सामोपासना है। पृथ्वी, अग्नि, अंतरिक्ष, आदित्य एवं स्वर्ग क्रमशः हिंकार, प्रस्ताव, उद्‌गीथ प्रतिहार एवं निधन है। ऊर्ध्व लोकों में इसी प्रकार साम की दृष्टि है। अधोलोकों में भी पांच प्रकार की सामोपासना है। वहां हिंकार, प्रस्ताव, उद्‌गीथ, प्रतिहार एवं निधन क्रमशः स्वर्ग, आदित्य, अंतरिक्ष, अग्नि एवं पृथ्वी हैं। इस तत्त्व का जो ज्ञाता श्रेष्ठ साम की उपासना करता है, उसे ऊर्ध्व एवं अधो लोकों का उपभोग मिलता है (1-3) ॥

तृतीय खंड

वर्षा की पंचविध उपासना है। पुरोवायु हिंकार है, जो मेघ पंदा करती है, यह प्रस्ताव है, जल वर्षण उद्गीथ है, बिजली चमकना प्रतिहार तथा वर्षा रुकना निधन है। इसका ज्ञाता पंचप्रकारक साम का उपासक इच्छानुसार जल वर्षा कर सकता है(1-2) ॥

चतुर्थ खंड

समस्त जलों में पंचविध सामोपासना करें। घनीभूत मेघ, वर्षा, पूर्व वाहिनी नदियां, पश्चिम वाहिनी नदियां और समुद्र क्रमशः हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन हैं। इसकी जल में उपासना करनेवाला ज्ञाता जल से नहीं मरता और निर्जल स्थानों में भी जल प्राप्त करता है। (1-2)

पंचम खंड

ऋतुओं में भी पांच प्रकार की सामोपासना की जाए। बसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद एवं हेमंत क्रमशः हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार एवं निधन हैं। इस प्रकार पांच प्रकार से ऋतुओं में सामोपासना करनेवाले को ऋतुएं उपयुक्त भोग देती हैं। (1-2)

षष्ठ खंड

पशु विषय सामोपासना भी पंचविध है। बकरी, भेड़, अश्व और पुरुष क्रमशः हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार और निधन हैं। इसका ज्ञाता पंचप्रकारक सामोपोषक पशुधन से समृद्ध रहता है।(1-2)

सप्तम खंड

इंद्रियों में भी यही नियम है। प्राण, वाणी, नेत्र, कान तथा मन क्रमशः हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार तथा निधन हैं। इस श्रेष्ठ प्राणों के पंचविधि साम का उपासक श्रेष्ठ जीवन तथा लोकों को प्राप्त करता है। (1-2)

अष्टम खंड

साम की सप्तविधि उपासना—वाणी की सप्तविधि उपासना होती है। शब्द का 'हुम', 'प्र', 'अ', 'उत्', 'प्रति', 'उप' और निरूप क्रमशः हिंकार, प्रस्ताव, ओम्, उद्गीथ, प्रतिहार, उपद्रव और निधन हैं। इसके सम्यक् ज्ञाता उपासक को वाणी अपना सार देती है तथा वह बहुत अन्नवान बनता है।(1-3)

नवम खंड

प्रसिद्ध आदित्य की दृष्टि से समार्चन करें। सदा सम रहने से आदित्य साम है। वह सबमें संभावना देता है। इसमें सभी आश्रित हैं। इसका उदय से पूर्व का रूप हिंकार है। इस रूप से पशु अनुगत होते हैं। वे आदित्य साम को भजने के कारण ही उसके उदय पर हिंकार करते हैं। उदय के बाद का प्रथम रूप प्रस्ताव है। इससे मनुष्य उसका भजन करके अनुगत होते हैं। इसके बाद का संकटकाल का आदित्य 'ओम्' है। इसको भजते हुए पक्षी अंतरिक्ष में चले जाते हैं। वे ही इस रूप

से अनुगत होते हैं। मध्य दिन का सूर्य उद्गीथ है। इसे देवता भजते हैं, प्रजापति की श्रेष्ठ संतान है। (1-5)

इसके बाद अपराह्न से पूर्व का सूर्य प्रतिहार है। इसे इसके अनुगत गर्भस्थ भजते हैं। अपराह्न के बाद अस्त से पूर्व का सूर्य उपद्रव है। वन्य पशु इसी से अनुगत है। इसी को भजते हैं। इससे वे वन में जाकर निरातंक हो जाते हैं। अस्त होता हुआ सूर्य निधन है। इससे पितृगण अनुगत हैं; वे इसी का भजन करते हैं। इस प्रकार सात रूपोंवाले आदित्य रूप साम की उपासना है।(6-8)

दशम खंड

अतिमृत्यु रूप साम की सप्तविध उपासना करें। हिंकार और प्रस्ताव दोनों तीन वर्णवाले हैं। आदि दो अक्षरोंवाला तथा प्रतिहार चार अक्षरोंवाला है, इसमें से एक वर्ण आदि में डालने पर दोनों में बराबर हो जाएंगे। उद्गीथ और उपद्रव क्रमशः तीन एवं चार वर्णों के हैं। बादवाले में एक वर्ण अधिक है। यह भी वर्ण है। तीन वाला भी नाम है। निधन तीन अक्षरीय है। इन सात विभागों में कुल बाईस अक्षर हैं। इक्कीस अक्षरों से साधक स्वर्गलोक जाता है। बारह माह, पांच ऋतुएं और तीन लोक मिलकर बीस हैं। आदित्य इक्कीसवां है। बाईस अक्षरों से साधक को आदित्य से श्रेष्ठ लोक मिलता है। इक्कीस की संख्या से आदित्य प्राप्य है। इस प्रकार का आदित्य समान ज्ञाता मृत्यु जय हेतु सामोपासना करता है। (1-6)

एकादश खंड

मन हिंकार है, वाणी प्रस्ताव, नेत्र उद्गीथ, कान प्रतिहार और नासिका निधन है। गायत्री साम प्राणों में प्रतिष्ठित है। इसकी उपासना करनेवाला प्राणवान बनता है, पूर्ण आयु, उज्ज्वल जीवन, संतान, पशु, कीर्ति तथा मनस्वितामय होता है।

द्वादश खंड

अभिमंथन हिंकार है, धुआं प्रस्ताव, जलना उद्गीथ, अहंकार प्रतिहार और अग्निशांत होना निधन है। इस रथंतर साम अग्नि का उपासक तेजस्वी, चिरायु धन-धान्य, संतान आदि संपन्न होता है। अग्नि की ओर मुखकर न सोए और न कुछ खाए यह व्रत है। (1-2)

त्रयोदश खंड

उपमंत्रणा हिंकार है, ज्ञापन प्रस्ताव है, स्त्री उद्गीथ है, उसके साथ सोना प्रतिहार तथा समय बिताना निधन है। दांपत्य जीवन के नियमों का पालन करते हुए उपासना करने वाला गृहस्थ सुख, संतान, आयु आदि का भोग करता है। परस्त्री कामना न करे व्यभिचार से दूर रहे यह व्रत है।(1-2)

चतुर्दश खंड

उदय होता सूर्य हिंकार, उगा हुआ प्रस्ताव, मध्य दिन का उद्गीथ अपराह्न का प्रतिहार तथा अस्तकाल का निधन है। यह वृहत साम आदित्य में रहता है। जो इसकी उपासना करता है, वह कांतियुक्त, दीर्घायु, यशस्वी तथा संपन्न होता है। आदित्य निंदा न करे यह व्रत है। (1-2)

पंचदश खंड

बादलों का भागना, बिजली चमकना, वर्षा होना, गर्जन होना तथा वर्षा समाप्ति क्रमशः हिंकार प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार एवं निधन हैं। यह वैरूप साम पर्जन्य में स्थित है। इसकी उपासना करनेवाला संतान, पशु कीर्ति से समृद्ध रहता है। मेघ निंदा न करे यह व्रत है।

षोडश खंड

वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद तथा हेमंत क्रमशः हिंकार प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार तथा निधन हैं। वैराज नाम यह साम ऋतुओं में स्थित है। वैराज साम की ऋतुओं में उपासना करनेवाला पूर्वोक्त रूप में समृद्ध होता है। ऋतु निंदा न करे, यह व्रत है।(1-2)

सप्तदश खंड

पृथ्वी, अंतरिक्ष, स्वर्ग, दिशा एवं समुद्र क्रमशः हिंकार, प्रस्ताव, उद्गीथ, प्रतिहार एवं निधन है। यह शक्वरी साम लोकों में स्थित है। शक्वरी सामों को लोकों में स्थित मानकर उपासना करनेवाला पूर्वोक्त विशिष्टताओं से समृद्ध होता है। लोकनिंदा न करे, यह व्रत है। (1-2)

अष्टदश खंड

बकरी हिंकार है, भेड़ प्रस्ताव, गो उद्गीथ, घोड़ा प्रतिहार तथा मानव निधन है। यह खेती साम पशुओं में स्थित है। इसे इस प्रकार जानकर...(पूर्ववत्) पशु निंदा न करे यह व्रत है(1-2)।

उनविंश खंड

लोभ हिंकार है, त्वचा प्रस्ताव है, मांस उद्गीथ अस्थि प्रतिहार तथा मज्जा निधन है। यह यज्ञायज्ञीय सामोपासना है। इसे अंगों सहित जानकर उपासना करनेवाला संपूर्ण अंगों से युक्त संतान, पशुओं...(पूर्ववत्) मांसाहारी भी एक वर्ष तक निरामिष भोजी बने यह व्रत है(1-2)।

विंश खंड

अग्नि हिंकार, वायु प्रस्ताव, आदित्य, उद्गीथ, नक्षत्र प्रतिहार तथा चंद्रमा निधन है। यह राजन साम देवों में स्थित है। इसे इसी प्रकार समझकर उपासना करनेवाला, देवलोक, ऋषिलोक तथा ईश्वर के सायुज्य को प्राप्त होता है। पूर्ण आयु, संतान (पूर्व के समान) ब्रह्म वेत्ताओं की निंदा न करना इसमें व्रत है(1-2)।

एकविंश खंड

त्रयी विद्या (वेद विद्या) हिंकार है, तीनों लोक प्रस्ताव, अग्नि, वायु और आदित्य— ये उद्गीथ नक्षत्र, किरण और पक्षी प्रतिहार तथा सर्व, गंधर्व एवं पितृ निधन हैं। यह सब में है। जो इस साम समूह को वेद विद्या स्थित जानकर इसकी उपासना करता है, वह ईश्वर रूप बनता है। यहां बताए गए पांचों में तीन-तीन के समूह से बढ़कर विश्व में कुछ भी नहीं है। इस उपासना को करनेवाला सभी दिशाओं से भोग पाता है। मैं सब कुछ हूं, इस भाव की पूजा व्रत है।

द्वाविंश खंड

विनर्दि नामक साम,पशु धन में हितकारक है,ऐसा अग्नि गान है। प्रजापति का गायन अस्पष्ट, सोम का स्पष्ट,वायु का मधुर,इंद्र का बलवान मधुर,गुरु का क्रौंच पक्षी के शब्द के समान वरुण का भग्न कांस्यपात्र जैसा। सबका उच्चारण करें,किंतु वरुण का न करें। देवों के लिए अमृत पान की व्यवस्था के विचार से उद्गान करें। मित्रों को स्वधा,मनुष्यों के लिए अभीष्ट,पशुओं,यजमान तथा स्वयं के लिए क्रमशः घास,स्वर्ग तथा अन्न साधन का ध्यान करना चाहिए। तब स्तुति करे। संपूर्ण स्वर इंद्र की आत्मा हैं,ऊष्म एवं स्पर्श अक्षर क्रमशः प्रजापति एवं मृत्यु के आत्मा हैं। स्वर में दोष निकालने वाले से उद्गाता कहे कि वह तब इंद्र का आश्रित था अतः इंद्र ही उत्तर देगा। यदि कोई ऊष्म या स्पर्श अक्षरों में दोष निकाले,तो उनसे भी कहे कि मैं इनके देवताओं के आश्रय में ... (पूर्ववत्) सभी स्वर सघोष बलपूर्वक उच्चरित हों। इंद्र के प्रयत्न की कल्पना करनी चाहिए। सभी ऊष्म स्वर अग्रस्त,अनिस्त तथा विवृत बोले जाएं। उच्चारण के समय प्रजापति को आत्मा देने की कल्पना करें। स्पर्शाक्षर धीरे स्पष्ट बोलें उस समय मृत्यु को 'शरीर से बाहर निकालने का विचार करें।(1-5)।

त्रयोविंश खंड

यज्ञ,अध्ययन और दान कर्म के तीन भाग हैं। जो क्रमशः ब्रह्मचर्य,गुरुकुल वास तथा वहां रहकर शरीर को कष्ट देना ही है। ये सभी पुण्यलोक तथा अमृत प्राप्त करानेवाले हैं। प्रजापति को लोकों के सार ऋक्,यजुष्,और साम की प्रतीति हुई। इन पर विशेष ध्यान देने पर उसे 'भूः', 'भुवः' और 'स्वः' की प्रतीति हुई। तीनों का सार ग्रहण करने पर 'ओम्' प्रतीत हुआ,यही ब्रह्म है। जैसे पत्ते के शकु से उसमें नसें व्याप्त रहती हैं,वैसे ही 'ओम्' समस्त वाणी में व्यापक होने से परमात्मा ही है,यही सब कुछ है। (1-3)

चतुर्विंश खंड

ब्रह्मवादी कहते हैं कि प्रातःकाल,मध्य दिन तथा सायं का सवन क्रमशः वसुओं,रुद्रों तथा आदित्यों का है। तब यदि यजमान के लोक के विषय में यज्ञकर्ता नहीं जानता तो वह अज्ञानी है। उसके ज्ञाता को ही यज्ञ करना चाहिए। प्रातः ऋचा पाठ से पूर्व यजमान उत्तर को मुख करके 'वसु' देव का गायन करता है। 'हे अग्नि अपने द्वार खोलो,जिससे राज्य प्राप्ति हेतु हम तुम्हें देख सकें'। अग्न को नमस्कार करके 'मैं इस यजमान लोक को प्राप्त करूंगा मृत्युपरांत यहां जाऊंगा।' कहकर हवन के बाद 'परिधि दूर करो' कहकर बैठता है। तब वसुदेव उसे प्रातः स्तवन देते हैं।1-6।

मध्य दिन के सवन में यजमान उत्तराभिमुख,दक्षिणाग्नि के लिए पीछे बैठे। रुद्र का साम गान करे—'हे रुद्र अंतरिक्ष प्राप्त के लिए मार्ग दो। वैराज प्राप्ति के लिए हम तेरा दर्शन करेंगे। फिर—'अंतरिक्षवासी लोक स्थित वायु को नमस्कार। मुझे लोक प्राप्ति कराओ। मैं इस यजमान लोक में जाऊंगा ...स्वाहा...परिधि दूर करो' ऐसा करनेवाले को रुद्र मध्य दिवस सवन प्रदान करते हैं। (7-10)

तृतीय सवन के आदि में आह्वनीय के पीछे उत्तराभिमुख बैठें। आदित्य का नाम गान करें 'अग्नि स्वराज्य प्राप्ति के लिए हम तुम्हारा दर्शन करेंगे। स्वर्ग द्वार खोलो।' फिर विश्वेदेव गायन करे 'स्वर्ग के निवासी विश्वेदेव तथा आदित्यों, नमस्कार मुझ यजमान को इस लोक प्राप्ति कराओ। आयु पूर्ण होने पर यहां आऊंगा—स्वाहा।' पुनः उठकर 'परिधि दूर करो' क ऐसे यजमान को ये देवता तृतीय सवन प्रदान करते हैं। इसके ज्ञाता को इसकी प्राप्ति संभव है (11-16)

तृतीय अध्याय

प्रथम खंड

ओंकार ही सूर्य का मधु, द्यौ एवं अंतरिक्ष क्रमशः दंड एवं छत्र तथा किरणें मधुमक्खियों बच्चों की तरह हैं। पूर्व दिशा की किरणें 'ऋचाएं' ऋग्वेद तथा सोमादि क्रमशः छतों के छि मधुमक्खी, पुष्प तथा अमृत रूपी जल है। ऋग्वेद की ऋचाएं प्रकाशक, यज्ञादि से कीर्ति प्रका आदि तथा भक्षणीय पदार्थों की उत्पत्ति हुई। विशेष रूप में गतिशील वह रस आदित्य के पूर्व भा में आश्रित है। सूर्य का लाल वर्ण यही रस है। (1-4)

द्वितीय खंड

सूर्य की दाहिनी किरणें, यजुर्वेद के मंत्र, यह वेद तथा सोम क्रमशः छत्ते की दक्षिण मधु मधुमक्खी, पुष्प तथा अमृत रूप जलादि हैं। इन्हीं मंत्रों ने यजुर्वेद को प्रभावी बनाया है, जिस कीर्ति बल एवं भक्षणीय पदार्थ जन्मे। इन सबके रस ने आदित्य का आश्रय लिया, यही सूर्य शुभ्र वर्ण है। (1-3)

तृतीय खंड

सूर्य की पश्चिमी किरणें, साममंत्री, सामवेद तथा सोमादि क्रमशः पश्चिमी मधुनलिका मधुमक्खी पुष्प और अमृतादि जल हैं। साममंत्रों ने इस वेद को तप्त किया, जिससे कीर्ति आ तथा भक्षणीय अन्न उपजे। इस रस ने सूर्य के चारों ओर आश्रय लिया, जो सूर्य के काले वर्ण के रू में है। (1-3)

चतुर्थ खंड

इसकी उत्तरी किरणें, अग्नि रस, इतिहास, पुराण, सोमादि क्रमशः उत्तरी मधुनलिका मधुमक्खी, पुण्य, अमृतादि जल हैं। मंत्रों ने इतिहास आदि को अभितप्त करके कीर्ति तेजा (पूर्ववत) उत्पन्न किए। यह रस सूर्य के चारों ओर आश्रित हुआ। सूर्य का गहन श्यामवर्ण यही (1-3)

पंचम खंड

ऊर्ध्व किरणें, गुह्य आदेश, प्राण और सोम क्रमशः ऊर्ध्व मधुनलिकाएं आदि हैं। गुह्य आदेश ने प्रणव को व्याप्त किया, जिससे कीर्ति आदि उत्पन्न हुए। इस रस ने (पूर्ववत्) आदित्य का आश्र

लिया। आदित्य के मध्य में गतिशील दृश्यमान यही मधु है। लाल आदि वर्ण रस हैं। रस रूप वेदों के यह रस हैं। ये वेद ही अमृतों के अमृत हैं (1-4)

षष्ठम खंड

इनके प्रथन अमृत से अग्नि द्वारा वसुगण जीवित रहते हैं। देवता बिना खाए-पिए इस अमृत के अनुभव से ही तृप्त रहते हैं। वसु इस रूप से ही शांत हो जाते हैं तथा यथासमय क्रियाशील होते हैं। इस तथ्य का ज्ञाता वसु बनकर इस अमृत के अनुभव से ही तृप्त होता है। उन्हीं के समान इस रूप से शांत एवं क्रियाशील होता है। वह सूर्य के उदय से अस्त तक के राज्य को वसुओं से प्राप्त करता है (1-4)

सप्तम खंड

अब द्वितीय अमृत द्वारा रुद्रादि इंद्र के सहयोग से जीवित रहते हैं। भूख-प्यास का अनुभव न होने से देवता इसके दर्शन मात्र से तृप्त होते हैं तथा उदासीन एवं सक्रिय होते हैं। इसे जानकर उपासना करनेवाला एक रुद्र बनकर इंद्र की प्रधानता से अमृत-दर्शन से ही तृप्त होता है, तथा सूर्य के उदय से...(पूर्ववत्) (1-4)

अष्टम खंड

अब तृतीय अमृत द्वारा आदित्यगण वरुण द्वारा जीवित रहते हैं। देवता न तो खाते हैं न पीते हैं। (शेष उपर्युक्त षष्ठम खंड के समान अन्वय होगा। केवल यहां इंद्र के स्थान पर वरुण पढ़ा जाएगा। अंत में वसुओं के स्थान पर आदित्य पढ़ा जाएगा)।(1-4)

नवम खंड

अब चतुर्थ अमृत द्वारा मरुद्‌गण सोम की प्रधानता से उपजीवन करते हैं। (शेष षष्ठम खंड के समान केवल वसुगण के स्थान पर मरुद्‌गण, वसु के स्थान पर मरुद् आदि पढ़ा जाएगा। (1-4)

दशम खंड

पंचम अमृत से साध्यगण ब्रह्म द्वारा जीवन धारण करते हैं। (शेष सप्तम खंड के समान पढ़ा जाए, केवल रुद्र के स्थान पर साध्य तथा इंद्र के स्थान पर ब्रह्म पढ़ें) ।(1-4)

एकादश खंड

इसके बाद प्राणी ब्रह्म में मिलकर न तो उदय होते हैं न अस्त। वे अपनी अद्वितीय आशा में स्थित हो जाते हैं। ब्रह्मलोक में सूर्योदय या सूर्यास्त नहीं होता। देवो मैं सत्य द्वारा ब्रह्म को प्राप्त करूं। इस रहस्य के ज्ञाता के लिए सूर्योदय अथवा अस्त नहीं होता; सदा दिन ही रहता है। यह मधुविद्या हिरण्यगर्भ, विराट, मनु, प्रजा, अरुण तथा उद्दालक को (क्रमशः अपने पूर्व लिखित से) प्राप्त हुई। इस ज्ञान को पिता ज्येष्ठ पुत्र को तथा आचार्य शिष्य को दे, अन्य किसी को न दे। चाहे आचार्य को धन भरे समुद्र से युक्त पृथ्वी दे दे फिर भी यह ज्ञान बड़ा है।

द्वादश खंड

गायत्री निरूपण—गायत्री सभी प्राणी रूप है । समस्त चराचर गायत्री ही है । वाणी गायत्री है। वाणी ही बोली जाती है तथा रक्षा करती है । यही गायत्री पृथ्वी है, जिसमें अखिल प्राणी रहते हैं इसका कोई उल्लंघन नहीं कर सकता । पृथ्वी रूप गायत्री ही शरीर है । इसमें प्राण स्थित हैं, जो इसे नहीं छोड़ते । शरीर ही अंत हृदय है, जिसमें प्राण रहते हैं, इसे नहीं त्यागते । यह गायत्री चार चरणवाली और छः प्रकार की है । इसका मंत्र है—इस गायत्री रूप ब्रह्म की ऐसी ही महिमा है । पुरुष इससे भी महान है । इस ब्रह्म का एक चरण सभी प्राणी हैं । त्रिपाद पुरुष अमृत—त्रिपादमय आत्मा में स्थित है । यह प्रसिद्ध ब्रह्म, पुरुष के बाहर आकाश स्थित भीतर आकाश स्थित तथा हृदयकमल भीतर स्थित आकाश में भी यही ब्रह्म है । इस पूर्ण अनश्वर ब्रह्म का उपासक पूर्ण अछेद्य विभूति को मिल जाता है (1-9)

त्रयोदश खंड

गायत्री उपासना के पंच प्राण—शरीर में देवों द्वारा रक्षा करने के लिए पांच छेद हैं । पूर्वी छिद्र प्राण, चक्षु प्राण तेज और अनाद्य हैं । यह जानकर इसकी उपासना करनेवाला तेजस्वी होता है। दक्षिण छिद्र व्यान, क्षोत्र, चंद्रमा; विभूति और कीर्ति है । पश्चिम छिद्र अपान, वाणी और अग्नि है। उत्तरवाला छिद्र समान, अंतकरण, मेद्य तथा कीर्ति एवं व्यष्टि है । ऊर्ध्व छिद्र उदान, वायु, मह है । इन चारों को जानकर उपासना करनेवाला क्रमशः विभूति-कीर्तिवाला तेज प्रदीप्त जठराग्निवाला यश-लावण्ययुक्त तथा बलयुक्त महानतावाला होता है । हृदय स्थित परमात्मा के ये पांच पुरुष स्वर्ग के द्वारपाल हैं, इनके उपासक के वंश में वीर जन्म लेते हैं । इनका उपासक परमात्मा को पाता है । स्वर्ग से भी ऊपर प्रकाशित होनेवाली ख्याति इसी पुरुष की अंतः ज्योति है । स्पर्श से उष्णता होने पर इस ज्योति का ज्ञान होता है ।

इसे सुनने के लिए दोनों कानों को अंगुलियों से बंद करने पर शरीर में रथ की, बैल की अथवा जलती अग्नि की ध्वनि सुनाई देती है । इसे पुष्ट एवं श्रुत जानकर उपासना करनेवाला दर्शनीय तथा यशस्वी बनता है (1-9)

चतुर्दश खंड

सगुणोपासना—निश्चय ही यह ब्रह्म है, क्योंकि जगत इसी से उत्पन्न, इसी में स्थित तथा लय होनेवाला है । इसकी उपासना राग-द्वेष से मुक्त होकर करें । इस देह में जैसे निश्चयवाला जीव होता है, प्राण त्यागने पर वैसा ही बनता है । अतः सत निश्चय करें । परमात्मा मनोमय, प्रशरीरवाला आभा रूप, सत्य संकल्प, आकाश रूपी आत्मा वाला, सर्वकर्मा, सर्वकाम, सर्वगंध, सर्वरस तथा सर्वव्यापक, वाणी रहित, ससंभ्रम है । यह मेरा आत्मा चावल, जौ, सरसों आदि से भी सूक्ष्म तथा अंतरिक्षादि से भी विशाल है । यही ब्रह्म है । देह त्यागने पर भी यह मुझे प्राप्त होगा । शांडिल्य ने कहा है, इस प्रकार के दृढ़ निश्चयवाला ईश्वरत्व को प्राप्त होता है । (1-4)

पंचदश खंड

अंतरिक्ष उदरवाला, पृथ्वी रूप मूल्यवाला कभी जीर्ण नहीं होता। दिशाएं इसके कोण, द्यौ द्वार हैं। यह कोश वसुधा है। सभी इसमें स्थित हैं। पूर्व, पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण दिशाएं इसकी जुहू, राज्ञी, सुभु तथा सहमाना नामवाली हैं। इनका वायु वत्स है। अपने पुत्र हेतु जो इस वायु की उपासना करता है, वह पुत्र के लिए रोता नहीं है। मैं इसी उद्देश्य से इसकी उपासना करता हूं। अतः पुत्र के लिए दुःखी न होऊं। मैं... इसके साथ अविनाशी कोण की शरण हूं। मैं इस ...के साथ प्राण की शरण में हूं (इसी प्रकार भू की शरण हूं, भुवः की शरण हूं। 'इसके स्थान पर पुत्र का नाम लें) मैंने जो कहा प्राण की शरण हूं, तात्पर्य है सर्वभूत प्राण की शरण हूं। मैं भू की शरण का अर्थ स्वर्ग, पृथ्वी और अंतरिक्ष की शरण है। भुवः की शरण का अर्थ अग्नि और वायु की शरण है। फिर स्वः की शरण का अर्थ ऋक, साम एवं यजुर्वेद की शरण हूं-है। (1-7)

षोडश खंड

स्वदीर्घ जीवन हेतु प्राणोपासना—पुरुष ही यज्ञ है। उसके चौबीस वर्ष प्रातः सवन है। इसका संबंध गायत्री से है। गायत्री के भी चौबीस अक्षर हैं। प्राण वसु है, क्योंकि वे सबको बनाते हैं। इस वयः में दुःखी लोग यह प्रार्थना करें 'प्राण रूप वसुओं, मेरे प्रातःसवन को माध्यांदिन यज्ञ से एक रूप कर दो, जिसमें वसुओं से विच्छेद न कर पाऊं। अतः वह दुःख मुक्त हो जाता है। चवालीस वर्ष माध्यांदिन यज्ञ है, जो त्रिष्टुप से संबद्ध है। त्रिष्टुप के 44 अक्षर होते हैं। इसके अनुगत रुद्र हैं। प्राण रुद्र हैं, क्योंकि यह सबको रुलाते हैं। इस अवस्था में दुःख मुक्ति हेतु यह मंत्र जपें—'प्राणरूप रुद्रो, इसे तृतीय सवन से एकरूप कर दो जिससे मेरा तुमसे विच्छेद न हो। इससे वह दुःख मुक्त हो जाता है। अड़तालीस वर्ष सायंकालीन तृतीय सवन है। यह अड़तालीस अक्षर के जगती छंद से संबद्ध है। इसके अनुगत आदित्य हैं। इस उम्र का दुःख निवारक मंत्र यह है—'प्राणरूप आदित्यो, मेरे इस तृतीय सवन को 116 वर्ष की आयु से मिला दो। जिससे मैं यज्ञरूपी आदित्यों से विच्छिन्न न होऊं।' इससे वह दुःखमुक्त हो जाता है। इस उपासना के ज्ञाता महिदास ने कहा था, 'रोग तू मुझे क्यों कष्ट देता है ? इससे मैं नहीं मर सकता।' इससे वह 116 त्र्वर्ष जीवित रहा। ऐसी उपासना करनेवाला नीरोग रहकर 116 वर्ष जीवित रहता है।

सप्तदश खंड

आत्म यज्ञ—खाने की, पीने की इच्छा करना और उसमें आसक्त न होना ही उसकी दीक्षा है। खाने-पीनेवाला, आसक्तिवाला 'उपसद' प्राप्त करता है। हंसने, भक्षण करने तथा मैथुन करनेवाले स्तुति के स्त्रोत्रों को पाते हैं। तप-दान दक्षिणा है। प्रसूत होना जन्म तथा यज्ञांतका अवमृत मरण है। आंगिरस ऋषि ने यह मंत्र देवकी पुत्र कृष्ण को दिया, जो मरणकाल में जय है (1) तू अंतरिक्ष है (2) तू नाशरहित है (3) तू सूक्ष्म प्राण है। आचार्य के वचनों से कृष्ण अन्य उपासनाओं से निर्लिप्त हो गए। पूर्व कारण से हम अज्ञाननाशक श्रेष्ठ प्रकाश का अनुभव करते हैं। हृदय स्थित परम ज्योति का अनुभव करते हुए दैवीय प्रकाश को प्राप्त करते हैं। यह इस विषयक रचनाएं हैं।(1-7)

अष्टादश खंड

अंतःकरण को परमात्मा मानकर उपासना करें। आकाश की इस रूप में उपासना करें। दोनों क्रमशः आध्यात्मिक और अधिदैविक उपासनाएं हैं। इस चतुष्पाद ब्रह्म के वाणी, घ्राण और श्रोत्र पाद हैं। यह अध्यात्म है। आधिदैविक दृष्टि से आकाश ब्रह्म है, अग्नि, वायु, आ और दिशा इसके चार चरण हैं। यह आध्यात्मिक एवं आधिदैविक दोनों उपदेश हैं। वाणी, म ब्रह्म का चतुर्थ पाद है, जो अग्नि रूप ज्योति से प्रकाशित और गतिमान होता है। घ्राण ब्रह्म चौथा पाद है। चक्षु ब्रह्म का चौथा पाद है। श्रोत्र ब्रह्म का चौथा पाद है। (ये तीनों चतुर्थ पाद क्र वायु रूप ज्योति से, आदित्य रूप ज्योति से तथा दिशा रूप ज्योति से प्रकाशित होते हैं। इस प्र जो इनकी उपासना करता है, कीर्ति, यश और ब्रह्म तेज से प्रकाशमान होता है।

एकोनविंश खंड

आदित्य रूप में ब्रह्म उपासना—कहते हैं, ब्रह्म आदित्य है, वह सर्वज्ञ पहले असत् था फिर हुआ फिर एकीभूत होकर अंडा रूप बना। अंडा फूटने पर उसके अवयव सोना-चांदी बने। से पृथ्वी स्वर्ण से द्यौ, स्थूल भाग से पर्वत, सूक्ष्म से मेघ-कुहरा, शिराओं से नदियां तथा मूत्राश जल से समुद्र हुआ। अंडे का गर्भ आदित्य है। इसके जन्म से नाद शब्द तथा समस्त चराचर बना। यह आदित्य है, इस भावना से उपासना करनेवाला श्रेष्ठ शब्द और सुखों को पाता है (1-

चतुर्थ अध्याय

प्रथम खंड

प्रसिद्ध राजा जनश्रुति का प्रपौत्र दानी था। उसके घर में अत्यधिक भोजन बनता था तथा में अनेक भोजनालय बनाए गए थे, जहां लोग भोजन कर सकें। एक रात्रि राजा ने दो हंस देखे। एक हंस बोला, 'मूर्ख ! जनश्रुति के पौत्र का तेज दिवस के समान है। इसे स्पर्श न कर, देगा।' दूसरा बोला, तू क्यों इस राजा का इतना बखान करता है ? क्या यह गाड़ीवाले रैक्व सदृश्य है ? पहला हंस बोला 'जैसे यज्ञ विजय से सब नीचे हो जाते हैं। वैसे ही प्रजा का स पुण्य उसे मिलता है। मुझे बताया गया है कि अन्यों के अविदित को भी रैक्व जानता है।' राजा सब सुन रहा था। प्रातः उसने चरणों से कहा कि गाड़ीवाले रैक्व को बुलाएं। सेवकों ने पूछा 'रैक्व कौन है ?' राजा ने पूर्व वृत्तांत दोहरा दिया। बहुत ढूंढ़ने पर भी रैक्व को न पाकर सेवक ल आए। राजा ने कहा, 'उसे ब्रह्म वेत्ताओं के जैसे एकांत स्थानों में ढूंढ़ें !" सेवकों को यह एक नि स्थान पर गाड़ी के नीचे बैठा स्वयं को खुजलाता हुआ मिला। सेवकों द्वारा पूछे जाने पर उसने स्व को रैक्व बताया। सेवक वापस लौट आए। (1-8)

द्वितीय खंड

वह राजा छः सौ गाएं, हार तथा खच्चरी सहित रथ लेकर रैक्व के पास गया। उसने रैक्व यह सब स्वीकार करने की प्रार्थना की, तथा उसके उपास्य का उपदेश देने को कहा। रैक्व ने शूद्र शब्द से संबोधित करते हुए सारे उपहार ठुकरा दिए। राजा पुनः एक हजार गाएं, हार, खच्च

सहित रथ तथा अपनी पुत्री को लेकर वहां गया तथा पुनः राजा ने यह सब चीजें और वह गांव भी उसे देना चाहा और उपदेश देने की प्रार्थना की। राजकन्या को विद्याग्रहण का साधन समझकर राजा को पुनः शूद्र कहा तथा उसकी प्रार्थना मान ली। यह गांव रैक्व पर्ण नाम से प्रसिद्ध हुआ। रैक्व ने कहना प्रारंभ किया। (1-5)

तृतीय खंड

संवर्ग विद्या—वायु ही संवर्ग है। शांत अग्नि वायु में लीन हो जाती है। प्रलय काल में सूर्य भी वायु में मिल जाता है, चंद्र भी, और सूखने पर जल भी। वायु इन सबको लीन करनेवाला है। यह अधिदैवत उपासना और आध्यात्मिक दृष्टि से प्राण संवर्ग है। सोने पर वाणी, चक्षु श्रोत्र और मन सब प्राण में ही लीन होते हैं। इस प्रकार दो, संवर्ग हैं, वायु देवताओं में तथा प्राण इंद्रियों में। एक बार कापेथ शौनक तथा कक्षतेन पुत्र अभिप्रतारी भोजन करने बैठे थे। उसी समय एक ब्रह्मचारी द्वारा भिक्षा मांगने पर उन्होंने मना कर दिया। चार महान लोगों को त्रिभुवन रक्षक प्रजापति लील जाता है। शौनक ! अज्ञानी उसे नहीं देखते। अभिप्रतारी ! यह अन्न जिसके लिए आया है, उसे नहीं देते हो। शौनक ने कहा हम उस देवता को जानते हैं। अग्नि, वाणी आदि प्रजा का जनक, भक्षणस्वभावी तथा अन्य किसी द्वारा अभक्षणीय और अभक्ष्य को भी खा जाता है। हम इसी की उपासना करते हैं। तब भिखारी को भिक्षा की प्राप्ति हुई। ये अग्नि आदि पांच तत्त्व, वाणी आदि पांच इंद्रियां कुल दस कृत समान होते हैं। यह विराट ही अन्न भक्षक है। इस प्रकार के ज्ञाता उपासक को सब ज्ञान होकर प्रदीप्त जठराग्नि मिलती है (1-7)

चतुर्थ खंड

सत्यकाम ने अपनी मां से कहा, 'मां, मैं आचार्य के आश्रम में ब्रह्मचर्याश्रम में रहना चाहता हूं। मेरा क्या गोत्र है ?' मां बोली युवावस्था में मैंने अनेक अतिथियों की सेवा की थी, तभी तेरा जन्म हुआ। अतः मैं तेरा गोत्र नहीं जानती। मेरा नाम जबाला है और तू सत्यकाम है। तू आचार्य को अपना नाम सत्यकाम जबाला बताना। वह गौतम के पास गया और बोला, 'हे आचार्य ! मैं आपके यहां ब्रह्मचर्या श्रम व्यतीत करना चाहता हूं।' ऋषि ने उससे नाम एवं गोत्र पूछा। उसने अपनी मां द्वारा बताया गया उत्तर दोहरा दिया। प्रसन्न होकर ऋषि बोले 'एक ब्रह्म ही इतना सत्य बोल सकता है। तुम सत्य से विचलित नहीं हुए। समिधा लाओ, मैं तुम्हारा उपनयन संस्कार करूंगा।' उसका संस्कार करने पर ऋषि ने उसे 400 दुबली गाएं चराने को दीं। सत्यकाम ने एक हजार गाएं किए बिना न लौटाने की शपथ ली तथा घास-जलवाली जगह ले गया। बहुत समय बाद एक हजार गायों के होने तक वापस न आया।

पंचम खंड

एक बार एक वृषभ बोला, 'सत्यकाम अब हमारी संख्या एक हजार हो गई है, हमें आचार्य के पास ले चलो। मैं तुम्हें ब्रह्म का एक पाद बताता हूं।' सत्यकाम की स्वीकृति पर वह आगे बोला, 'ब्रह्म का प्रथम पाद पूर्व, पश्चिम आदि चार दिशा रूपी कलाओंवाला तथा प्रकाशमान है। ब्रह्म के

इस कलामय पद को जाननेवाला उपासक लोकविख्यात तथा मृत्यु पाने पर प्रकाशमय लोकों
प्राप्त होता है।'

षष्ठम खंड

वृषभ आगे बोला, 'ब्रह्म का द्वितीय चरण अग्नि द्वारा प्राप्त होगा।' गायों को ले जाता हु
सत्यकाम संध्या के समय रुककर अग्नि के पास पूर्वाभिमुख बैठ गया। अग्नि ने सत्यकाम को
का पाद बताना प्रारंभ किया, 'पृथ्वी, अंतरिक्ष, स्वर्ग तथा समुद्र की कलाओंवाला ब्रह्म का अ
नामक पाद है। इस पाद को जानकर उपासना करनेवाला पृथ्वी पर आनंदमय तथा अक्षयलो
प्राप्त करता है।'

सप्तम खंड

अग्नि बोला, 'अन्य पाद हंस तुम्हें बताएगा।' दूसरी संध्या गायों के साथ ठहरकर अग्नि
समक्ष समिधा सहित पश्चिमाभिमुख बैठा। तभी एक हंस 'सौम्य, मैं ब्रह्मपाद बताता हूं। अ
सूर्य, चंद्र तथा विद्युत की कलाओंवाला ब्रह्म का ज्योतिमान पाद है इसे सही-सही जानकर उपा
करनेवाला इस लोक में प्रकाशमान होता है तथा मृत्यु के बाद, प्रकाशमय लोकों को जाता है।

अष्टम खंड

'मद्गु नामक जलपक्षी तुम्हें अन्य पाठ का उपदेश देगा' यह कहकर हंस उड़ गया। दू
संध्या, पहले के अनुसार वह पूर्वाभिमुख बैठ गया। मद्गु ने आकर कहना आरंभ किया, 'प्राण
क्षेत्र, तथा मन रूपी कलावाले ब्रह्म का यह आयतन नामक पाद है। जो इस आयतन पाद
उपासना करता है, इस लोक में आश्रय तथा मृत्योपरांत आयतन लोक को पाता है।

नवम खंड

आचार्य के पास पहुंचने पर सत्यकाम से वह बोले, सौम्य ! तुम ब्रह्मवेत्ता जैसे दीखते हो
किसने उपदेश दिया ?' सत्यकाम बोला, 'मुझे मनुष्येतर प्राणियों ने उपदेश दिया है। आप भ
क्योंकि मैंने सुना है कि आचार्य प्रदत्त ज्ञान ही श्रेष्ठ होता है।' इस पर आचार्य ने उसे सो
कलावाली विद्या का पूर्ण उपदेश दिया।

दशम खंड

कमल पुत्र उपकोशल सत्यकाम के आश्रम का ब्रह्मचारी था। बारह वर्षों तक अग्नि-से
करने पर भी उसका समावर्तन नहीं हुआ जबकि अन्य ब्रह्मचारियों का समावर्तन हो चुका
आचार्य पत्नी जया बोली 'सत्यकाम ने यथाविधि अग्नि-सेवा की है। अग्नि या अपनी निंदा
अथवा इसे उपदेश दो 'सत्यकाम कहीं प्रवास में चला गया। दुःखी होकर उपकोशल अनशन
लगा। गुरु पत्नी के भोजन का आग्रह करने पर उपकोशल बोला। मनुष्य को दुःखी करने
अनेक कामनाएं होती हैं, इसीलिए मैं भोजन नहीं करूंगा।' तब तीनों अग्नियों ने परस्पर
'इसने हमारी समुचित सेवा की है। अतः हमें इसे ब्रह्मोपदेश देना चाहिए।' अग्नि उससे बो
'प्राण, क तथा ख ब्रह्म हैं। कोशल ने कहा प्राण की तो मैं जानता हूं, किंतु क और ख क्या है

अग्नियों ने बताया' 'क (सुख) तथा ख (आकाश) दोनों एक ही हैं। इस प्रकार उपकोशल को यह उपदेश मिला।

एकादश खंड

गार्हपत्स अग्नि का उपदेश— 'पृथ्वी, अग्नि, अन्न तथा आदि, यह चार मेरे ही रूप हैं। सूर्य में दृश्यमान पुरुष मैं ही हूं। ऐसा जानकर उपासना करनेवाला, निष्पाप होता है, अग्निलोक, पूर्ण आयु एवं यश प्राप्त करता है। हम उसका परलोक में भी पालन करते हैं।

द्वादश खंड

दक्षिणाग्नि ने कहा—जल, दिशाएं, नक्षत्र एवं चंद्रमा ये मेरे ही शरीर हैं। विद्युत में दृश्यमान पुरुष भी मैं ही हूं। इन रूपों को समझकर उपासना करनेवाला ...(शेष इससे पूर्व के समान)।

त्रयोदश खंड

आह्वनीय अग्नि ने कहा— प्राण, आकाश, स्वर्ग तथा विद्युत मेरे चार शरीर हैं। चंद्र में दीखनेवाला पुरुष मैं ही हूं। (शेष इससे पूर्व के समान)।

चतुर्दश खंड

अग्नियों ने कहा, 'उपकोशल' यह विद्या तेरे लिए आत्मविद्या तथा अग्नि विद्या है। इनकी फलप्राप्ति विद्या आचार्य तुम्हें बता ही चुके हैं।' आने पर आचार्य ने उसे ब्रह्मवेत्ता जैसे देखकर उपदेशक का नाम पूछा। उसने पूर्व वृत्तांत कहा। तब आचार्य ने कहा—यह लोक विद्या है। अब मैं तुम्हें वह ज्ञान देता हूं, जिससे मानव पापों के कीचड़ से कमल के समान मुक्त हो जाता है।

पंचदश खंड

आचार्य कहने लगे—आंखों में दीखनेवाला पुरुष अविनाशी अभय ब्रह्म है। वहां घी अथवा पानी डालने पर पलकों में आ जाता है। यह समस्त शोभन वस्तुएं तथा पुण्य फल प्राप्त करनेवाला है। यह प्रकाश रूप तथा लोकों में आदित्य रूप से प्रकाशित है। इसका उपासक शोभायुक्त होता है। इसके ज्ञाता की चाहे पंत्येपिठ हो अथवा न हो, वह आर्चिदेव को प्राप्त होता है। आर्चिर्देव, दिवस, शुक्ल पक्ष, उत्तरायण, वर्ष, आदित्य, चंद्र एवं विद्युत को (पहले से क्रमशः एक के बाद दूसरे को) प्राप्त होता है। वहां से कोई अमानव पुरुष इसे ब्रह्म के पास पहुंचा देता है। यहां पहुंचने पर पुरुष कभी भी इस लोक में वापस नहीं आता।

षोडश खंड

नित्यकर्म अनुष्ठान—चलती हुई वायु निश्चय यज्ञ ही है। यह चलामान जगत को पवित्र करती है। वाणी-मन इस यज्ञ को करते हैं। उनमें दो मार्गों के संस्कारक क्रमशः ब्रह्म (मन द्वारा) तथा अध्वर्यु (वाणी द्वारा) हैं। प्रातः अनुवाक की अंतिम ऋचापूर्व ही ब्रह्म के बोलने पर एक ही मार्ग संस्कार होता है। दूसरा नष्ट हो जाता है। यथा लंगड़ा या एक पहिया रथ नष्ट हो जाते हैं, वैसे ही यज्ञ तथा यजमान भी नष्ट हो जाते हैं। ऐसे यज्ञ से पाप भी लगता है। यदि इस अनुवाक की

समाप्तिक ब्रह्मा न बोलो, तो ऋत्विज दोनों संस्कारों को प्राप्त करते हैं। दो पहियोंवालों रथ तथा दो पांववाले व्यक्ति के समान यह यज्ञ स्थिर रहता है, और यजमान भी। इस यज्ञ से वह श्रेष्ठ होता है।

सप्तदश खंड

लोकों हेतु प्रजापति ने तप किया। इन लोकों में पृथ्वी से अग्नि, अंतरिक्ष से वायु तथा स्वर्ग से आदित्य रूप रस ग्रहण किया। इन तीन देवताओं के लिए तप करके इनसे क्रमशः ऋक, यजु एवं सामरूपी रस प्राप्त किया। फिर इन वेदों के लिए तप किया और इनसे क्रमशः भूः, भुवः और स्वः रूपी रस निकला। अब यदि ऋचा में छिद्र हो तो भूः, स्वाहा द्वारा गार्हपत्य हवन करें। यज्ञ ऋचा का छिद्र ऋचा के सार एवं वीर्य से सुधरेगा। यजुषों में छिद्र होने पर भुवः स्वः कहकर दक्षिणाग्नि में हवन करना चाहिए यह दोष यजुष के सार और वीर्य से सुधरेगा।

साम में छिद्र होने पर 'स्वः स्वाहा से आह्वनीय होम करें। यह साम के सार एवं शक्ति से ही सुधरेगा।' जैसे सुहागे से स्वर्ण, स्वर्ण से चांदी, चांदी से रांगा, रांगे से सीसा, सीसे से लोहा तथा लोहे या चमड़े से काष्ठ जोड़ा जाता है वैसे ही देवताओं तथा नई विद्या के रस से यज्ञ छिद्र का संशोधन होता है। इसके ज्ञाता ब्रह्मा से युक्त यज्ञ उत्तर दिशा प्राप्त कराता है। कहा गया है—यज्ञ में जहां-जहां छिद्र होता है, ब्रह्मा उसे सुधार देता है। योग्य ब्रह्मा रूप एक ही ऋत्विक समस्त यज्ञकर्ताओं का नेतृत्व करता है। घोड़े द्वारा योद्धा की आज्ञा-पालन के समान ब्रह्मा समस्त ऋत्विजों की त्रुटियों को संभाल लेता है। योग्य ज्ञाता को ही ब्रह्मा बनाएं, अयोग्य को कदा नहीं।

पंचम अध्याय

प्रथम खंड

पंचाग्नि विद्या—प्राण ही ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है। इसे जाननेवाला निश्चय ज्येष्ठ एवं श्रेष्ठ होता है। जो वशिष्ठ (श्रेष्ठ धनी) को जानता है वह अपने वर्ग का श्रेष्ठ धनी बनता है। वाणी ही वशिष्ठ है। श्रोत्र संपत्ति है। इसका ज्ञाता अपने समुदाय में परम संपत्तिवान होता है। चक्षु ही प्रतिष्ठा है। इसका ज्ञाता लोक-परलोक में प्रतिष्ठित होता है। मन ही आयतन (आश्रय) है। इसे जाननेवाला अपने समुदाय का आश्रय बनता है।

एक बार सभी इंद्रियां अपने को श्रेष्ठ बताती हुई विवाद करने लगीं। तब उन्होंने ब्रह्मा से पूछा, 'हममें कौन श्रेष्ठ है ?' ब्रह्मा ने कहा, 'जिसके निकल जाने से शरीर सर्वाधिक शव जैसा दीखे वही श्रेष्ठ है।' वाणी एक वर्ष तक शरीर से बाहर रही। उसने शरीर से कहा मेरे बिना तुम कैसे जिए? अन्य इंद्रियों ने कहा, 'जैसे गूंगा अन्य सभी काम करता है। वैसे ही हम जीवित रहे। फिर एक वर्ष प्रवास के बाद चक्षुओं ने वही प्रश्न किया। इंद्रियां बोलीं, 'जैसे अंधा न देखने पर भी अन्य सभी क्रियाएं करता है। वैसे ही हम जीवित रहीं।' तब नेत्र पुनः शरीगत हो गए। उसी प्रकार कान भी एक वर्ष तक बाहर हो गए। आकर उन्होंने भी वही प्रश्न किया और अन्य इंद्रियों ने कहा, 'जैसे बहरा न सुनने पर भी बोलता आदि है, वैसे हम जीवित रहीं।' कान वापस आ गए। अब मन भी एक साल बाहर रहा और वापस आकर इसी प्रकार पूछने लगा। इंद्रियों ने कहा, 'जैसे शिशु-बिना

ान के सारी क्रियाएं करता है वैसे ही हम जीवित रहीं।' मन पुनः शरीर में आ गया। अंत में प्राणों ने बाहर आना चाहा। तभी जैसे शक्तिशाली अश्व पैर से बंधे खूंटों को उखाड़ डालता है, वैसे ही प्राण वाणी आदि को उखाड़ने लगा। तब सभी इंद्रियां उसके पास जाकर कहने लगीं, 'आप अपने स्थान पर रहिए, बाहर न जाइए, आप ही श्रेष्ठ हैं। तब वाणी ने प्राण से कहा, 'मैं नहीं, वस्तुतः तुम्हीं वरिष्ठ हो।' चक्षु बोला, 'मैं भले ही प्रतिष्ठा कहलाता हूं, वस्तुतः तुम्हीं प्रतिष्ठा हो।' कान ने कहा, 'मैं नहीं, तुम्हीं संपत हो।' मन बोला, 'आश्रय तुम्हीं हो, मैं नाममात्र का हूं।' इसीलिए इंद्रियां वाणी, चक्षु आदि न कहलाकर एक साथ प्राण कही जाती हैं। वस्तुतः प्राण ही सर्वस्व है।

द्वितीय खंड

प्राणों का अन्न—मुख्य प्राण बोला, 'मेरा अन्न क्या है?' इंद्रियां बोलीं, 'कुत्ते पक्षियों आदि समस्त प्राणियों का अन्न सब तुम्हारा ही है।' अतः प्राण अन्न भी कहलाता है। इसे जाननेवाला कभी भी अखाद्य नहीं बनता। प्राण बोला मेरा वस्त्र क्या है?' वाणी आदि बोले जल, क्योंकि भोजन से पूर्व और पश्चात आचमन रूप वस्त्र पहनाते हैं।' इसे जाननेवाला वस्त्रहीन नहीं होता। इस उपासना को व्याघ्रपाद ने पुत्र गोश्रुति से कहा, 'यदि सूखे ठूंठ से भी इस उपासना को कहेगा तो वह हरा हो जाएगा।' अभिलाषी अमावस्या को दीक्षा लेकर पूर्णिमा की रात्रि में सभी औषधियों दही एवं मधु का मंथ बनाकर अवशेष घृत मंथ में डालते हुए 'ज्येष्ठाय श्रेष्ठय स्वाहा' मंत्र से आहुति दे। फिर 'वरिष्ठाय स्वाह' मंत्र से आहुति दो, घी को मंथ में टपकाएं। 'प्रतिष्ठायै स्वाहा' 'संपदे स्वाहा' तथा 'आयतनाय स्वाहा' से आहुतियां देकर घी मंथ में टपकाएं। फिर अग्नि के पास अंजलि बांधकर यह मंत्र पढ़ें 'तू ही प्राण है, ज्येष्ठ है, श्रेष्ठ है, प्रकाशमान और पालक' है। मुझे ज्येष्ठत्व, प्रकाशता तथा पालनकत्व दो। मैं सब कुछ बनूं, 'फिर मंत्र का प्रत्येक पद कहकर मंथ का ग्रास खाए तत्सवितुवृणीमहे' 'वयं देवस्य भोजनम' 'श्रेष्ठं सर्वथातम्', 'तुरं भागस्य धीमहि' अंति मंत्र में कटोरा चम्मच धोकर के पी जाए। अब अग्नि के पश्चिम में मृगछाला अथवा भूमि पर वाणी संयम से सोए। स्वप्न में स्त्री दर्शन हो तो, कार्य सफल समझे। ऐसा भी कथन है कि चाहे हुए कार्य में स्वप्न में स्त्री दर्शन सफलता सूचक है।

तृतीय खंड

अग्नि विद्या—प्रजाहरण ने उससे कहा, 'तुमने अपने पिता से शिक्षा पाई है।' श्वेतकेतु के हां कहने पर प्रजाहरण पुनः कहने लगे, 'बताओ मानव इस लोक से जाने पर कहां जाते हैं?' श्वेतकेतु ने अनभिज्ञता प्रकट की। इसी प्रकार प्रवाहण ने मनुष्य किस प्रकार लौटकर आते हैं? देवयान-पितृयान के पृथक् होने का स्थान कहां पर है? पितृलोक कैसे नहीं मरता? पांचवीं आहुति में जल पुरुष नामवाला कैसे बनता है? यह चार प्रश्न किए। श्वेतकेतु ने सभी में अनभिज्ञता व्यक्त की। प्रवाहण ने कहा, 'जो इन प्रश्नों का उत्तर न दे सके वह कैसा शिक्षित है!' श्वेतकेतु पिता के समीप आया और बोला, 'आप कहते हैं कि आपने मुझे उपदेश दिया, यह झूठ है। मैं प्रवाहण के पांच में से एक प्रश्न का भी उत्तर न दे सका' पिता ने स्पष्ट किया कि 'जैसे इनके उत्तर तुम्हारी तरह ही मैं भी नहीं जानता तब बताता कैसे? एक प्रश्न को भी जानता, तो अवश्य बताता'।

तब पिता आरुणि स्वयं प्रवाहण के दरबार में गए, राजा ने उसकी सम्मान सहित पूजा की दूसरे दिन पुनः दरबार में राजा ने कहा 'भगवन आप भौतिक संपत्ति का वर मांगिए।' आरुणि ने अस्वीकार कर दिया और पूर्वोक्त प्रश्नों के उत्तर जानने चाहे। दुःखी होते हुए भी राजा ने ब्राह्मण को निराश करना उचित न समझा तथा दीर्घ अवधि तक वहीं रुकने को कहा। समय आने पर राजा ने बताना प्रारंभ किया—तुमने जिस विद्या के विषय में पूछा है यह ब्राह्मणों के पास है ही नहीं सर्वत्र क्षत्रिय ही इसके उपदेशक रहे हैं।' राजा ने उपदेश प्रारंभ किया—

चतुर्थ खंड

हे गौतम, स्वर्ग ही अग्नि, आदित्य समिधा, किरणें धुआं, दिवस ज्वाला, चंद्र अंगार तथा नक्षत्र चिनगारियां हैं। देवों द्वारा इस यज्ञ में श्रद्धा का हवन होने पर राजा सोम पैदा होता है।

पंचम खंड

प्रसिद्ध पर्जन्य अग्नि है। वायु, बादल, विद्युत, वज्र और गर्जन क्रमशः समिधा, धुआं, ज्वाला, अंगार और चिनगारियां हैं। देवों द्वारा सोम हवन करने पर वृष्टि होती है।

षष्ठम खंड

पृथ्वी अग्नि, संवत्सर समिधा, आकाश धुआं, रात्रि ज्वाला, दिशाएं, अंगार तथा दिशाएं चिनगारियां हैं। देवों द्वारा इसमें वृष्टिका हवन होने पर अन्न पैदा होता है।

सप्तम खंड

पुरुष अग्नि, वाणी समिधा, प्राण धुआं, जिह्वा ज्वाला, नेत्र अंगार तथा क्षेत्र चिनगारियां देवों द्वारा इसमें अन्न हवन किए जाने पर वीर्य पैदा होता है।

अष्टम खंड

स्त्री अग्नि है, उपस्थ समिधा, उपमंत्रणा धूम, योनि आग, प्रवेश अंगार और अ चिनगारियां हैं। अग्नि (गर्भ) में देवों द्वारा शुक्र हवन से गर्भ उत्पन्न होता है।

नवम खंड

पांचवीं आहुति में जल पुरुष होता है। दस अथवा नौ मास तक मातृ उदर में जरायु में लि सोता है। जन्मने पर प्राप्त आयु तक जीकर पुनः मृत्यु पर परलोक जाते हुए अग्नि के पास पहुंच जाता है, जो इसका उत्पत्ति अथवा कारण-स्थल है।

दशम खंड

पंचाग्नि के इस प्रकार की तथा वनवासी होकर तप की उपासना करनेवाले अग्नि को होते हैं। (अग्नि से) यहां से अमानव पुरुष ब्रह्मलोक ले जाता है, वर्णन चतुर्थ अध्याय पंचदश के इसी वर्णन जैसा है। यह देवयान मार्ग है। गृहस्थ जीवन में इष्ट, पूर्व एवं दत्त अनुष्ठान करने धूम को प्राप्त होते हैं। फिर उत्तरोत्तर क्रमशः रात्रि, कृष्णपक्ष, दक्षिणायन, तृलोक, आकाश और च को (एक से दूसरे को) प्राप्त होते हैं। अंतरिक्ष में दिखनेवाला सोमरूप राजा देवों का भक्ष्य अन्न

कर्मफल् की समाप्ति तक यहां रहकर इसी मार्ग से लौटते हैं। बादल से मेघ तथा मेघ से वर्षा होती है। तब वे प्राणी वर्षा के साथ लौटकर चावल आदि अन्न बनते हैं। यह अत्यंत कष्टकर योनि है। अन्न खाकर बने वीर्य से संतान उत्पन्न होती है। वैसा ही जीव बनता है शुभकर्मा ब्राह्मण आदि तीन वर्णों में तथा अशुभ कर्मवाले कुत्ता, सुअर आदि निम्न योनियों में जन्म लेते हैं। इन दोनों में किसी में न जानेवाला 'जन्म लेते रहो, मरते रहो—' ऐसी गति को प्राप्त होता है। अतः परलोक जीवों से नहीं भरता। संसार की गति बड़ी घृणास्पद है। चोर, शराबी, गुरुपत्नीगामी, ब्रह्मघातक और पांचवां इनके साथ रहनेवाला भी पतित है। इस पंचाग्नि विद्या का ज्ञाता पापी संगति से मुक्त होकर शुद्ध एवं पवित्र लोक को जाता है।

एकादश खंड

अधोगति से मुक्ति का उपाय—प्राचीनशाल, सत्ययज्ञ, इंद्रद्युम्न, जन और बुडिल चारों गृहस्थ महाश्रोत्रियों ने विचार किया, आत्मा और ब्रह्म क्या हैं ? किसी निष्कर्ष पर न पहुंचने पर ये विद्वान आत्मारूप वैश्वानर के ज्ञाता उद्दालक के पास पहुंचे। उद्दालक ने सोचा कि वह इन महान लोगों को यह विषय ठीक से नहीं बता सकेगा। अतः वह इस विषय के परम ज्ञाता राजा अश्वपति के पास उनके साथ गया। राजा ने प्रत्येक का सत्कार किया। दूसरी प्रातः उनसे कहने लगा—मेरे राज्य में कोई कदर्य, मद्यप (शराबी) अग्निहोत्रहीन, विद्यारहित अथवा व्यभिचारी नहीं है। मैं यज्ञ करता हूं। प्रत्येक ऋत्विज को जितना धन देता हूं, आपको भी दूंगा। यहीं रुक जाइए। अतिथियों ने कहा, 'हमारा यह उद्देश्य नहीं है। हमें आप आत्मारूपी वैश्वानर का उपदेश दीजिए।' इसके लिए राजा ने उन्हें दूसरी प्रातः बुलाया, समय पर वे शिष्य बनकर राजा के पास गए। उन्हें उपनयन किए बिना राजा ने कहना प्रारंभ किया।

द्वादश खंड

'हे प्राचीनशाल, तुम्हारा उपास्य कौन है ?' 'वैश्वानर' प्राचीनशाल ने कहा। राजा बोला, तुम्हारा उपास्य श्रेष्ठ तेजस्वी वैश्वानर आत्मा है। तुममें सुत, प्रासुत, असुत, भक्षण क्रिया, इष्टदर्शन इसी का अंश है। इस प्रकार जो इसे समझता है, उसका कुल ब्रह्मतेजोमय होता है। इस वैश्वानर का केवल मस्तक ही है। यदि तुम यहां न आए होते तो तुम्हारा मस्तक गिर जाता।

त्रयोदश खंड

राजा ने सत्ययज्ञ से कहा—तुम किस आत्मा के उपासक हो ? सत्ययज्ञ ने कहा, 'आदित्य की' राजा ने कहा—यह विश्वरूप वैश्वानर ही है। तुम्हारे शरीर में अथवा तुम्हारी समस्त संपत्तियां इसी के कारण हैं। ऐसा कुल ब्रह्मतेजयुक्त होता है, किंतु इसके केवल चक्षु ही हैं। यदि तुम मेरे यहां न आते, तो अंधे हो जाते।

चतुर्दश खंड

इंद्रद्युम्न से भी पूर्वोक्त प्रश्न किया। इंद्रद्युम्न ने अपना उपास्य वायु को बताया। राजा ने कहा—तुम्हारा उपास्य आत्म वैश्वानर ही है। इससे तुम मिलते रहते हो। तुम्हारी सारी क्रियाएं एवं

संपत्ति इसी के कारण हैं। इसका उपासक ब्रह्मतेजोमय रहता है। यह आत्मा केवल प्राण ही है। यदि तुम यहां न आते, तो तुम्हारी देह से प्राण निकल जाते।

पंचदश खंड

राजा ने जन से भी वही प्रश्न किया, उत्तर मिला—'आकाश'। राजा ने फिर उसे वैश्वानर आत्मा बताया तथा इसका महत्त्व भी पूर्वोक्त बताते हुए कहा यह वैश्वानर केवल उदरवाला ही है। यदि तुम मेरे पास न पहुंचते, तो तुम्हारा उदर फट जाता।

षोडश खंड

बुडिस से भी यही प्रश्न पूछने पर उसने अपना उपास्य जल को बताया। इसे भी राजा ने पूर्वोक्त नाम एवं गुणोंवाला बताया; साथ ही कहा कि इस आत्मा का केवल मूत्राशय ही है। यदि तुम यहां न आते तो तुम्हारा मूत्राशय फट जाता।

सप्तदश खंड

उद्दालक से भी प्रश्न किए जाने पर उत्तर मिला— 'पृथ्वी'। राजा ने इसे भी पगरूप वैश्वानर बताते हुए इसी प्रकार उसकी महत्ता पूर्वोक्त रूप में बताई। यह आत्मा का पग मंत्र है। यदि तुम यहां न आते, तो तुम्हारे पग शिथिल पड़ जाते।

अष्टादश खंड

तुम सब वैश्वानर आत्मा को पृथक् मानकर भोजन करते हो। यदि 'यह मैं ही हूं—' इस सर्वात्म भाव से उपासना हो, तो वह सब लोकों, भूतों तथा आत्माओं में भोजन करता है। इस वैश्वानर का मस्तक, नेत्र, प्राण, उदर, मूत्राशय और दोनों चरण क्रमशः स्वर्ग, सूर्य, वायु, आकाश, जल तथा पृथ्वी हैं। इसी भावना से उपासना करें। इसका वक्ष, लोभ, हृदय, मन एवं मुख क्रमशः वेदी, दर्भ, गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि तथा आह्वनीय अग्नि हैं।

एकोनविंश खंड

पके अन्न की पहले 'प्राणाय स्वाहा' कहकर आहुति दें। यह प्राणों को तृप्त करेगा तब नेत्र, आदित्य, स्वर्ग, द्यौ और स्वर्ग का आश्रय क्रमश: अपने बादवाले को तृप्त करेंगे। इनकी तृप्ति पर वह प्रजा, पशु, भोजन एवं ब्रह्मतेज से तृप्त होगा।

विंश खंड

दूसरी आहुति 'व्यानाय स्वाहा' कहकर देने से व्यान तृप्त होता है। फिर व्यान, श्रोत्र, चंद्र दिशा तथा वह स्वयं इस क्रम में पहलेवाला, बादवाले को तृप्त करेंगे। 'स्वयं' पर चंद्रमा आश्रित है। स्वयं (ब्रह्म) तृप्ति से उपासक नाना संपत्ति, धनधान्य तथा ब्रह्मतेज से युक्त होता है।

एकविंश खंड

तृतीय आहुति 'अपानाय स्वाहा' मंत्र से देने पर अपान तृप्त होता है। अपान से वाणी, वाणी से अग्नि, अग्नि से पृथ्वी तथा पृथ्वी से अग्नि एवं पृथ्वी का आश्रय तृप्त होता है। इसके पश्चात् वह . . . युक्त होता है (पूर्ववत्)।

द्वाविंश खंड

चौथी आहुति 'समानाय स्वाहा' मंत्र से देने पर 'समान' तृप्त होता है। फिर इससे मन, मन से पर्जन्य, पर्जन्य से विद्युत तथा विद्युत से पर्जन्य एवं विद्युत का आश्रय तृप्त होता है। इसकी तृप्ति होने पर भोक्ता नाना भोगों, संपत्तियों तथा ब्रह्मतेज से तृप्त होता है।

त्रयोविंश खंड

पंचम आहुति 'उदानाय स्वाहा' कहकर देने से उदान तृप्त होता है। फिर त्वचा, वायु, आकाश तथा उनका आश्रय पूर्वोक्त क्रम से तृप्त होते हैं। फिर पूर्ववत् भोक्ता तृप्त होता है।

चतुर्विंश खंड

इस वैश्वानर को जाने बिना दी गई आहुति राख में दी गई आहुति के समान है। इसे भली-भांति जानकर किया गया अग्निहोत्र सब प्राणियों एवं आत्माओं में हो जाता है। जैसे तिनका आग में जल जाता है, उसके पाप भी जल जाते हैं। इसका ज्ञाता भोजन की जूठन चांडाल को दे तो यह भी वैश्वानर हवन के समान है। कहा गया है, 'जैसे भूखा बालक मां की अपेक्षा करता है, वैसे ही प्राणी इस प्रकार के अग्निहोत्र उपासना की अपेक्षा करते हैं।'

षष्ठ अध्याय

प्रथम खंड

उद्दालक ने अपने पुत्र से कहा—श्वेतकेतु, ब्रह्मचर्याश्रम में जाओ। हमारे कुल का कोई भी अध्ययनरहित ब्रह्मबंधु सदृश नहीं रहता। बारह वर्ष का श्वेतकेतु अगले बारह वर्ष तक आचार्य से अध्ययन करके अपने को अध्ययनशील समझने का गर्व करता हुआ घर आया। पिता ने उससे कहा—श्वेतकेतु तू विद्या का अभिमानी तथा अविनीति दिखाई पड़ता है। क्या तूने आचार्य से वह उपदेश नहीं पाया, जिससे अश्रुत श्रुत हो जाता है, तर्क किए समान और अविज्ञात ज्ञात हो जाता है। श्वेतकेतु ने कहा, 'भगवन यह कैसा उपदेश है?' उद्दालक ने कहा एक मिट्टी के पिंड से मिट्टी के सभी बर्तनों का ज्ञान हो जाता है, एक स्वर्ण पिंड द्वारा इसके अन्य पदार्थों का, एक नाखून काटने के यंत्र से सभी लौह पदार्थों का ज्ञान हो जाता है। नाम केवल वाणी के विषय हैं। सत्य तो मिट्टी, सोना या लोहा ही है। पुत्र ने कहा, 'मेरे गुरु भी इस विषय को निश्चय ही नहीं जानते होंगे, अन्यथा वे मुझे अवश्य बताते। कृपया मुझे इसका उपदेश दें।

द्वितीय खंड

उद्दालक बोले, 'सौम्य ! पहले केवल अद्वितीय सत था। कुछों के मत में अद्वितीय असत् ही था और उस जगत से सत जन्मा किंतु असत से सतोत्पत्ति कैसे हो सकती है? अतः पुत्र पहले

अद्वितीय सत ही था। इसने अनेक रूपों में उत्पन्न होना चाहा। उसने तेज रचा, तेज ने इसी संक से जल रचा, इसलिए संताप होने पर पसीना आता है। जल के संकल्प से पृथ्वी रूप अन्नराशि हुई। जहां जल बरसता है, वहां बहुत अन्न पैदा होता है।

तृतीय खंड

प्राणियों के तीन ही बीज होते हैं—अंडज, स्वेदज एवं उद्भज। सत रूप देव अपने संकल्प इनमें प्रविष्ट हुआ। उसने इनमें नाम एवं रूप को स्पष्ट करते हुए प्रत्येक को तीन प्रकार का बनाया सौम्य इस त्रिवृत्त को तुम्हें बताता हूं।

चतुर्थ खंड

त्रिवृत्त अग्नि का लाल रूप तेज, श्वेत जल तथा काला पृथ्वी है। इसी से अग्नि में इसका आया, अग्नि केवल शब्द है, तीन रूप ही सत्य है। चंद्रमा एवं विद्युत में भी तीनों वर्ण सूर्य के सम तेज आदि हैं। इन्हीं से चंद्रमा में चंद्रत्व तथा विद्युत में विद्युत्व आया, अन्यथा ये शब्द वाणी विकार ही हैं। तीन रूप ही सत्य हैं। प्राचीन काल के इस तत्त्व के ज्ञाताओं का कथन है कि हमा कुल में कोई भी किसी विषय का अश्रुत अथवा बिना तर्क न था। कर्म द्रष्टांतों से वे सब रहस्य ज लेते थे। वे लाल, श्वेत तथा श्याम रंग की प्रतीति से कि क्रमशः तेज, जल एवं पृथ्वी रूप को ज लेते थे। अविज्ञात प्रतीति को वे तीनों का समुदाय समझ लेते थे। तीनों देवों के पुरुष रूप प्रा पर त्रिवृत्त होने को मैं तुम्हें बताता हूं।

पंचम खंड

खाया हुआ अन्न तीन प्रकार से बंटता है। स्थूल अंश विष्टा, मध्यम अंश मांस एवं सूक्ष्म अं मन बनता है। पिए हुए जल के स्थूल अंश से मूत्र, मध्यम से रक्त तथा सूक्ष्म से प्राण बनते हैं। ते (घी, तेल) के स्थूल अंश से हड्डी, मध्यम से मज्जा तथा सूक्ष्म से वाणी बनती है। अन्न, जल और का कारण क्रमशः मन प्राण और वाणी हैं। इसे पुनः समझाने की प्रार्थना की। उद्दालक ने पुनः बता कि—

षष्ठम खंड

सौम्य मंथन से दही का सूक्ष्म अंश घी (नवनीत) ऊपर आ जाता है। इसी प्रकार खाए अन्न सूक्ष्म भाग ऊपर जाकर मन बनता है। जल का सूक्ष्म भाग प्राण तथा घृत, तैलादि का वाणी है श्वेतकेतु ने उनसे पुनः समझाने की प्रार्थना की। उद्दालक पुनः समझाने लगे।

सप्तम खंड

सौम्य! पुरुष मन सोलह कला युक्त है। तू पंद्रह दिन भोजन न कर इच्छानुसार जल पी, प्र जल से ही है। श्वेतकेतु ने ऐसा ही किया। सोलहवें दिन पिता के पास आकर बोला, पिता ने ऋ यजुष, साम एवं श्रुति गाने को कहा। श्वेतकेतु ने कहा, मैं इन्हें मन से भूल चुका हूं। पिता ने क 'जैसे अग्नि की छोटी-सी चिनगारी किसी भी वस्तु को नहीं जला सकती वैसे ही तेरी सो कलाओं में एक ही कला शेष रह गई है। तू वेदों को भूल गया है। पहले भोजन कर फिर मेरे प

आ। भोजनोपरांत पिता के पास आने पर उससे जो भी पूछा उसे याद आ गया। पिता ने कहा, 'जैसे चिनगारी को तिनके पर सुलगाए जाने पर वह पूर्ववत् जलाने योग्य हो जाती है, तेरी एक ही कला अन्न द्वारा प्रज्वलित हो गई। तुझे वेद याद आ गए। स्पष्ट है—मन अन्न का कार्य है, प्राण जल का तथा वाणी तेज का। पिता का आशय पुत्र समझने लगा।

अष्टम खंड

उद्दालक पुनः बोले, 'मैं स्वप्नांत मर्म बताता हूं—पुरुष सो जाने पर जीव भाव त्यागकर ब्रह्म भाव हो जाता है, और अपने स्वरूप को पा जाता है। डोरी से बंधा बाज कहीं आश्रय न पाकर वापस बंधन पर आ जाता है, उसी प्रकार अनेक जगह घूमकर मन अपने बंधन प्राण के पास आ जाता है। भूख लगने पर खाए अन्न को जल ही ले जाता है, यथा गाय, घोड़ा, पुरुष आदि को ले जानेवाला क्रमशः गोनाय, अश्वनाय पुरुषनाय आदि कहते हैं, वैसे ही भोजन (अशन) ले जानेवाले को अशनाय कहते हैं। शरीर रूप कार्य जल से उत्पन्न है। ऐसा समझो। इसी प्रकार अन्न रूप कार्य का मूल तेज को तथा तेज का सत को। प्राणी सत रूप मूलक है। यही आश्रय और प्रतिष्ठा है। पिए हुए जल को तेज ही ले जाता है। इसीलिए तेज जल ले जानेवाला कहलाता है। अतः शरीर को जल रूप जानो। जलोत्पन्न शरीर का मूल तेज में, तेज का सत में होता है। अन्न जल एवं तेज... तीन देव शरीर में विविध हो जाते हैं ! मृत व्यक्ति की वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण तेज में तथा तेज दैवत में लय हो जाता है। अणु रूप ही सब है। तू भी है और आत्मा भी। श्वेतकेतु ने पुनः स्पष्ट जानना चाहा। पिता कहने लगे—

नवम खंड

जैसे मुधमक्खियां अनेक वृक्षों का रस एकत्र कर देती हैं और इकट्ठा रस यह नहीं कहता कि मैं अमुक-अमुक वृक्ष का हूं, उसी प्रकार सत् को प्राप्त प्राणी यह नहीं जानते कि वे सत् को प्राप्त हो गए हैं, इस विश्व में व्याघ्र आदि पुनः-पुनः प्राप्त होते हैं। वह अणु रूपवाला आत्मा जगत सत्य है। श्वेतकेतु तुम भी वही हो। श्वेतकेतु ने फिर समझाने के लिए कहा। पिता समझाने लगे—

दशम खंड

नदियां पूर्व-पश्चिम की ओर अपनी-अपनी दिशा में बहती हैं। समुद्र से आकर पुनः उसमें मिल जाती हैं और फिर यह नहीं जानतीं कि मैं अमुक नदी हूं। उसी प्रकार सत् से उत्पन्न प्रजा भी यह नहीं जानती है कि वह सत् से ही आई है। इस विश्व में व्याघ्र आदि ...(शेष इससे पूर्व के समान)

एकादश खंड

यदि इस बड़े वृक्ष की जड़ में या ऊपरी भाग में चोट मारें, तो यह सूखता नहीं; जीवित रहकर रस टपकता रहता है। जीवरूप आत्मा से जल पीता हुआ आनंद से स्थिर रहता है। यदि इसकी शाखाओं का या समस्त वृक्ष का रस या जीव निकल जाता है तो वे सूख जाते हैं। जीवरहित होकर

मर जाते हैं; जीव नहीं मरता। सूक्ष्म रूपवाला यह जगत सत्य है वैसे ही तू भी सत्य है। पुत्र ने समझाने को कहा, पिता पुनः समझाने लगे—

द्वादश खंड

पिता ने श्वेतकेतु को वटवृक्ष का फल लाने को कहा। ले आने पर उसे तुड़वाया फिर 'इसमें क्या है ?' पुत्र को अनेक बीज दिखे। एक बीज तोड़ने को कहा पुनः पूछा कि 'इसमें है ?' पुत्र ने कहा 'इसमें कुछ नहीं दिखता।' पिता फिर बोले, 'इस बीज के जिस सूक्ष्म भाग को नहीं देख सकता, उसी में विशाल वटवृक्ष छिपा है। अतः सूक्ष्म जगत सत्य है; वैसे ही तू भी है। (शेष पूर्ववत्)।

त्रयोदश खंड

उद्दालक ने कहा, 'इस लवण खंड को जल में डालकर कल मेरे पास लाना।' ऐसा ही दूसरी प्रातः श्वेतकेतु पिता के पास गया। पिता ने नमक के टुकड़े को ढूंढ़ने को कहा किंतु मिला। पिता बोले, 'तुम इस नमक को देख नहीं सकते। इसका आचमन करो।' ऐसा करने उसने इसका स्वाद नमकीन बताया। तीन बार ऊपरी, मध्य तथा निम्न भाग से आचमन करने भी स्वाद नमकीन ही था। जल को फिंकवाकर पिता ने कहा यद्यपि जल में नमक के सर्वव्यापक सत् को तुम नहीं देख पाते, किंतु वह है। यह सूक्ष्म जगत इसी प्रकार के सूक्ष्मभाव आत्मामय है और सत्य है (शेष पूर्ववत्)।

चतुर्दश खंड

आंखों पर पट्टी बंधा कोई व्यक्ति यदि गांधार से लाकर किसी वन में छोड़ दें, तो वह वि दिशाओं को मुंह करके चिल्लाता रहेगा कि उसे कहां से लाया गया है। उसके बंधन खोलकर उसे कोई बता दे कि गांधार इस दिशा में है, चले जाओ। तब वह बुद्धिमान और उपदेश व्यक्ति गांधार पहुंच जाता है। इसी प्रकार आचार्य से उपदेश पाया सत् जाननेवाला व्यक्ति तक पहुंचने में केवल देह बंधन से मुक्त पाया होने की देरी समझता है। देहांत पर वह अवश्य पाता है। यह जगत सूक्ष्म भाव सत्य है। (शेष पूर्ववत्)।

पंचदश खंड

ज्वरादि पीड़ित मृतप्राय व्यक्ति को घेरकर बंधुजन पूछते हैं, 'तुम मुझे पहचान रहे हो, तो तक वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण तेज में और तेज परदेवता में लीन नहीं होते, तब तक पहचानता है। इनके लीन हो जाने पर वह नहीं पहचानता। यह सूक्ष्म भाववाला जगत सत्य है (शेष पूर्ववत्)।

षोडश खंड

'बांधकर लाया हुआ अपराधी झूठ बोलता है—तब उसे तप्त कुल्हाड़ा थमाया जाता है, तो झूठा होने के कारण जल जाता है और मारा जाता है। यदि सच्चा होने के कारण नहीं जलता, तो दिया जाता है। यहां इसके न जलने के समान ही सत् को पा जाने वाला पुनर्जन्म से मुक्त हो

है। अतः इस ऐसे रूपवाले सत्य जगत को जानो, वही सत्य है, वही आत्मा है और श्वेतकेतु तू वही है।' इस पर श्वेतकेतु को ज्ञान हो गया कि 'मैं वही सब हूं।'

सप्तम अध्याय

प्रथम खंड

एक समय नारद ने सनत्कुमार से कहा, 'भगवन मुझे उपदेश दीजिए।' सनत्कुमार द्वारा उनसे यह पूछे जाने पर कि 'तुम क्या-क्या जानते हो'? नारद ने कहा, 'ऋक आदि वेदों, इतिहास, पुराण आदि विद्याओं के विषय में जानता हूं, किंतु आत्मा के विषय में नहीं जानता हूं। आप जैसे महाज्ञानियों के बारे में सुना है कि आत्मज्ञ परिताप से मुक्ति पा जाता है, मैं इसके अभाव में दुःखी हूं। मुझे इससे मुक्त कीजिए।' सनत्कुमार बोले, तुम वेदादि जो कुछ जानते हो, यह सब नाम है। तुम नाम की ही उपासना करो। ब्रह्म रूप में नाम की उपासना करनेवाले की इच्छानुसार, जहां तक नाम वहां तक गति होती है।' नारद ने पुनः नाम से अधिक विषय के बारे में बतलाने का आग्रह किया।

द्वितीय खंड

वाणी नाम से अधिक है, क्योंकि यही वेद, इतिहास आदि लौकिक एवं पारलौकिक विषयों को प्रकट करती है। तुम वाणी की उपासना करो। वाणी न होती, तो उचितानुचित, धर्माधर्म आदि का ज्ञान न होता। वाणी रूपी ब्रह्म ऐसा ही है। वाणी के उपासक की जहां तक वाणी के विषय व्याप्त हैं, इच्छानुसार गति होती है। नारद ने पूछा कि क्या वाणी से भी कुछ महान् है? तब सनत्कुमार बोले कि हां, वाणी से भी गुरुतर होता है। नारद ने इसे ही बताने का आग्रह किया। सनत्कुमार ने बताया—

तृतीय खंड

मन वाणी से महान् है। जैसे मुट्ठी में दो-दो आंवले, बेर एवं बहेड़े रख लेने से उनका अनुभव होता है, वैसे ही मन भी वाणी और नाम का अनुभव करता है। मन के द्वारा ही 'मंत्राध्ययन करूं' 'कर्म करूं' इत्यादि विचार करने पर ही अन्य इंद्रियां इसमें प्रवृत्त होती है। अतः मन ही ब्रह्म है, तुम भी इसकी उपासना करो। मन रूप ब्रह्म की उपासना करने पर जहां तक मन है, वहां तक गति होती है। पूर्ववत् क्या मन से भी अधिक कुछ है? नारद द्वारा पूछे जाने पर सनत्कुमार ने इसका उत्तर हां में दिया। नारद ने इसे भी बतलाने का अनुरोध किया।

चतुर्थ खंड

संकल्प मन से बढ़कर है। संकल्प के बाद ही मन वाणी को, वाणी नाम को प्रेरित करती है। नाम में मंत्र एक रूप होते हैं तथा मंत्रों में कर्मों का समावेश होता है। स्वर्ग, पृथ्वी, वायु एवं जल तेज संकल्पवाले हैं। इनके संकल्प से प्राण, वृष्टि के संकल्प से अन्न एवं अन्न, प्राण, मंत्र, कर्म, फल एवं जगत के संकल्प से क्रमशः प्राण, मंत्र, कर्म, फल एवं जगत समर्थ होता है। अतः संकल्प श्रेष्ठ है।

तुम संकल्प की ही प्रार्थना करो। संकल्प की ब्रह्म के रूप में उपासना करने पर ध्रुवलोक एवं व्यथा रहित लोक की प्राप्ति होती है। इसके पश्चात् संकल्प से बढ़कर वस्तु के विषय में बताया।

पंचम खंड

चित्त संकल्प से बढ़कर है। चैतन्य ही संकल्प एवं वाणी नाम की प्रेरणा करता है। नाम मंत्रों एवं मंत्र कर्मों में एकाकार हो जाते हैं। यह सभी चित्त से उत्पन्न इसी में स्थित तथा इसी में लय होनेवाले हैं। अचित्त विद्वान अनादरणीय तथा चित्त अल्पज्ञ भी आदरणीय होता है। चित्त संकल्प का उत्पत्ति स्थान है। तुम भी उसकी उपासना करो। इसकी ब्रह्म रूप में उपासना करनेवाला ध्रुव एवं भोग युक्त तथा व्यथारहित लोकों को प्राप्त करता है।' नारद द्वारा चित्त से बढ़कर विषय के बारे में आग्रह पर सनत्कुमार ने बताया—

षष्ठम् खंड

ध्यान चित्त से श्रेष्ठ है। पृथ्वी, अंतरिक्ष, स्वर्ग, जल और पर्वत ध्यान करते हुए से जान पड़ते हैं। इसी प्रकार देवताओं के समान मनुष्य भी। ध्यान की शक्ति से ही लोक में महत्त्व प्राप्त होता है। कलह, द्वेषकर्ता, दोषी, क्षुद्र हैं। ध्यानबल ही प्रभुता देता है। ध्यान की उपासना करो। ध्यान रूपी ब्रह्म का उपासक, ध्यान के अनुसार इच्छारूप गति को प्राप्त करता है। आगे ध्यान से बढ़कर विषय को बताया।

सप्तम खंड

विज्ञान ध्यान से उच्च है। वेदादि समस्त विद्याएं योनियां, उचितानुचित भोज्य पदार्थ, इहलोक तथा परलोक सब विज्ञान से ही प्राप्त होते हैं। विज्ञान की उपासना करो। विज्ञान की ब्रह्म के रूप में उपासना करनेवाला प्रसिद्ध ज्ञान-विज्ञानमय लोकों को प्राप्त करता है और इच्छानुसार गति पाता है।

अष्टम खंड

बल विज्ञान से बढ़कर है। एक बली सौ विज्ञानियों को कंपा देता है। बली होने पर उठनेवाला, सेवा करनेवाला, समीप जानेवाला, दर्शन करनेवाला, श्रवण करनेबाला, मनन करनेवाला तथा अनुभव करनेवाला (क्रमशः एक अवस्था से दूसरी अवस्था) होता है। बल से पृथ्वी, अंतरिक्ष, स्वर्ग, पर्वत, देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, वनस्पतियां स्थिर रहते हैं। बल की उपासना करो। इसकी ब्रह्म के रूप में उपासना करनेवाला बल के विषय और लोक के अनुसार गतिवान होता है। इसके बाद नारद के आग्रह पर सनत्कुमार बल से बढ़कर विषय का उपदेश देने लगे—

नवम खंड

अन्न बल से बड़ा है। दस दिन तक भोजन न करने पर व्यक्ति जीवित रहने पर भी देखने, सुनने, मनन करने आदि में असमर्थ हो जाता है। फिर भोजन करने पर देखने, सुनने आदि अनुभव करने लगता है। अन्न की उपासना करो। इसकी ब्रह्म रूप में उपासना करनेवाला अन्न-जलवाले लोक को पाकर, उसके विषयों में इच्छा के अनुसार प्रवृत्त होता है।

दशम खंड

जल अन्न से उच्चतर है। अतः अच्छी अथवा बुरी वृष्टि पर प्राण इसके अनुकूल ही अन्न होने के अनुमान से हर्षित अथवा दुःखी होता है। यही मूर्त पृथ्वी, अंतरिक्ष, द्यौ, पर्वत, देव मनुष्य (पूर्व खंड समान) आदि है। अतः यही उपास्य है। इसकी ब्रह्म रूप में उपासना करने से समस्त मूर्त विषय तथा तृप्तियां प्राप्त होती हैं और जल के विषयानुसार गति मिलती है।

एकादश खंड

तेज जल से श्रेष्ठ (बढ़कर) है। यह वायु को आकाश के चारों ओर तपाता है, तब लोग कहते हैं, जगत तप रहा है अथवा बारिश होगी। यही जल रचता है, बिजली के साथ ऊंचा-तिरछा होकर गरजता है। पहले यह स्वयं प्रकट होता है, बाद में ये कार्य होते हैं। अतः यही उपास्य है। ब्रह्म भाव से इसकी उपासना करने पर व्यक्ति तेजोमय, प्रकाशमान एवं तमहीन लोकों को प्राप्त करता है तथा तेज के विषय पर्यंत इच्छानुसार गति प्राप्त करता है।

द्वादश खंड

आकाश तेज से प्रशस्यतर है। सूर्य, चंद्र, विद्युत, नक्षत्र, अग्नि ये समस्त आकाश में ही स्थित हैं। इसी द्वारा बोलते, सुनते आदि हैं। इसी में खेलते हैं, जन्मते और बढ़ते हैं। अतः यही उपासना करने योग्य है। इसकी ब्रह्म भाव से उपासना करने पर प्रसिद्ध, विस्तृत मार्गवाले लोकों को तथा इसके विषय के अनुसार गति को प्राप्त करता है।

त्रयोदश खंड

स्मर (स्मरण) आकाश से प्रशस्यतर है। स्मर न करने पर सुनना, मनन करना अथवा जानना नहीं हो सकता। ऐसा करने पर ही यह सब हो सकता है। इसी से पुरुष पुत्रों को तथा पशुओं को जानते हैं। अतः इसकी उपासना करो। ब्रह्म भाव से इसकी उपासना करने पर इसके विषय के अनुसार ही उपासक की गति हो जाती है।

चतुर्दश खंड

आशा स्मरण से बड़ी है। आशावान स्मर से मंत्राध्ययन करता है, पुत्रों, पशुओं और लोक-परलोक की इच्छा करता है। अतः आशा की उपासना करो। आशा को ब्रह्म समझकर उपासना करनेवाले के सब विषय समृद्धि को प्राप्त होते हैं, प्रार्थना सफल होती है तथा आशा के विषयों पर्यंत इच्छानुसार गति होती है।

पंचदश खंड

प्राण आशा से बढ़कर है। जैसे रथ के चक्र में अरे होते हैं, वैसे ही समस्त जगत प्राणों में स्थित हैं। प्राण, प्राण द्वारा गमन करता है। प्राण ही प्राणों को प्राणों के लिए दान देता है। प्राण ही माता, पिता, भाई, बहिन, आचार्य और ब्राह्मण के प्रति उचित या अनुचित कहता हैं, तो श्रोता उसे धिक्कारते हुए उसे माता, पिता या भाई आदि का हत्यारा कहते हैं। और यदि शरीर से प्राण निकल

जाये, तो चाहे उन्हें काट दो या जला दो कोई भी उसे इनका हत्यारा नहीं कहता। अतः प्राण ही आदि होते हैं। प्राणों को इस प्रकार अनुभव करनेवाला अतिवादी (अच्छे अर्थ में) कहता है। कहे जाने पर उसे स्वयं को अतिवादी (संपूर्ण तत्त्वों का ज्ञाता) कहना चाहिए।

षोडश खंड

जो सत्य के लिए अतिवादी है, वह अवश्य अतिवादी है। नारद ने कहा 'भगवन! मैं भी का अतिवादी बनूंगा।' सनत्कुमार बोले 'सत्य ही विशेष रूप में जानने योग्य है।' नारद बोले इसे विशेष रूप में ही जानूंगा।'

सप्तदश खंड

सनत्कुमार बोले, सत्य को विशेष रूप में जानने पर ही व्यक्ति सत्यवादी बनता है। जानने से सत्य नहीं कह सकता। सत्यवादी विज्ञान को विशेष रूप से जानते हैं।' नारद ने को जानना चाहा।

अष्टादश खंड

'मनन करने से ही विशेषज्ञता आती है। मनन न करने पर विशेष रूप से जान सकता है विशेष मनन द्वारा ही जाना जा सकता है। अतः मनन ही जानने योग्य है।' नारद ने मनन जानना चाहा।

उनविंश खंड

सनत्कुमार बोले, 'श्रद्धा से ही मनन होता है, अश्रद्धा से नहीं। श्रद्धा से ही विशेष सकता है, अतः श्रद्धा ही उपास्य है।' नारद बोले, 'भगवन मैं श्रद्धा को ही जानना चाहता हूं।

विंश खंड

'निष्ठावान को ही श्रद्धा आती है, अनिष्ठा से श्रद्धा नहीं होती। अतः निष्ठा विशेषरूपेण योग्य है।' नारद की इच्छा निष्ठा को ही जानने की हुई

एकाविंश खंड

कर्म से ही निष्ठा उत्पन्न होती है, अकर्म से नहीं, कर्म न करनेवाला निष्ठावान नहीं होता। कृति (कर्म) ही विशेष रूप में जानने योग्य है। नारद ने कृति को ही विशेष रूप से जानना चा

द्वाविंश खंड

सनत्कुमार बोले, 'सुख प्राप्ति से ही कृति संभव है। असुख पाकर कृति नहीं की जा स अतः सुख विशेषता के साथ जानने योग्य है। नारदजी ने सुख को जानना चाहा—

त्रयोविंश खंड

'भूमा (अत्यधिकता, निरतिशयता) ही सुख है, अल्पता में सुख नहीं है। अतः भूमा ही योग्य है।' सनत्कुमार के इस कथन पर नारदजी ने भूमा को जानना चाहा।

चतुर्विंश खंड

सनत्कुमार बोले, 'जहां अन्य किसी को देखता, सुनता और जानता, वही भूमा है, जहां अन्य को देखता, सुनता अथवा जानता है, यही अल्प है। अल्प और भूमा क्रमशः विनाशयुक्त और अविनाशी हैं।' नारद बोले, 'भूमा कहां पर स्थित है ?' सनत्कुमार बोले, 'भूमा अपनी ही महिमा में स्थित है, वस्तुतः यह आश्रयरहित है। लोक में गाय, घोड़ा, हाथी, सोना आदि विभूति कहे जाते हैं। इस प्रकार अन्य अन्य में स्थित है, मेरा ऐसा मत नहीं है।

पंचविंश खंड

भूमा ही नीचे-ऊपर, पश्चिम-पूर्व, उत्तर-दक्षिण में है। उसी की सत्ता से अज्ञानवश लोग कहते हैं कि मैं ऊपर हूं, नीचे हूं, पूर्व में हूं, पश्चिम में हूं इत्यादि। आत्मा की दृष्टि से भूमा ही ऊपर, नीचे तथा समस्त दिशाओं में व्याप्त है। जो भूमा को इस रूप में जानता है, वह आत्मा में रमण करनेवाला, क्रीड़ा करनेवाला, आत्म मिथुन एवं आत्म आनंद होता है। वह अपने राज्य का स्वामी तथा लोकों में इच्छानुसार गतिवाला होता है। विपरीत माननेवाले, दूसरे के राज्य में रहनेवाले, विनाशशील होते हैं और उनकी गति इच्छानुसार नहीं होती है।

षड्विंश खंड

जो इस प्रकार देखता, सुनता और मनन करता है, उसके लिए आत्मा से ही प्राण, आशा, स्मरण, आकाश, अन्न, बल, विज्ञान, ध्यान, चित्त, संकल्प, मन, वाणी, नाम, मंत्र आदि सब कुछ आत्मा में ही हो जाता है। इस विषय में कहा गया है कि ज्ञानी मृत्यु, रोग, दुःख आदि को प्राप्त नहीं होता, वह सबको आत्म रूप में देखता है और सब कुछ प्राप्त कर लेता है। एक ही होते हुए भी वह तीन, पांच, सात, नौ, ग्यारह, एक सौ दस या इकतीस हजार भी हो जाता है। यहां तीन, पांच, आदि संख्याएं क्रमशः तेज, शूल, पृथ्वी (तीन), रूप, रस, गंधस्पर्श शब्द (पांच विषय) आदि को सूचित करते हैं। आहार शुद्धि से, सत्त्व की शुद्धि होती है, इससे निश्चल स्मृति प्राप्त होती है। इसकी प्राप्ति से समस्त ग्रंथियों का नाश हो जाता है। नारद इसी अवस्था में प्राप्त हो गए थे, ऐसे नारद को भगवान सनत्कुमार ने, जिन्हें स्कंद भी कहते हैं, आत्मज्ञान का दर्शन कराया।

अष्टम अध्याय

प्रथम खंड

सगुण रूप में परमात्मा का बोध—इस ब्रह्मपुर (शरीर में) के पुंडरीक में सूक्ष्म अंतर आकाश है। इसमें जो कुछ भी स्थित है, उसका साक्षात्कार करना चाहिए। इस पर यदि शिष्य गुरु से पूछे यह कौन-सी चीज है ? तो आचार्य उत्तर दे— इस दिखाई पड़नेवाले भौतिक आकाश के समान ही, हृदय के भीतर भी स्वर्ग, पृथ्वी एवं आकाश है। इसमें अग्नि, वायु, सूर्य आदि सभी हैं। यदि शिष्य पुनः पूछे कि यदि इस ब्रह्मपुर शरीर में सब कुछ स्थित है, तो शरीर की वृद्धावस्था अथवा समाप्ति पर शेष क्या रहता है ? तो गुरु कहे—शरीर के वृद्ध अथवा नष्ट हो जाने पर भी ब्रह्म वृद्ध अथवा नष्ट नहीं होता। यह सत्य, सबका आश्रय पाप, बुढ़ापा, मृत्यु मनोदुःख तथा भूख-प्यास से रहित,

सत्यकाम एवं सत्य संकल्प है। इस लोक में जैसे प्रजा अनुशासन का व्यवहार करती है, देश-क्षे की इच्छा करती है, जिस प्रकार लोक में कर्म प्राप्त भोग की समाप्ति होती है, वैसे ही परलोक के पुण्य अर्जन किया जाता है और यह भी समाप्त होता है। बिना आत्म ज्ञान प्राप्त किए स्वर्ग जाने समस्त इच्छित लोक नहीं मिलते, किंतु आत्मदर्शन से मृत्यु को प्राप्त व्यक्ति सत्यकामी समस्त लोकों और भोगों को प्राप्त करते हैं।

द्वितीय खंड

वह यदि पितृलोक की इच्छा करता है, तो इच्छा से ही उसके पितृगण उपस्थित हो जाते हैं। इसी प्रकार मातृलोक, भ्रातृलोक, भगिनीलोक या मित्रलोक की कामना करते ही उसके भ्रातृ भगिनीगण (बहिनें) या मित्रगण संमुख उपस्थित हो जाते हैं। गंधलोक की इच्छा से गंध पुष्प से संपन्न होता है। अन्न-जल, गीत-वाद्य, स्त्रीलोक अथवा किसी के भी संकल्प से ही वह प्राप्त हो जाता है और सुख देता है।

तृतीय खंड

भोग सत्य होते हुए भी मिथ्या के आवरण से ढके हैं। अतः मनुष्य अपने मृत संबंधी को नहीं देख सकता, इस लोक में जीवित (अन्य स्थानों के) संबंधियों को तथा इच्छित पदार्थों को नहीं कर सकता। हृदयाकाश स्थित ब्रह्म की उपासना से ये सब प्राप्त हो जाते हैं। जैसे पृथ्वी चलने पर भी नीचे दबे सोने का पता नहीं लगता, ऐसे ही स्वप्नावस्था में ब्रह्मलोक को नहीं देख क्योंकि ये सब मिथ्या से ढके हुए हैं, आत्मा हृदय में स्थित है, इसको जाननेवाला ब्रह्म को भी में देखता है। संप्रसाद को प्राप्त व्यक्ति मृत्यु पर श्रेष्ठ अवस्था को प्राप्त करता है, अपने स्वरू भली प्रकार स्थित होता है। यही आत्मा अविनाशी, अभय ब्रह्म है, इसी का नाम सत्य है। (सतोऽयम् = यह सत् है) से अविनाशी, तो, विनश्वर तथा 'यम' दोनों का संतुलित करनेवा इसका ज्ञाता सदा हृदयास्थित ब्रह्म को प्राप्त करता है।

चतुर्थ खंड

इस प्रकार यह आत्मा पृथ्वी आदि लोकों के विनाश से बचाव के धारण का सेतु है। इसे दिवस-रात्रि, जरा-मृत्यु-शोक, पुण्य-पाप आदि अतिक्रमण नहीं करते क्योंकि यह निष्पाप ब्रह्म है। इसे प्राप्त करके व्यक्ति अंधा होते हुए भी दृष्टिवान, शोक होने पर भी निःशोक तथा रोगी पर भी नीरोग होता है। इसे प्राप्त करने पर रात भी दिन बन जाता है, क्योंकि यह सदा प्रकाश है। इसे ब्रह्मचर्य एवं त्याग द्वारा जानकर ब्रह्मलोक की प्राप्ति तथा इच्छानुसार गति प्राप्त होती

पंचम खंड

ब्रह्मचर्य ही यज्ञ है। ब्रह्मचर्य आत्मज्ञाता ब्रह्मलोक प्राप्त करता है। ब्रह्मचर्य ही इष्ट है, इसी से इच्छानुसार आत्मा की प्राप्ति होती है। सत् द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति होती है, अतः इसे सत्या भी कहते हैं। ब्रह्मचर्य द्वारा आत्मज्ञान एवं मननशक्ति प्राप्त होने से यह (ब्रह्मचर्य) मौन कहलाता है। इसी अनाशकायन की प्राप्ति होती है, अतः यह अनाशक कहलाता है। इसी से

तृतीय स्वर्ग में 'अर' एवं 'ण्य' नाम दो समुद्र हैं, अतः यह अरण्यायन कहलाता है। तीसरा समुद्र अन्न रस से युक्त है, वहां एक अमृतस्रावी पीपल है, अपराजितापुरी तथा ईशकृत स्वर्गमंडल है। 'अर' एवं 'ण्य' नामक समुद्र ब्रह्मचर्य द्वारा ही प्राप्य है। ब्रह्मचारी ही समस्त लोकों में यथाकाम गतिवाले होते हैं।

षष्ठम खंड

अब हृदय की नाड़ियां, पिंगल, सफेद, नीले, पीले और लाल रंग की हैं। सूर्य की किरणें भी इसी प्रकार के वर्णोंवाली हैं, लोक एवं मनुष्यों तक पहुंचती हैं और आदित्य मंडल से नाड़ियों में प्रवेश करती हैं तथा लौटकर आदित्य में प्रवेश करती हैं। स्वप्न का अनुभव न करनेवाला सोया हुआ व्यक्ति नाड़ियों में ही प्रविष्ट रहता है। उस समय तेज में प्रविष्ट होने से वह निष्पाप होता है। बलहीन मरणासन्न व्यक्ति से उसके परिजन पूछते हैं कि क्या वह उसे पहचानता है? तब यदि उसमें तेज होगा, तो वह पहचानेगा यदि नहीं होगा तो नहीं पहचानेगा। मरने पर वह सूर्य किरणों से ऊपर चला जाता है। उसका जीव मनोगति के अनुसार तुरंत आदित्य में पहुंच जाता है। यह उपासकों को उच्चलोक प्राप्त करानेवाला तथा उपासना न करनेवालों को रोकनेवाला है। कहा जाता है कि हृदय की एक सौ नाड़ियां होती हैं, उनमें से एक मूर्धा को जाती है। उपासक जीव इसी से निकलकर अमरत्व प्राप्त करता है, शेष अन्य नाड़ियों से बाहर आते हैं, इन्हें, उच्चलोक नहीं मिलते।

सप्तम खंड

प्रजापति ने कहा था—आत्मा पाप, वृद्धावस्था, मृत्यु, कष्ट, भूख, प्यास आदि से रहित है। यही सत्ययुक्त तथा जानने योग्य है। इसका ज्ञाता एवं अनुभवी समस्त लोकों एवं भोगों को प्राप्त करता है। इस कथन को सुर एवं असुर सुनते आए थे। उन्होंने इसे जानना चाहा। अतः देवताओं की ओर से इंद्र तथा असुरों की ओर से विरोचन एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या रखते हुए प्रजापति के पास गए। वहां दोनों 32 वर्ष तक ब्रह्मचर्यपूर्वक रहे, तब प्रजापति ने उनका उद्देश्य पूछा। उन्होंने अपना प्रयोजन बताया। प्रजापति ने बताया कि आंख में दीखनेवाला पुरुष अमृतमय, अभय ब्रह्म है। वे प्रतिबिंब को आत्मा समझकर पूछने लगे जल, दर्पण में दीखनेवाला आत्मा कौन है?' प्रजापति ने कहा—वही इन सब में है।

अष्टम खंड

प्रजापति ने कहा, 'जल से भरे पात्र में फिर आत्मा के विषय में अपना अनुभव मुझे बताना।' दोनों ने ऐसा ही किया, फिर बताया, 'शरीर का रोम-रोम तथा नख आदि समस्त प्रतिबिंब दीख रहा है।' फिर प्रजापति की आज्ञा से दोनों ने वस्त्र, आभूषण आदि पहनकर जलपात्र में देखने पर अपने को इसी प्रकार का बताया। प्रजापति ने कहा, 'यही आत्मा अविनाशी अभय ब्रह्म है।' यह सुनकर दोनों संतुष्ट होकर चले गए। उनको जाते देख प्रजापति ने मन में सोचा—ये दोनों ही शरीर को आत्मा मानकर जा रहे हैं। देव हो या असुर—ऐसे अनुभववाले का पराभव ही होगा। विरोचन असुरों के पास जाकर बोला, 'आत्मा अर्थात् शरीर पूज्य तथा सेव्य है।' इसीलिए दान, श्रद्धा, भजन

आदि से हीन मनुष्य को सज्जन खेद से असुर कहते हैं इसी भावना से लोग मृत शरीर को वस्त्र से सुसज्जित करके समझते हैं कि वह इसी से स्वर्ग प्राप्त करेगा।

नवम खंड

इंद्र को मार्ग में संदेह हो गया कि जैसा शरीर होगा सुसज्जित, अंधा, लूला, मृत वैसा प्रतिबिंब भी दिखाई पड़ेगा। इसे ही जानने पर तो कोई लाभ नहीं मालूम होता। वह पुनः समि लेकर प्रजापति के पास गया। प्रजापति ने पूछा, 'तुम तो विरोचन के साथ संतुष्ट होकर चले गए फिर कैसे आए हो ?' इंद्र ने अपनी शंका सामने रखी और कहा कि प्रतिबिंब रूपी आत्मा के से कोई लाभ नहीं। प्रजापति बोले, 'तुम्हारा विचार ठीक है। अब तुम बत्तीस वर्ष तक यहां रहो तुम्हें पुनः आत्मज्ञान दूंगा।' इंद्र ने ऐसा ही किया तब प्रजापति बताने लगे—

दशम खंड

'स्वप्न में महिमा को प्राप्त, विचरणशील आत्मा अनश्वर और अभय ब्रह्म है।' यह सुन इंद्र चला गया। मार्ग में ही उसे शंका हुई कि शरीर के अंधा, श्राम या मृत होने पर आदि स्वप्न शरीर में ये विकृतियां नहीं आतीं। स्वप्नों में भी ऐसा प्रतीत होता है कि कोई इसे मार अथवा रहा है, अप्रिय प्रसंग से दुःखी होना आदि अनुभव होते हैं। अतः स्वप्न की आत्मा का कोई प्राप्त नहीं हुआ। वह पुनः समिधा लेकर प्रजापति के पास गया। पुनः आने का प्रयोजन पूछे पर उसने अपनी शंका व्यक्त की। प्रजापति ने उसे फिर आत्मा का मर्म समझाने के लिए 32 तक रोकने पर इस विषय को बताना प्रारंभ किया—

एकादश खंड

'सुप्तावस्था में जब शांत तथा स्वप्न आदि का अनुभव नहीं करने पर वह आत्मा होता है अमृत अभय ब्रह्म है।' संतुष्ट होकर चले जाने पर मार्ग में ही इंद्र ने पुनः सोचा 'कि इस अवस्था तो आत्मा स्वयं को भी नहीं जानता और अन्य पदार्थों को भी। ऐसा लगता है, जैसे यह नष्ट हो हो। यह तो मेरा ज्ञान व्यर्थ ही रहा। वह पुनः समिधा लेकर लौट पड़ा। प्रजापति द्वारा लौटने कारण पूछे जाने पर उसने अपनी शंका बताई। प्रजापति ने कहा कि वह उसे आत्मा की अभि बताएंगे अतः वह पांच वर्ष तक वहीं रहे। इस प्रकार व 105 वर्ष ब्रह्मचर्य पूर्वक वहां रहा प्रजापति ने उन्हें पुनः बताया—

द्वादश खंड

शरीर मरणशील है। मृत्यु से घिरा हुआ है। अनश्वर अदेह आत्मा इसमें रहता है। सशरीर होने पर यह सुख-दुःख, प्रिय-अप्रिय आदि से मुक्त है, किंतु शरीर से मुक्त होने पर इसका स्पर्श नहीं कर सकते। जैसे वायु, बिजली, मेघ और इसका गर्जन अशरीर है और आ में सूर्य की श्रेष्ठ ज्योति से स्वरूपवान हो जाते हैं, वैसे ही शरीर भी उड़कर परमज्योति ब्रह्म की प्र पर अपना स्वरूप प्राप्त करता है। यह उत्तम पुरुष होता है, तब वह हंसी, स्त्री यान आदि से करता है और शरीर को भूल जाता है। रथ में जुते घोड़े के समान यह शरीर से बंधा होता

आकाश में प्रविष्ट होने पर चक्षु चाक्षुष पुरुष है। इसका ज्ञान नेत्रों से होता है। गंध का ज्ञान नसिका से तथा उच्चारण वाणी से। इसी प्रकार अन्य ज्ञान के लिए इंद्रियां हैं। मनन करना आत्मा का कार्य है, इसके लिए मनरूपी दैवी नेत्र है। यह इसी से भोगों को देखता हुआ रमण करता है। इसी आत्मा की उपासना करने से देवों को लोकों एवं भोगों की प्राप्ति होती है। इसको जानकर अनुभव करने वाला इनको (लोकों एवं भोगों को) पाता है।

त्रयोदश खंड

मैं श्याम (हृदय स्थित ब्रह्म) से शबल (ब्रह्मलोक) को प्राप्त करूं तथा शबल से श्याम को। जैसे अश्व अपने शरीर को फड़फड़ाकर स्वच्छ होता है, वैसे ही मैं पापमुक्त होकर राहु मुख से मुक्त चंद्र के समान शरीर को त्यागकर ब्रह्मलोक को प्राप्त होता हूं।

चतुर्दश खंड

आकाश रूप आत्मा ही नाम एवं रूप (संज्ञा एवं आकार) को स्पष्ट करता है। नाम एवं रूप जिसमें है, वही ब्रह्म है, अविनाशी एवं आत्मा है। मैं (इंद्र) प्रजापति की सभा से घर को ज़ाता हूं। मैं ब्राह्मणों, क्षत्रियों एवं वैश्यों की आत्मा हूं। मैं स्निग्ध रोहितवर्ण, बिना दांतों के ख़ानेवाली स्त्री की योनि को प्राप्त न होऊं (मेरा पुनः गर्भ में जन्म न हो)।

पंचदश खंड

यह ज्ञान ब्रह्म से प्रजापति को, प्रजापति से मनु को, मनु से प्रजा को हुआ। जो आचार्य कुल से वेद पढ़कर विधि से अध्ययन करके गृहस्थ में प्रविष्ट होता है, पवित्र स्थानों में रहकर स्वाध्याय करके शिष्यों और पुत्रों को शिक्षा देता है, इंद्रियों को ब्रह्म में लगाकर सभी प्राणियों को पीड़ा नहीं पहुंचाता तथा जीवनपर्यंत ऐसा करता है, वह देह त्यागने पर ब्रह्मलोक प्राप्त करता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता।

□

10. श्वेताश्वेतरोपनि

प्रथम अध्याय

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

ब्रह्मवादी कहते हैं—इस विश्व का आदि कारण कौन है ? तथा हम किससे उत्पन्न हुए जीते हैं तथा स्थित हैं ? जीवित हैं, किसके आश्रित हैं और किसके कारण सुख-दुःख अनुभव हैं। काल, स्वभाव, भाग्य, सदृच्छा आदि क्या इसके कारण हैं ? ऐसा भी नहीं है, क्योंकि यह कर्मों के अधीन है। यह विचारकर ध्यानयोग से उन्होंने देखा कि सगुण ईश्वर जो आच्छादि वही काल आदि का एकमात्र कारण है। फिर उन्हें एक चक्र दिखाई पड़ा, जो तीन वृत्तों, सोलह पचास अरों, बीस प्रत्यरों, छः अष्टकों से युक्त तीन मार्गवाला था। एक नदी थी, जो पांच धारा भयंकर, पांच स्रोतोंवाली, पांच-पांच जगह से उत्पन्न, पांच उर्मियोंवाली, पांच दुः अधोवेगवाली, वक्र प्रवाहवाली तथा पांच प्रकार के ज्ञान रूपी मनवाली थी।

सबके आश्रय इस ब्रह्मचक्र में आत्मा भ्रमित होता है। अपने को तथा प्रेरक को पृथक् म उसकी कृपा से ही अमृत्व प्राप्त करता है। यह परमब्रह्म प्रसिद्ध महिमा से युक्त है। इसी में लोक स्थित हैं। ब्रह्मवेत्ता इसमें लीन होकर योनिमुक्त हो जाते हैं। नश्वर देह आदि एवं अ (ब्रह्म) के संयोग से निर्मित व्यक्त एवं अव्यक्त विश्व का वही भर्ता है। आत्मा विषय-भोगों जाता है और उसे (ब्रह्म को) जानने पर मुक्त हो जाता है। ज्ञानी-अज्ञानी दोनों ही आत्माएं जन्म हैं। भोग्यों को प्रकृति निर्मित करती है। परमात्मा अनंत, विश्वरूप और अकर्ता है। तीनों प्रकृति एवं ईश्वर) ब्रह्म कहलाते हैं। नश्वर प्रकृति एवं अनश्वर जीव दोनों परमेश्वर के अधी इसके ध्यान से प्राणी प्रकृतिचक्र से मुक्त होकर इसी में मिल जाता है।

इसके ध्यान से दुःख, जन्म-मरणादि बंधनों आदि से मुक्ति मिलती है। अंत में स्वर्ग के प्राप्त होते हैं। अपने में स्थित ब्रह्म को भोक्ता, भोग्य एवं प्रेरक मानकर ध्यान करें। इस त्रिवि के अतिरिक्त कुछ भी जानने योग्य नहीं है। जैसे लकड़ी के अंदर अग्नि नहीं दिखती, किंतु पर वह प्रकट हो जाती है, ऐसे ही आत्मा एवं परमात्मा दोनों का ज्ञान प्रणव (ओम) से होता है। शरीर तथा प्रणव दोनों को ऊपर-नीचे की अरणि के समान घिसने, ध्यान लगाने से अग्नि के परमात्मा का दर्शन होता है। जैसे तिलों में तेल, दही में घी, स्रोतों में पानी तथा अरणि में अग्नि है, ऐसे ही हृदय में परमात्मा अदृश्य होता है। सत्य एवं तप से यह दीखता है। दूध में व्याप्त समान आत्मज्ञानी ब्रह्म को आत्म विद्या का तप आदि से जान लेता है। यज्ञ में दो लकड़ि घिसकर आग जलाते हैं, यही लकड़ियां अरणियां कहलाती हैं।

द्वितीय अध्याय

सविता हमारी बुद्धि को एवं मन को तत्त्व प्राप्ति हेतु अपने रूपों में लगा कर अग्नि तेज को पृथ्वी से हममें स्थित करें। सविता में लगे मन को हम यथाशक्ति स्वर्ग प्राप्ति हेतु प्रेरित करें। हमारे मन को सविता आकाशचारी देवताओं के प्रति प्रेरित करें। विद्वान विप्र अपने चित्त को एवं बुद्धि को जिसमें लगाकर यज्ञादि करते हैं, वह सविता हमारे द्वारा स्तुत हो। समस्त देवता जो दिव्य धामों में रहते हैं विद्वान के यश के समान मेरे श्लोकों को सुनें। मैं उन्हें नमस्कार करता हूं। जहां अग्नि का मंथन, प्राणों का वायु का अवरोध हो जाता है, सोम का प्राकट्य होता है, वहां मन उत्पन्न होता है। सविता की प्रेरणा से पहले ब्रह्म की प्रार्थना करें। उसमें मन लगाने पर पूर्वकर्म उसमें विघ्न नहीं करेंगे। सिर, गले और वक्ष को सीधा करते हुए, मन से हृदय एवं इंद्रियों को रोककर ब्रह्मरूपी नाव से विद्वान भयानक स्रोतों को तरे। विद्वान विविध योगक्रियाओं से प्राणों को रोककर नासिका द्वारा उन्हें बाहर छोड़ दो जैसे कुशल सारथी बिगड़े घोड़े को साधता है, वैसे ही मन को वश में करें। कंकड़ आदि रहित शुद्ध शांत, जल हीन, मनोनुकूल आंखों को रमणीय लगनेवाली गुफा में रहकर मन को ब्रह्म में लगाएं। ब्रह्म प्राप्ति में लगे योगी को कुहरा, धुआं, जुगनू, बिजली आदि अनेक दृश्य दीखते हैं। यह सूचित करते हैं कि योग सफल हो रहा है।

पृथ्वी, जल आदि पांच तत्त्वों के उत्थान तथा योग के गुणों के सिद्ध हो जाने पर योग से तेजस्वी देहवाला योगी रोग, जरा एवं मृत्यु से मुक्त हो जाता है। शरीर का हलका होना, नीरोगता, भोगों के प्रति अरुचि, उज्ज्वल वर्ण, सुंदर स्वर एवं सुगंध की अनुभूति तथा लघु एवं दीर्घ शंका की कमी—यह योग सिद्धि के प्रथम लक्षण हैं। मिट्टी में सनने के बाद धोए हुए रत्न की तरह आत्म तत्त्व की प्राप्ति पर योगी दुःखों से मुक्त हो जाता है। फिर वह इसी तत्त्व से दीपक सदृश प्रकाशमान ब्रह्म के दर्शन करके अत्र, ध्रुव पापमुक्त होकर बंधनमुक्त हो जाता है। प्रति दिशा में व्याप्त ईश्वर सर्वप्रथम उत्पन्न ब्रह्म गर्भवासी विश्व रूप में प्रकट तथा भविष्य में भी प्रकट होनेवाला है। वह सर्वतोमुख एवं सबमें स्थित है। जो ईश्वर अग्नि, जल, औषधि, वनस्पति आदि सभी में स्थित है, उसे नमस्कार है।

तृतीय अध्याय

जो अपनी सत्ता से सभी लोकों एवं विश्वजाल का स्वामी है, अकेला ही सृष्टि का कर्ता एवं उसे चलाता है, उसे जाननेवाले अमरता प्राप्त करते हैं। इस लोक का स्वामी एक ही रुद्र है। वह सभी प्राणियों में रहता हुआ लोकनिर्माण करता है, रक्षा करता है तथा प्रलयकाल में सबको अपने में ही समेट लेता है। चारों ओर जिसके चक्षु, मुख, बाहु और पाद हैं, वह अपने हाथों से आकाश एवं पृथ्वी को रचता है। वह अकेला ही मनुष्य को पैरों तथा पक्षियों को पंखों से युक्त करता है। जो रुद्र समस्त देवों का स्वामी एवं पिता है विश्व का अधिपति एवं महर्षि है, वह हमारी बुद्धि को शुभ कर्मों से जोड़े। उसी ने सर्वप्रथम हिरण्यगर्भ को बनाया। हे रुद्र तुम्हारी जो कल्याणकारक, अघोर, अपाप तपस्विनी मूर्ति है, उस शांत मूर्ति से हमें देखो।

जिस वाण को तुम हाथ में लिए हो, हे पर्वतों पर सोनेवाले रुद्र, उसे विश्व के लि कल्याणकारी बनाओ। विश्व से परे, ब्रह्म से भी श्रेष्ठ, प्राणियों के शरीर के अनुसार उसमें व्याप्त विश्व के रचयिता उस ईश्वर को जानकर अमृत प्राप्त होता है। अंधकार से दूर आदित्यवर्ण उ पुरुष को मैं जानता हूं। इसका ज्ञाता मृत्यु से मुक्त हो जाता है। बंधन मुक्ति के लिए इससे बढ़क कोई मार्ग नहीं है। जिससे बढ़कर कोई अन्य वस्तु नहीं है, जिससे छोटा या बड़ा भी कुछ नहीं है जो अकेला भी वृक्ष के समान आकाश में स्थित है, उसी से यह विश्व पूर्ण है। जो उस हिरण्यगर्भ से श्रेष्ठ, निराकार एवं निर्दोष है, उसे जाननेवाले अमृत्व को तथा न जाननेवाले दुःखों को प्राप्त हो हैं। (6-10)।

ईश्वर सभी तरफ मुख, सिर एवं कंठवाला है। यह सर्वव्यापक सर्वगत, सभी प्राणियों की गु में स्थित और शिव है। यह महान प्रभु सभी प्राणियों का प्रवर्तक, निर्मल, मनुष्य को आत्मप्राप्ति क साधन तथा एक अनश्वर ज्योति है। यह अंगुष्ठमात्र परिमाणवाला मनुष्यों के हृदय में व्याप्त ईश्व पवित्र-निर्मल मन एवं हृदयवाला है। इसके ज्ञाता भी इसी के समान बन जाते हैं। वह पुरुष हजा सिरों, नेत्रों एवं पादोंवाला है। वह भूमि को चारों ओर से व्याप्त करके हृदय में रहता है। यह स भूत, भविष्य एवं अमृत्व का अधीनश्वर तथा अन्न द्वारा वृद्धि प्राप्त भी वही है। वही संसार अपने चारों ओर निकले हाथों-पांवों, आंखों एवं सिरों से व्याप्त करके खड़ा श्रुतिगत ही है (11-16)।

सभी इंद्रियों से परे होते हुए भी उनके विषयों को जाननेवाला, सभी का आश्रय तथा स्वा है। चराचर का स्वामी वह परमेश्वर नौ द्वारोंवाले मानव देह में स्थित है और बाह्य जगत में भी क्रीड़ारत है। हाथ-पांव के बिना भी वह गतिमान है, बिना आंखों के देखता तथा बिना कानों सुनता है। जानने योग्य विषयों को वह जानता है, उसे कोई नहीं जानता। उसे ज्ञानी महान क हैं। यह अणु से भी सूक्ष्म तथा महान से भी महान है वह आत्मा मानवदेह में स्थित है। उ संकल्परहित को उनकी कृपा से जाननेवाला दुःखमुक्त हो जाता है। ज्ञानी इसे इसकी प्रभुता अजर, पुराण, सर्वात्मा, सर्वगत तथा अजन्मा कहते हैं। मैं इसे जानता हूं। (17-21)।

चतुर्थ अध्याय

वह एक परमेश्वर जो वर्णहीन, रहस्यमय तथा नाना शक्ति युक्त है और अनेक वर्णों रूपों को धारण करता है। इसी में प्रलयकाल में समस्त जगत लीन हो जाता है। वही अ आदित्य, वायु, चंद्रमा, शुक्र, ब्रह्म तथा प्रजापति है। हे ईश्वर ! तू ही स्त्री, पुरुष, कुमार, कुमारी ला से चलनेवाला वृद्ध तथा तू ही चारों मुखोंवाला है। तू ही नील पंतग, हरा एवं लोहिताक्ष है। तू मेघ, ऋतु सातों समुद्र और लोकों का उत्पत्ति स्थल है। अपने समान रूपवाली अजन्मा प्रकृति ज्ञानी त्याग कर देता है, किंतु अज्ञानी मोहमय रहता है। यह माया अपने समान लाल, सफेद, क रंगोंवाली सृष्टि का निर्माण करती है। (1-5)

आत्मा-परमात्मा रूपी दो सदा साथ रहनेवाले मित्र पक्षी एक ही वृक्ष पर रहते हैं। उनमें ए (आत्मा) फलों का स्वाद लेता है, दूसरा इनका त्याग कर देता है। जीव मोह में पड़ा, अशक्त, अस

और दुःखी है। जब यह परमात्मा की महिमा को जानता है, तो शोकमुक्त हो जाता है, जिसमें समस्त देव स्थित है, उसी परम व्योम में देवों का निवास है। जो उसे जानता है, उसे वह मिल जाता है। वेदों में वर्णित छंद, यज्ञ, भूत, भविष्य आदि को विश्व का स्वामी पहले ही रच देता है, किंतु मोह में पड़ा जीवात्मा भ्रमित रहता है। प्रकृति को माया तथा महेश्वर को उसका स्वामी समझो उसी के अवयवों से यह जगत व्याप्त है। (6-10) जो अकेला योनियों का अधिष्ठाता है, प्रलय में विश्व जिसमें मिल जाता है और सृष्टि के समय विभिन्न रूपों में प्रकट हो जाता है। उसे तत्त्वतः जानकर मनुष्य शांति प्राप्त करता है। जो रूद्रादि का उद्रव कारण है, अत्यंत ज्ञानी, सभी को रचनेवाला है, वह हिरण्य गर्भ सबका स्वामी हमें सद्बुद्धि दे। जो समस्त देवों का स्वामी, लोकों का आश्रय, दो या चार पांवोंवाले प्राणियों का प्रभु है, उस ईश्वर की हवि से उपासना करें। अतिसूक्ष्म हृदय में स्थित विश्व रचयिता तथा इसे चारों ओर से व्याप्त परमात्मा का ज्ञान चित्त को शांति देता है। भुवनों का रक्षक, विश्वाधिपति, सभी प्राणियों में छिपा हुआ वह ईश्वर जिसमें सभी ऋषि तथा देवता तल्लीन रहते हैं, उसे जाननेवाले के मृत्यु बंधन कट जाते हैं (11-15)।

घी के तत्त्व के समान सूक्ष्म सभी प्राणियों में व्याप्त, विश्व व्यापक एकमात्र शिव को जानकर समस्त बंधनों से प्राणी मुक्त होता है। अकेला महात्मा ईश्वर सदा लोगों के हृदय में है, हृदय से ध्यान लगाकर उसका साक्षात्कार करनेवाला अमृत्व पाता है। अज्ञानांधकार नष्ट होने पर रात्रि दिन सत् एवं असत् का बोध नहीं रहता, केवल अविनाशी शिव ही दीखता है, तब प्राचीन ज्ञान के प्रसारक सविता का वरण करना चाहिए। जिस महिमाशाली के नाम की कोई उपमा नहीं। उसका ऊपर मध्य या तिरछा कुछ भी नहीं है। उस रूप को कोई नेत्र नहीं देख सकते। हृदय में स्थित उस परमेश्वर को मन से जाननेवाला अमर हो जाता है। रुद्र को अजन्मा जानकर जो भयभीत प्राणी उसकी शरण जाता है, रुद्र दक्षिण मुख से उसकी रक्षा करता है। हे रुद्र हम तुम्हें हवि देते हैं, तुम हमारे पुत्र, पौत्र, गौ आदि की आयु के प्रति क्रोध कभी न करो। हमारे वीरों को नष्ट न करो। (16-22)।

पंचम अध्याय

नश्वर जड़ जगत अविद्या तथा अनश्वर आत्मा विद्या है। इन दोनों का स्वामी, जिसमें यह दोनों स्थित हैं, इन दोनों से भिन्न श्रेष्ठ गूढ़ तथा असीम है। जो अकेला ही अनेक प्रकार की सृष्टि का कर्ता तथा जन्म लेते ही परमेश्वर को देखनेवाले कपिल ऋषि को भी जन्म देता है। परमेश्वर प्रत्येक जाल को अनेक बार रचकर नष्ट करता है। फिर वह लोकपालों को बनाकर उनका स्वामी बनता है। जैसे सूर्य अकेला ही अपनी सीधी, तिरछी आदि किरणों से विश्व को प्रकाशित करता है, वैसे ही एक ही परमात्मा सब शक्तियों का स्वामी है। जो विश्व का प्रथम कारण है, यही तप से प्राकृतिक तत्त्वों का विभिन्न रूपों में निर्माण करता है। सब गुणों को प्राणी में युक्त करनेवाला ही संसार में व्याप्त है। (1-5)

उस वेद-उपनिषदों के रहस्य परमात्मा को ब्रह्मयोनि ब्रह्मा जानता है। उसके ज्ञाता देव तथा ऋषि उसमें लीन होकर अमर हो गए। गुणों से आबद्ध प्राणी फलों की कामना तथा उपभोग करता

है। वह त्रिगुणात्मक त्रिमार्गी आत्मा अपने कर्मफलों से अनेक योनियां धारण करता है।
अंगुष्ठमात्र,संकल्प,बुद्धि तथा श्रेष्ठ कर्मों के कारण रूई के अग्रभाग समान आकारवाला बना हुआ
सूर्य समान तेजस्वी जीवात्मा को भी ज्ञानियों ने देखा है। बाल के सिरे के दस हजारवें भाग जैसा
प्राणों का स्वरूप है। यह अतिसूक्ष्म जीवात्मा अनंत गुणयुक्त हो जाता है। न तो यह स्त्री होता,न
पुरुष और नपुंसक,जैसे शरीर में जाता है,वैसा ही बन जाता है। (6-10)

संकल्प,स्पर्श,दृष्टि,मोह,भोजन,जल आदि द्वारा प्राणियों का जन्म एवं उसकी वृद्धि होती है।
कर्मफल के अनुसार ही यही जीवात्मा विभिन्न देहों और लोकों को प्राप्त करता है। यह अपने कर्मों
के,शरीर के तथा अहं के गुणों से स्थूल-सूक्ष्म अनेक रूपों को प्राप्त करता है। वस्तुतः इन रूपों को
ग्रहण कराने का कारण कोई अन्य ही देखा गया है। आदि अंतरहित, संसार व्याप्त विश्वकर्ता
विधिरूप संसार को सभी ओर से व्याप्त किया हुआ है। इस परमेश्वर का ज्ञाता बंधनों से मुक्त हो
जाता है। भावों से ग्राह्य, भावरचयिता संसार की उत्पत्ति एवं विनाश के कारण शिव स्वरूप को
जाननेवाले साधक देहबंधन से मुक्ति पा जाते हैं। (11-14)

षष्ठम् अध्याय

कविजन प्रकृति-पुरुष को तथा अन्य पुरुष-काल को विश्व की उत्पत्ति का कारण मानते हैं।
वस्तुतः यह परमात्मा की ही महिमा है,जिससे यह ब्रह्म-चक्र घूमता है। समस्त जगत जिसमें व्याप्त
है,वह परमात्मा काल का भी काल तथा सर्वज्ञ-सर्वगुणी है। विश्व में सभी पृथ्वी,तेज,जल आदि
उसी का कार्य है। उसी ने गुणों युक्त कर्मों तथा सभी भावों को विनियोजित किया। कर्मों के
अभाव में पूर्वकृत कर्म नष्ट हो जाते हैं और परमात्मा की प्राप्ति होती है,क्योंकि जीवात्मा जड़ तत्व
से भिन्न है। परमेश्वर सर्वप्रथम है। वह तीनों कालों की सीमा से बाहर है। वह प्रकृति एवं जीव
का संयोजक,हृदय में स्थित एवं विश्वरूप स्तुति करने योग्य है। (1-5)

वह विश्व,काल एवं आकार से परे होते हुए भी उसी के कारण यह जगत प्रपंच है। व
धर्मधारक,पापनाशक,ऐश्वर्य स्वामी विश्वाश्रय है। उसे अपने हृदय में समझनेवाला अमर हो
जाता है। उसे ईश्वरों का भी ईश्वर,देवों का देव,स्वामियों का स्वामी,स्तुति योग्य तथा सर्वात्मा
मानते हैं। वह शरीर एवं अंतःकरण रहित है। उसके समान तथा उससे बढ़कर कोई नहीं है। उसकी
पराशक्ति एवं स्वाभाविक ज्ञान तथा बल की क्रियाएं अनेक प्रकार से सुनी जाती हैं। उसका को
स्वामी,कोई चिह्न भी नहीं है। वह कारणों का कारण है तथा उसका कोई भी ईश्वर या पिता न
है। जैसे मकड़ी जाला बनाकर उससे पुनः स्वयं को ही ढंक लेती है,वैसे ही अकेला ईश्वर अप
कार्यों से स्वयं को आवृत्त कर लेता है। वह अपने ब्रह्मधाम में हमें स्थान दे। (6-10)

अकेला ही एक ईश्वर सभी प्राणियों में स्थित,सर्वव्यापक तथा सब में निवास करने वा
है। वही सभी के कर्मों का नियंता,आश्रय,साक्षी,चेतन,पवित्र तथा निर्गुण है। वह असंख्य जी
को वश में रखता है,एक ही जीव को अनेक रूपों में बनाता है,उसे जो धैर्यशाली अपने में देखते
वे शाश्वत सुख को प्राप्त करते हैं। जो नित्यों का नित्य,चेतनों का चेतन, अनेक कार्यों
करनेवाला है, उसे सांख्य या योग द्वार समझकर सभी पाशों से मुक्ति मिल जाती है। उस
परमधाम में सूर्य,चंद्र,तारे या विद्युत कोई भी प्रकाश नहीं कर सकते। ये सभी उसी से प्रकाशम

हैं तथा यह समस्त लोक उसी के प्रकाश से प्रकाशित है। इस लोक में प्रकाश रूपी एक परमेश्वर ही अधिष्ठित है। वही अग्नि एवं सलिल में व्याप्त है। उसकी प्राप्ति के लिए उसे जानने के अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं है। (11-15)

वह विश्व रचयिता सर्वज्ञ, काल का काल, गुणों का गुण, प्रकृति एवं प्रधान तथा आत्मा का स्वामी, सृष्टि एवं मोक्ष का कारण है। वह अविनाशी, अधीश्वरों में स्थित पूर्ण सर्वज्ञ परमेश्वर इस लोक का भी स्वामी है। उसके सिवा इसका कोई दूसरा स्वामी नहीं है। जो सर्वप्रथम ब्रह्मा को प्रकट करके वेदों को देता है। मोक्ष की इच्छा से मैं उसी की शरण में जाता हूं। वह कला, कर्म एवं दोषों से रहित, शांत अमृत सेतु तथा जलती अग्नि के समान तेजस्वी है। जब मानव चमड़े के समान आकाश को लपेटने में समर्थ हो जाएंगे, तब वे परमात्मा को जानकर दुःखों से मुक्त हो जाएंगे। (16-21)

तप के प्रभाव एवं ईश्वर के प्रसाद से श्वेतावेतर ऋषि को ब्रह्म ज्ञान हुआ। उन्होंने यह ऋषि ज्ञान, जो परम पवित्र है, अपने आश्रमवासियों को दिया। इससे पूर्व कल्प में गूढ़ वेदांत में यह कहा गया था। पुत्र या शिष्य के अतिरिक्त किसी अशांत चित्त व्यक्ति को यह ज्ञान नहीं देना चाहिए। परमेश्वर में असीम भक्तिवाले तथा गुरु में भी ऐसी भक्ति वाले महान पुरुष के अंतःकरण में यह ज्ञान प्रकाशित होता है।

□

11. गर्भोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

यह शरीर पंचात्मक, पांचों में वर्तमान, छः आश्रयोंवाला, छः गुणों एवं सात धातुओं से बना विमल, दो योनिवाला, चार प्रकार के आहारवाला है। पृथ्वी, जल आदि पांच तत्त्वों के कारण इसे पंचात्मक कहते हैं। शरीर में पृथ्वी आदि क्या है ? तो कहते हैं—ठोस पृथ्वी, तरल जल, उष्णता अग्नि, संचार करनेवाला वायु तथा छिद्रों को आकाश कहते हैं। इनके कार्य इस प्रकार हैं—पृथ्वी का धारण करना, जल का एकत्रित करना, तेज का धारण करना, वायु का अवयवों को उचित स्थान पर पहुंचाना तथा आकाश का अवकाश प्रदान करना है। इंद्रियों के कार्य भी चखना, देखना, सुनना, स्पर्श करना एवं सूंघना आदि हैं। बुद्धि द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है। मधुर, अम्ल: कटु, कषाय, लवण और तिक्त यह छः रस हैं। सा, रे, ग, म, प, ध, नी यह सात स्वर हैं। इनमें दृष्ट अनिष्ट एवं प्रणिधान कारक मिला देने से दस प्रकार के शब्द बनते हैं। सफेद, लाल, काला, पीला, कपिल, पांडु तथा धूम्र यह सात रंग हैं।

जब किसी मनुष्य के भाग्य विषय का उदय होता है, तो उसे छः रस प्राप्त होते हैं। इनसे शरीर में रस बनता है। फिर रस से रुधिर, मांस, मेदा, स्नायु, अस्थि, मज्जा तथा शुक्र क्रमशः एक से दूसरे बनते हैं। ये सात धातुएं मानव शरीर को बनाती हैं। पुरुष शुक्र एवं स्त्री-रज से गर्भ बनता है। धातुएं हृदयस्थ रहकर अंतराग्नि पैदा करती हैं। अग्नि के स्थान में पित्त, पित्त के स्थान में वायु हो हृदय बनती है।

ऋतु काल में गर्भाधान के बाद एक रात में कलल बनता है, सात रात्रि में बुद्बुद, एक पक्ष में पिंड बनकर माह भर में कठोर होता है। दो मास में सिर, तीन में पांव, चौथे में घुटने, पेट और कमर, पांचवें में पृष्ठ रीढ़, छठे में मुख, नाक, कान, नेत्र आदि, सातवें में जीवन, आठवें माह में पूर्ण शरीर बनता है। शुक्र अधिक होने से पुत्र, रज की अधिकता से कन्या तथा दोनों की समानता में नपुंसक जन्मता है। आकुल मन गर्भाधान होने से संतान विकलांग होती है। वायु संपर्क से शुक्र के दो भागों में बंटने पर जुड़वां पैदा होते हैं। स्वस्थ पंचात्मक शरीर में ज्ञानेंद्रियां और उसके विषय उत्पन्न होते हैं। जब वह अनश्वर प्रणव का चिंतन करता है, तब आठ प्रकृतियां तथा सोलह विकार पैदा होते हैं। फिर मां का खाया-पिया नाड़ियों से शिशु के शरीर में पहुंचकर उसे तृप्त करता है। नवें मास में ज्ञानेंद्रियों आदि से पूर्ण हो जाता है। इस समय वह पूर्व जन्म को याद करता है। उसके शुभाशुभ कर्म उसके सामने आते हैं।

तब वह विचार करता है कि वह हजारों जन्म ले चुका है, अनेक प्रकार के भोजन कर चुका है तथा अनेक योनियों का दूध पी चुका है। अनेक बार जन्मा और मरा है। अनेक जन्मों के कर्मों को

देखकर अकेलेपन से दुःखी होता है। भोगनेवाले शरीर तो नष्ट हो गए पर वह दुःखी हो रहा है। गर्भ से निकलने पर दुष्कर्म निवारक मुक्तिदाता महेश्वर की शरण में जाऊंगा, नारायण का आश्रय लूंगा, सांख्य-योग की साधना करूंगा और ब्रह्म का चिंतन करूंगा, ऐसा सोचता हुआ कष्ट से जन्म लेता है। जन्म लेते ही माया के स्पर्श से वह सब कुछ भूल जाता है।

इसे शरीर क्यों कहते हैं? क्योंकि इसमें भोजन पाचक जठराग्नि, दिखानेवाली दर्शनाग्नि तथा शुभाशुभ को प्रकट करनेवाली ज्ञानाग्नि हैं। इनके स्थान नियत हैं। आह्वानीय, गार्हपत्य तथा दक्षिणाग्नि क्रमशः मुख, उदर तथा हृदय में रहती हैं। देह, आत्मा, मन, लोभ, धैर्य, ज्ञानेंद्रियां, सिर-कपाल-केश-दम-मुख क्रमशः यज्ञ, यजमान, ब्रह्मा, पशु, संतोष-रूपी दीक्षाएं, हवि और अंतर्वेदी हैं। सिर चतुष्कपाल तथा दंतपंक्तियां सोलह कपाल माने जाते हैं

संधियां, मर्म स्थान, स्नायु एवं शिराएं क्रमशः एक सौ अस्सी, एक सौ सात, एक सौ नौ तथा सात सौ हैं। मज्जाएं, हड्डियां तथा रोम क्रमशः पांच सौ, तीन सौ सात तथा चार करोड़ हैं। हृदय आठ पल, जिह्वा बारह पल, पित्त प्रस्थभर है। शुक्र कुड़क एवं भेद भी इतने ही हैं। यह एक परिमाण नियमित नहीं है; क्योंकि आहार परिणाम के अनुसार ही मूत्र पुरीष परिमाण भी है, जो सबमें समान नहीं है। पिप्पलाद ऋषि द्वारा प्रकट इस शास्त्र को मोक्ष शास्त्र कहा गया है।

□

12. मुद्‌गलोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठा मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्य एधि। वेस्य मे आणीस्थ। श्रुतं मे प्रहासी। अनेनाधीतेताहोरात्रांसंघ-धाम्यमृतं वदिव्याज्ञि। सत्यं तन्मामवत् तद्वक्तारभवतु अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

प्रथम खंड

पुरुष सूक्त अर्थ निर्णय की व्याख्या पुरुष संहिता में की गई है—

पुरुष सूक्त में 'सहस्र शीर्षी' शब्द का अर्थ अनंत सिरोंवाला है। 'दशांगुलम्' भी अनंत अर्थ का सूचक है। ऋचा में विष्णु को सर्वकालव्यापी कहा गया है। द्वितीय में भी काल से यही व्याप्ति है। तृतीय में उन्हें मोक्ष देनेवाला कहा है। इन सबमें विष्णु का वैभव वर्णित है तथा चतुर्व्यूह से संबंधित भगवान का स्वरूप वर्णन है। 'त्रिपाद' मंत्र में अनिरुद्ध का वैभव, 'तस्माद्विराड' से नारायण से प्रकृति की तथा पुरुष की उत्पत्ति दिखाई है। 'यत्पुरुषेण' से सृष्टि रूप यज्ञ को बढ़ाकर 'सप्तास्या' में सृष्टियज्ञ की समिधा का वर्णन है, 'तं यज्ञम्' इसी यज्ञ की पुष्टि तथा मुक्ति का, 'तस्माद्' से सात मंत्रों तक विश्व रचना वर्णित है। 'वेदाहम्' इन दो मंत्रों से हरि का वैभव, 'यज्ञेन' से उपसंहार और सृष्टि का मोक्ष कहा गया है। इसे जाननेवाला भी मुक्त हो जाता है।

द्वितीय खंड

मुद्‌गलोपनिषद् में पुरुष सूक्त का वैभव विस्तार से प्रतिपादित है। भगवान वासुदेव ने यह उपदेश शरणागत इंद्र को सूक्ष्म तत्त्व समझाने के लिए यहां दो खंडों में दिया है।

इन दोनों में वर्णित नाम रूप से परे वह पुरुष विश्व के प्राणियों के समझने से बाहर है। अतः यह अगम्य ईश्वर यहां देवता आदि प्राणियों के कल्याण के लिए अनंत कलामय रूप में वर्णित है। इसके दर्शनों से ही मुक्ति मिलती है। अतः त्रिकालात्मक नारायण पुरुष रूप में स्थित है। वे सभी महिमाशालियों में श्रेष्ठ और सभी प्राणियों के मुक्तिदाता हैं।

वह स्वयं को चतुर्विध करके तीन पादों से आकाश में स्थित होते हैं। चौथे अनिरुद्ध नारायण नामक अंश से जगत की सृष्टि हुई।

इस चौथे चरण से जगत रचना में सर्वप्रथम प्रकृति को उत्पन्न किया। प्रकृतिरूपी ब्रह्मा देहयुक्त होकर भी सृष्टिकार्य न जान पाए तब अनिरुद्ध नारायण ने उन्हें इसका उपदेश दिया— हे ब्रह्मा यज्ञकर्ता के रूप में अपनी इंद्रियों का चिंतन करते हुए कमलकोश से उत्पन्न स्वदेह को हवि, मुझे अग्नि, बसंत ऋतु को घृत, ग्रीष्म को समिधा और शरद को रस मानो इससे तुम्हारी देह वज्र से भी कठोर हो जाएगी और समस्त प्राणी तथा चराचर सृष्टि दीखेगी। इसी प्रकार जीव एवं आत्मा के योग से मोक्ष भी कहा गया है। यह सब जाननेवाला पूर्णायु होता है।

तृतीय खंड

एक ही देव अनेकों में प्रविष्ट होकर बहुधा उत्पन्न होता है।

अग्नि रूप में अध्वर्य तथा यजुर्वेदीय उसे यजुषु मानते हुए क्रमशः उपासना एवं यज्ञ करते हैं। सामगायक उसे साम मानते हैं। यह सब विश्व उसी में स्थित है। सर्प, सर्पविद, देवता, अप्सराएं, उपासक एवं पितर उसे क्रमशः विष, प्राण, अमृत, गंधर्व, देवता एवं स्वधा मानकर नाना रूपों में ग्रहण करते हैं। यह उपासना करने पर भावना के अनुरूप ही प्राप्त होता है। अतः ब्रह्मवेत्ता अपने पुरुष रूप में इसे मानते हैं। यह भावना उसे ऐसा ही बना देती है। इस रहस्य का ज्ञाता भी तद्रूप उसी के समान हो जाता है।

चतुर्थ खंड

ब्रह्म तीनों तापों से परे, छः कोष रहित, छः उर्मियों, छः विकारों तथा पांच कोशों से बाहर है। आत्मिक, भौतिक तथा दैविक, ये तीन ताप हैं चर्म, मांस, हड्डी, नाड़ी एवं मज्जा, ये षडकोष हैं, काम, क्रोध, लोभ, मद, मोह तथा मात्सर्य यह छः शत्रु हैं। प्राण, मन, अन्न, आनंद तथा विज्ञानमय, यह छः कोश हैं। प्रियता, कटुता, वृद्धि, परिवर्तन, विकास एवं घटना, ये छः विकार हैं तथा कुल, गोत्र, जाति, वर्ण, आश्रम एवं रूप ये छः भ्रम हैं। इनसे युक्त होकर परम पुरुष जीव बनता है।

इस उपनिषद् का नित्य अध्ययनकर्ता अग्नि, वायु तथा सूर्य से पवित्र हो जाता है। वह नीरोग तथा पुत्र, धन आदि से युक्त होकर पापों से छूटकर इसी जन्म में पुरुष रूप हो जाता है।

अतः यह पुरुष सूक्त अति गोपनीय तथा रहस्यमय अर्थवाला है। अदीक्षित, अजिज्ञासु विद्वान, यज्ञहीन, अवैष्णव, अयोगी, कटुभाषी, बहुभाषी, वर्ष में एक बार भी वेद न पढ़नेवाला एवं असंतोषी, इनको इसका उपदेश न दें।

विद्वान गुरु पवित्र स्थान पर बैठकर प्राणायाम करते हुए पुण्य नक्षत्र में परमेश्वर का ध्यान करते हुए, विनम्रता से आए हुए शिष्य के दाहिने कान में इसका उपदेश दे, अधिक बोलकर उपदेश दूषित हो जाता है। बार-बार कान में ही बोले। इस प्रकार गुरु-शिष्य दोनों ही पुरुष रूपी बनते हैं।

□

13. अक्ष्युपनिष

प्रथम खंड

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

एक बार भगवान संस्कृति ने आदित्य लोक जाकर सूर्य की स्तुति की— 'ॐ' भगवान सू जो नेत्रों के तेज हैं, गगनचर हैं, महान सेनावाले हैं, तमोरूप, रजोरूप, सत्त्वरूप आदि हैं, उन्हें न नमस्कार है। मुझे असत् से सत् की ओर, तम से ज्योति की ओर तथा मृत्यु से अमृत्व की ओर जाओ। सूर्य भगवान पवित्र रूप, शुचि रूप एवं प्रतिरूप हैं। विश्वरूप, राशि मालाओं से शो स्वर्ण सदृश, ज्योतिरूप एवं तापरूप सूर्य का हम स्मरण करते हैं। उस सब प्राणियों में उदीय सहस्रांशु बहुविध विद्यमान, नेत्रज्योति अदिति पुत्र को नमस्कार है। उस विश्व को वहन करने को हमारा सब कुछ समर्पित है।' इस चाक्षुष्यती स्तुति से सूर्य अति प्रसन्न होकर बोले, 'इ नित्य पाठकर्ता ब्राह्मण आंखों का रोगी नहीं होता तथा उसके वंश में कोई अंधा नहीं होता। अ ब्राह्मणों को दीक्षा देने से इस विद्या की सिद्धि होती है। इसे जाननेवाला महानता को प्राप्त होता है

द्वितीय खंड

तब सांस्कृति ने सूर्य से ब्रह्मविद्या की याचना की। सूर्य बोले, 'सांस्कृति ! मैं तुम्हें दु तत्त्वज्ञान देता हूं। इससे तुम जीवन-मुक्त हो जाओगे। सभी प्राणियों को एक अजन्मा, अनश्वर, अनंत, ध्रुव तथा चैतन्य मानकर शांति एवं सुख से रहते हुए आत्मा एवं परमात्मा अलावा किसी वस्तु को न देखना योग है। अतः योगानुरूप कर्म करो। इससे अंत दिन-प्रतिदिन वासनाओं से दूर होता है। गंवारों के कर्मों से इसका कोई संबंध नहीं है। वह कि की गुप्त बातों को सुनकर किसी से नहीं कहता तथा श्रेष्ठ कर्म ही करता है। (1-5)

उत्तेजक वचन न बोलनेवाला, सौम्यकर्मी, पापभीरु निर्व्यसनी, मधुरभाषी, वाणी-कर्म सज्जनों का अनुगामी, सद्ग्रंथों का अध्येता एवं तदनुकूल आचरणवाला, मोक्ष का इच्छुक व्यक्ति भूमिकावान् कहा जाता है। विचार योग-भूमिकावाले के लक्षण इस प्रकार हैं। (6-10)

वह श्रुति, स्मृति, सदाचार, धारणा, ध्यान, कर्म के श्रेष्ठ व्याख्याकारों का आश्रय ग्रहण करते उचित शास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके कर्तव्य-अकर्तव्य को जानकर, पद-पदार्थों के विभाग समझकर, मद, मोह आदि से दूर चित्तवाला (किंतु बाह्य रूप में इनकी तनिक उपस्थिति रहती है) की केंचुल के समान बाह्य दोषों को त्याग देनेवाला साधक शास्त्र, गुरु एवं सज्जनों की सेवा यथार्थ ज्ञान पाता है। (11-13)

तब योग की असंसर्गा नामक तृतीय भूमिका में प्रविष्ट होता है। अपनी निश्चल मति को शास्त्रों के वास्तविक अर्थ में लगाकर तपस्वियों के आश्रमों में रहकर, अध्यात्म चर्चा करता हुआ शिलाओं के आसन पर स्थित होकर आयु के अंतिम भाग को बिताता है। सुखों से दूर रहकर सत्शास्त्रों के अध्ययन और पुण्य कार्यों से यथार्थज्ञान प्राप्त होता है। इस भूमिका की प्राप्ति पर साधक प्रबुद्ध हो जाता है। (14-19)

सामान्य एवं श्रेष्ठ, असंसर्ग के ये दो भेद होते हैं। कर्ता, भोक्ता, बाध्य, बाधंक भावों से मुक्ति सामान्य असंसर्ग है। जो कुछ भी सामने है, सभी पूर्व जन्म के कर्मफल हैं, सुख-दुःख समान है, भोगादि रोगों के समान आपत्ति देनेवाले हैं, नश्वर हैं, मानसिक चिंताएं अज्ञान का लक्षण हैं, सभी पदार्थ कालग्रास बनेंगे, समझने पर भी शास्त्रोपदेश के प्रति अनास्था मन में उनका अभाव बताता है, यह सब सामान्य असंसर्ग है। मेरे कर्म ही कर्ता हैं, मैं नहीं; अथवा परमात्मा ही कर्ता है, इस प्रकार के विचारों से चिंतामुक्त होने पर मौन, आसन तथा शांत भाव की प्राप्ति श्रेष्ठ असंसर्ग है।(20-26)

संतोष, आमोद तथा मधुरता रूपी प्रथम भूमिका के प्रकट होने पर अंतःकरण से अमृत के अंकुर फूटने की अनुभूति होती है। इसके बाद अंतःकरण अन्य भूमिकाओं की जन्मभूमि बनता है। तब साधक द्वितीय एवं तृतीय भूमिका प्राप्त करता है। तीनों में तीसरी भूमिका उत्कृष्ट है। इसके उदय से इच्छारूप वृत्तियां नष्ट हो जाती हैं। तीनों भूमिकाओं का साधक चौथी में प्रवेश करने पर समदर्शी हो जाता है। अद्वैत भावना के दृढ़ होने पर द्वैत भाव स्वतः नष्ट हो जाता है। इस भूमिका को प्राप्त साधक इस लोक को स्वप्न समान मिथ्या मानता है, अतः प्रथम तीन भूमिकाएं जागृत तथा यह चतुर्थ भूमिका स्वप्न कहलाती है। (26-32)

पांचवीं भूमिका में साधक का चित्त बादलहीन शरद कालीन आकाश के समान निर्मल हो जाता है। तब सत्य ही शेष रहता है। सांसारिक विषय उत्पन्न नहीं होते। सभी भेद शांत हो जाते हैं तथा अद्वैत अवस्था रहती है। सुषुप्तिपद नामक पंचम भूमिका साधक को आत्मरूप बना लेती है। बाह्य व्यवहारों के रहने पर भी वह सदा थका और सोया-सा दीखता है। इसकी सिद्धि पर वह छठी भूमिका में आता है। तब सत्-असत् 'मैं हूं, 'नहीं हूं' इत्यादि मननहीन बुद्धि होती है। इस विशुद्ध अद्वैत अवस्था में वह निर्भय होकर हृदयग्रंथि खुलने पर संदेहहीन तथा भावशून्य हो जाता है। यह बिना निर्वाण के (मोक्ष के) भी निर्वाण जैसी जीवनमुक्त अवस्था है। यह निश्चल दीपक जैसी अवस्था है। इसके बाद 'विदेह मुक्त' नामक सातवीं योग भूमिका आती है। (33-40)

विदेह मुक्ति नामक सातवीं अवस्था अवर्णनीय शांत तथा अंतिम योग भूमिका है। इसमें शरीर, लोक तथा शास्त्र के आचार-विचार नष्ट हो जाते हैं। विश्व, प्राज्ञ आदि रूप यह सब ओंकार ही है, इसमें वाच्य-वाचक-भेद नष्ट हो जाता है। इस भाव के रहते यह अवस्था नहीं आती। ओम (अ + उ + म) की प्रथम मात्र 'अ' विश्व, 'उ' तेजस् तथा 'म्' प्राज्ञ है। समाधि पूर्व प्रयत्न से इसे विचारे तथा स्थूल एवं सूक्ष्म को क्रमशः आत्मलीन करे। चिदात्मक को आत्मरूप मानते हुए 'मैं नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त, सत्, असत्, अद्वितीय, परम आनंदमय, वासुदेव तथा ओम् हूं। संपूर्ण सृष्टि आदि, मध्य तथा अंत में दुःखद है। मैं आनंदमय, निर्मल, विशुद्ध, अविद्या अंधकार रहित, आभासहीन, वाणी एवं मन की पहुंच से दूर, प्रज्ञानघन ब्रह्म हूं।' ऐसा मानते हुए स्थित रहे। (41-48)

□

14. अध्यात्मोपनिष

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

शरीरस्थ गुहा में एक अजन्म 'नित्य' रहता है । इसका शरीर पृथ्वी है । पृथ्वी के भीतर र हुए भी पृथ्वी इसे नहीं जानती । इसी प्रकार जल, तेज, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार, चि अव्यक्त, अक्षर और मृत्यु इसके शरीर हैं, यह इन सबके अंत: में रहता है, किंतु यह सब इसे न जानते हैं । वह सब भूतों (प्राणियों) का अंतरात्मा है, वह नष्ट पाप एक दिव्य देह नारायण है । दे तथा नेत्र आदि इंद्रियां सब आत्मक पदार्थ हैं । इन सबमें 'मैं और मेरा' ऐसी भावना केवल भ्रम है विद्वान जन ब्रह्मनिष्ठा से इस भ्रम को दूर करें (1) ।

स्वयं को बुद्धि तथा उसकी वृत्तियों को साक्षी समझकर 'मैं वही हूं' इस वृत्ति से अ अतिरिक्त सब पदार्थों के प्रति अपना भाव (आत्मबुद्धि) त्याग दें । क्रमशः लोक, देह और शास्त्र अनुसरण छोड़कर अंत में आत्मा का अभ्यास भी छोड़ दे । युक्ति, श्रुति एवं स्वानुभूति से सभी आत्मा में जानकर स्थित योगी का मन नष्ट होता है । निद्रा, लोकवार्ता, शब्द आदि से अपने भूलना, इन्हें अवसर न देकर स्वयं आत्मा का चिंतन करो । (2-5)

यह देह मां-बाप के मल से उत्पन्न तथा मल-मांस से भरा हुआ है, अत: इसको चांडाल समान त्यागकर ब्रह्म बनकर कृतार्थ होओ । परमात्मा रूप महाकाश में आत्मारूप घड़े को एक करके, हे मुनि सदा मौन रहो । स्वयं प्रकाशित स्वयंजन्मा परम ब्रह्म बनकर देह, अंडकोश त ब्रह्मांडका भी मलपात्र के समान त्याग कर दो । देह, में आरूढ़ अहंकार को सदा आनंद चिदात्मा में लगाकर शरीर को त्यागकर 'केवल' भाव बनो । दर्पण में दिखनेवाले शहर के स जिसमें यह जगत दिखाई देता है, 'मैं वही ब्रह्म हूं', ऐसा जानकर कृतार्थ बनो । (6-10)

अहंकार रूपी ग्रह से छूटा व्यक्ति अपने रूप को प्राप्त करके पूर्णंद्र के समान निर्मल हो सदा आनंद एवं स्वयंप्रभ बनता है । क्रिया, चिंता एवं वासना का एक के बाद एक क्रम से नाश है । यही मोक्ष एवं जीवन मुक्ति कहलाती है । सर्वत्र सब में ब्रह्म को देखना—इस भावना के होने पर वासना नष्ट हो जाती है । ब्रह्मवादियों का कथन है कि विद्या में तथा ब्रह्मनिष्ठा में प्र कदापि नहीं करना चाहिए, क्योंकि यही मृत्यु है । जैसे थोड़ा शैवाल हटा देने पर भी वह पानी ढंक लेता है, इसी प्रकार ब्रह्मविमुख प्राज्ञ को भी माया पुन: ढंक लेती है । (11-15)

जिसे जीते जी 'केवल' ब्रह्मनिष्ठा प्राप्त हो गई, वह देहांत पर भी ब्रह्मरूप बनेगा, अत निर्दोष ! निर्विकल्प समाधिवाले बनो । निर्विकल्प समाधि में अद्वैत आत्मा के दर्शन होने पर अ ग्रंथि नष्ट हो जाती है । आत्म तत्त्व को दृढ़ करते हुए, 'मैं' 'मेरा' इन भावों को त्यागते हुए घड़े आदि के समान उदासीन रहें । ब्रह्मा से कीड़े तक सारी उपाधियां मिथ्या हैं । अत: एकात्मा नि

होकर सर्वत्र अपनी आत्मा का दर्शन करना चाहिए। ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र, शिव तथा यह समस्त जगत वह 'स्वयं' है, इससे भिन्न कुछ भी नहीं। (16-20)

स्वयं की आत्मा में समस्त वस्तुओं का आभास केवल आरोपित है, अतः इसे दूर करके ही पूर्ण अद्वैत परमब्रह्म बना जा सकता है। एक ही आत्मारूप वस्तु में प्रतीयमान विकल्प भेद मिथ्या है, क्योंकि निराकार, निर्विका (परमात्मा) दर्शन, दर्शद आदि गुणों से शून्य है। वह निर्दोष तथा प्रलय कालीन समुद्र सदृश पूर्ण है। परम तत्त्व के दर्शनों पर भ्रांति, प्रकाश में अंधकार के समान लुप्त हो जाती है। अद्वितीय परम तत्त्व में भेद कैसे हो सकते हैं। वह एक स्वसूप तथा सुखरूप ही है। (21-25)

इस वैकल्य का मूल चित्त है, चित्त के अभाव में विकल्य नहीं रहता। अतः प्रत्यग रूप परमात्मा में चित्त को लगाओ। अखंड आनंदमय आत्मा को अपना ही स्वरूप समझते हुए इस आत्मा के अंदर बाहर आनंद-रस का आस्वाद ले। वैराग्य का फल ज्ञान, ज्ञान का उपरति, उपरति का आत्मानंद के अनुभव की शांति है। उनकी उत्तरोत्तर प्राप्ति न होने पर पूर्व फल व्यर्थ है। विषय निवृत्ति परम तृप्ति है। आत्मा का आ नंद स्वयं में अनुपम है। जगत का कारण माया, उपाधिवाला सर्वज्ञाता आदि मुक्त है। परोक्षता सत्य आदि स्वरूप आत्मा ही सत् है। (26-30)

'मैं' इस शब्द का अनुभव तथा शब्द का आश्रय प्रतीत होनेवाला, जिसका ज्ञान अंतःकरण से अलग है, ऐसा जीव 'तुम' कहा जाता है। माया एवं जीव इन दो उपाधियों के परित्याग पर केवल परम ब्रह्म ही दिखाई पड़ता है। इस प्रकार 'वह तू ही है, इस प्रकार के महावाक्यों से जीव एवं ब्रह्म की एकता को विचार कर अनुसंधान श्रवण है, श्रवण पर विचार करना मनन है। इन दोनों से निकले निष्कर्ष में चित्त को लगाना निदिध्यासन है। फिर ध्याता-ध्येय में अभेद करके चित्त को केवल ध्येय में लगाकर वायु हीन स्थान पर रखे दीपक के समान निश्चल बन जाना ही समाधि है। (31-35)

इस समाधि में वृत्तियां अज्ञात तथा आत्मागोचर होती हैं। समाधि के बाद उठने पर उत्पन्न वृत्तियों का अनुमान किया जाता है। इस अनादि संसार में करोड़ कर्मों का संचय होता है, समाधि से इनका विलय होकर शुद्ध धर्म बढ़ता है। समाधि योग को जाननेवाले इसे धर्म मेघ कहते हैं। इसमें हजारों धाराओं में धर्मामृत बहता है। इससे वासना का जाल समूल नष्ट होता है, पाप-पुण्य भी नहीं रहते। तब प्रथम महावाक्य 'तुम वही हो' (तत्त्वमरसि) का परोक्ष आभास होता है, फिर हाथ में रखे आंवले के समान अपरोक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है (36-40)।

भोग्य पदार्थों के प्रति वासना का न होना वैराग्य का तथा 'अहं' का उदय न होना ज्ञान का लक्ष्य है। लीन हुई वृत्तियों का पुनः उदय न होना उपरति है। इस प्रकार स्थितप्रज्ञ यति सदा आनंदित रहता है। ब्रह्म में लीन मनवाला निर्विकार एवं निष्क्रिय रहता है। शोधित ब्रह्म एवं आत्मा-एकत्ववाली निर्विकल्प वृत्ति प्रज्ञा है। इससे युक्त साधक जीवन मुक्त कहा जाता है! देह, इंद्रियों अथवा अन्य पदार्थों के प्रति निर्ममत्व भी जीवनमुक्तता है। (41-45)

जीव-ब्रह्म में, ब्रह्म-सृष्टि में जिसकी बुद्धि अभेद समझती है, वह तथा सज्जनों द्वारा सम्मानित और दुष्टों द्वारा दुःखी किए जाने पर जो दोनों को समान समझनेवाला जीवन मुक्त है। ब्रह्म तत्त्व को

जानने पर संसार पूर्ववत् नहीं प्रतीत होता। यदि यह पूर्ववत प्रतीत हो, तो वह अभी तक ब्रह्म के नहीं जानता, वह केवल बहिर्मुखी है। प्रारब्ध कर्म तक सुखादिका अनुभव होता है; यही मान्यता क्योंकि क्रिया होने पर ही फल का उदय होता है, इसके बिना कदापि नहीं, मैं ब्रह्म हूं (अहं ब्रह्मा के ज्ञान से अरबों कल्पों के जन्म से अर्जित कर्मों का वैसे ही नाश हो जाता है, जैसे उठने पर स्व का।(46-50)

स्वयं को आकाश के समान असंग और उदासीन समझकर योगी कर्म में बिलकुल लिप्त नहीं होता। जैसे मदिरा के घड़े के ऊपर का आकाश उसकी गंध से युक्त नहीं होता, वैसे ही आत्म उपाधि के गुणों से लिप्त नहीं होता। जैसे लक्ष्य पर छोड़ा गया तीर उसे बिना बेधे नहीं छोड़ता, वै ही ज्ञान-प्राप्ति से पूर्व किया कर्म बाद में फल देता ही है। व्याघ्र के उद्देश्य से छोड़ा गया तीर यह व्याघ्र नहीं गाय है ऐसा जानकार भी उसे नहीं छोड़ता, ऐसे ही कृतकर्म ज्ञान-प्राप्ति के बाद फल देता ही है। मैं अजर-अमर हूं जिसे यह ज्ञान हो जाता है, उसे प्रारब्ध कर्मों की कल्पना कै होगी ? (51-60)

देह के ऊपर आत्मबुद्धि होने पर ही प्रारब्ध कर्म सिद्ध होता है। देह के प्रति आत्मभाव रख इष्ट नहीं है, अतः इसे त्यागकर प्रारब्ध का त्याग करें। देह भ्रांति प्राणी के प्रारब्ध के कारण है। अ यह कल्पित है; सत्य नहीं। असत्य का जन्म कैसे ? अजन्म का नाम कहां से आया ? अतः जो नहीं उसे प्रारब्ध कैसे ? देह अज्ञान का कर्म है। यदि ज्ञान से अज्ञान समूल नष्ट हो जाए, तो दे कैसे ? ऐसी शंका का समाधान यह है कि वेदों ने प्रारब्ध को बाह्य दृष्टि से कहा है, न कि विद्वानों उद्देश्य से 'देह सत्य है' यह जानने के लिए। (56-60)

वस्तुतः ब्रह्म परिपूर्ण, अनादि, अनंत, अप्रमेय, अविकारी, सत, धन, चिन्मय नित्य, आनंद अव्यय, प्रत्येक में व्यापक, सर्वतोमुख, त्याग एवं ग्रहण में असमर्थ, निराधार, निराश्रय, निष्क्रि सूक्ष्म, निर्विकल्प स्वयं सिद्धि, शुद्ध, बुद्ध स्वयं जैसा, मन-वाणी से अगम्य, एक अद्वैत है। उस अतिरिक्त कोई भी नहीं है। इस प्रकार स्वयं के अनुभव से अपनी आत्मा को अखंडित मान निर्विकल्पक आत्मा में सुख से स्थित। (यह सुनकर ज्ञान प्राप्त शिष्य बोला— मेरे द्वारा अभी दे गया जगत कहां गया ? किसने ले लिया ? कहां लीन हो गया ? क्या यह महान् आश्चर्य नहीं है (61-66)

अखंड आनंदरूपी ब्रह्म सागर में अब क्या छोड़ना या क्या लेना है ? न कुछ देखता हूं सुनता हूं और न जानता हूं। मैं आत्मस्वरूप सदा आनंदरूप अपना लक्षण स्वयं हूं। मैं असंग अनंग (देहरहित) हूं, चिह्नहीन हूं, श्री हरि हूं, प्रशांत हूं, अनंत हूं, परिपूर्ण हूं और प्राचीनतम हूं। अकर्ता, अभोक्ता, अविकारी, अनश्वर, शुद्ध बोधस्वरूप, केवल और शिव हूं(67-70)।

यह विद्या गुरु ने अपांतरतम को, इसने ब्रह्मा को, ब्रह्मा ने घोरांगिरस को घोरांगिरस ने रैक्य रैक्य ने राम को तथा राम ने सभी को दी। यह निर्वाण का उपदेश वेद की आज्ञा है।

15. मैत्रायणी उपनिषद्

शांतिपाठ :

अध्यायंतु ममांगनि वाक्प्राणचक्षुषः क्षोत्रमथो बार्मिंद्रियाणि सर्वाणि सर्व ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोद निराकरणमस्त्व-निराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरतेय उपनिषत्सुधर्मास्ते मयि संतु ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

प्रथम प्रपाठक

शरीर की अनित्यता का ज्ञान होने पर वृहद्रथ राजा राज्यभार ज्येष्ठ पुत्र को सौंपकर वैराग्य धारण कर वन में चला गया। वहां वह हाथ ऊपर करके सूर्य की ओर आंखें करके कठिन तप करने लगा। एक हजार वर्ष की तपस्या के फलस्वरूप अतितेजस्वी आत्मवेत्ता शाकायन्य ऋषि उसके पास आए। उन्होंने राजा से वर मांगने को कहा। राजा ने आत्मज्ञान का वरदान मांगा। ऋषि ने कहा कि वह प्राचीनकाल से ही कठिन माने जानेवाले इस वर को छोड़कर कोई और वर मांगे। यह सुनकर राजा शाकायन्य के चरणों में गिरकर बोले (1) –

भगवन यह शरीर अस्थि, चर्म, स्नायु, मज्जा आदि से युक्त और दुर्गंधयुक्त निःसार है, तब विषय-भोग व्यर्थ हैं। वह काम, क्रोध, भय, दुःख, भूख, बुढ़ापा, मरण आदि से पीड़ित है; नाशवान है। अनेक लोग मरते हैं। मच्छर आदि तुरंत मर जाते हैं। इनकी तो गणना ही क्या है, बड़े-बड़े वीर सुद्युम्न, भूरघुम्न, इंद्रद्युम्न आदि चक्रवर्ती सम्राट भी अपने बांधवों और लोकों के ऐश्वर्य को त्यागकर परलोक चले गए। मानव ही नहीं, गंधर्व, असुर यक्ष आदि भी नाशवान हैं। यही नहीं, समुद्र सूख जाते हैं, पर्वत टूट जाते हैं, ध्रुव, पृथ्वी, देवगण आदि भी स्थिर नहीं रहते। तब 'अहं' भरे जगत के विषयों से क्या लाभ ? इनमें आसक्त बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र में फंसा रहता है। मैं भी कुएं के मेढक के समान जगत के अंधकार में पड़ा हूं। मैं आपका शरणागत हूं, मेरे आधार बनकर रक्षा कीजिए। (2-7)

द्वितीय प्रपाठक

यह सुन अत्यंत प्रसन्न हो ऋषि बोले, 'वृहद्रथ, तुम इक्ष्वाकु वंशीय ध्वजशीर्ष राजा के मरुत नाम से प्रसिद्ध पुत्र हो। तुम धन्य हो। मैं यह आत्मविषय तुम्हें समझाता हूं। बाह्य इंद्रियों को रोधने से प्राणरूपी आत्मा ऊर्ध्वगामी बनता है। दुःखी प्रतीत होने पर भी यह दुःखरहित एवं अंधकार नाशक होता है। देह से बाहर निकलने पर यह ज्योतिरूप ब्रह्म को प्राप्त करके अपना स्वरूप पाकर स्थिर बनता है। यह आत्मा अमृतरूप, अभय और ब्रह्म है। (1-2)

समस्त उपनिषदों की इस ब्रह्मविद्या को मुझे भगवान मैत्रेय ने दिया, मैं तुम्हें देता हूं। नष्टपाप, अतितेजस्वी, ब्रह्मचारी बालखिल्य नामक मुनि ने एक बार ब्रह्मा से पूछा, 'गाडी के समान यह

अचेतन शरीर किस अतींद्रिय पदार्थ की महिमा से चेतन जैसा हो जाता है। किसकी प्रेरणा से सब होता है।' ब्रह्मा बोले, 'जो वाणी से परे है, वह शुद्ध, पवित्र, शून्य, शांत, अप्राण, जीवन इत्यादि गुणोंवाले आत्मा की ही यह महिमा है। वही इसका प्रतिष्ठाता और प्रेरक है।' (3-4)

इस पर बालखिल्य ने फिर पूछा, 'इच्छारहित होने पर भी यह आत्मा शरीर में चैतन्य कैसे रहता है? क्यों इसकी प्रेरणा देता है? इसकी महिमा कैसी है? ब्रह्मा बोले, 'आत्मा अग्राह्य एवं अदृश्य है, पुरुष संज्ञक है। सोते हुए को वह अपने एक अंश की क्रिया से जगाता। यही अंश प्राणियों में जीवात्मा बनता है। प्रत्येक शरीर में वही क्षेत्रज्ञ है, तेज, संकल्प प्रज्ञान, अहं और प्रजापति रूप में सबको देखता है। उसी से यह शरीर सचेतन है तथा प्रेरणा पाता है। बालखिल्य ने फिर पूछा, 'अखंड होने पर यह अंश रूप में कैसे रहता है?' ब्रह्मा बोले, 'सर्वप्र प्रजापति ही था। एकांत से ऊबकर उन्होंने आत्मा का ध्यान किया। अनेक प्रकार की प्रजा बना यह अचेतन प्रजा उन्हें स्तंभ जैसी लगी। यह अच्छा न लगने पर इसे सचेतन करने के लिए प्रवेश किया। अतः एक ही प्राण के (प्राण, अपान, व्यान, उदान एवं समान यह) पांच भेद हो ग (5-6)

उर्ध्वगामी प्राण है, अधोगामी (मलद्वार से पहुंचनेवाली वायु) अपान है, समस्त नाड़ियों व्याप्त है, वह व्यान है। खाने-पीने में ऊपर-नीचे गतिवाला समान है जिससे ये समस्त व्याप्त हैं व्यान है। बीच की अत्यंत मंद उष्णता पुरुष है। यही वैश्वानर अग्नि है। अन्यत्र भी इसे वैश्व अग्निपुरुष कहा है। यह भोजन पचाता है। शरीर में कान बंद करने पर सुनाई देनेवाली ध्वनि प्राणांत पर नहीं प्रतीत होती इसी की ध्वनि है। (7-8)

यह आत्मा पांच रूपों से हृदय गुहा में स्थित है। यही सत्य संकल्पवाला मन, प्राण आदि भी है। इस प्रकार यह वहां रहकर अपने को कृतार्थ करने हेतु पांच द्वारों से प्रकट हुआ। ये द्वार इंद्रियां बनीं। यह पांच कर्मेंद्रियां लगाम, शरीर रथ, मन सारथी और स्वभाव चाबुक है। इस च से शरीर चक्र की तरह घूमता है। अतः आत्मा ही शरीर का प्रेरक है। लगता है शरीर का वश आत्मा शुभाशुभ कर्मों के बंधनों से अनेक देहों में घूमता है। किंतु वस्तुतः वह अव्यक्त, अदृश्य, अग्राह्य तथा ममत्वहीन है, कर्ता जैसा प्रतीत होता है। यह शुद्ध, स्थिर, आसक्ति इच्छारहित दर्शक की तरह कर्मफलों का भोक्ता जान पड़ता है और उसने अपने रूप को त्रिगुण वस्त्र से आवृत्त किया है। (9-11)

तृतीय प्रपाठक

इस पर बालखिल्य ने पूछा, 'यदि आत्मा ऐसी महिमायुक्त है, तो शुभाशुभ क अच्छी-बुरी योनियों में भ्रमण करनेवाला आत्मा क्या कोई अन्य ही है? सुख-दुःख के वश कौन आत्मा अच्छी और कौन बुरी गति को प्राप्त होता है?' इस पर ब्रह्मा बोले, 'शुभाशुभ क दबा वह भूतात्मा कहलाता है। इन भूतों का समुदाय ही शरीर है, अतः शरीर भूतात्मा कहला इसमें स्थित आत्मा कमलपत्र में स्थित जलबिंदु की तरह है। प्राकृतिक गुणों से अभिभूत होक मूर्खता से अपने प्रेरक को नहीं देख पाता। इन गुणों से यह पापी अस्थिपंजर लोलुप विष

इच्छावाला अहंकारयुक्त हो जाता है। 'मैं' और 'मेरा' ऐसा मानने से यह पक्षी की तरह जाल में फंस जाता है। अपने कर्मफलों से फंसा घूमता रहता है। (9-12)

अन्यत्र कहा गया है कि कर्ता तो भूतात्मा ही है। अंतःस्थ शुद्ध आत्मा केवल प्रेरक है। जैसे लोहार अग्नि से लोहे को अनेक रूपों में बना देता है, इसी प्रकार आत्मा भूतात्मा को अनेक प्रकार से बनाता है, चौरासी लाख योनियों में घुमाता है। यही अनेकता है। जैसे चक्र घुमानेवाला कुम्हार चक्र से अलग रहता है। वैसे ही पुरुष भी अन्य है। गर्म लोहे को पीटने से अग्नि में कुछ नहीं होता, इसी तरह भूतात्मा के संपर्क से आत्मा दोषी नहीं है। कहा भी गया है कि स्त्री-पुरुष संसर्गजन्य यह देह चेतना रहित तथा नरक का द्वार है। यह मूत्र मार्ग से जन्मा हड्डियों का ढांचा मांस से पिया, चर्म से गढ़ा, मल-मूत्र आदि से भरा है, अन्य अनेक मलोंवाली वस्तुओं का कोश है। (3-4)

दूसरी जगह कहा गया है कि दुःख, क्रोध, दीनता आदि विकारों से भरा हुआ, तृष्णा, स्नेह राग, लोभ आदि का आश्रय है। विषयासक्ति आदि रजोगुण के विकारों से भी यह युक्त है। इन्हीं सबसे यह पराभूत होकर अनेक रूपों को प्राप्त होता है। (5)

चतुर्थ प्रपाठक

यह सुन अत्यंत विस्मित बालखिल्य बोले, 'भगवन नमस्कार हो। आप ही हमारी शरण हैं, कोई अन्य नहीं। अतः बतलाइए कि इस भूतात्मा की स्थिति क्या है, जिससे यह सबको छोड़कर आत्मा में ही सायुज्य पाता है ? ब्रह्मा बोले, 'जैसे नदियों में तरंगें होती हैं, तट पर वे समाप्त होती हैं, वैसे ही इसे पूर्वकर्मों का फल भोगना होता है, इसके लिए मृत्यु आवश्यक है। यह कर्मबंधनों से पशु जैसा बंधा है। अतः यह सदा भयभीत रहता है। विषय सुखों की मदिरा से उन्मत्त बनता है। पाप के भूत से यह भटकता रहता है, सांप के कोटर समान दुःखी, विषय इच्छा से अंधा, माया रूपी जादू से मिथ्या, केले के वृक्ष के अंदर की तरह खाली, नट की तरह नितक्ये वेशधारी, चित्र की तरह बाहर से ही सुंदर होते हुए भी रूप, रस आदि विषयों में डूबे भूतात्मा को अपना रूप याद नहीं आता। इसकी मुक्ति के लिए ज्ञान प्राप्ति हेतु धर्माचरण एवं आश्रम धर्म का पालन हो, क्योंकि अपना धर्म ही सर्वस्व है। इसी से यह उन्नति प्राप्त करता है, वेदों के अनुसार स्वधर्म त्यागी अधर्मी है। आश्रम धर्म का पालक तपस्वी है। जो तपस्वी नहीं है, उसका ध्यान आत्मा में नहीं लगता। अतः वह कर्म शुद्ध नहीं होता। तप से क्रमशः ज्ञान, मन पर संयम तथा आत्मा की प्राप्ति होती है। अंततः संसार से मुक्ति मिलती है।(1)

जैसे ईंधन की समाप्ति पर अग्नि स्वयं शांत हो जाती है, वैसे ही वृत्ति नाश पर चित्त उत्पत्ति स्थान पर शांत हो जाता है। फिर ज्ञान प्राप्ति पर सत्याभिमुख होने पर कर्म के वशीभूत इंद्रिय विषय इसे मिथ्या लगते हैं। चित्त ही संसार है, अतः इसे प्रयत्न से शुद्ध करें, इसके अनुरूप ही गति मिलती है। चित्त की शांति पर कर्मनाश के बाद आत्मा में लय होने पर अनश्वर आनंद मिलता है। चित्त विषयों के स्थान पर यदि उतना ब्रह्म में लगे, तो बंधनमुक्ति अवश्यंभावी है। (2-5)

मन शुद्ध और अशुद्ध द्विविध है, जो क्रमशः निष्काम और सकाम होता है। लय, विक्षेपरहित स्थिर मन परमपद रूप है। मन का नाश न होने पर इसे हृदय में रोकें। यही ज्ञान का सार है। समाधि

द्वारा निर्मल और आत्मा में जुड़ा मन आनंदित होता है। यह अवर्णनीय एवं अंतःकरण द्वारा अनुमानयोग्य होता है। जैसे अग्नि में अग्नि, आकाश में आकाश तथा जल में जल मिलने पर वह एक रूप हो जाते हैं, वैसे ही चित्त लीन होने पर मनुष्य मुक्त हो जाता है। विषयों में आसक्त मन बंधन है, विषयहीन मन मोक्ष है। (6-11)

कोत्सायन कृत स्तुति—तुम ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, अग्नि, वरुण, वायु, इंद्र, चंद्र, मनु, यम पृथ्वी तथा अच्युत हो। तुम्हीं स्वाभाविक अर्थ में तथा स्वर्ग में हो। हे विश्वेश्वर, विश्वात्मा, विश्वकर्मा, विश्वभोक्ता, विश्वमाया, विश्वक्रीड़क, विश्वप्रेमी तथा प्रभु तुम्हें नमस्कार। हे शांत आत्मा, गुह्यतम, अचिंतनीय, अप्रमेय, अनादिधन तुम्हें नमस्कार। (12-15)

सृष्टिपूर्व केवल अंधकार ही था। फिर प्रेरित होकर परमात्मा से प्रेरित इंद्रिय विषय बने। इसमें से प्रेरित रजोगुण बना। यह विषमता को प्राप्त हुआ। फिर तमोगुण एवं सत्त्वगुण मानो स्वयं से ही प्रेरित होकर निकले। जीव में स्थित चेतन सत्ता परमात्मा ही अंश है। वह संकल्प, निश्चय, अहंकार रूपी और प्रजापति है। ब्रह्मा, विष्णु इसके श्रेष्ठ शरीर कहे गए हैं। ये क्रमशः रजोगुण, सत्त्वगुण एवं तमोगुण के अंश हैं। इस प्रकार एक ही परमात्मा इन तीन रूपों, आठ रूपों, ग्यारह रूपों आदि में प्रकट हुआ है; अनंत होकर भूतों में स्थित है। यह सबका अधिपति है। सबके बाहर और भीतर स्थित है।

पंचम प्रपाठक

पहले यह आत्मा प्राण एवं सूर्य इन दो स्वरूपों को धारण करता है, जो क्रमशः अंतरात्मा और बहिरात्मा है। प्राण की गति से ही इसकी बहिरात्मा का अनुमान होता है। वेदानुसार यह गतिरूप है। नष्टपाप विद्वान सबका अध्यक्ष होता है। वह शुद्ध मन परमात्मा में निष्ठावाला, खुले ज्ञानचक्षुवाला अंतरात्मा में स्थित रहता है। वह गति से बाहर जाने में समर्थ है। आत्मा की गति अनुमान योग्य है, यह वेदमत है। सूर्य में दृश्यमान स्वर्णमय पुरुष ही हृदय कमल स्थित है और अन्न खाता है। यही सूर्य की अग्नि के रूप में आकाश-स्थित है, यही काल है, जो अदृश्य रहकर भूतरूपी अन्न खाता है। यह कमल क्या है ? क्या जानता है ? उत्तर है—आकाश कमल है। इसकी चार-चार दिशाओं उपदिशाओं में रहनेवाला वही है। सबसे परे है। प्राण एवं आदित्य की ओम व्याहृतियों और गायत्री से उपासना करनी चाहिए। (9-2)

मूर्त एवं अमूर्त ब्रह्म के दो स्वरूप हैं, जो क्रमशः असत्य एवं सत्य है। ब्रह्म ही ज्योति है और ज्योति आदित्य है। ओम आत्मा है, जिसने स्वरूप त्रिविध बनाया है। ओम् की तीन मात्राओं से यह सब ओतप्रोत हैं। यही सर्वत्र है। यह वेदवचन है। या आदित्य ही ओम है, ऐसा ध्यान करके अपने को उससे जोड़े। अन्यत्र कहा गया है कि उद्गीथ ही प्रणव है, प्रणव ही उद्गीथ। वही नाम-रूप, निद्रा, वृद्धावस्था एवं मृत्यु रहित है। वह पांच प्रकार का, गुहास्थित, ऊपर ब्रह्म तक शाखाओंवाला है। आकाश आदि पांच तत्त्व ही शाखाएं हैं। एक ही तत्त्व से यह सब ग्राह्य है। वही ब्रह्म है। जगत उसका स्वरूप ही है। सूर्य ओम् अक्षर का स्वरूप है, अतः इसी अक्षर से उसकी उपासना करें। इस से उसके अजस्र रस बोध्य है। वेद कहते हैं—इसी पवित्र अक्षर को जानकर हर इच्छा पूर्ण होती

है। दूसरी जगह कहा गया है—ब्रह्म का यह शरीर शब्द करता है, जो ओम है। यह स्त्री-पुरुष नपुंसक, त्रिलिंगी, अग्नि, वायु, आदित्यरूप में प्रकाशवान एवं रुद्र, विष्णु रूप में अधिपति है। गार्हपत्य आदि अग्नियां इसके मुख हैं। ऋक, यजु एवं साम का वह ज्ञाता है। भूः भुवः और स्वः ये तीन लोक हैं। भूत, भविष्य एवं वर्तमान ये उसके तीन काल प्राण, अग्नि और आदित्य प्रताप अन्न, जल एवं चंद्रमा पोषक; मन, बुद्धि एवं अहंकार चेतन; प्राण, अपान आदि इसके प्राण हैं। मैं त्यागता हूं, ऐसा कहा गया है। स्तुतिकर्ता अर्पणकर्ता है, यह वेदकथन है। सत्यकाम ! यहीं 'पर' और 'अपर' ब्रह्म है यह 'ओम' ऐसा ही अक्षर है। (3-5)

तब इसने विस्तार किया। तप करके प्रजापति ने 'भूः भुवः स्वः' कहा। उसका स्थूल शरीर लोकों द्वारा बना है। भूः, भुवः और स्वः उसके क्रमशः पैर, नाभि एवं मस्तक हैं। आदित्य नेत्र है, यह उनके अधीन और महापुरुषों की मात्राएं हैं, नेत्रस्थ पुरुष ही पदार्थ ज्ञान करता है, अतः भूः, भुवः और स्वः विधिवत उपास्य है। अन्न प्रजापति भी सबका आत्मा तथा उसी तरह पूज्य है, यह वेदकथन है। यह जगत धारक शरीर है। यह सबमें और सब इसमें स्थित हैं, अतः यह उपास्य है। सूर्य के भर्ग का ध्यान योग्य है, क्योंकि यह सम्मुख उपस्थित रहता है। यह बुद्धि द्वारा प्राप्य है। कौन चिंतनीय है ? इसका उत्तर है—हमारी बुद्धि को प्रेरित करता है। सन्मार्ग पर लाता है। 'भर्ग' सूर्य में स्थापित है। आंख की पुतली में भी यही इसी नाम से रहता है। इससे मनुष्य गतिवान है अथवा यह सबको तपाता है या प्राणियों का रंजन करता है या उनमें जाता है या जगत में आता है या जगत इसी की प्रजा है या यह सबका पोषण करता है, इन सब कारणों से यह भर्ग है। फिर सूर्य-शत्रुनाशक होने से, सबको उत्पन्न करने से, प्रकाश देने से यह सूर्य, सविता या आदित्य है। पवित्र करने से पवयान, सब ओर जाने से अयन है। यह स्वयं आत्मा, अमृत, सर्वज्ञ, विचारक, गतिशील, सर्जक आदि है, वही सुनता, देखता, सूंघता आदि है। यह सब आत्मा ही है, ऐसा समझो। जहां यह अद्वैत कार्य-कारण-उपमारहित, अवर्णनीय हो जाता है, उसके विषय में क्या कहा जा सकता है। (6-7)

यही आत्मा नियंत्रक, शंभु, भव, रुद्र आदि है, जो अग्नि रूप में तपनेवाला हजारों नेत्रों से प्रकाशमान आनंदमय और जानने योग्य है। सब जीवों को अभय करके वन में जाकर उसका अन्वेषण करना चाहिए। इंद्रियों के विषयों पर विजय से वह सशरीर मिल जाता है। वह विश्वरूप, तेजस्वी, जातवेदा, परम आश्रय और तपती ज्योति है। सूर्य रूप में वह प्रजाओं को प्राणवान करता हुआ सैकड़ों रश्मियों से उदय होता है। (8)

□

16. शिवसंकल्प उपनिषद्

हे ईश्वर ! जो हमारा मन जागते या सोते भी दूर पहुंच जाता है, जो तारों की ज्योति सदृश चमकता है, उसे शिवसंकल्पयुक्त करो । जिस मन से योगी मनीषी यज्ञ और शुभ कर्म करते हैं, जो उच्च ज्ञान का साधन है, जो दीपक के समान स्वयं को तथा अन्य वस्तुओं को प्रकाशित करता है, जो स्मरणशक्ति युक्त है, जिससे भूत, भविष्य एवं वर्तमान का ज्ञान होता है, जो ब्रह्मारूपी यज्ञकर्ता के समान सभी इंद्रियों द्वारा आत्मा से इस शरीरयज्ञ को जलाता है, जो मन, ऋक, साम एवं यजुर्वेद के मध्य इनका स्मरण करता हुआ रथचक्र के अरों के समान स्थित है, जैसे अच्छा सारथी बल-वेगवान अश्वों को नियंत्रित करता है, वैसे ही जो मन विद्वानों आदि का पथप्रदर्शक है, जो हृदय स्थित है, जरा (बुढ़ापा) रहित तथा अत्यंत शक्तिशाली है, ऐसे अनेक प्रकार की विशेषताओंवाले मेरे मन को शिव संकल्प (शुभ इच्छा) युक्त बनाओ ।

□

17. आश्रम उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभ्यः शृणुयामः देवा भद्रं पश्येमाताक्षिर्मियजत्राः ।
स्थिरेरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूमिर्व्यशेमदेवहितं यदायुः ।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेभिः स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु ।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

हरिः ॐ चार आश्रमों के सोलह भेद होते हैं। गायत्री, ब्राह्मण, प्रजापत्य तथा वृहन चार भेद ब्रह्मचारी के हैं। जनेऊ होने पर तीन रात तक नमकहीन भोजन तथा गायत्री जपने से गायत्र, प्रतिवेद बारह, कुल अड़तालीस वर्ष ब्रह्मचर्य से पूर्ण वेदज्ञान प्राप्त करनेवाला ब्राह्मण, परस्त्री से विमुख अपनी पत्नी के साथ भी केवल ऋतुकाल में संभोग करनेवाला अथवा अड़तालस वर्ष गुरुकुल में रहनेवाला प्रजापत्य और चौबीस वर्ष तक गुरु के आश्रम में रहनेवाला ब्राह्मण है मृत्युपर्यंत गुरुकुल में रहनेवाला ब्रह्मचारी वृहन कहलाता है।

वार्ताकवृत्ति, शालीनवृत्ति, यायावर एवं घोर संन्यासिक—ये चार प्रकार के गृहस्थ हैं। खेती, पशुपालन, सच्चा व्यापार करते हुए सैकड़ों वर्ष यज्ञ करके आत्मा की प्रार्थना करने वाला वार्ताकवृत्ति है। जो यज्ञ करते हैं, करवाते नहीं; पढ़ते हैं, पढ़ाते नहीं; दान देते हैं; लेते नहीं, वह शालीनवृत्ति होते हैं। यायावर यज्ञ करता-करवाता है, पढ़ता-पढ़ाता है तथा दान देता है और लेता भी है। घोर संन्यासी तपस्या में लगा रहता है। सौ वर्ष तक यज्ञ एवं आत्मा की प्रार्थना हर प्रकार का गृहस्थ करता है।

वानप्रस्थ भी चार प्रकार के हैं। वैरवानस, उदुंबर, बालखिल्या और फेनप। ग्रामीणों द्वारा उपेक्षित स्वयं पकी वनस्पतियों द्वारा जो अग्नि परिचर्या एवं पंच महायज्ञ करते हैं, वह वैरवानस हैं। उदुंबर प्रातः उठकर कहीं से बेर आदि लाकर यह काम करते हैं। बालखिल्या, जटा, जीर्ण वस्त्र, वृक्षछाला धारण करता है। कार्तिक पूर्णिमा को फूल-फलों से तथा अन्य दिनों वृत्ति का अर्जन करके पूर्व कर्म करता है। फेनप कठोर स्थानों पर सोनेवाने पत्ते-फल आदि रूखा-सूखा खानेवाले पागल जैसे होते हैं तथा पूर्वकर्म करते हैं। प्रार्थना और आत्मचिंतन हर वानप्रस्थ करता है।

संन्यासी भी चतुर्विध होते हैं—कुटोचर, बहूदक, हंस और परमहंस। कुटीचर अपने पुत्रादि के घर से भिक्षा लेते हैं। बहूदक त्रिदंड, कमंडलु, कौपीन, भगवा वस्त्रादि धारण कर सच्चरित्र ब्राह्मणों के ही घर से भिक्षा लेते हैं। हंस एक दंडधारी, शिखाहीन, जनेऊ, शिक्य, कमंडलुधर गांव में एक रात्रि, नगर या तीर्थ में पांच रात्रि ठहरनेवाले, एक से तीन रात्रि तक 'कृछ्र चांद्रायण' व्रत करनेवाले होते हैं। परमहंस दंडहीन, मुंडित, कोपनीधारी, अव्यक्त, धीर, शांत, त्रिदंड आदि युक्त छोड़े हुए घरों या मंदिरों में रहनेवाले मूर्ख जैसे दीखनेवाले होते हैं। वे धर्माधर्म, सत्यासत्य सब सहनेवाले समदर्शी, निर्लिप्त किसी भी वर्ण की भिक्षा लेनेवाले आत्मबंधनमुक्त होते हैं। प्रथम तीन आत्मचिंतनरत होते हैं।

18. द्वयोपनिष

श्रीमद् द्वय की उत्पत्ति। वाक्य द्वितीय है। षट्पद् अठारह हैं। पंद्रह पहले, दस
में—पच्चीस अक्षर हैं। सदाचार मूल अनादिसिद्ध मंत्ररत्न नारायण पूर्व निरूपित हैं। वेद संप्र
विष्णुभक्त, ईर्ष्यारहित मंत्रज्ञ, मंत्र-श्रद्धावान, सत मंत्रणा देनेवाला, पवित्र, गुरुभक्त, पुराणों
विशेषज्ञ इस प्रकार के लक्षणों से युक्त आचार्य गुरु कहलाता है। शास्त्रों के अर्थ को सही-स
समझना, सदाचार की स्थापना एवं तदनुकूल आचरण आचार्य का लक्षण है। 'गुरु' शब्द में '
अंधकार तथा 'रु' उसका निवारक है; अतः गुरु का अर्थ अज्ञानांधकार का निवारण करनेवाला है
गुरु ही परमब्रह्म है, परम गति है, परम विद्या, परम धन, परम इच्छा तथा परम आश्रय है क्योंकि
उस परम ज्ञान का उपदेशक है, अतः गुरु उससे भी महान है। जो इसका एक बार भी उच्चारण कर
है, संसार से मुक्त हो जाता है। उसे सभी पुरुषार्थ सिद्ध हो जाते हैं। इसका ज्ञाता कदापि इस संस
में पुनः नहीं आता। यही उपनिषद (ज्ञान का सार) है।

19. वज्रसूचिका उपनिषद

शांतिपाठ :

अप्यायंतु ममंगानि वाक्प्राणचक्षुषः क्षोत्रमथो बलमिंद्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोद निराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सुधर्मास्ते मयि संतु ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

अज्ञान नाशक, अज्ञानी के लिए दूषक एवं ज्ञानियों के भूषण वज्रसूची शास्त्र के विषय में बताता हूं। वेदों एवं स्मृतियों के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र, ये चार वर्ण हैं। इनमें ब्राह्मण प्रधान है। तब प्रश्न उठता है कि ब्राह्मण है क्या—प्राणी ? जाति ? देह ? ज्ञान ? कर्म ? अथवा धार्मिकता ब्राह्मणत्व के निर्धारक तत्त्व हैं ?

जीव ब्राह्मण नहीं है। हो चुके तथा होनेवाले जीव समान ही हैं। जीव एक ही है; कर्मानुसार अनेक देह धारण करता है। तब देह—यह भी ब्राह्मण नहीं हो सकता। सभी मान देहें पंचभूतमय, जरा तथा मरनेवाले होते हैं। साथ ही ब्राह्मण गोरा ही हो अथवा क्षत्रिय लाल, वैश्य पीला या शूद्र काला ही, यह भी अनिश्चित है। पिता के शव को जलाने पर किसी को ब्रह्म-हत्या नहीं लगती। अतः शरीर ब्राह्मण नहीं है। तब जाति-विभिन्न जातियों से अनेक ऋषियों का जन्म हुआ, जैसे मृगी से शृंगी ऋषि, कुश से कौशिक आदि। इसलिए जाति को ब्राह्मण नहीं कहा जा सकता। (4-5)

ज्ञान भी ब्राह्मण नहीं है, क्योंकि बहुत से क्षत्रिय आदि भी परम तत्त्वज्ञ हुए हैं। तब कर्म ? सभी प्राणियों के प्रारब्ध संचित तथा आगामी कर्मों से समानता है और इसी से प्रेरित जीव कार्य करता है, अतः कर्म ब्राह्मण नहीं है। धार्मिकता बहुत से क्षत्रिय आदि भी स्वर्णदान करते आए हैं, अतः धर्म भी ब्राह्मण नहीं है। (6-7)

तब ब्राह्मण कौन है ?—अद्वैत भावनावाला, जाति-गुण-क्रिया रहित, छः ऊर्मि-छः भाव दोषरहित, सत्य, ज्ञान, आनंद आदि युक्त, काम, राग आदि रहित, परम तत्त्वज्ञ तथा अहंकार आदि का त्यागी ब्राह्मण कहलाता है। आत्मा की सच्चिदानंदात्मकता का अनुभव करनेवाले को ही ब्राह्मण मानना चाहिए, अन्य को नहीं। यही सारांश में ब्राह्मण के लक्षण हैं।

□

20. अथर्वशिरोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभ्यः श्रृणुयामः देवा भद्रं पश्येमार्तक्षिभिर्यजत्राः

स्थिरेरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।

स्वस्ति न इंद्रो वृद्धाश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।

स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो वृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

रुद्रलोक जाकर देवताओं ने रुद्र से पूछा—'आप कौन हैं ?' रुद्र बोले, 'मैं ही एक हूं। भू भविष्य, वर्तमान में मैं ही हूं। मेरे सिवा कुछ भी नहीं है। भीतर से भी भीतर, सब दिशाओं में व्याप्त नित्यानित्य, ब्रह्म-अब्रह्म, प्रत्येक दिशा, स्त्री-पुरुष, गायत्री आदि छंद, गार्हपत्य आदि अग्नि, स गौ, चारों वेद, श्रेष्ठ जप, तेज, ज्योति आदि में मैं ही हूं। मेरा ज्ञाता सब वेदों एवं देवों जानता है। ही गौ को गौ से, ब्राह्मण आदि को ब्राह्मण आदि से तृप्त करता हूं।' शंकित से देवता रुद्र को देखकर हाथ उठाकर कहने लगे, 'हे रुद्र आप ब्रह्मा हैं, विष्णु हैं, इंद्र हैं, स्कंद हैं, अग्नि, वायु, सोम, ग्रह, उप पृथ्वी, अंतरिक्ष स्वर्ग आदि हैं। आपको नमस्कार है। भूः, भुवः, स्वः क्रमशः आपके निम्न, मध्य ए सिर हैं। आप ही अकेले विश्वरूप हैं भ्रमवश अनेक जान पड़ते हैं। आप वृद्धि, पुष्टि, शांति अ रूपों में हैं। आप ही ने सोम रूप अमृत पिलाकर हमें अमर किया। ज्योतिरूप तथा ज्ञानी बना हमें अब शत्रु कुछ हानि नहीं पहुंचा सकता। आप मानव के लिए अमृत स्वरूप हैं। सर्वत्र और स कुछ आप ही हैं। (1-2)

'ओम' क्या है—इसके उच्चारण में प्राणों को ऊपर खींचना पड़ता है, अतः आप ओ कहलाते हैं। प्रणव कहने से चारों वेदों, अंगिरस, ब्रह्म एवं ब्राह्मण को प्रणाम किया जाता है, अ आप प्रणव हैं, तिलों में तेल के समान आप सृष्टि भर में व्याप्त हैं, आप अनंत हैं। आप गर्भ, ज मरण आदि से मुक्त करने के कारण तारक कहे जाते हैं। आप शुक्ल (इसके उच्चारण में श्रम हो है), सूक्ष्म (के उच्चारण में सूक्ष्म कंप से), भैद्युत (उच्चारण से तमावस्था में प्रकाश होता है), पर (भारी पीड़ाओं का ज्ञान कराते हो) आदि कहलाते हैं (इत्यादि नाम आपके किसी गुणों के कारण है जैसे दूध हेतु गाय को प्रसन्न करते हैं, वैसे ही हम आपकी स्तुति करते हैं। आप इंद्र रूप में वि के ईश्वर, दिव्यद्रष्टा हो अतः ईशान हो। ज्ञान के लिए आपका भजन करने से वाणी का प्रादु होने से आप महेश्वर हो, यही रुद्र का चरित है। (4)

एक ही देव सर्व दिशा व्याप्त है। वही आदिजन्मा, मध्य और अंत है। केवल वह रुद्र ही व्यक्ति में व्याप्त है। लोक नियंता है। सब उसी में स्थित तथा अंत में उसी में मिल जाते हैं। व रचयिता-रक्षक है। उसका ध्यान परम शांतिप्रद है। अज्ञान नाश हेतु उसी में मन लगाओ।

शाश्वत-पुराण, पुरुष अन्नादि देनेवाला तथा मृत्यु से रक्षक है। शांति एवं बंधन मुक्ति प्रदाता है। उसकी प्रथम मात्रा ब्रह्मा (रक्त वर्णवाले), द्वितीय विष्णु (श्याम वर्ण), तृतीय इंद्र (पीत वर्ण) और चतुर्थ अर्धमात्रा वेद रूप हैं। इनका ध्यान करने से इनके लोकों की प्राप्ति एवं कर्मबंधन मुक्ति मिलती है। इसी उत्तर मार्ग से देव-पितर-ऋषि आते हैं। इसके सूक्ष्म रूप को ज्ञानी हृदय में देखते हैं। क्रोधादि त्यागकर रुद्र में मन लगाने से रुद्र से एकता होती है। वही नियंता है। अग्नि, वायु, जल आदि में वही भस्म रूप में है। पशुपति की भस्म का स्पर्श न करनेवाला भस्मवत है। यह ब्रह्मरूप भस्म बंधन काटनेवाली है। (5)

अग्नि एवं जल में स्थित रुद्र औषधियों एवं वनस्पतियों में प्रविष्ट हुआ। विश्व के उत्पत्तिकर्ता अग्निरूप रुद्र, औषधियों, लोकों आदि के रचयिता, इन्हें धारण करनेवाले शिवशक्ति एवं त्रिगुणात्मक एवं नागों को अंतरिक्ष में स्थित करानेवाले रुद्र को नमस्कार है। इसकी प्रणवरूपी मूर्धा की उपासना से उच्च स्थिति प्राप्त होती है। रुद्र सब देवों का सामूहिक रूप एवं मस्तक है, उसका प्राण, मन और मस्तक रक्षक है। देवता रुद्र के लोकों की रक्षा कर सकते हैं, अन्यथा नहीं। इसके पहले तथा अलावा कुछ नहीं है। हजार पांवों और एक सिरवाला यह सर्वव्याप्त है। अक्षर से काल की उत्पत्ति है, काल होने से यह व्यापक है। इसके सोने पर प्राणियों का अंत होता है। उसकी श्वास से तम, तम से जल तथा इसके अंगुलिमंथन से शरद की ओस होती है। फिर इसी प्रकार इसके मंथन से क्रमशः फेन, अंडा, ब्रह्मा, वायु, ओम, सावित्री, लोक (अपने-अपने पहले से) पैदा होते हैं। लोक में तप से सत्य फिर अंगुल प्रवाह से शाश्वत (परम तप) पैदा होता है, वही जल ज्योति, रस, अमृत, ब्रह्म, भूः, भुवः, स्वः और नमः है। (6)

इस अथर्वशिर उपनिषद् का पाठक अश्रोत्रिय ब्राह्मण, श्रोत्रिय और अनुपवीत, उपवीत होकर अग्नि, वायु, सूर्य, सोम एवं सत्य के समान पवित्र, सब देवों एवं वेदों का ज्ञाता, सब तीर्थों में स्नान किया जैसा हो जाता है। उसे सब यज्ञों और साठ हजार गायत्री जप का, पुराणों के अध्यापन का, एक लाख रुद्र जाप का तथा दस हजार 'ओम' जप का फल मिलता है। उसके दर्शन पवित्र करनेवाले होते हैं। वह अपनी सात पूर्व पीढ़ियों का तारक होता है। भगवान ने कहा, 'इसका एक, दो तथा तीन बार जप करने से क्रमशः पवित्र कर्म का अधिकार, गणपति पद तथा 'ओम' में प्रवेश होता है।

□

21. स्कंद उपनिष

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

हे महादेव ! तुम्हारी थोड़ी-सी करुणा से मैं अच्युत, विज्ञान, धन और शिव ही हो गया इससे अधिक क्या होता है ? अंतःकरण के होने पर व्यक्ति अपना पार्थिव रूप भूल जाता है केवल हरि ही दीखते हैं। ज्ञान स्वरूप में स्थित होकर, मैं अपने को अजन्मा अनुभव कर रहा अन्य सब स्वप्न के समान जड़ एवं नश्वर हैं। इससे अधिक क्या होता है ? जो चित्त एवं जड़ देखनेवाला अच्युत एवं ज्ञान रूप है, वही महादेव एवं महा हरि है। वही ज्योतियों की परमेश्वर और परम ब्रह्म है। मैं भी ब्रह्म ही हूं, इसमें संशय नहीं है। (1-5)

जीव ही शिव है, शिव ही जीव है, केवल जीव शिव नहीं है। छिलके से ढका चावल छि उतरने पर ही चावल बनता है। इसी प्रकार बंधन ग्रस्त जीव कर्मनाश पर या पाशबद्ध पाश पर सदाशिव ही है। शिव ही विष्णु तथा विष्णु ही शिव हैं, ये परस्पर एक-दूसरे के हृदय में रहते शिव विष्णुमय एवं विष्णु शिवमय हैं। इसमें कोई अंतर न दीखने से मैं सशरीर कल्याणमय हो हूं। शिव एवं केशव में अभेद है। देह, मंदिर और जीव केवल शिव है। अज्ञान दूर होने निर्मलता आती है। तब 'सोऽहं' (मैं वही हूं) भाव से उसे पूजे। (6-10)

अभेद देखना ज्ञान है और निर्विषयी मन ध्यान का लक्षण है। मन का मैल हटना स्नान इंद्रिय निग्रह पवित्रता है। ब्रह्मज्ञान का अमृत पीकर देह-रक्षा के लिए भिक्षा मांगे। द्वैत भावना त्यागकर एकांत में रहें। इसी आवरण से मुक्ति मिलती है। श्री परमधाम, कल्याणमय अवि को नमस्कार। हे नृसिंह देव आपकी कृपा से ब्रह्मा, विष्णु और शिव स्वरूप को अचिंत्य, अव वेदात्मक ब्रह्म रूप में मानते हैं। ज्ञानी ब्रह्म ज्ञान पर ब्रह्मलीन हो जाते हैं। वही विष्णु का पर है। यही निर्वाण ज्ञान, वेदों का उपदेश तथा उपनिषद् है। (11-15)

22. सर्वसार उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

बंधन क्या है ? मोक्ष क्या है ? विद्या और अविद्या क्या हैं ? जागृत, स्वप्न एवं तुरीया अवस्थाएं, अग्निमय-प्राणमय-मनोमय-विज्ञानमय और आनंदमय कोश, कर्ता,-जीव-पंचवर्ग-क्षेत्र,-साक्षी, कुटुंब और अंतर्यामी तथा जीवात्मा, परमात्मा एवं माया, ये सब क्या हैं ? आत्मा ही ईश्वर एवं जीव है। शरीर में जीव को होनेवाला अहंभाव बंधन है, इससे मुक्ति मोक्ष है। अहंभाव का कारण अविद्या तथा इसका नाश विद्या है। (1-3)

सूर्य आदि की शक्तियों द्वारा मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और दस इंद्रियों द्वारा शब्द आदि का ग्रहण जागृत अवस्था है। शब्द आदि स्थूल विषय न रहने पर भी जागृतावस्था का रहना, स्वप्नावस्था है। मन आदि चौदह तत्त्वों के शांत होने पर विशेष ज्ञान का अभाव तथा शब्दादिका ग्रहण न होना सुषुप्ति अवस्था है। इन तीनों अवस्थाओं की उत्पत्ति एवं लय का ज्ञाता, जो इनका चिंतक करता है, यह तुरीया अवस्था हैं। अन्न से बननेवाला शरीर अन्नमय कोश है, चौदह वायु का इनमें विचरना प्राणमय कोश, इन दोनों के अंदर मन आदि द्वारा आत्मा आदि का विचार मनोमय कोश, इन तीनों के साथ बुद्धि द्वारा होनेवाला ज्ञान स्वरूप विज्ञानमय कोश तथा इन चारों कोशों के साथ आत्मा का बीज में वट-वृक्ष की तरह अपने कारण का अज्ञान आ नंदमय कोश है। (4-5)

सुख-दुःख की दृष्टि से कर्ता जब अभीष्ट (सुख) चाहता है तब सुख बुद्धि तथा जब अनिष्ट की कल्पना करे, तो दुःख बुद्धि है। सुख प्राप्ति एवं दुःख त्याग हेतु कार्य करने से वह कर्ता कहलाता है। शब्द आदि पांच विषय सुख-दुःख के कारण हैं। शुभाशुभ कर्मों से प्राप्त शरीर को समझने पर वह उपाधियुक्त जीव कहलाता है मन, प्राण, इच्छा, सत्त्व और पिंड इनके प्रत्येक के पांच-पांच भेदों को पंचक कहते हैं। इनसे युक्त जीवात्मा छुटकारा नहीं पाता। मन आदि सूक्ष्म तत्त्वों की उपाधि सदा आत्मा में होती है, इसे लिंग शरीर कहते हैं, यही हृदय ग्रंथि है। इसमें स्थित चैतन्य क्षेत्रज्ञ है। (6-8)

ज्ञान, ज्ञाता एवं ज्ञेय को जानने पर भी स्वयं उत्पत्ति-लयहीन आत्मा साक्षी कहलाता है। ब्रह्मा से चींटी तक की बुद्धि में स्थित सूक्ष्म-स्थूल आदि का नाश होने पर भी शेष रहनेवाला 'कूटस्थ' है। इन सबसे अपने स्वरूप प्राप्ति हेतु सारे शरीर में गुंथा हुआ तत्त्व अंतर्यामी कहलाता है। सत्य, ज्ञान, आभूषण आदि से रहित चैतन्य रूप आत्मा आभास होने पर 'त्वम्' कहलाता है। ब्रह्म, सत्य, आनंद, ज्ञान स्वरूप है। अविनाशी सत्य कहलाता है। देश, काल आदि का नाश होने पर भी वह अविनाशी है। उत्पत्ति-विनाश रहित नित्य चैतन्य 'ज्ञान' है। वह मृतिका पात्रों एवं स्वर्णाभूषणों में क्रमशः मिट्टी एवं सोने के समान सृष्टि भर में व्याप्त है। अतः वह अनेक कहलाता है। वह सुखमय चैतन्य असीम आनंद का सागर है। शेष सुखों का स्वरूप है। वह आनंद कहलाता है। (9-11)

यह सत्य, ज्ञान, अनंत और आनंद लक्षणवाले में देश, काल, वस्तु आदि से कोई परिवर्तन होता, अतः वह तत् या परमात्मा कहलाता है। 'त्वं' और तत् से पृथक आकाश जैसा शून्य, के 'सतरूप तत्त्व परमब्रह्म है। जो अनादि होते हुए भी अनंत नहीं है और 'सत्' 'असत्' से भि सर्वाधिक विकार रहित दीखनेवाली सत्ता ही माया है। इसके अतिरिक्त किसी रूप में उसका व नहीं हो सकता। वह अज्ञान रूप तुच्छ एवं मिथ्या है, किंतु अज्ञानियों को वह सदा वास्तविक पड़ती है। अतः उसका यथार्थ रूप अवर्णनीय है। (13-15)

मैं जन्म नहीं लेता, मैं दस इंद्रियां, बुद्धि, मन या शाश्वत अहंकार नहीं हूं। मैं अप्राण, अ शुद्ध स्वरूप, बिना बुद्धि, का साक्षी तथा सदा चित्त मात्र हूं, इसमें कोई संदेह नहीं। न मैं कर्ता भोक्ता ही, केवल प्रकृतिक साक्षी हूं। मेरे संपर्क से देह आदि सचेतन जैसे लगते हैं। मैं स्थिर, नि सदानंद; शुद्ध ज्ञानमय और निर्मल हूं। मैं सभी प्राणियों का आत्मा, प्रभु और साक्षी हूं। निःसंदेह सत्य है। समस्त वेदांत दर्शन का ब्रह्म मैं ही हूं, आकाश वायु आदि जान पड़नेवाली मैं नहीं हूं। मैं रूप नाम या कर्म नहीं हूं, अपितु सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म हूं। मैं देह नहीं हूं जन्म-मृत्यु का प्रश्न ही नहीं उठता, मैं प्राण नहीं हूं, अतः मुझे भूख-प्यास कैसे लगेगी? मैं मन हूं, अतः मुझे शोक-मोह कैसे होगा? कर्ता नहीं हूं, तो बंधन-मोक्ष कैसे होगा? यही उपनिषद

23. शुकरहस्योपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

रहस्योपनिषद की व्याख्या करते हैं। देवर्षियों ने ब्रह्मा को पूजकर नमस्कार करके पूछा कि वह रहस्योपनिषद कहें, तब ब्रह्मा बोले—'प्राचीनकाल में तेजस्वी वेदवेत्ता तपोनिधि व्यास पार्वती सहित शिव को प्रणाम करके हाथ जोड़कर बोले, 'देवाधिदेव महाप्राज्ञ लोगों को बंधनमुक्त करनेवाले ईश्वर, मेरे पुत्र शुकदेव के वेदसंस्कार कर्म में ब्रह्मोपदेश देने का समय आ गया है।' शिव बोले, 'यदि मैं केवल रूप शाश्वत साक्षात ब्रह्म का उपदेश दूंगा, तो तुम्हारा पुत्र वैराग्य के कारण सब कुछ छोड़कर स्वयं प्रकाश स्वरूप हो जाएगा। वेदव्यास ने कहा, 'चाहे कुछ भी हो, इसी संस्कार में आपसे ब्रह्मज्ञान पाकर वह शीघ्र सर्वज्ञ बने तथा आपकी कृपा से उसे चारों प्रकार की मोक्ष प्राप्ति हो। (1-6)'

व्यास के शब्दों से शिव अत्यंत प्रसन्न हुए और पार्वती सहित देवर्षियों की सभा में उपदेश देने गए और एक दिव्य आसन पर बैठे कृतकृत्य होकर भक्तिपूर्वक वहां आकर शुक ने शिव से प्रणवज्ञान पाया। तब शुक बोले, 'देवों के देव सर्वज्ञ सच्चिदानंद उमारमण भूतेश करुणानिधि प्रसन्न हो गए। आपने मुझे प्रणव एवं परमब्रह्म का उपदेश दिया है' किंतु मैं तत्त्वमसि 'प्रज्ञानब्रह्म आदि महावाक्यों को यथा क्रम उनके षडंगंयास सहित सुनना चाहता हूं।'। (7-11)

शिव ने कहा, 'बहुत सुंदर महाप्राज्ञ, ज्ञाननिधि मुनि शुक तुमने वास्तव में पूछने योग्य वेदों का रहस्य ही पूछा है अतः मैं षडंगन्यास सहित रहस्योपनिषद समझाता हूं, जिसके ज्ञान मात्र से निःसंदेह मोक्ष मिलता है। गुरु द्वारा अंगहीन वाक्योपदेश नहीं होना चाहिए। उपदेश षडंगन्यास सहित ही करना चाहिए। वेदों में उपनिषद के समान उपनिषदों में रहस्योपनिषद श्रेष्ठ है। जिस विद्वान ने यह उपनिषद कहा, उसे पुण्य के कारण तीर्थ, वेद, मंत्र पाठ तथा जप आदि से कुछ प्रयोजन नहीं था। सौ वर्ष तक महावाक्यों के अर्थ का विचार करने से एक बार इनके ऋषि आदि के ध्यान सहित जाप का फल अधिक होता है। (12-16)

(इसके अनंतर महावाक्यों का अंगन्यास विनियोग आदि है, जो उपासकों के लिए मूलरूप में ही होता है। यह एक क्रियात्मक कार्य है, अतः इसका अर्थ यहां देना अनावश्यक विस्तार ही होगा। जिज्ञासु पाठक मूलपाठ देखें)।

जिसकी सहायता से प्राणी देखता, सुनता, कहता, सूंघता एवं स्वाद ग्रहण करता है, उसे प्रज्ञान कहते हैं। ब्रह्मादि देवों तथा मनुष्य, अश्व आदि पशुओं तथा सभी प्राणियों में एक ही तत्त्व ब्रह्म है। वही प्रज्ञान ब्रह्म मुझमें भी है। मानव देह को ही ब्रह्म प्राप्ति का अधिकार है। इसमें स्थित ब्रह्म बुद्धि प्रस्फुरित होने पर 'अहं' है। पूर्ण परमात्मा यहां 'ब्रह्म' है तथा 'अस्मि' अपनी और ब्रह्म की एकता का बोधक है। सृष्टि से पूर्व नाम-रूप रहित एक अद्वितीय ब्रह्म ही था और अब भी वैसा ही है। यहां

ब्रह्म को 'तत' इंद्रियहीन शिष्य 'त्वं' तथा असि दोनों की एकता का बोधक है, यही अनुभव क… चाहिए। अहं से शरीर तक 'प्रत्यमात्मा' कहलाते हैं, 'अहं' स्वप्रकाश रूप है। दृश्य जगत में व्या… तत्त्व ही 'ब्रह्म', 'स्वयंप्रकाश' एवं आत्मारूप है। (1-7)

अज्ञान के कारण मैं अनात्म पदार्थों को 'आत्मा' समझने लगा। गुरु कृपा से महावाक्यों… उपदेश आत्मा रूप सूर्य के दर्शन से मेरा मोहभंग हुआ। इनका अर्थ वाच्य एवं लक्ष्य दोनों प्र… का होता है। 'त्वं' आदि वाचार्थ हैं। विशुद्ध चेतन लक्ष्यार्थ है। इसी प्रकार तत एवं परमात्मा क्रम… वाच्य एवं लक्ष्यार्थ है। 'असि' दोनों से एकता सूचक है। कार्य-कारण उपाधि द्वारा ही 'त्वं'… 'तत' में भेद है। इसके न रहने पर दोनों सच्चिदानंद ही हैं। जैसे यह और वह शब्द निकाल दें… केवल 'अमुक' बचता है 'जीव' कार्य रूप उपाधि तथा ब्रह्म 'कारण' रूप उपाधि है, इन उपाधि… को त्याग देने पर ज्ञानस्वरूप ही बचता है। गुरु से सुनकर मनन और निदिध्यासन करने पर ही… होता है। ब्रह्म प्राप्त करानेवाला तथा अन्य का ज्ञान नश्वर है। ब्रह्माजी का आदेश है कि शिष्य… षडंगन्यास सहित ही महावाक्यों का उपदेश दिया जाए, केवल वाक्यों का नहीं। (9-15)

भगवान शिव बोले, 'तुम्हारे ब्रह्मज्ञानी पिता के आग्रह पर ही मैंने यह रहस्योपनिषद तुम्हें दि… है। इसमें सच्चिदानंद ब्रह्म का वर्णन है, जिसके चिंतन से तुम जीवन मुक्त बनोगे। वेद के… तथा अंत में प्रष्ठित स्वर 'ओम' की प्रकृति में लीन होने से व्यक्ति ईश्वर बनता है।' यह उप… सुनकर तंमय बने शुक ने शिव को प्रणाम किया और सर्वस्व त्यागकर ब्रह्म के आनंद में डूबकर… से चले गए। पुत्र वियोग से दुःखी व्यास उन्हें पुकारते रहे, इसका उत्तर समस्त जड़-चेतन ने दि… इस उत्तर से अपने पुत्र को विश्वमय देखकर व्यास को परमानंद की प्राप्ति हुई। गुरु से… उपनिषद् को समझनेवाला पाप मुक्त होकर कैवल्य प्राप्त करता है। (16-23)

□

24. मंत्रकोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

आठ पांवोंवाला उज्ज्वल, त्रिसूत्र, सूक्ष्म, अनश्वम, त्रिमार्गवाला मैं वही हूं, ज्ञानी सर्वत्र एसो अनुभव करने पर भी उसे नहीं देख पाते। मोहकारक घोर अज्ञान के अंधकार का नाश होने पर सत्त्वगुण स्थित पुरुष ही गुणों को गुफा में स्थित निर्गुण ब्रह्म को देखते हैं। अन्य स्थिति में ध्यान से वह नहीं दीखता, ऐसा ध्यान विकारक, अज्ञानमय, अजन्मा, अविचल मात्रा का ही ध्यान करता है। यह मात्रा अभ्यास के कारण ही जान पड़ती है, उसीं से विस्तृत और प्रेरित होती है। जगत का अधिष्ठाता हंस ही पुरुषार्थ को उत्पन्न करता है। यह माया परमात्मा की कामधेनु, आदि-अंतहीन सभी की जननी, पोषक, श्वेत-श्याम रक्तवर्ण तथा समस्त कामना पूर्ण करनेवाली है। अज्ञानी इस अविषय एवं अज्ञान को दूहते हैं। केवल स्वतंत्र एवं सबको वश में रखनेवाला परमात्मा ही इसे पीता है। सर्व साधारण द्वारा दुही जानेवाली यज्ञ कर्ताओं द्वारा जिसे पीया जाता है, माया रूपी ऐसी गाय को भगवान ध्यान क्रिया से भोगता है। परमात्मा सुंदर पत्तोंवाले विश्वरूपी पीपल फलों को खाते हुए उदासीन-अविनाशी की माया को देखते हैं। स्नातक एवं अध्वर्यु इसका गान करते हैं। अनेक शास्त्रज्ञ ऋगवेदी इसकी स्तुति करते हैं और रथंतर नाम का 'वृहत समा' सात प्रकारक गायन करते हैं। मंत्र रहस्य ही ब्रह्म है, अथर्ववेदी भार्गव पदक्रम से पढ़ते हैं। (1-10)

परमात्मा ब्रह्मचर्य वृत्तिवाला, स्तंभ समान संसार रूप में इसकी गाड़ी चलाता हुआ तथा अतिविस्तृत है। यही काल, प्राण, मृत्यु, शर्व महेश्वर आदि देवों और असुरों में स्थित है। यही प्रजापति, विराट और जल रूपों में अथर्ववेद से स्तुति योग्य है। कुछ उसे 26 वां तथा कुछ 27 वां तत्त्व कहते हैं। अथर्ववेद का उपनिषद इसे निर्गुण कहता है। सांख्य पुरुष कहता है। कुछ चौबीसवीं संख्यावाला, कुछ व्यक्त-अव्यक्त, द्वैत, अद्वैत आदि कहते हैं। कुछ तीन प्रकार का, कुछ अन्य प्रकार का कहते हैं। कुछ ज्ञानी ब्रह्मा से जड़ पदार्थ तक समस्त जगत को एक ही शुभ्र रूप प्रभु के रूप में देखते हैं। जिस ब्रह्म में वह स्थावर जंगम पिरोया गया है, उसमें यह सब सागर में नदियों के समान लीन हो जाता है। जल में बने बुलबुले के समान समस्त पदार्थ उसी से उत्पन्न होकर उसी में मिल जाते हैं। उस ब्रह्म को ज्ञानी ही देखते हैं। क्षेत्रज्ञ रूप में सभी में स्थित, कारणों से देखे जानेवाले इस ब्रह्म को ज्ञानी बार-बार देखते हैं। ब्रह्मज्ञाता ब्राह्मण उसी को पाकर उसी में लीन होकर शोभा पाते हैं। यही रहस्य है। (11-20)

□

25. प्रणव उपनिष

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

उस विलक्षण कर्मवाले परमब्रह्म विष्णु की ब्रह्मविद्या निरूपित की जाती है। ब्रह्म वादियों कथित एकाक्षर ब्रह्म 'ओम' का निरूपण किया जाता है। इसमें तीन वेद, तीन वेद, तीन लोक, अग्नियों के साथ ही तीनों मात्रा एवं अर्धमात्रा भी स्थित हैं। यह परम शिव का स्वरूप है। ऋग्वे गर्हंण्त्य अग्नि तथा पृथ्वी-ब्रह्म तीनों को ब्रह्मवेत्ताओं ने ओम (अ + उ + म) के प्रथम अक्षर 'अ' माना है। यजुर्वेद, आकाश, दक्षिणाग्नि एवं विष्णु को 'उ' में माना है। सामवेद स्वर्ग, आहं अग्नि तथा शंकर का स्वरूप 'म' में माना है। (1-6)

'अ' को चंद्रमंडल के समीपवर्ती सूर्य मंडल भी माना है, चंद्र को 'उ' में तथा धुएं रहित वि सदृश अग्नि को 'म' माना है। सूर्य, चंद्र एवं अग्नि की तीनों मात्राएं भी इसमें समझनी चाहि दिए की लौ के समान ऊपर की शिखा अर्धचंद्र समझनी चाहिए। दूसरी कमल नाल के स पतली शिखा नासिका से जानेवाले सूर्य के समान 72 हजार नाड़ियों के ऊपर प्राणियों को व देनेवाली सर्वव्याप्त है। मोक्ष के समीप पहुंचने पर कास्यघंटे का-सा शब्द होता है। वेद स 'ओम' को ऐसा समझना चाहिए, जिसे सभी सुनना चाहते हैं। यह 'ओम' जिसमें लीन हो जा वह ब्रह्म कहलाता है। और अमृत्व का अधिकारी बनता है। यह सत्य है। (7-13)

□

26. निरालंबोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

सच्चिदानंद मूर्ति, निष्प्रपंच शांति निरालंब तेजस्वी गुरु शिव को नमस्कार । इस निरालंब का आश्रय लेकर सालंब वस्तुओं को छोड़नेवाला संन्यासी और योग कैवल्य (मोक्ष) पद पाता है । इन अज्ञानी प्राणियों के दुःखों की शांति के लिए जानने योग्य सब कुछ को यहां शंका रूप में कहा जा रहा है—ब्रह्म, ईश्वर, जीव, प्रकृति, परमात्मा, ब्रह्मा, विष्णु, रूद्र, इंद्र, मय, चंद्र, सुर, असुर, पिशाच, मनुष्य, स्त्रियां, पशु, स्थावर ब्राह्मण, जाति, कर्म, ज्ञान, अज्ञान, सुख, दुःख, स्वर्ग; नरक, बंधन, मोक्ष, उपास्य, शिष्य, विद्वान, मूर्ख, असुर, तप, परम पद, ग्राह्य, अग्राह्य और संन्यासी कौन हैं ? इन शंकाओं के बाद ब्रह्मस्वरूप समझाया गया है । (1-3)

महत्, अहंकार, पृथ्वी जल आदि तथा ब्रह्मांड, कर्म, ज्ञान रूप में भास होने पर भी इन सबसे रहित अद्वैत (केवल ब्रह्म ही है, भावना अद्वैतवाद है) समस्त शक्तियुक्त आदि-अंत हीन, शुद्ध पवित्र आदि चैतन्य परमब्रह्म है । यही जब अपनी माया से सृष्टि करता है और अंतर्यामी रूप में उसमें प्रवेश करके ब्रह्मा आदि जीवों की बुद्धि आदि का नियमन करता है, तब यह ईश्वर कहलाता है । ब्रह्म, विष्णु आदि के रूप में नाम-रूप का मिथ्या अभिमान होने पर स्थूल आदि की अनुभूति जीव कहलाती है । भिन्न-भिन्न देह धारण करने से चैतन्य जीव बन जाता है । ब्रह्म की सृष्टि उत्पन्न करने की शक्ति माया (प्रकृति) है । देह आदि से दूर रहनेवाला ब्रह्म परमात्मा है । यही ब्रह्म विष्णु, रुद्र आदि पूर्वकथित रूपों में प्रकट हुआ है । यही स्थावर जंगम (चराचर) है । समस्त जगत ही ब्रह्म है । (4-9)

जाति चमड़े, रक्त, मांस, हड्डी या आत्मा की नहीं होती, यह केवल व्यावहारिक कल्पना है । कर्म इंद्रियों द्वारा की जानेवाली क्रियाएं हैं । कर्ता और भोक्ता का होने का अभिमान बंधन है । नित्य नैमित्तिक (फल इच्छा से) किए जानेवाले तप, यज्ञ आदि अकर्म हैं । सृष्ट की समस्त परिवर्तनशील वस्तुओं में एक ही चैतन्य को देखना ज्ञान है और द्रष्टा चैतन्य है । यह सर्व में है, यह अनुभव ज्ञान है । यह अनुभव इंद्रिय संयम और सदगुरु की उपासना श्रवण.मनन आदि से होता है । रस्सी में सर्प के भ्रम के समान एकमात्र ब्रह्म में देव, पशु, पक्षी, मानव आदि का भ्रम अज्ञान है । सच्चिदानंद परमात्मा के ज्ञान से प्राप्त आनंद ही सुख है । इससे भिन्न रूप विषयों का विचार दुःख है । सत्पुरुषों की संगति स्वर्ग और सांसारिक विषयों तथा लोगों की संगति नरक है । (10-17)

अज्ञान द्वारा 'मैं जन्म लेता हूं', 'मरता हूं', यह मानना बंधन है । मेरे मां-बाप, मेरी धन-संपत्ति आदि विचार भी बंधन हैं । कर्तापन, अणिमा आदि सिद्धियों की इच्छा, यम-नियम आदि, वर्णाश्रम

कर्म इच्छा, आज्ञा, भय यज्ञव्रत आदि का ज्ञान भी बंधन है। नित्य-अनित्य पर विचार द्वारा अनि संसार से ममता का दूर होना ही मोक्ष है। (18-29)

वही एकमात्र सत्य है या सभी देहों में स्थित चैतन्य ब्रह्म का ज्ञान कराने वाला गुरू ही उपा है। संसार रूप अज्ञान का नाश होने पर गम्भीर ज्ञान रूप शेष ब्रह्म ही शिष्य है। सभी में स्थि ज्ञानरूपी आत्मा का ज्ञाता विद्वान है। कर्ता आदि होने का अहंकार करनेवाला मूर्ख है। ब्रह्मा, वि आदि के ऐश्वर्य की इच्छा से जप आदि द्वारा अंतरात्मा को दुःख देनेवाला तथा उग्रता आ दुर्गुणोंवाला यदि तप करें, तो वह आसुरी है। 'ब्रह्म सत्यं जगत मिथ्या' इस भाव से ब्रह्मा आदि ऐश्वर्य को प्राप्ति हेतु किया गया कार्य तप है। प्राण इंद्रिय आदि से भिन्न परम ब्रह्म का स्थान परमपद है। देश, काल आदि की सीमा से रहित चिन्मात्र स्वरूप ग्राह्य है। माया रचित बुद्धि, आदि द्वारा ग्राह्य जगत को सत्य मानना अग्राह्य है। सब कर्मों को छोड़कर ब्रह्म की शरण में जा 'मैं ब्रह्म हूं', 'यह सब ब्रह्म ही है', इस विचार से निर्विकल्पक समाधि में रहना और यती सदृ व्यवहारवाला पुरुष ही संन्यासी है, 'मुक्त है। वही पूज्य, योगी, परमहंस, अवधूत है। वही ब्राह्म है। ऐसे व्यक्ति गुरु कृपा से अग्नि समान पवित्र होकर फिर जन्म लेकर संसार में नहीं जाता, य रहस्य है। (30-40)

□

27. गायत्री उपनिषद्

प्रथम कंडिका

एकादशाक्ष मौद्गल्य के पास ग्लाव और मैत्रेय पहुंचे। मौद्गल्य के एक ब्रह्मचारी को देखकर उपहास में ग्लाव बोले, 'मौद्गल्य अपने इस ब्रह्मचारी को क्या पढ़ाता है?' इस बात को सुनकर ब्रह्मचारी ने अपने आचार्य के पास जाकर कहा, 'आज आए अतिथि ने आपको मूर्ख कहा है।' मौद्गल्य बोले, 'क्या वह विद्वान है?' शिष्य बोला, 'हां, वे तीनों वेदों के प्रवाचक हैं।' आचार्य ने कहा, 'उनका जो विद्वान सूक्ष्मदर्शी विजय इच्छुक शिष्य हो, उसे बुला लाओ।' शिष्य ने ऐसा ही किया। उस शिष्य से मौद्गल्य ने पूछा कि उसके गुरु उसे क्या पढ़ाते हैं?' शिष्य ने उत्तर में बताया कि आचार्य तीनों वेद पढ़ाते हैं। तब मौद्गल्य बोले, 'तब तो वे यह जानते होंगे कि आचार्य शिष्य को गायत्री का ही उपदेश देते हैं और वे इसके मूल अर्थ को बता देंगे। उनसे कहना कि आपने मौद्गल्य को मूर्ख तो कहा, यदि उनके प्रश्न का उत्तर आप न दे पाए, तो एक वर्ष के भीतर आपको कोई कष्ट होगा। मैंने भी सभी वेद पढ़े हैं। वे मुझे मूर्ख क्यों कहते हैं? क्या उस आचार्य का मुझसे ऐसा कहना उचित है? मेरे इस प्रश्न का उत्तर न देने का अर्थ होगा, वे इसे पढ़ाते भी नहीं होंगे।' फिर आचार्य अपने शिष्य से बोले, 'साम्य! ग्लाव एवं मैत्रेय के पास जाओ तथा उनसे कहो कि वे तुम्हें बारह मिथुन एवं चौबीस योनिवाली, भृगु-अंगिरा नेत्रोंवाली, सबकी आश्रय गायत्री तुम्हें पढ़ाएं।

द्वितीय कंडिका

शिष्य मैत्रेय के पास गया, किंतु मैत्रेय उसे उत्तर न दे सके। तब शिष्य ने कहा कि उसने (मैत्रेय ने) मौद्गल्य को मूर्ख कहा था, किंतु उनके प्रश्न का उत्तर वह न दे पाए। अतः एक वर्ष में उन्हें कोई कष्ट होगा। 'इससे दुःखी होकर मैत्रेय ने अपने शिष्यों को उनके घरों को लौटा दिया तथा स्वयं मौद्गल्य को प्रसन्न करने के लिए दूसरी प्रातः हाथ में समिधा लेकर उनके पास जाकर कहा कि वह उनकी सेवा में आया है। मौद्गल्य द्वारा इसका कारण पूछे जाने पर बताया कि वह उन्हें मूर्ख बताने पर भी उनके प्रश्न का उत्तर न दे पाया अतः उन्हें प्रसन्न करने आया है। तब मौद्गल्य बोले, 'लोगों का कहना है कि यहां आने पर भी आपकी भावना शुद्ध नहीं हुई है, तथापि मैं तुम्हें कल्याणकारी भावना देकर विदा करता हूं।' आभार मानते हुए मैत्रेय उनकी सेवा में शिष्य रूप में रहने लगे। तब उन्होंने पूछा, 'यदि आप जानते हैं, तो कृपया बतलाइए कि सविता का वरण 'करने योग्य 'भर्ग' क्या है? 'धी' तथा उसका प्रेरक क्या है?' आचार्य ने उत्तर दिया, 'वेद एवं छंद सविता के 'वरेण्य' (वरण करने योग्य) है, विद्वानों ने अन्न को देव का 'भर्ग' कहा है। कर्म ही 'धी' है, जिससे प्रेरणा दाता सविता विचरणशील है।

तृतीय कंडिका

मन सविता, वाक सावित्री है और जहां एक रहता है, वहीं दूसरा भी रहता है। दोनों योनि-एक मिथुन हैं। अग्नि सविता एवं पृथ्वी सावित्री है। वायु सविता और अंतरिक्ष सावित्री है आदित्य सविता एवं द्यौ सावित्री है। चंद्रमा सविता तथा नक्षत्र सावित्री हैं। दिन सविता, रा सावित्री है। उष्ण सविता, शीत सावित्री है। बादल-वर्षा, विद्युत-तड़क, प्राण-अन्न, वेद-छं यज्ञ-दक्षिणा, यह प्रत्येक जोड़ा क्रमशः सविता एवं सावित्री हैं। जहां एक रहता है, वहीं दूसरा रहता है। दोनों दो योनि एवं एक मिथुन हैं। 'हे विद्वान एवं परोपकारी यह ब्रह्मचारी आपकी में आया है और ज्ञान से पूर्ण हो गया है।' यह कहकर आचार्य चले गए। तब मैत्रेय ने अनु किया कि वह इसे जान गया है। इन योनियों में अथवा मिथुनों में आया हुआ उनका कोई शि अल्पायु नहीं होगा।

चतुर्थ कंडिका

प्रतिष्ठा और आयतन को देखकर ब्रह्म ने कहा कि यदि तप-व्रत किया जाए, तो सत्य प्रतिष्ठा होती है। सविता ने सावित्री से ब्राह्मण की सृष्टि की। उसने सावित्री को घेर लिया सावित्री का प्रथम चरण 'तत्सवितुर्वरेण्यं' है। पृथ्वी से ऋक को ऋक से अग्नि को फिर अग्नि श्री, स्त्री, मिथुन, प्रजा कर्म, तप, सत्य, ब्रह्मा— एक से एक युक्त हुए। ब्रह्मा से ब्राह्मण और ब्राह्मण से व्रत जुड़ा। व्रत से ही ब्राह्मण तीक्ष्ण, पूर्ण एवं अविच्छिन्न होता है। इसे जानकर इसी प्र व्याख्या करनेवाले विद्वान का वंश तथा जीवन अविछिन्न होता है।

पंचम कंडिका

'भर्गो देवस्य धीमहि' गायत्री का दूसरा चरण है। अंतरिक्ष से यजुष को, यजुष से वायु से मेघ, वर्षा, औषधियां, पशु, कर्म, तप, सत्य, ब्रह्म, ब्राह्मण और व्रत परस्पर एक-दूसरे से युक्त है। व्रत से ब्राह्मण तीक्ष्ण और अविछिन्न होता है। इस प्रकार की व्याख्या इस द्वितीय चर करने पर वंश तथा जीवन अविछिन्न होता है।

षष्ठ कंडिका

'धियो या नः प्रचोदयात्' यह गायत्री का तृतीय पाद है। द्यु लोक, साम, आदित्य, र वर्षा, औषधियां, पशु, कर्म, तप, सत्य, ब्रह्म, ब्राह्मण और व्रत को क्रमशः अपने बादवाले से किया। व्रत से ब्राह्मण तीक्ष्ण, पूर्ण एवं अविच्छिन्न वंशवाला होता है।

सप्तम कंडिका

सावित्री के इन तीनों पादों का ज्ञाता ब्राह्मण अभिपन्न, ग्रसित और परामृष्ठ होता है। अ भी ब्रह्म से अभिपन्न आदि है। आकाश से वायु, वायु से ज्योति, ज्योति से जल, जल से भूमि

से अन्न, अन्न से प्राण, प्राणों से मन, मन से वाणी, वाणी से वेद तथा वेदों से यज्ञ अभिपन्न (प्राप्त), ग्रसित तथा परामृष्ट है। इस प्रकार ये बारह महाभूत प्रतिष्ठित हैं। इनमें यज्ञ श्रेष्ठ है। अपने को इसका मर्मज्ञ समझनेवाला वस्तुतः इसे जानता ही नहीं।

यज्ञ वेदों में, वेद वाणी में, वाणी मन में, मन प्राण में, प्राण अन्न में, अन्न भूमि में, भूमि जल में, जल तेज में, तेज वायु में, वायु आकाश में, आकाश ब्रह्म में और ब्रह्मज्ञान ब्राह्मण में प्रतिष्ठित है। इसका ब्रह्मज्ञानी पुण्य, कीर्ति, सुगंध को प्राप्त करके निष्पाप बनकर अनंत ऐश्वर्य को प्राप्त करता है।

□

28. अमृतनादोपनिष

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

ज्ञानी मनुष्य शास्त्राध्ययन कर बार-बार अभ्यास करे। परम ब्रह्म को जानकर सांसारिक मोहों से दूर रहे। 'ओम' रूपी रथ में बैठकर, विष्णु को सारथी बनाकर रुद्र की आराधना में ब्रह्मलोक का इच्छुक मार्ग समाप्त होने तक रथ को चलाता जाए। तब मनुष्य इस रथ को छोड़ आगे बढ़ जाता है। 'ओम' की मात्राओं, पद विश्व, विराट ध्यान एवं त्याग के बाद 'म' के ईश्वर के ध्यान से तुरीय तत्त्व में प्रवेश होता है। यह समस्त प्रपंचों से दूर है। शब्दादि विषय चंचल मन इन्हें सूर्य के समान अपने आत्मा में देखें, आत्मचिंतन करें। इसे प्रत्याहार कहते हैं। याम, धारणा, ध्यान, तर्क एवं समाधि, योग, के इन छः अंगों के बाद प्रत्याहार की गणना होती (1-6)

तपाने से जैसे सोना शुद्ध होता है, वैसे ही इंद्रियों से मिले दोष प्राणायाम से नष्ट होते प्राणायाम से दोषों तथा धारणा से पापों को दूर करते हुए आराध्य का ध्यान करते हुए पूरक, एवं कुंभक करते हुए प्राणायाम का अभ्यास करें। व्याहृ ति एवं ओम के साथ तीन बार गायत्री पढ़ते हुए पूरक ! कुंभक रेचक करना ही प्राणायाम है। वायु को मुंह से बाहर निकालकर हृदय वायु एवं विचारों से रिक्त करना रेचक है। कमल नाल के समान मुंह से वायु को धीरे-धीरे खींचना पूरक है। श्वांस को हिले डुले बिना अंदर ही रोकना कुंभक है। सब कुछ देखते हुए अंधे के समान न देखना, बहरे के समान न सुनना और देह को काष्ठ जैसा समझना प्रशांत है। संकल्पात्मक मानते हुए मन को परमात्मा में लगाना और उसी का चिंतन करना 'धारणा' शास्त्रानुकूल विचार तर्क है। जिसकी प्राप्ति पर अन्य प्राप्तियां हीन लगने लगें यही समाधि (7-16)

निर्दोष सुंदर भूमि में कुशासन पर पद्मासन आदि लगाकर उत्तराभिमुख बैठकर प्रथमंडल मानसिक जप करें। फिर एक अंगुली से एक नाकछिद्र को बंद करके दूसरे से सांस खीचें फिर छिद्रों को बंद करके वायु को रोकें। तेजोमय ब्रह्म के एकाक्षर रूप ओम का चिंतन करते हुए करें। इसी प्रकार अनेक बार करें, किंतु एक समय में स्थूलादि मात्रा से अधिक न करें। दृष्टि तिरछी, ऊपर या नीचे न करते हुए, अचल एवं कंपनहीन होकर सदा योगाभ्यास करें नियमित हो। यह अभ्यास ताल, मात्रा, निष्कंप, धारणा योजन तथा द्वादश मात्राओं के नियम है। यह अक्षर अघोष अव्यंजन, अनासिक, ओष्ठयहीन एवं 'र' वर्णहीन है। यह कभी नष्ट होता। जिससे योगी प्राणों के जानेवाले मार्ग को देखता है, उस मार्ग के प्राप्ति के लिए उसका अभ्यास करें। वायु का प्रवेश-द्वार हृदय है तथा इसके ऊपर मूर्धाद्वार और इसके भी ऊपर मोक्ष है। यही सुषिर मंडल कहलाता है (17-26)।

योगी के लिए आलस्य, भय और निद्रा-भोजन-जागरण की अधिकता, निराहार रहना तथा क्रोध वर्जित है। इस विधि से नित्य सही अभ्यास करने से योगी तीन मास में निःसंदेह ज्ञान, चार में देव-दर्शन, पांच या छः मास में कैवल्य प्राप्त कर लेता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश—इन पांचों तत्त्वों की धारणा के समय क्रमशः प्रवण की पांच, चार, तीन, दो और एक मात्रा का तथा प्रणव का चिंतन करते समय उसकी आधी मात्रा का चिंतन करना चाहिए। पंचभूतों की सिद्धि एवं चिंतन मानसिक धारणा द्वारा करना चाहिए। इससे ये वश में होते हैं। तीन अंगुली लंबा श्वास प्राण वायु का आधार है। वस्तुतः यही प्राणा कहा जाता है। दिखाई पड़नेवाले बाहरी प्राण में एक लाख, तेरह हजार, छः सौ अस्सी निःश्वास एक दिन-रात में होते हैं। प्राण, अपान, उदान, व्यान तथा समान क्रमशः हृदय में, गुदा में, कंठ में, सारे शरीर में तथा नाभि में रहते हैं। इनका वर्ण क्रमशः लाल मणि के समान, इंद्रगोप मणि के समान, धूसर, आग की लौ जैसा तथा गाय के दूध जैसा होता है। जिस साधक का प्राण इस मंडल का भेदन करके मस्तिष्क में प्रवेश कर ले, वह कहीं भी क्यों न मरे, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। (27-38)

□

29. एकाक्षरोपनि

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

हे ईश्वर ! तुम एक अक्षर (अनश्वर) सोम में सुषुम्ना से प्रविष्ट हो, तुम विश्वगर्भ पुराण
तथा भुवनों के एकमात्र रक्षक हो। तुम कण-कण में व्याप्त, कवियों के आश्रय, अग्नि, विश्व
सर्वप्रथम उत्पन्न, हिरण्यरेता, यज्ञ और विभु हो। विश्व के प्राण, जन्म और योनियां तुम्हारे का
हैं। तुमने एक चरण से विश्व को व्याप्त किया है। तुम विश्व की उत्पत्ति के कारण और प्राण
उसके धनुष-बाणवाले रक्षक कुमार भी तुम हो। सूर्य तुम्हीं से प्रकाशमान है। कार्तिकेय रूप
सेनापति तुम्हीं हो। अरिष्टनेमि भी तुम्हीं हो। वज्र धारण करनेवाले इंद्र, प्राणियों के स्वामी रुद्र
की इच्छा करनेवाले, स्वाहा, स्वधा और वषट् भी तुम हो तथा प्राणियों की गुहा में रहनेवाले भी
हो। तुम्हीं धाता, विधाता, पवन गरुड़, विष्णु, बाराह, रात, दिन, भूत, भविष्य, वर्तमान, क्रिया,
तथा परम अक्षर भी तुम हो। तुम्हारे मुंह से ही वेद निकलते हैं, तुम्हीं सम्राट, वसु, अंतरिक्ष, य
यज्ञाग्नि तथा पैत्यगण हो। (1-7)

यह अंधकार नाशक सूर्य तथा हृदयाकाश में ब्रह्मांड रूपी गर्भ वाली सुनाभि भी तुम
सर्ववेद्य, भुवन रक्षक, प्रजाओं की आधारनाभि, सबमें ओत-प्रोत, विविध गतियोंवाला प्र
छंदमय विगर्व है। तुम रजोगुण से परे हो। चारों वेदों से तुम्हारी स्तुति होती है। तुम्हीं स्त्री
कुमार, कुमारी, धाता, वरुण, राजा, वर्षा, सूर्य आदि सभी हो। सूर्य, गरुड़, चंद्र, वरुण आदि
हो, भूः, भुवः, स्वः तुम हो। इस हृदयस्थित पुराण पुरुष को, जो सब में विद्यमान है, समझता
ज्ञानियों की परम गति को प्राप्त करके अविद्या का नाश करके जीवनमुक्त हो जाता है। (8-

30. नादविंदूपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठा मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्य एधिवेस्य मे आपीस्थ। श्रुतं मे प्रहासीः। अनेनाधीतेताहोरात्रांसंदधा म्यगृतं वदिव्याज्ञि। सत्यं तन्मामवत् तद्वक्तात्म्वत, अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्। ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

ओम (ॐ) को हंस मानने पर (ओम = अ + उ + म) अ, उ तथा म क्रमशः इसके दाहिना, बायां पंख और पूंछ हैं। अर्ध मात्रा सिर है। तो सत्त्व, रजस एवं तमोगुण क्रमशः शरीर एवं दो पांव कहलाएंगे। भूः, भुवः, स्वः और महालोक क्रमशः पैरों, जांघों, कमर तथा नाभि में होंगे। हृदय, कंठ, ललाट में, भौंहों के मध्य में क्रमशः जनलोक, तपोलोक तथा सत्यलोक होंगे। इस प्रणरूप हंस में आरूढ़ होकर यथाविधि अनुष्ठान आदि करने से पापमुक्ति एवं मोक्ष प्राप्त होता है। आग्नेयी इसकी प्रथम तथा वायव्य द्वितीय मात्रा है। तृतीय उत्तर मात्रा भानुमंडल है तथा चौथी अर्धमात्रा वारुणी है। मात्राओं में तीन-तीन मुख हैं। यह प्रणव धारणा आदि द्वारा जाना जाता है। इसकी बारह कलाएं क्रमशः इस प्रकार हैं घोषिणी, विद्युन्माला, पतंगी, वायुवेगिनी, नामधेया, ऐंद्री, वैष्णवी, शांकरी, महत्ती, नामधृति, नारी और ब्रह्मी। (1-11)

इन मात्राओं में पहली से बारहवीं मात्रा तक साधक के प्राण छूटने पर क्रमशः भारत का चक्रवर्ती सम्राट्, यशस्वी यक्ष, विद्या धर, गंधर्व, तुषित देवताओं के साथ ऐश्वर्य, इंद्र का सायुज्य, विष्णु पद, रूद्र की सीवापता, महलोक, जनलोक, तपोलोक तथा शाश्वत ब्रह्मलोक की प्राप्ति होती है। ब्रह्मज्ञान हेतु उससे उच्च, शुद्ध आदि कल्याणकारी तत्त्व है, जिससे सब ज्योतियों का उदय होता है। तब मन के अतींद्रिय गुणातीत, अनुपम शांत शिव में लीन हो जाने पर अद्वितीय योगमार्ग के पथिक ईश्वर-श्रद्धा से सभी आकर्षणों को त्यागकर धीरे-धीरे शरीरस्थ अहं को भी त्याग देता है। तब बंधनों के मुक्त होने पर कैवल्य प्राप्त करके साधक साक्षात परमब्रह्म होकर परमानंद प्राप्त करता है। अतः सतत आत्मा ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए, पूर्वजन्म के कर्मफलों के दुःख से उद्विग्न नहीं होना चाहिए। आत्मज्ञान होने पर भी प्रारब्ध साथ नहीं छोड़ते। (12-22)

जिस प्रकार नींद से उठने पर स्वप्न की असत्यता होती है, वैसे ही आत्मज्ञान होने पर प्रारब्ध का भी नाश होता है। पूर्व जन्म के सांचित कर्म प्रारब्ध कहलाते हैं, आत्मज्ञानी पूर्व जन्म को ही मिथ्या समझता है, अतः प्रारब्ध कैसा ? जैसे स्वप्न की वस्तुएं आभास मात्र होती हैं, वैसे ही ज्ञानी के लिए यह देह होती है। आभासी वस्तु का जन्म ही नहीं होता। जैसे मिट्टी अपने बर्तनों के उत्पादन का कारण होती है, वैसे ही आत्मा ही सारे सृष्टि प्रपंच का कारण है। वेदांत के अनुसार अज्ञान ही इसका कारण है, अज्ञान नाश पर संसार भी नहीं रहता। यह सब रस्सी में सांप के भ्रम जैसा है। रस्सी को जानने पर भ्रम नष्ट होने के समान ही आत्मज्ञान से सांसारिक भ्रम भी दूर हो जाता है। इस स्थिति में पहुंचकर साधक प्रारब्ध को नहीं देखता, प्रारब्ध की बातें अज्ञानियोंके लिए हैं। इसका

नाश होने पर आत्मा एवं ब्रह्म के चिंतन से ज्योति रूप परमात्मा का नाद रूप में साक्षात्कार होता योगी सिद्धासन में बैठे, वैष्णवी मुद्रा धारण करे, अनाहत ध्वनि दाहिने कान से सुने। यह ना अभ्यास बाह्य ध्वनियों को रोक लेता है, इस प्रकार प्रणव के दो पक्षों के बाद संपूर्ण प्रणव को जी तुर्य पद प्राप्त करे। प्रारंभ में नाद नानाविध होता है किंतु अभ्यास से फिर यह सूक्ष्म सुनाई देता (23-33)

प्रारंभ में नाद-ध्वनि समुद्र, मेघ, भेरी और झरने की तरह, मध्य में सर्दल, घंटा तथा काहल की ध्वनि के समान तथा अंत में घूंघरू, वंशी, वीणा एवं भ्रमर की आवाज के समान धीमे से सु देती है। प्रारंभ की ध्वनि सुनाई पड़ने पर धीमे नाद की कल्पना करनी चाहिए। तृतीय प्रकार के में आने पर मन को भटकने न दे। जिस नाद में मन लगे वह उसी में स्थिर और लीन हो जाता सांसारिकता भूलकर फिर वह दूध में पानी की तरह मिल जाता है। नाद के साथ चिदाकाश में हो जाता है। उदासीन होकर रुचिकार नाद का चिंतन करते हुए, चेष्टाओं को त्यागकर चित्तको करनेवाले नाद का अनुसंधान करे। जैसे भ्रमर रस ही लेता है; गंध नहीं, वैसे ही साधक नाद में आनंदित होता है; विषयों में नहीं। नाद ध्वनि से विस्मृत सर्प के समान चित्त भी नाद में सांसारि भूल जाता है। विषयी हाथी के समान मन भी अंकुश रूपी नाद से वश में हो जाता है। मन र हिरन या लहरों को रोकने के लिए नाद जाल या बांध के समान है। (34-45)

नाद के प्रणव से संलग्न होने पर वह ज्योतिर्मय हो जाता है और लीन हो जाता है। यही वि का परम पद है। शब्दों के सुनाई देने तक ही मन में आकाश का संकल्प रहता है। नाद मंद प पर मन भी नहीं रहता। नाद में अक्षर की समाप्ति को परम पद समझें। नादानुसंधान वासना को करता है और मन को परमब्रह्म में लीन करता है, अर्थात् असंख्य नाद और विंदुका इसमें लीन जाते हैं। तब यह योगी की मुख्यावस्था है। तब योगी सभी चिंताओं से हीन मृत के समान हो ज है। उसे शंख दुंदुभियों का नाद भी नहीं सुनाई देता। मन से रहित अवस्था में देह काष्ठ जैसी हो जाती है। उसे शीत-उष्ण की भी प्रतीति नहीं होती और सुख-दुःख की और न मान-अपमान ही। उदासीन योगी को अब स्वप्न, जागृत एवं सुषुप्त से भी मुक्ति हो जाती है। न दिख पड़नेवाली वस्तु के अभाव में उसकी दृष्टि, प्रत्येक अभाव में वायु और अवलंब के अभाव में उस चित्त स्थिर हो जाता है, ऐसा योगी ब्रह्म प्रणव नाद की तुरीय अवस्था में पहुंचा हुआ होता (35-56)

□

31. तुरीयातीतोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

पितामह ब्रह्म पिता आदिनारायण के पास जाकर बोले कि तुरीयातीत अवधूत का कौन-सा मार्ग है ? इसपर नारायण बोले, 'अवधूत मार्ग पर चलनेवाले व्यक्ति विरले ही होते हैं । विद्वानों का मत है कि यदि एक भी ऐसा व्यक्ति होता है, तो उसका चित्त मुझमें तथा मैं उसके अंतः में रहता हूं । कुटीचक्र, बहूदक, हंस एवं परमहंस, उसकी ये चार अवस्थाएं क्रमशः होती हैं । आत्मानुसंधान से समस्त प्रपंच को जान लेने पर वह दंड, कमंडलु, कटिसूत्र, कौपीन वस्त्र तथा अन्य क्रियाओं को भी जल में त्याग देते हैं । दिगंबर बनकर छालों के वस्त्र आदि को त्यागकर नियम हीन बन जाते हैं । बाल काटना, तिलक करना, लौकिक-वैदिक कर्मकांड, पुण्य-अपुण्य, ज्ञान-अज्ञान आदि सभी कुछ का परित्याग कर देते हैं । उन्हें शीत-उष्ण, मान-अपमान, निंदा-स्तुति, गर्व, मोह, लोभ, द्वेष काम, क्रोध, सुख-दुःख आदि सभी को आग में झोंककर अपने शरीर को मुर्दा समझ लेते हैं । गाय की तरह जो भी सुलभ हो उसी से प्राण धारण करते हुए लालच, पांडित्य, ऊंच-नीच भावना को धूल समझने लगते हैं । वे राग-विराग शुभाशुभ से ऊपर होते हैं । उनकी इंद्रियां शांत हो जाती हैं । पूर्व जीवन के आश्रम, धर्म आदि को भूलने के साथ ही वर्णाश्रम को त्याग देने हैं । सदा सावधान रहते हुए रात दिन विचरण, उंमत्तता रही होने पर भी बालक, पागल या पिशाच के समान अकेले रहना, न बोलना, आत्मस्वरूप का चिंतन करते रहना आदि लक्षणोंवाला अवधूत 'ओम' के भाव में डूबर शरीर त्यागता है । ऐसा अवधूत कृतार्थ हो जाता है । यही इसका सार है ।

□

32. योगराजोपनिष[द]

योगियों की योगसिद्धि के लिए योगराज उपनिषद कहा जाता है। योगचतुर्विध हो[ता] है—मंत्रयोग,लययोग,राजयोग तथा हठ योग,योग कें तत्त्व-द्रष्टाओं ने इसकी चार अवस्थाएं मा[नी] हैं। आसन,प्राणसंरोध,ध्यान और समाधि प्रत्येक योग में इनकी उपस्थिति है। विद्वान,ब्रह्मा,वि[ष्णु] शिव आदि का जप करें। वत्सराज आदि ने मंत्रयोग और व्यास आदि द्वारा लययोग की सिद्धि [की] गई। महात्मा नौ चक्रों में लय से सिद्धि प्राप्त करते हैं। भगाकृति ब्रह्मचक्र प्रथम है,जो तीन घेरों [में] होता है। मूलकंद अपान स्थल में है, इसे कामरूप, वह्निकुंड और तत्त्वकुंडलिनी कहा जाता है। मुक्ति हेतु ज्योतिरूप जीव का ध्यान करे। दूसरा स्वाधीष्ठान चक्र बीच में बताया गया है। प्रव[ाल] के अंकुर के समान पश्चिमा भिमुख एक लिंग है,जिसका उड्डीयाण पीठ में ध्यान करते हुए ज[गत] को आकर्षित करे। तृतीय नाभि चक्र के मध्य में जगत स्थित है। विद्युत के समान पांच चक्रवा[ली] मध्य शक्ति का चिंतन करे। इसके ध्यान से विद्वान सभी सिद्धियां प्राप्त करता है। चौथा हृदय-च[क्र] है,यह अधोमुख है। उसके मध्य में प्रकाश स्वरूप हंस का प्रयत्नपूर्वक चिंतन करना चाहिए,इ[सके] ध्यान से निःसंदेह सारा जगत वश में हो जाता है।(1-11)

पांचवां कंठ-चक्र है। बाएं इड़ा, दाहिने पिंगला तथा मध्य सुषुम्ना स्थित हैं। उसमें प[वित्र] ज्योति का ध्यान करने से सिद्धियां मिलती हैं। छठा तारका चक्र है,इसे घंटिका स्थान भी कहते हैं, दशम द्वार मार्ग है,इसे राज दंत भी कहा जाता है,वहां शून्य में मन को लीन करने पर निश्चय मु[क्ति] होती है। सातवां भ्रू-चक्र बिंदु-स्थान भी कहलाता है। भौंहों के मध्य में वतुर्लाकार ज्योति का ध्[यान] करने से मुक्ति होती है। आठवां निर्वाण सूचक ब्रह्मरंध्र नामक चक्र है। धुएं के समान सूचि[का] समूह का ध्यान करने से योगी मुक्त होता है। इसे मोक्षप्रद नीलचेतस जालंधर समझना चाहि[ए]। नवां सोलह दलवाला व्योम चक्र है। पराशक्तिवाले इस चक्र को संविद कहते हैं। इस पूर्ण [गि]रि शक्ति पीठ ध्यान से मुक्ति मिलती है। इन नौ चक्रों में प्रत्येक के ध्यान से सिद्धि-मुक्ति हाथ में [आ] जाती हैं। ज्ञानरूपी आंखों से जो मध्य में दो दंडों को देखते हैं,वे ब्रह्मलोक जाते हैं। ऊर्ध्व श[क्ति] के निपात अधः शक्ति के संकोच तथा मध्यशक्ति के प्रबोध से निःसंदेह परमसुख मिलता [है]। (12-21)

33. आत्मपूजोपनिषद्

आत्मा का अनवरत चिंतन ही ध्यान है। समस्त कर्मों का निराकरण आह्वान है। निश्चल ज्ञान आसन है उसके प्रति उन्मुख रहना पाद्य है, मन लगाए रखना नमस्कार है। आत्मा का दीप्त रहना आचमन है। वरप्राप्ति स्नान और सभी आत्माओं के दृश्य का विलय ही गंध है। विशेष दृष्टि अक्षत है। परिपूर्ण चंद्ररूप अमृत का एकीकरण नैवेद्य है। चित्त की दीप्ति पुष्प है। सूर्यात्मक बनना दीप है। निश्चलता प्रदक्षिणा। मैं वही हूं यह भाव नमस्कार है। परमेश्वर की स्तुति मौन है। सदा संतोष विसर्जन है। इस प्रकार परिपूर्ण राजयोगी का सर्वात्मक पूजोपचार होता है। सर्वात्मकता ही आत्मा का आधार है। मैं सभी दुःखों से हीन परिपूर्ण ब्रह्म हूं, यही भावना मोक्ष के इच्छुकों की मोक्ष सिद्धि है। यही सार है।

□

34. ब्रह्म उपनिष

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

परमात्मा हम दोनों गुरु-शिष्यों की साथ-साथ रक्षा करे। साथ-साथ ही हमें भोज्य पद प्रदान करे। हम दोनों मिलकर वीरता के कार्य करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो और हम पर विद्वेष न करें। शारीरिक, भौतिक और दैविक त्रिविद्य ताप (दुःख) शांत हों।

इस देह में परम पुरुष के नाभि, हृदय, कंठ एवं मूर्धा, ये चार स्थान हैं, जहां वह चतुष्पाद (चरणोंवाला) ब्रह्म सुशोभित है। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति तथा तुरीय, इन चारों अवस्थाओं में क्रम ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और परम अक्षर ब्रह्म प्रकाशयुक्त रहते हैं। वह आदित्य, विष्णु, इंद्र नामवाला परमात्मा मन, कान, हाथ, पांव आदि से रहित ज्योति स्वरूप है। जहां लोक, वेद, दे यज्ञ, माता, पिता, बहिन, चांडाल, भील, श्रमण, तापस आदि सभी अपने रूपों में नहीं रहते, अपितु निर्वाणरूप परम ब्रह्म ही रहता है, वही उसका रूप है। देवता, ऋषि, पितर इसे नहीं बता स समस्त विद्यामय वह ब्रह्म केवल ज्ञान से ही जाना जा सकता है। देवता, प्राण और ज्योति हृद रहते हैं, ज्ञानी उसे इसी प्रकार जानते हैं। ये ज्ञानी त्रिवृत्त सूत्र को (जनेऊ) जाननेवाले हैं। यज्ञोपवीत परम पवित्र है। यह प्रजापति के साथ ही उत्पन्न हुआ। आयु देनेवाला समझते हुए परम पवित्र यज्ञोपवीत को धारण करने से बल एवं तेज से युक्त बनो। (1-5)

ज्ञान शिखा सहित मुंडन करके बाह्य यज्ञोपवीत को त्यागकर अक्षर (अविनाशी) परम रूपी सूत्र को धारण करे। परम ब्रह्म की सूचना देने के कारण ही इसे सूत्र कहते हैं। अतः इस को जाननेवाला विप्र वेदों में पारंगत हो जाता है। जैसे सूत में माला के मोती पिरोए जाते हैं, वैसे इस सूत्र (जनेऊ) रूपी ब्रह्म में यह समस्त विश्व गुंथा हुआ है। इसलिए इसे सूत्र कहा जाता योगवेत्ता एवं तत्त्वद्रष्टा व्यक्ति को इसे धारण करना चाहिए। उत्तम योग में स्थित योगी बाह्य का परित्याग करके ब्रह्म के स्वरूप के ज्ञानरूपी सूत्र को धारण करे, इसको धारण करनेवाला चै हो जाता है तथा उसे पवित्रता प्राप्त होती है। ज्ञानरूपी इस यज्ञोपवीत को धारण करनेवाले ही इ वास्तविक ज्ञाता तथा इसे धारण करनेवाले हैं। (6-10)

जो ज्ञानरूपी शिखा एवं यज्ञोपवीत धारण करते हैं और जिनकी ज्ञान में निष्ठा है, उन्हें परम पवित्र बना देता है। अग्नि के समान ज्ञानरूपी शिखावाले वास्तविक शिखावाले हैं, न केशों की शिखा रखनेवाले। वैदिक कर्मों में अधिकृत ब्राह्मण आदि ही इसे धारण करें, क्योंकि इन क्रियाओं का अंग है। ब्रह्मवेत्ताओं का मत है कि जिसकी शिखा ज्ञानमय तथा सूत्र (जने ब्रह्ममय है, वही सच्चे अर्थों में ब्राह्मण है। यह यज्ञोपवीत श्रेष्ठ परायण है, अतः विद्वान यज्ञोप

धारण करनेवाले यज्ञरूप एवं यज्वा कहे जाते हैं। परमात्मा अकेला सबका आत्मा सर्वव्यापक साक्षी चेतन केवल है। एक ही परमात्मा सभी प्राणियों में स्थित है, जो उन्हें अनेक रूपों में बनाता है। उसे आत्मा में स्थित देखनेवाले धैर्यशाली ही शाश्वत सुख प्राप्त करते हैं। आत्मा एवं प्रणव को क्रमशः नीचे और ऊपर की अरणी बनाकर ध्यानरूपी मंथन से इस निगूढ़ आत्मा का दर्शन करें। तिलों में तेल, दही में घी, स्रोतों में जल, लकड़ी में अग्नि के समान आत्मा में स्थित इस परमात्मा को विद्वान सत्य एवं तप से देखता है। (11-19)

जैसे मकड़ी जाले को बनाती और समेट लेती है, वैसे ही जीवात्मा जागृत एवं स्वप्नावस्था में आता-जाता है। जागृत, स्वप्न, सुषुप्त एवं तुरीय—इन चारों अवस्थाओं का आत्मा क्रमशः नेत्र, कंठ, हृदय और मूर्धा में रहता है। जहां मन के साथ वाणी भी उसे प्राप्त किए बिना ही लौटकर वापस आ जाती है, उसे जाननेवाला मुक्त हो जाता है। सर्वत्र व्यापक आत्मा दूध में घी के समान स्थित है। उसे आत्मज्ञान एवं तप से ही प्राप्त किया जा सकता है। यही ब्रह्म उपनिषदों का परम वर्णनीय विषय है। (20-23)

□

35. ब्रह्मविद्या उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

परमात्मा हम दोनों गुरु-शिष्यों की साथ-साथ रक्षा करे। साथ-साथ ही हमें भोज्य पदा प्रदान करे। हम दोनों मिलकर वीरता के कार्य करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो और हम परस्पर विद्वेष न करें। शारीरिक, भौतिक और दैविक त्रिविध ताप (दु:ख) शांत हों।

ब्रह्मविद्या उपनिषद् का वर्णन किया जाता है। अद्भुत कर्मोंवाले विष्णु-रूपी ब्रह्म के प्रसा से ध्रुव अग्नि रूपी ब्रह्मविद्या का रहस्य कहा जाता है। ब्रह्म वेत्ताओं द्वारा जिसे एकाक्षर ब्रह्म क गया है, उसके स्वरूप तथा तीनों कालों के विषय में बताता हूं। उस प्रणव में तीन देवता, तीन तीन अग्नियां तीन अक्षरवाले शिव को तीन मात्राओं तथा अर्ध मात्रा के समान हैं। इस अं (अ+उ+म) में विद्वानों ने ऋग्वेद, गार्हपत्य अग्नि, पृथ्वी तत्त्व तथा ब्रह्मा को 'अ' का श यजुर्वेद, दक्षिणाग्नि, आकाश तत्त्व एवं विष्णु को 'उ' का शरीर तथा सामवेद, आह्वनीय अग्नि तत्त्व तथा परमेश्वर को 'म' का शरीर बताया है। इसके शंख के समान मध्य भाग का 'अ' मंडल में, 'उ' चंद्र मंडल में तथा धुएं से रहित अग्नि और विद्युत 'म' में रहनेवाली दीपक की शि के समान इसकी अर्धमात्रा होती है। कमल की नाल के समान सूक्ष्म दूसरी शिखा बहत्तर ह नाड़ियों को भेदकर मूर्धा में सभी प्राणियों को वरदान देनेवाली सर्व व्याप्त जैसी स्थिति में रहती (1-11)

जैसे कांसे के घंटे का शब्द शांति के लिए लीन करता है, वैसे ही सब प्रकार की शांति के लिए ओंकार का प्रयोग करना चाहिए। जिसमें शब्द लीन हो जाते हैं, उसे ब्रह्म कहा गया ब्रह्म में लीन बुद्धि को अमृतकल्पा (अमरत्व देनेवाली) कहा गया है। बाल की नोक के सौवें के समान सूक्ष्म माना गया जीव प्राण कहलाता है, इसे वायु, तेज तथा आकाश, ऐसे तीन प्रकार माना गया है। वह सूर्य के समान समस्त विश्व को प्रकाशित करनेवाला शिव स्वरूप शुद्ध निर्मल तत्त्व नाभि के स्थान पर स्थित है। जीव सर्वदा सकार एवं हकार का जप करता है। ना निकला हुआ यह जप विषयों से रहित होता है। दूध से निकले हुए घी के समान इस कलाहीन को पांचों प्राणायामों द्वारा समझें, जैसे मथानी से दूध मथा जाता है, वैसे ही चार कलाओंवाले में स्थित का देहभ्रमण होता है। इसमें महाखग शीघ्रता से निवास करता है। श्वास की समाप्ति जीव भी कलारहित हो जाता है। (12-19)

नभ में स्थित कलाहीन तत्त्व का चिंतन भवबंधन से मुक्ति देनेवाला है। हृदय में अनाहत ध्वनि से युक्त स्वयं प्रकाशित चिदानंद को, जो जानता है, वह हंस कहलाता है। जो

(सद्बुद्धिवाला) रेचक एवं पूरक को त्याग कर कुंभक की अवस्था में प्राण तथा अपान को समाहित करके मस्तक में स्थित अमृत को पीकर आदर सहित ध्यान से नाभि मध्य में दीपक के समान जगमगाते महादेव का 'हंस-हंस', इस प्रकार जपते हुए अभिषेक करता है, वह पृथ्वी में जरा, मरण एवं रोग के दुःखों से मुक्त हो जाता है। अतः अणिमा आदि विभूतियों की प्राप्ति हेतु प्रतिदिन ऐसा करें। इससे ईश्वर-प्राप्ति होती है। अनेक इसी मार्ग से परम पद प्राप्त कर चुके हैं। इस अमृत हंस विद्या के समान लोक में कोई चिर साधन नहीं है। जो हंस नाम की इस परम पावन विद्या को देता है, उसकी सदा दत्त-चित्त होकर सेवा करनी चाहिए। उस गुरु के शुभाशुभ हर आदेश का पालन करें। गुरु सेवा से प्राप्त इस हंस-विद्या से आत्मा का साक्षात्कार और निश्चल ब्रह्म ज्ञान के पश्चात् देह, जाति आदि के संबंध वर्णाश्रम एवं वेद शास्त्र आदि को पग चिह्नों की तरहं त्याग दे और श्रेय प्राप्ति के लिए गुरु-सेवा करे। (20-30)

(श्रुतिवेद) मत है कि गुरु ही साक्षात हरि हैं। यह सबसे बड़ा सत्य है, क्योंकि श्रुति श्रेष्ठ प्रमाण है; इसका विरोध नहीं किया जा सकता। बिना प्रमाण के वस्तु अनर्थकारक होती है। देह में स्थित और देह वर्जित क्रमशः सकल एवं निष्कल हैं। आप्त पुरुष से (गुरु आदि) मिलनेवाला यह उपदेश सर्वत्र समान रूप से स्थित है। 'हंस-हंस' ऐसा बोलनेवाला ब्रह्मा, विष्णु और शिव रूप हैं। अतः गुरु के मुख से सर्वतोमुख ब्रह्म को जानो। तिलों में तेल तथा पुष्प में सुगंध के समान ब्रह्म पुरुष के शरीर के भीतर एवं बाहर स्थित है। जैसे उलका के प्रकाश को देखकर उसे त्याग देते हैं, वैसे ही ज्ञेय (ब्रह्म) की प्राप्ति पर ज्ञान त्याग दिया जाता है। पुष्प एवं उसकी गंध क्रमशः सकल एवं निष्कल के समान हैं अथवा वृक्ष और उसकी छाया क्रमशः सकल और निष्कल की तरह है। इस तरह सकल तथा निष्कल का भाव सर्वत्र स्थित है, इनमें सकल साधन तथा निष्कल साध्य है। सकल तथा निष्कल क्रमशः भावयुक्त एवं भावहीन होते हैं। एक मात्रा, दो मात्रा, तीन मात्रा और अर्धमात्रा को भी (एक मानने पर) तथा इसके ऊपर परात्पर सहित सकल (जीव) को पांच देवताओंवाला मानना चाहिए। (31-40)

हृदय, कंठ, तालु, ललाट, नाक के अग्रभाग तथा उसके अंत में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, महेश्वर, अच्युत और परम पद का स्थान है। परम से आगे कुछ भी नहीं है, ऐसा शास्त्र निर्णय है। नासाग्र से बारह अंगुल पर देहातीत को मानें। चाहे मन या नेत्र कहीं पर रहें, तब भी योगियों का योग अविछिन्न गति से चलता रहता है। यह परम गुह्य (गोपनीय) एवं परम शुद्ध रहस्य है। इससे बढ़कर अथवा शुभ कुछ भी नहीं है। परम अक्षर का शुद्ध ज्ञानामृत पाकर इस परम गुह्य को यत्नपूर्वक ग्रहण करें। गुरु-भक्त शिष्य तथा पुत्र के अतिरिक्त यह विद्या किसी को नहीं देनी चाहिए। इनके अतिरिक्त किसी को देने पर यह सफल नहीं होती है और देनेवाला नरक में जाता है। चाहे गृहस्थ हो, ब्रह्मचारी-संन्यासी हो अथवा भिक्षुक हो; साथ ही वह कहीं भी रहे, इसे जाननेवाला ज्ञानी ही होता है। विषयी अथवा कोई भी मनुष्य इस शास्त्र के ज्ञान से दूसरे जन्म में शुभ गति पाता है। (41-50)

ब्रह्म-हत्या के पाप और अश्वमेध के पुण्य से निर्लिप्त प्रेरक ज्ञान देनेवाला और मोक्ष देनेवाला ऐसा त्रिविध आचार्य पृथ्वी पर श्रेष्ठ माना जाता है। प्रेरक मार्गदर्शक, बोधक आचरण सिखानेवाला

तथा मोक्ष देनेवाला परम तत्त्व का ज्ञानामृत प्रदान करता है। गौतम ! अब देह में भजन आदि के विषय में सुनो, जिससे मानव शाश्वत अव्यय पद प्राप्ति के साथ ही अपनी ही देह में कला रहित बिंदु के दर्शन करता है। प्राणायम करके इस मार्ग का ज्ञाता दो अयनों के विषय को देखता है। पहले इन दोनों को प्रणाम करे, फिर नमस्कार योग तथा मुद्रा से अर्चना करे। सूर्य ग्रहण प्रत्यक्ष पू... है। जल में व्याप्त जल के समान सायुज्य प्राप्ति ज्ञान से ही संभव है। ये सब गुण योग मार्ग के... से ही प्रवर्तित होते हैं। अतः प्रत्यनपूर्वक सब दुःखों को दूर करें। ज्ञानस्वरूप परम हंस मंत्र... उच्चारण करे। योगध्यान करते हुए ज्ञान की तन्मयता के प्रति प्रयाण करें। इसी से परम पद प्रा... होता है। प्राणियों की देह के मध्य में अच्युत हंस सदा स्थित रहता है। हंस ही परम सत्य है... (51-60)

हंस ही परम वाक्य, वेदों का सार, परम रुद्र, परम ब्रह्म, सभी देवों में स्थित महेश्वर पृथ्वी आ... से शिव तक है एवं अकार आदि वर्णों तक मात्राओं की तरह व्यवस्थित है। मातृका रहित मंत्र... उपदेश नहीं दिया जाता। देवताओं में अनुपम हंस ज्योति रहती है। दक्षिण दिशा को मुख करके ज्ञान-मुद्रा का प्रदर्शन करे। निर्मल स्फटिक के समान दिव्य रूप का ध्यान करते हुए तथा हंस... का स्मरण करते हुए समाधि लें। मध्य देश में ज्ञान मुद्राकार परम हंस का ध्यान करे। प्राण, अ... आदि पांच वायु से क्रियाशक्ति तथा नाग, कर्म, कुकर, देवदत्त, धनंजय और पांच ज्ञानेंद्रिय यु... ज्ञान शक्ति बल से तीव्र होता है। शरीर के मध्य और नाभि में रवि रहता है। नाक के सामने दृ... रखते हुए बंध मुद्रा का प्रदर्शन करे। अकार में अग्नि तथा उंकार में हृदय स्थित है, भौंहों के बीच 'म' वर्ण में प्राण शक्ति को समझे। (ओम के) 'अ' कार में ब्रह्म ग्रंथि और हृदय 'उ' कार में वि... ग्रंथ है। भौंहों के बीच में रुद्र ग्रंथि है, जिसे अक्षर वायु भेदती है। 'अ' कार में, 'उ' कार में 'म' में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र स्थित है। इसके बाद परात्पर है। कंठ को संकुचित करके नाड़ि... की शक्ति को स्तंभित करना चाहिए। जीभ को दबाकर कुंडलिनी को चलाए, जो सा... आधारोंवाली ऊर्ध्वगामिनी, तीन कुटोंवाली, तीन प्रकार की है और ब्रह्मरंध्र की ओर जानेवा... अत्यंत सूक्ष्म नाड़ी को तथा त्रिशंख, वज्र, ओंकार, ऊर्ध्वनाल तथा भृकुटियों की ओर जानेवाली है। इस कुंडलिनी से प्राणों का भेदन करे। वज्रकुंभ की साधना करे तथा प्रसन्नतापूर्वक मन को नि... ईश्वर रूपी पवन पर आरूढ़ करें। (61-75)

इसके पश्चात् ब्रह्म स्थान में नाद सुनाई देने लगता है। शांति नाड़ी से अमृतवर्षा होती है। इतना होने पर षटचक्र मंडल के भेदन से ज्ञान-दीप को प्रकाशित करे। इसके प्रकाशित होने पर... प्राणियों में स्थित परमेश्वर का पूजन करे। वह परमेश्वर आत्मरूप, अंधकार नाशक, ज्ञानमय... व्याधिनाशक हैं। सर्वव्यापक, निरंजन दिव्य रूप के दर्शन होने पर 'हंस-हंस' का जप करे।... की प्राण एवं अपान ग्रंथि को अजपा कहा जाता है। इससे नित्य इक्कीस हजार छः सौ जप करें... हंस 'सोऽहं' (मैं वही ब्रह्म हूं) में परिवर्तित हो जाता है। साधक सदा कुंडलिनी के पूर्व में, शिश्न... तथा भृकुटि के मध्य में क्रमशः अधोलिंग, पश्चिम लिंग तथा ज्योतिलिंग का ध्यान करे। (76-...

मैं अच्युत हूं, अचिंत्य हूं, अतर्क्य हूं, अजन्मा हूं, अपर्ण हूं, काया रहित हूं, अंगों से रहित हूं, ... से, रूप से तथा स्पर्श से परे हूं, मैं अद्वैत हूं, रस एवं गंध से रहित हूं, अनाधि अमृत रूप हूं, अ...

मेरा कोई लिंग नहीं है, मैं निष्कल-निष्प्राण हूं, निर्मुख, निष्क्रिय और अचिंतनीय हूं, अंतर्यामी हूं, अग्राह्य हूं, देश एवं लक्षणों से रहित हूं, अदृश्य, अवर्ण, अखंड अद्‌भुत, अदृष्ट, अन्वेषण योग तथा अमर हूं। (81-85)

मैं वायु रहित हूं, आकाश रहित हूं, तेज रहित हूं, अव्यभिचारी, अज्ञेय, अजन्मा, अतिसूक्ष्म एवं विकार रहित हूं। मैं सत्त्व, रजस और तमस—तीनों गुणों से रहित हूं। स्वयं को पूर्ण, गुणातीत तथा माया रहित अनुभव करता हूं। मैं अनन्य और अविषय हूं। मैं अद्वैत हूं, पूर्ण ब्रह्म हूं और न बाहर न भीतर हूं। मैं कानों से रहित हूं, अदीर्घ हूं: अव्यक्त हूं, अनामय हूं, अदृश्य आनंद रूप हूं, विज्ञान धन हूं, अविकारी हूं, इच्छा रहित हूं, अकर्ता हूं, अद्वैत हूं, मायाजन्य विकारों से हीन, न दीखनेवाला, अविकल्प तथा अग्निहीन हूं।(86-90)

मैं आदि, मध्य तथा अंत से रहित हूं, मैं आकाश के समान हूं, आत्म-चैतन्य हूं, आनंदधन हूं, मैं आनंद और अमृत रूप हूं, आत्म स्थित हूं, अंत: हूं, अकाम हूं, आकाश में परमात्मास्वरूप हूं, मैं ईशान हूं, पूज्य हूं, उत्तम और उत्कृष्ट पुरुष हूं। मैं उपदेष्टा हूं तथा परे से भी परे हूं। मैं केवल हूं, मैं कवि हूं, कर्मों का स्वामी हूं और कारण का अधिपति हूं, मैं गुप्त आशय हूं, गुप्त रखनेवाला हूं, नेत्रों का नेत्र हूं, चिदानंद हूं, चेतना प्रदान करनेवाला हूं, चिद्‌घन तथा चित्तमय हूं। मैं स्वयं ज्योतिमय हूं तथा ज्योतियों में श्रेष्ठ ज्योति हूं। (9-95)

मैं तमस (अंधकार) हूं, साक्षी हूं, तुर्य का भी तुर्य हूं, तमस से परे हूं, दिव्य हूं, देव हूं, दुर्दर्श हूं, दृष्ट का आधार हूं, ध्रुव हूं, नित्य हूं, निर्दोष हूं, नि:विक्रय हूं, निरंजन हूं, निर्मल हूं, निर्विकल्प हूं, अकथित हूं, निश्चल, निर्विकार हूं, नित्य पावन हूं, निर्गुण हूं, निस्पृह हूं, निरिंद्रिय हूं, नियंता हूं, निरपेक्ष हूं, निष्फल हूं, पुरुष हूं, परमात्मा हूं, पुराण हूं, परम ब्रह्म हूं, पारावर हूं, प्राज्ञ हूं, जगत प्रपंच को शांत करनेवाला हूं, परम अमृत, पूर्णानंद, पुरातन प्रभु, एक ज्ञान तथा एक रस रूप हूं। (96-100)

मैं प्रज्ञाता हूं, प्रशांत, प्रकाश स्वरूप परमेश्वर हूं, द्वैत एवं अद्वैत से विलक्षण चिंतनीय हूं, बुद्ध, भूतपाल, भावरूप तथा भगवान हूं। महादेव हूं, महान हूं, महाज्ञेय हूं, महेश्वर हूं, विमुक्त हूं, विभु हूं, वरण करने योग्य हूं, व्यापक हूं, वैश्वादर हूं, वासदेव हूं, चारों ओर आंखोंवाला हूं, विश्वाधिदेव हूं, विशद हूं, विष्णु हूं, विश्वनिर्माता हूं, शुद्ध हूं, शांत हूं, शुक्र हूं, शाश्वत हूं, शिव हूं, सभी प्राणियों का अंतरात्मा हूं, नित्य एवं सनातन हूं तथा मैं ही अपनी महिमा से स्थित होकर सदा प्रकाशमान हूं। (101-105)

मैं ही सबके अंदर की ज्योति हूं, मैं स्वयं ज्योति हूं, मैं सबका अधिपति हूं, सभी प्राणियों में रहनेवाला हूं, सर्वव्यापक हूं, सबका सम्राट हूं, समस्त जगत का साक्षी हूं, सर्वात्मा हूं, सभी प्राणियों की गुहा में रहनेवाला हूं, सभी इंद्रियों के गुणों का आभास करानेवाला हूं, तथा सभी इंद्रियों से रहित हूं। तीर्थों से परे हूं, सभी पर अनुग्रह करने वाला हूं, सच्चिदानंद पूर्ण आत्मा हूं, सबके प्रेम का पात्र हूं, सच्चिदानंद मात्र हूं, स्वयं प्रकाशवान हूं, चिद्‌घन हूं, सत्त्वस्वरूप, सबका आधार, सबका अधिष्ठान, सभी बंधनों को हरनेवाला, सर्वग्रास, सर्वद्रष्टा तथा सर्वानुभव हूं।—इस प्रकार का तत्त्व ज्ञाता ही पुरुष कहलाता है। (106-110)

□

36. क्षुरिकोपनिष

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

उस योग सिद्धि हेतु क्षुरिका को बताता हूं,जिसे प्राप्त करके योगी का पुनर्जन्म नहीं होता। वेदों के तत्त्वों का सार है। अतः इसके विषय में साक्षात भगवान स्वयंभू ने कहा कि कछुवे के के समान मन को हृदय में रोककर नीख स्थान में आसन लगाकर शनैः-शनैः बारह मात्राओं प्रणव से सभी द्वारों को विरुद्ध कर पूरक से शरीर को भरे। मुंह,कमर और गर्दन सीधा रखें। के अंदर रहनेवाली प्राण वायु को उसमें धारण करें। प्राण वायु के इस प्रकार होने पर फिर शनैः रेचक करें। इस अभ्यास के स्थिर एवं दृढ़ होने पर सावधानी से अंगूठे से गुल्फों में,घुटनों में में तथा गुदा में दो-दो और जांघों एवं शिश्न में तीन-तीन प्राणायाम के बाद वायु के स्थान ना आश्रय लें। वहां दस नाड़ियों से घिरी सुषुम्ना होती है। इन लाल,पीली,काली,तांबई और अतिसूक्ष्म,सफेद पतली नाड़ियों का आश्रय लें। उसमें मकड़ी द्वारा तंतु निर्माण के समान प्राण का संचार करें। वहां लाल कमल के समान प्रकाशमान महत का घर है,जिसे वेदांत में दहर पुं कहा गया है। उसे भेदकर नाड़ी को भरता हुआ वायु कंठ में आता है। मन से परमगुह्य निर्मल बुद्धि उस रूप का जो पांवों के ऊपरी भाग में नाम रूप है,चिंतन करे। तीक्ष्ण योग का लेकर धारणा,ध्यान और मन की धार से इंद्रवज्रा नामक जंघा में स्थित मर्म को नष्ट करे। तब के मध्य में प्राणों को स्थापित मर्म में मुक्त करे। इस प्रकार चार अभ्यासों से निःशंक होकर म काट दे। तब योगी कंठ मध्य में नाड़ियों का संचय करता है। इनमें एक सौ एक नाड़ियां उत्तम गई हैं। (1-15)

सुषुम्ना परम तत्त्व में लीन है,विरजा ब्रह्म रूप है,पिंगला दाहिने तथा इड़ा बायीं ओर है दोनों के मध्य के स्थान का ज्ञाता ब्रह्मवेत्ता है। बहत्तर हजार में प्रत्येक नाड़ी में तैतिल है। ध्यान से सुषुम्ना के अलावा सभी कट जाते हैं। योग की निर्मल धार की छुरी की अग्नि से धीर नाड़ियों को काट डालें। जब योगी तैतिल को जातीपुष्प के समान देखने लगता है, तब इस नाड़ियों के शुभाशुभ भावयुक्त योगी का पुनर्जन्म नहीं होता। तप से मन को जीतकर श स्थान में अंगों सहित योग को जाननेवाला निःसंग योगी धीरे-धीरे बंधनों को काटकर उड़नेवाले हंस के समान संसार से मुक्त हो जाता है। जैसे समस्त तेल को जलाकर दीपक बुझ है,वैसे ही योगी भी समस्त कर्मों को जलाकर लय को प्राप्त होता है। प्राणायाम से तीक्ष्ण 'ओम' को वैराग्य फलक पर घिसने से कामनाएं आदि बंधन कटने पर मुक्त योगी अमृत करता है। यही उपनिषद् है (रहस्य है) ।(16-25)

37. योगतत्त्वोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

योगियों के कल्याण के लिए योगतत्त्व कहा जा रहा है, जिसे सुनकर या पढ़कर सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है। विष्णु ही महान् योगी, महान् प्राणी तथा महान् तपस्वी हैं। तत्त्वमार्ग के लिए वह पुरुषोत्तम भगवान दीपक के समान हैं। पितामह ब्रह्म ने उस जगन्नाथ भगवान विष्णु की आराधना करके उनसे निवेदन किया, 'कृपया मुझे आप आठ अंगों से युक्त योग तत्त्व को बतलाएं।' तब भगवान हृषीकेश उनसे बोले, 'इस तत्त्व को मैं तुम्हें बताता हूं, अतः ध्यान से सुनो। सभी प्राणी माया के सुख-दुःख के जाल से बंधे हुए हैं। माया के जाल को काटकर, जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और रोगों के नाशक मुक्ति दाता और भव-सागर से तारनेवाले इस मार्ग का वर्णन इस प्रकार है। कैवल्य परम पद है। यह अनेक प्रकार से कहे गए नाना प्रकार के मार्गों से सर्वथा दुष्प्राप्य है। शास्त्रों के जालों में उलझने से ये बुद्धि को मोहित कर देते हैं। देवता भी उस अनिर्वचनीय परम पद के विषय में कुछ भी बता पाने में असमर्थ हैं; तब स्वात्म प्रकाश रूपी इसी पद के विषय में शास्त्र क्या बता पाएंगे? निष्कल, निर्मल, शांति, सर्वातीत और दुःख रहित वही जीव पुण्य और पाप के फलों से आवृत्त होकर इस प्रकार का बन जाता है। वह परम आत्मा रूपी पद, जो सभी भावों से अतीत, ज्ञान रूप तथा माया मुक्त है, जीव रूप को कैसे प्राप्त हो जाता है? यह एक चिंतनीय प्रश्न है। इसका समाधान इस प्रकार है। (1-9)

सर्वप्रथम जल में स्फुरण हुआ और उसमें कृति (अहंकार) की उत्पत्ति हुई। फिर उसमें जल, पृथ्वी, आकाश, अग्नि और वायु युक्त पंचमहाभूतों के धातुओं से बंधे गुणात्मक पिंड की उत्पत्ति हुई। उस विशुद्ध परमात्मा स्वरूप में सुख-दुःखमय जीव भावना की उत्पत्ति हुई अतः उसे जीव नाम दिया गया। काम, क्रोध, मोह, लोभ, मद, रजस, जन्म, मृत्यु, कृपणता, शोक, तंद्रा, भूख, प्यास, इच्छा, लज्जा, भय, दुःख, विषाद एवं हर्ष, ये सब दोष जीव में रहते हैं। इन दोषों से मुक्त हो जाने पर यह जीव केवल परमात्मा स्वरूप हो जाता है। अतः इन सब दोषों के विनाश का उपाय तुम्हें बताता हूं। योग से हीन ज्ञान कैसे मोक्ष देनेवाला हो सकता है और साथ ही योग भी बिना ज्ञान के मोक्ष देने में समर्थ नहीं है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि मुमुक्षु (मोक्ष का इच्छुक) ज्ञान और योग दोनों का दृढ़ता से अभ्यास करे। अज्ञान से ही संसार में जन्म लेना पड़ता है तथा ज्ञान से ही जन्म-मृत्यु के चक्र से छुटकारा मिलकर मोक्ष की प्राप्ति होती है। अतः सर्वप्रथम ज्ञान स्वरूप महत्त्वपूर्ण है। ज्ञेय (जानने योग्य अर्थात् परमात्मा) को प्राप्त करने का एकमात्र साधन ज्ञान ही है। ज्ञान क्या है? इस विषय में इस प्रकार मैं तुम्हें बताता हूं। जिससे अपना वास्तविक स्वरूप, कैवल्य (मोक्ष) रूप

परम पद, कलाओं से हीन (निर्गुण), निर्मल, साक्षात सच्चिदानंद (सत्-चित्-आनंद) स्वरूप, जग
उत्पत्ति, पालन एवं संहार करनेवाले तथा स्फूर्ति ज्ञान से रहित परमात्मा का ज्ञान होता है, यही
कहलाता है। इसी योग के ज्ञान को मैं तुम्हें बताता हूं। हे ब्रह्मा व्यावहारिक दृष्टि से योग के
भेद हैं। किंतु मंत्रयोग, हठ योग, लय और राज योग, यह चार भेद प्रमुख हैं। यही चार भेद
बताए जाते हैं। योग की आरंभ, घट, परिचय एवं निष्पत्ति, ये चार अवस्थाएं होती हैं। (10-

हे ब्रह्मा इनके लक्षण संक्षेप में बताता हूं। सुनो—मातृका आदि से मुक्त मंत्र का बारह
करनेवाला क्रम से अणिमा आदि गुणों से युक्त ज्ञान को प्राप्त करता है। वस्तुतः इस ज्ञा
साधना कोई अल्पबुद्धिवाला अधम साधक ही करता है। लय योग में चित्त का लय हो जात
यह लय करोड़ों प्रकार का कहा जाता है। चलते हुए, रुककर, स्वप्न देखते हुए अथवा खाना
हुए निष्कल ईश्वर का ध्यान करने से लय योग होता है और हठ योग इससे भिन्न प्रकार का
है। अब इसके विषय में सुनो। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, तथा भ्रूमध्य
के बीच में) श्री हरि भगवान का ध्यान करते हुए समानता की अवस्थामय समाधि से युक्त यह
आठ अंगोंवाला होता है। महायुद्रा, महाबंध, महावेध, खेचरी, जालंधर, उड्डियान, मूलबंध
प्रणव संधान तथा सिद्धांत श्रवण। वज्रोली, आमरोली और सहजोली, ये तीन प्रकार की मुद्रा
हे ब्रह्मा इन सभी के लक्षणों को तत्त्वतः सुनो। यमों के पालन में आहार की अल्पता सर्व प्र
कुछ अन्य नहीं। नियमों में अहिंसा सबसे प्रधान गुण है। सिद्धासन, पद्मासन सिंहासन
भद्रासन, ये चार मुख्य आसन हैं। हे ब्रह्मा ! अभ्यास की प्रथम अवस्था में विघ्न भी आ
आलस्य, आत्म प्रशंसा, धूर्ततापूर्ण विचार आदि इसी प्रकार के विघ्न है (21-30)।

सुबुद्धिवाला साधक धन, स्त्री-संग का लोभ आदि समस्त विघ्नों को अपने पुण्यों के प्र
इन्हें मृगतृष्णा के समान समझकर इनका परित्याग कर दे। तब पदमासन लगाकर प्राणाय
अभ्यास करे। इसके लिए पहले ही एक छोटे दरवाजेवाली सुंदर कुटिया बना ले जो गोबर
चूने से लिपी-पुती हो। इस बात पर विशेष ध्यान दिया जाए कि उसमें खटमल मच्छर, मकड़ी
व्यवधान पहुंचानेवाले कीट न हों। दिन-प्रतिदिन उसकी सफाई समुचित रूप से होती रहे
गुग्गल आदि सुगंधित पदार्थों से सुवासित रखा जाए। वस्त्र आदि न तो अधिक तंग हों
अधिक ढीले-ढाले ही। इस प्रकार की कुटिया में मृगचर्म अथवा कुश के आसन पर बैठकर
(पद्मासन) लगाएं। शरीर को सीधा रखते हुए हाथ जोड़कर इष्ट देवता को प्रणाम करे। फिर
हाथ के अंगूठे से पिंगला (नाक के दाहिने स्वर) को दबाकर धीरे-धीरे (नाक के बाएं स्वर)
को खींचकर अंदर भरे और जितनी देर हो सके इसे अंदर ही रोके रखे। इसे कुंभक करना कह
है। फिर पिंगला से शनैः-शनैः (न कि वेग से) वायु को बाहर निकाल दे। इसे रेचक करना कह
है। इसके पश्चात् फिर धीरे से पिंगला से वायु को खींचते हुए उदर को भरे, अर्थात् पूरक
यथाशक्ति कुंभक करते हुए इड़ा से पूर्ववत् शनैः शनैः रेचक करें, कहने का तात्पर्य यह है
बार बाएं से पूरक करके दाहिने से रेचक करे और दूसरी बार दाहिने से पूरक करे तथा बाएं
करे। जिस स्वर से सांस बाहर निकाली है, उसी से दूसरी बार सांस ऊपर खींचे। (
प्राणायाम के लिए उचित है)। फिर न तो द्रुत गति से और न ही विलंबित गति से जानुओं

प्रदक्षिणा करते हुए एक चुटकी बजाए। योग शास्त्र में इतने समय को एक मात्रा काल कहा जाता है। (31-40)

पहले इड़ा स्वर अर्थात् नासिका के बाएं छिद्र से वायु को खींचें। ध्यान रहे कि यह वायु सोलह मात्राओं के समय तक खींचनी है। इसके बाद चौंसठ मात्राओं के समय तक इसे अंदर ही रोकना है; कुंभक करना है। तब पिंगला स्वर (दाहिने छिद्र) बत्तीस मात्राओं के समय के अंदर रोचक करना होता है। तब पिंगला से पूरक तथा इड़ा से रेचक पूर्ववत् समय से करें। प्रातःकाल, मध्य दिन, सायंकाल तथा अर्धरात्रि इन चार समयों में धीरे-धीरे अस्सी तक कुंभों की संख्या बढ़ाएं। इस अभ्यास को तीन मास तक करने पर ही नाड़ी शुद्ध हो जाती है; और नाड़ी शुद्ध होने पर योग-साधक के शरीर में योग के चिह्न भी स्पष्ट रूप में दिखाई पड़ने लगते हैं, जो इस प्रकार के होते हैं—शरीर में लघुता (हल्कापन) आ जाना है और देहकृश (पतली) हो जाती है। जठराग्नि (भूख) प्रदीप्त हो जाती है। योग को भली प्रकार से जानने वाले इसमें विघ्न पहुंचानेवाले आहार परित्याग कर दो। लवण (नमक), तैलीय पदार्थ, खटाई, गर्म प्रकृति के खाद्य, रूखे और तीखे पकवान, शाक-सब्जियां, हींग इत्यादि भोज्य पदार्थ, आग तापना, स्त्री सहवास, अधिक पैदल चलना, प्रातःकाल का स्नान, उपवास आदि सभी शरीर को कष्ट देनेवाले क्रिया-कलापों का परित्याग कर दें। अभ्यास की प्राथमिक अवस्था में दूध, घी आदि से बना भोजन ही उचित रहता है। गेहूं, मूंग की दाल, चावल आदि का भोजन योग अभ्यास में वृद्धि करनेवाला होता है, अर्थात् योग-साधना के लिए ये श्रेष्ठ खाद्य पदार्थ हैं। इस प्रकार के निरंतन अभ्यास से इच्छा के अनुसार देरी तक वायु को अंदर धारण किया जा सकता है। यथेष्ट वायु को धारण करने की शक्ति प्राप्त हो जाने पर केवल (लक्ष्य) कुंभक को सिद्ध करे। इसके सिद्ध हो जाने पर रेचक एवं पूरक की कोई आवश्यकता ही नहीं रहती (क्योंकि वास्तविक प्राणायाम वायु को अंदर रोक देना ही है) अतः रेचक-पूरक का परित्याग कर दे। (41-50)

इस प्रकार के योग के साधक के लिए फिर तीनों ही लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं रहता है। साधना करते समय साधक के शरीर से जो पसीना निकले, वह उससे शरीर में ही मालिश कर ले। तब भी वायु के धारण से शनैः-शनैः एक क्रम से ही आसन में स्थिय साधक के शरीर में कंपन होने लगता है। अभ्यास के इससे भी अधिक बढ़ने पर शरीर में मेढक की जैसी चेष्टाएं होने लगती हैं। इन चेष्टाओं के होने पर पद्मासन लगाकर बैठा हुआ होने पर भी योगी मेढक की तरह ऊपर की ओर उछलकर पुनः भूमि से टकरा पड़ता है। अभ्यास के इससे भी अधिक बढ़ने पर योगी भूमि से भी उठने लगता है। पद्मासन में बैठे-बैठे योगी भूमि को छोड़कर शून्य में उठ जाता है। (यहां स्मरणीय है कि पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति प्रत्येक पदार्थ को अपनी ओर खींचती है, किंतु योगी इन समस्त शक्तियों पर विजय प्राप्त कर लेता है।) इस प्रकार योगाभ्यास द्वारा साधक अतिमानवीय कृत्य करने में भी सफल हो जाता है। अपनी इस सामर्थ्य एवं शक्ति का योगी द्वारा प्रदर्शन नहीं किया जाना चाहिए, अपितु अपनी सफलता से उत्साहित होकर और भी अधिक प्रयास करना चाहिए। इस प्रकार के योगी को छोटा या बड़ा कोई भी दुःख व्यथित नहीं कर सकता। उसका मूत्र एवं पुरीष (लघुशंका एवं दीर्घशंका) अल्प हो जाता है। नींद भी कम हो जाती है। आंखों की कीच, नाक, थूक,

पसीना, श्वास की दुर्गंध आदि से योगी को सदा-सर्वदा के लिए मुक्ति मिल जाती है। इ
अधिक अभ्यास करने पर उसमें अत्यधिक शक्ति का समावेश हो जाता है। परिणामस्वरूप
भूचर सिद्धि से पृथ्वी पर विचरण करनेवाले समस्त जीवों पर विजय प्राप्त करने की समर्थता प्र
हो जाती है। व्याघ्र, शरभ, हाथी, गवय (नील गाय), या सिंह आदि जो भी वन्य पशु उस पर आक्र
करने की चेष्टा करे, योगी के एक ही साथ मारने पर वे मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। उसका सौंद
कंदप के (कामदेव के) समान हो जाता है (51-60)।

उस योगी के इस अनुपम रूप को देखकर स्त्रियां उस पर मोहित हो जाती हैं तथा उसके
संभोग करने की इच्छा करने लगती हैं। यहां पर योगी को अपने अपूर्व आत्मसंयम का परिचय
पड़ता है। यदि वह स्त्रियों की आकांक्षा की पूर्ति करेगा, तो उसका वीर्य-नाश होगा। अतः
स्त्रियों पर ध्यान न देकर दृढ़ता के साथ योगाभ्यास को बढ़ाता जाए। वीर्य की दत्तचित्त होकर
करने से योगी को देह से सुगंध आने लगती है। तब एकांत स्थान में बैठकर योगी प्लुत मात्रा (ह्र
दीर्घ और प्लुत स्वर तीन प्रकार के होते हैं। अ, इ, उ, ऋ एवं लृ ह्रस्व स्वर हैं, आ, ई, ऊ, ए, ऐ, ओ
औ दीर्घ स्वर हैं, जिन्हें क्रमशः एक मात्रा और दो मात्राओं के समय में उच्चारित किया जाता है।
मात्राओं के बराबर समय में उच्चारण किए जानेवाले स्वर को प्लुत कहते हैं। इसे सूचित करने
लिए स्वर के आगे ऽ लिखा जाता है। जैसे ओऽम् यहां ओ प्लुत है। इसके उच्चारण में ति
समय लगेगा। यहां प्लुत मात्रा में ओम् (प्रणव) जप से यही तात्पर्य है।) में प्रणव का जप
इससे योगी के पूर्व अर्जित पापों का नाश हो जाता है। यह प्रणव मंत्र समस्त विघ्नों का तथा
का नाश करता है। इसका अत्यंत अल्प संख्या में जप करने पर भी सिद्धि मिल सकती है।
प्रकार वायु धारण का अभ्यास करते रहने से घटावस्था की प्राप्ति होने लगती है। प्राण, अपान
बुद्धि, जीवात्मा तथा परमात्मा इन सबमें परस्पर अविरोध स्वरूप जब एकता उत्पन्न होती है, तो
घटावस्था कहते हैं। इस अवस्था के चिह्नों का उल्लेख इस प्रकार है। अभी तक जितना अ
किया जाता था, अब उसका एक चौथाई भाग ही करे। दिन में हो अथवा रात्रि में केवल एक ही
एक प्रहर तक अभ्यास करे, अर्थात् प्रतिदिन केवल एक ही बार कुंभक का अभ्यास करे और
कुंभक की ही अवस्था में इंद्रियों को अनेक विषयों से विमुख करे। यही इंद्रियों का उनके वि
से आहरण योगशास्त्र में प्रत्याहरण नाम से पुकारा जाता है। कुंभक करते हुए प्रत्याहार की अ
में योगों को अपनी आंखों से जो कुछ भी दिखाई पड़े, उसे आत्मा के समान ही समझे। इस प्र
कानों से जो कुछ भी सुने अथवा नासिका से जो कुछ भी सूंघे उस सभी कुछ को आत्मवत् ही
और इसे इसी भावना से ग्रहण करे। (61-70)

जिह्वा जो रस ग्रहण करे अथवा त्वचा को जो भी स्पर्श का अनुभव हो इस सबको आत्म
समझते हुए ग्रहण करे। इस प्रकार कर्मेंद्रियों के समान ही ज्ञानेंद्रियों के विषयों के प्रति भी ऐ
भावना रखे। इसके लिए योगी प्रतिदिन एक प्रहर उस क्रिया का अभ्यास करे और इस अभ्या
करते समय तंद्रा बिलकुल भी न आने पाए। इस प्रकार जैसे-जैसे योगी के चित्त की सामर्थ्य
का विकास होता जाएगा; योगी में मानवातीत शक्तियों का भी आगमन होता जाएगा। वह
सुनने लगेगा, देखने लगेगा, क्षण भर में ही कहीं-से-कहीं चला जाएगा, उसे वाक् सिद्धि प्रा

जाएगी (वह जो कुछ भी कह देगा वह सत्य हो जाएगा), वह इच्छा के अनुसार रूप धारण करने में समर्थ हो जाएगा, वह आकाश में भी चलने लगेगा तथा उसके मूत्र एवं पुरीष के स्पर्श मात्र से ही लोहा आदि निकृष्ट धातुएं स्वर्ण में परिवर्तित हो जाएंगी। इन सबके लिए निरंतर योग का अभ्यास अनिवार्य है, अतः योगसिद्धि के लिए योगी सदा इसके प्रति सचेष्ट होकर बुद्धिमानी का परिचय दे। योगी इस तथ्य को सदा याद रखे कि यह सब सिद्धियां सदा गोपनीय रखी जाएं। अन्यथा ये परम सिद्धि के मार्ग में बाधा स्वरूप भी हैं। अतः समझदार योगी सदा इनके विषय में सचेष्ट रहे। अपनी सिद्धियों की इस प्रकार की शक्ति एवं सामर्थ्य का कभी भी भूलकर भी प्रदर्शन न करे। जन सामान्य के सामने उसे महामूर्ख या बहरे के समान बनकर रहना चाहिए और सिद्धि का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। यद्यपि यह सत्य है कि उसके शिष्यगण अपने-अपने कार्यों के लिए उससे प्रार्थना करेंगे, किंतु योगी उनके कार्यों से अधिक लक्ष्य अपने अभ्यास के प्रति प्रमाद (लापरवाही) कदापि न करे। योगी समस्त कार्य-व्यापारों को भूलकर उनका परित्याग करके योग के प्रति निष्ठावान बना रहे तथा गुरु के वाक्यों को सदा स्मरण करता हुआ रात-दिन अभ्यास करता रहे। इस प्रकार के अनवरत अभ्यास से ही घटावस्था की प्राप्ति होती है। बिना अभ्यास किए व्यर्थ की गोष्ठियों के आयोजन से सिद्धि कदापि संभव नहीं है। (71-80)

अतः सभी प्रयत्नों से सदा योग का ही अभ्यास करे। इस योगाभ्यास से इसके पश्चात् परिचयावस्था उत्पन्न होती है। बड़े ही प्रयत्न के साथ वायु का अग्नि तत्त्व के साथ कुंडली को जीतकर सुषुम्ना में प्रवेश कराया जाता है, तभी यह अवस्था संभव हो पाती है। और अवरोध के साथ ही वायु के साथ चित्त को महापथ अर्थात् प्रभु में प्रवेश कराए। जिस साधक का चित्त वायु के साथ इसी लोक में सुषुम्ना में प्रवेश पा जाता है, उसके लिए भूमि, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश इन पांच महाभूत रूपी देवताओं की पांच प्रकार की धारणा भी हो जाती है। पांवों से लेकर जानु पर्यंत पृथ्वी तत्त्व का स्थान कहा जाता है। यह पृथ्वी तत्त्व चतुष्कोणवाली; अर्थात् चार कोनोंवाला होता है। इसका रंग पीला तथा वर्ण 'ल' माना जाता है। इस पृथ्वी तत्त्व में वायु का आरोप करके इसके साथ 'ल' वर्ण को समन्वित करके स्वर्ण के रंगवाले चार भुजाओंवाले चतुर्मुख ब्रह्मा का ध्यान करना चाहिए। यहां बतलाई गई इस विधि से चार घड़ी (एक घड़ी में 24 मिनट होते हैं, अतः कुल मिलाकर एक घंटा छत्तीस मिनट) तक ध्यान करने मात्र से पृथ्वी-तत्त्व पर विजय प्राप्त हो जाती है। इस तत्त्व पर विजय प्राप्त कर लेने पर योगी की फिर मृत्यु नहीं होती है। जानुओं से वायु पर्यंत जल-तत्त्व का स्थान कहा गया है। जल-तत्त्व को अर्ध चंद्र के आकार का एवं शुक्ल वर्ण का कहा गया है; और इसका बीजाक्षर 'वं' माना जाता है। वारुण अर्थात् जल तत्त्व में वायु-तत्त्व का आरोप करके (तात्पर्य यह है कि जल तत्त्व के स्थान पर वायु तत्त्व को मानकर) वकार बीजाक्षर से समन्वित चार भुजाओंवाले किरीट (मुकुट) धारण किए हुए भगवान नारायण का स्मरण करना चाहिए। इस कल्पना में भगवान को शुद्ध स्फटिक के समान तथा पीतांबर धारण किया हुआ चिंतन करना चाहिए। पांच घड़ी (दो घंटे) तक इस प्रकार का ध्यान करने से सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है। इस प्रकार जल-तत्त्व पर विजय पा लेने के पश्चात् इस तत्त्व से साधक को किसी प्रकार का भय नहीं रहता। उसकी जल में मृत्यु नहीं हो सकती। (80-91)

जल-तत्त्व के स्थान से हृदय के स्थान पर्यंत अग्नि-तत्त्व का स्थान कहा गया है। अग्नि त्रिकोण के आकार का है। इसका वर्ण लाल होता है और बीजाक्षर 'र' माना जाता है। अग्नि में वायु-तत्त्व का आरोप करते हुए उज्ज्वल 'र' वर्ण से युक्त तीन अक्षरोंवाले 'वरद' (व देनेवाले) चमकते हुए तरुण सूर्य के समान जाजवल्यमान अंगों पर भस्म रमाए हुए भगवान रु प्रसन्न मन से स्मरण करना चाहिए। पांच घड़ी तक इस प्रकार का ध्यान करने से साधक को नहीं जला सकती। जलते हुए अग्नि कुंड में प्रवेश करने पर भी उसका शरीर नहीं जलता। हृदय से लेकर दोनों भौंहों के बीच के स्थान तक वायु का स्थान माना जाता है। वायु षट्को आकार का माना जाता है। इसका वर्ण काला है और बीजाक्षर 'य' है, जिसकी आभा चमकती हुई जैसी है। वायु-तत्त्व का मारुत स्थान पर देदीप्यमान 'य' अक्षर के साथ सभी दि की ओर मुखवाले सर्वज्ञ ईश्वर के रूप में ध्यान करे। केवल पांच घड़ी तक ऐसा करने पर ही वायु के वेग के समान आकाश में चलने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। इस पर योगी को वा कोई भय नहीं रहता और उसकी मृत्यु भी वायु से नहीं हो सकती। भ्रूमध्य में वायु-तत्त्व की से प्रारंभ होकर मूर्धा तक आकाश-तत्त्व का स्थान है। यह वृत्त के आकार का तथा धूम्र के वर्ण होता है। देदीप्यमान 'ह' अक्षर इसका बीज अक्षर है। आकाश-तत्त्व में वायु का आरोप करके 'ह' के ऊपर आकाश के आकारवाले बिंदु रूपी महादेव भगवान सदाशिव को शुद्ध स्फटि समान तथा माथे पर अर्धचंद्र धारण किए हुए रूप में स्मरण करते हुए ध्यान लगाना चाहिए, स यह भी कल्पना करें कि भगवान शिव पांच सौम्य मुखोंवाले, दस बाहुओंवाले, तीन आंखें सभी आयुधों (अस्त्र-शस्त्रों)वाले, सभी आभूषणों से युक्त, सभी कारणों के कारण वरदान दे तथा उनका आधा शरीर पार्वती का और आधा शिव का अर्धनारीश्वर हैं। (91-101)

इस प्रकार आकाश-तत्त्व की धारणा से वह योगी आकाश में चलने में समर्थ हो जाता है वह चाहे कहीं भी रहे अत्यधिक सुखी रहता है। उसके समस्त दुःख दूर हो जाते हैं। विलक्षण इसी प्रकार पांच प्रकार की धारणाएं करता है, इससे उसका शरीर अत्यंत दृढ़ हो जाता है और उससे दूर भाग जाती है। ब्रह्म प्रलय होने पर भी ऐसा योगी दुःखी नहीं होता। अब वह योगी इस प्रकार की धारणाएं कर चुका हो, छः घड़ी तक इसी प्रकार वायु को रोककर ध्यान का अ करे। इस अभ्यास में वह आकाश में अभीष्ट सिद्धि देनेवाले देवताओं का चिंतन करे। ध्या प्रकार का होता है—सगुण ध्यान तथा निर्गुण ध्यान। सगुण ध्यान करने से अणिमा आदि सि की प्राप्ति होती है और निर्गुण ध्यान करने से योगी को समाधि मिलती है। मेधावी योगी बारह दिनों में ही वायु को रोककर समाधि को सिद्ध कर लेता है तथा जीवन-मुक्त हो जा समाधि की अवस्था में जीवात्मा और परमात्मा में समानता हो जाती है। इसमें यदि योगी देह को छोड़ देना चाहे, तो वह ऐसा भी कर सकता है। इस प्रकार यदि वह अपने शरीर को देता है, तो परम ब्रह्म में मिल जाता है फिर उसका पुनर्जन्म नहीं होता। यदि उसे शरीर ही प्रि और वह इसे छोड़ना नहीं चाहे, तो उसके पास अणिमा, लघिमा आदि सिद्धियां आ जाती हैं जब और जहां चाहे समस्त लोकों में विहार कर सकता है, यही नहीं; वह कभी भी अपनी इ स्वर्ग में देवता बनकर वहां की महिमाओं को भी प्राप्त कर सकता है। इच्छा होने पर क्षण भर वह योगी पुनः मनुष्य, यक्ष, गंधर्व या किसी भी मानवीय या मानवेतर योनि के शरीर को धार

सकता है। इसी प्रकार से वह सिंह, व्याघ्र या हाथी आदि पशुओं के रूप में भी स्वयं को परिवर्तित कर सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि समाधि सिद्ध हो जाने पर योगी ब्रह्म के समान ही सभी प्रकार की शक्तियों से समन्वित हो जाता है। (102-110)

समाधि की सिद्धि मिल जाने पर योगी जैसा चाहे, वैसा ही व्यवहार कर सकता है। वह पूर्णरूप से महेश्वर ही बन जाता है। दोनों में (योगी तथा महेश्वर में) कोई भेद नहीं रह जाता है। भेद रहता है, तो केवल योगाभ्यास का ही रहता है। योगी को योगाभ्यास करने पर ही यह शक्ति प्राप्त हो सकती है, जबकि महेश्वर स्वयं शक्तिमान है। यह भेद रहने पर भी फल की दृष्टि से दोनों समान बन जाते हैं। इस सिद्धि के प्राप्त हो जाने पर योगी को अब आगे इस प्रकार का अभ्यास करना चाहिए—बाएं पांव की एड़ी को योनि के साथ संलग्न करे और दाएं पांव को फैलाकर दोनों हाथों से दृढ़ता से पकड़ ले, तब चिबुक (ठोड़ी) को वक्षस्थल से लगाकर उदर को वायु से भर ले। अब जितनी देर तक संभव हो वायु को अंदर ही रोके रहे; अर्थात कुंभक करे। इसके बाद रेचक करे। इस अभ्यास को एक बार बाएं पैर से करने के बाद फिर दाहिने पैर से करे। जो पांव पूर्व अभ्यास में फैलाया था, उसे योनि से लगाकर दूसरे पांव को फैलाकर अभ्यास करे। इस प्रक्रिया को महाबंध कहा जाता है। इसका इन दोनों ही प्रकारों से अभ्यास करना चाहिए। इस महाबंध को योगी दत्तचित्त भाव से करे। वायु की गति को रोककर पूर्णतया एकाग्र होकर वायु-मुद्रा करते हुए नाक के छिद्रों को संकुचित करने से वायु शीघ्रता से प्रविष्ट हो जाती है। इसी को योग शास्त्र में महावेध कहा जाता है। सिद्ध लोग रात-दिन सदा इसका अभ्यास करते हैं। अब कपाल के कुहरे में जिह्वा को मोड़कर लगाए और दृष्टि को दोनों भौंहों के बीच में रखे—इस स्थिति को खेचरी मुद्रा कहा जाता है। कंठ को संकुचित करके हृदय (वक्षस्थल) से लगाए, ऐसा करना जालंधरबंध कहलाता है, जो मृत्युरूपी हाथी के लिए सिंह के समान है, अर्थात् जालंधरबंध के अभ्यास से मृत्यु पास भी नहीं फटकने पाती है। इससे बंधा हुआ प्राण सुषुम्ना में उठ जाता है, अतः योगी लोग इस प्राण के उठने की स्थिति को उड्डियान बंध कहते हैं। एड़ी से योनि भाग को मिलाकर दृढ़तापूर्वक दबाया जाता है और अपान वायु को भीतर की ओर खींचा जाता है। यह क्रिया योनिबंध कहलाती है। (111-121)

इन समस्त यौगिक प्रक्रियाओं से प्राण, अपान, नाद और बिंदु में मूलबंध से एकता उत्पन्न हो जाती है। इससे योगी की समुचित सिद्धि प्राप्त होती है, इसमें कोई भी संदेह नहीं करना चाहिए। विपरीत मुद्रा; अर्थात् करणी मुद्रा सभी प्रकार के दुःखों एवं रोगों की नाश करनेवाली मुद्रा है। इस मुद्रा का सतत् अभ्यास करने से जठराग्नि (भूख) प्रबल हो जाती है, जिससे साधक अधिक-से-अधिक भोजन को पचा सकता है। इस मुद्रा को कर लेने पर साधक यदि कम आहार करेगा, तो यह साधक के शरीर का ही नाश करने लगेगी। इस मुद्रा को करने के लिए अभ्यास के प्रथम दिन एक क्षण के लिए सिर को नीचे तथा पांवों को ऊपर करना चाहिए। इस प्रकार प्रतिदिन एक-एक क्षण अभ्यास को बढ़ाते जाना चाहिए। ऐसा करते रहने से केवल छः मास के अल्प समय में ही देह से झुर्रियां तथा सफेद बाल पूर्णतया लुप्त हो जाते हैं। प्रतिदिन इस करणी अथवा विपरीत नामवाली मुद्रा को एक प्रहर तक करने से व्यक्ति कालजयी; अर्थात् मृत्यु को भी जीतनेवाला बन

जाता है। इसके बाद वज्रोली मुद्रा को करनेवाला योगी सिद्धियों का पात्र बन जाता है। यदि इस मुद्रा को सिद्ध कर ले तो समस्त सिद्धियों को उसकी हस्तगत ही समझना चाहिए। वह भूत एवं भविष्य का ज्ञाता हो जाता है। विश्वास करने की बात है कि आकाश में चलने में भी समर्थ जाता है। जो साधक नित्य अमरी का पान करता है और नासिका से इसका नस्य लेता है—इन कार्यों को करने के साथ-ही-साथ सदा वज्रोली का अभ्यास करता है, वह अमरोली साधक कह है। इसके बाद वह निःसंदेह राजयोगी कहलाने लगता है। राजयोगी बन जाने पर साधक के हठ योग की शारीरिक साधनाओं की आवश्यकता नहीं रहती है। तब उसे एक निश्चित विवेक प्राप्ति होने वर वैराग्य उत्पन्न हो जाता है। अतः उसे किसी भी सांसारिक वस्तु के प्रति मोह नहीं जाता। (121-130)

भगवान विष्णु ही महान् योगी, महान् भूत (प्राणी) और महान् तपस्वी हैं। तत्त्व मार्ग के पथि योगी को यह भगवान पुरुषोत्तम दीपक के समान साक्षात दिखाई पड़ते हैं। नाना प्रकार की योनि में उत्पन्न होनेवाला जीव अंततः मनुष्य योनि को प्राप्त करता है। पूर्व योनि में यह जिस स्तन से पीता है, दूसरी योनि में उसी स्तन का मर्दन करता हुआ आनंदित होता है। पूर्व योनि में जिस से जन्म लेता है, दूसरी में उसी भग से संभोग करता है। जो पूर्व जन्म में माता थी, वही इस जन्म भार्या बन जाती है। जो उस योनि में भार्या थी, वह इस योनि में माता बन जाती है। जो पहले था वह अब पिता बन जाता है तथा जो उस जन्म में पिता था, वही इस जन्म में पुत्र बन जाता है। प्रकार यह सांसारिक जन्म चक्र ठीक उस कुएं के चक्र (रहट) के सदृश है, जो ऊपर-नीचे घूमता भरता और खाली होता रहता है। प्राणी अनेकों जन्मों को धारण करता हुआ भ्रमित होता रहता तीन लोक हैं, तीन वेद हैं (ऋग्वेद, सामवेद एवं यजुर्वेद) वैदिक साहित्य में यत्र-तत्र 'तीन वेद' उल्लेख मिलता है, अतः कुछ विद्वानों की मान्यता है कि वस्तुतः वेद ये ही तीन हैं; अथर्ववेद को में वेदों में सम्मिलित किया गया), तीन संध्याएं हैं (प्रातः मध्य दिन तथा सायं), तीन स्वर हैं (ह्र दीर्घ एवं प्लुत), तीन ही अग्नियां (गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि तथा आह्वानीय अग्नि) हैं तथा गुण भी ही हैं (सत्त्व, रजस एवं तमस)। ये सभी त्रयाक्षर (ओम = अ + उ + म्) में स्थित हैं। इन तीनों अ के साथ ही आधे अक्षर का भी योगी द्वारा अध्ययन किया जाना चाहिए। सभी कुछ उसी में पि हुआ है, वही सत्य है तथा वही परम पद है। जैसे तिलों में तेल होता है, पुष्पों में गंध होती है, दू घी होता है तथा पत्थरों में सोना होता है, उसी प्रकार यह भी सभी में व्याप्त है। हृदय स्थान में क व्याप्त है, उसका नीचे की ओर वक्र मुख है। उसकी नाल ऊपर को है तथा बिंदु नीचे की ओर इसके बीच में मन स्थित है, 'अ' अक्षर से रेचित होने पर इस पद्म (कमल) को 'उ' अक्षर से जाता है। 'म' वर्ण से नाद की प्राप्ति होती है तथा अर्धमात्रा निश्चल अवस्था में रहती है। योग लगा हुआ साधक इस प्रकार शुद्ध स्फटिक के समान, कलारहित, पाप नाशक परम पद रूपी पुरुष को प्राप्त करता है। अपने हाथ, पावं, सिर आदि को जैसे कछुआ अपने अंदर समेट लेता उसी प्रकार शरीर के समस्त द्वारों में भरा हुआ वायु दबाने पर इन नौ द्वारों से ऊपर चला जाता घड़े के मध्य में रखे हुए दीपक के समान ही कुंभक को भी माना जाता है। नौ द्वारों के निषिद्ध दिए जाने पर नीरव उपद्रव रहित स्थान में केवल आत्मा ही शेष रहता है, जो योग-साधना से संभव है। यही इसका सार है। (130-142)

□

38. सुबालोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है, उस पूर्ण ब्रह्म से ही इस पूर्ण (जगत) की उत्पत्ति हुई है, अतः पूर्ण ब्रह्म में से यदि इस पूर्ण (जगत) को पृथक भी कर दें तो पूर्ण ही शेष रहता है। आधिभौतिक, आधिदैविक तथा आध्यात्मिक इन तीनों प्रकार के तापों, अर्थात दुःखों की शांति हो ।

प्रथम खंड

'सृष्टि से पूर्व क्या था ?' यह प्रश्न पूछे जाने पर घोरांगिरस ऋषि बरेले, 'सृष्टि से पूर्व न तो सत था, न ही असत था और सदसद (सत असत) भी नहीं था । इस स्थिति में सर्वप्रथम तमस (अज्ञान) उत्पन्न हुआ । तब इस तमस से भूत आदि की उत्पत्ति हुई, भूतों से आकाश की, आकाश से वायु की, वायु से अग्नि की, अग्नि से जल की तथा जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई । (1-2)

यह ब्रह्मांड रूप अंडे में परिवर्तित हो गया । इसमें एक वर्ष बिताने पर ब्रह्म ने इसके दो भाग कर दिए, जिसमें अधोभाग से पृथ्वी तथा ऊपरवाले भाग से आकाश बन गया । इन दोनों के मध्य में एक दिव्य पुरुष उत्पन्न हुआ, जिसके हजारों सिर थे, हजारों नेत्र थे, हजारों पांव थे तथा हजारों भुजाएं थीं । (3)

इस प्रकार के दिव्य पुरुष ने सर्वप्रथम प्राणियों के लिए मृत्यु की सर्जना की। मृत्यु तीन नेत्रोंवाला, तीन सिरोंवाला तथा तीन ही पांवोंवाला था। उसके हाथों में एक छोटा-सा फरसा था ।(4)

वह दिव्य पुरुष ब्रह्म था । उसने ब्रह्मा में प्रवेश किया; अर्थात् फिर उसी पुरुष से ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई । तब उस ब्रह्मा ने अपने मानस से सात पुत्रों को जन्म दिया । ये सातों ब्रह्मा के मानस पुत्र कहलाए । ये ही प्रजापति बने । (5)

इसके पश्चात इस विराट स्वरूप से चारों वर्णों की उत्पत्ति हुई । ब्राह्मण इस विराट का मुख था, राजन्य, अर्थात क्षत्रिय बाहु थे, वैश्य इसके उरु थे तथा दोनों पैरों से शूद्र हुए । —कानों से वायु की उत्पत्ति हुई तथा हृदय से प्राणों का जन्म हुआ। यह समस्त चराचर जगत इसी से उत्पन्न हुआ ।(6)

द्वितीय खंड

उस विराट पुरुष के अपान से निषाद, यक्ष, गंधर्व तथा राक्षस उत्पन्न हुए, अस्थियों से प का, लोमों से औषधियों-वनस्पतियों का तथा ललाट के क्रोध से रुद्र का जन्म हुआ। (1)

उसी महान प्राणी विराट के निःश्वास से ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा व्याकरण, निरुक्त, छंद, ज्योतिष, न्यायशास्त्र, धर्मशास्त्र, मीमांसा, व्याख्यान तथा उपाख्यान सभी प्रादुर्भूत हुए। (2)

उस हिरण्यमय (स्वर्णिम तेजोमय) स्वरूप में ही समस्त लोक एवं आत्माएं स्थित हैं। स्वयं को आधे पुरुष और आधी स्त्री— इन दो भागों में विभक्त किया। स्वयं देव होकर देवताओं को तथा ऋषि होकर ऋषियों को बनाया तथा इसी प्रकार यक्ष, राक्षस, गंधर्व सामाजिक भावना से रहनेवाले प्राणियों को तथा वन में रहने वाले गाय-बैल, घोड़ा-घोड़ी, गधी- आदि सबके भरण-पोषण करनेवालें तथा करने वालियों को बनाया। (3)

अंत में वह पुरुष वैश्वानर (अग्नि) बनकर सबको दग्ध कर देता है।

समस्त पृथ्वी जल में लय हो जाती है, जल तेज में लय हो जाता है, तेज वायु में, वायु आ में तथा आकाश इंद्रियों में लीन हो जाता है। इंद्रियां तन्मात्राओं में और तन्मात्राएं भूत आदि में हो जाती हैं। भूत आदि महत में, महत अव्यक्त में, अव्यक्त अक्षर में एवं अक्षर अज्ञान में ली जाता है। तमस अर्थात अज्ञान परमेश्वर में एकाकार हो जाता है। तब पुनः सर्वप्रथमवाली अ आ जाती है—न 'सत' रहता है, न 'असत' और न 'सत-असत' ही। यही निर्वाण का उपदेश है; वेदों की शिक्षा है; और यही वेदों का अनुशासन है। (4)

तृतीय खंड

'असत' ही सर्वप्रथम था। तब किसी का जन्म नहीं हुआ था; अर्थात् यह एक अजात, (प्राणहीन), अप्रतिष्ठित, शब्दरहित, स्पर्शरहित, रूपरहित, रस रहित, गंध रहित, व्यय (नाश) अमहान, अवृहद और अजन्मावाली स्थिति थी। आत्मा को इस प्रकार मानकर धीर जन दुःखी होते हैं। (1)

वह आत्मा प्राण रहित है, मुख रहित है, श्रोत्र रहित है, कर्ण रहित, वाणी रहित, गति रहित, रहित, नेत्र रहित, नाम रहित, गोत्र रहित, सिर रहित, हाथ रहित, पांव रहित, वसा एवं रक्त रहित वह अप्रमेय (जो सिद्ध नहीं किया जा सकता), अहृस्व, अदीर्घ एवं अस्थूल है। मन उसका पार पा सकता, वह अनल्प, अपार अनिर्देश्य, अनावृत, अप्रकाश्य (जिस पर कोई प्रकाश नहीं डाल सकता), असंवृत्त (असंकीर्ण), अनंतर (जो भीतर न हो) तथा अबाह्य (जो बाहर न हो) है। वह भी नहीं खाता और कोई उसे भी नहीं खाता। (2)

इस प्रकार के अनिर्वचनीय ब्रह्म को सत्य से, तप से, दान से, उपवास से, ब्रह्मचर्य से अखंड वैराग्य से—इन छः अंगोंवाली साधना से ही जाना जा सकता है, इन्हीं के समान इंद्रिय

दान एवं दया, इन तीनों का पालन भी होना चाहिए। इन सब गुणों एवं साधनों के द्वारा जो इसे जान लेता है, उसके प्राण भटकते नहीं हैं; वह इसी ब्रह्म में लीन हो जाता है और वह ब्रह्म ही बन जाता है। इस ज्ञान के विषय को जाननेवाला भी ब्रह्म ही बन जाता है। (3)

चतुर्थ खंड

हृदय के मध्य में एक लोहित वर्ण मांसपिंड है, जिसमें वह सूक्ष्म तत्त्व दहर पुंडरीक कुमुद के (चंद्र कमल) के समान अनेक प्रकार से विकसित होता है। हृदय के दस छिद्र होते हैं। जिनमें प्राण प्रतिष्ठित रहते हैं। (11)

जब वह प्राण के साथ संयुक्त होता है, तो नदी, नगर आदि अनेक दृश्यों को देखता है। जब व्यान के साथ संयुक्त होता है, तो देवताओं और ऋषियों को देखता है। अपान के साथ संयुक्त होने पर यक्ष, गंधर्व और राक्षसों को देखता है। उदान के साथ संयुक्त होने पर देव लोक को तथा स्कंद जयंत आदि देवताओं को देखता है। समान के साथ संयुक्त होने पर देवताओं और धनों को देखता है और जब यह वैरंभ के साथ संयुक्त होता है, तब अतीत के दृष्ट को, सुने हुए को, भुक्त को, अभुक्त को, 'सत' तथा 'असत' सभी को देखता है। (2)

हृदय में दसों (अनेक) नाड़ियां होती हैं। इनमें प्रत्येक नाड़ी की बहत्तर-बहत्तर शाखाएं होती हैं, इस प्रकार हजारों नाड़ियां हो जाती हैं, जिनमें यह आत्मा सोता है तथा शब्दों का कार्य करता है। जब यह द्वितीय कोश में सोता है तो इस लोक को, परलोक को तथा सभी छंदों को देखता तथा जानता है। तब वह संप्रसाद कहलाता है। हृदय की श्वेत नाड़ियां रुधिर से पूर्ण होती हैं। (3)

इस प्रकार जहां यह दहर पुंडरीक कुमुद के समान अनेक प्रकार से विकसित होता है, उसमें बाल के हजारवें भाग के समान पतली नाड़ियां होती हैं। हृदयाकाश के परम कोश में दिव्य आत्मा शयन करता है। इसके सुप्त अवस्था में होने पर इसे किसी प्रकार की कोई कामना नहीं रहती और यह किसी प्रकार का स्वप्न भी नहीं देखता। तब वहां न देवता होते हैं; न देव लोक होता है। न यज्ञादि होते हैं और न वहां माता-पिता, बंधु-बांधव अथवा चोर-ब्रह्म हत्यारे आदि ही होते हैं। यह तेजोमय-अमतमय रूप है। यह संपूर्ण जलमय अथवा वनमय मार्ग है। इसी मार्ग से आत्मा जागृत अवस्था की ओर दौड़ता है। ऐसा सम्राट (जनक) ने कहा था। (4)

पचंम खंड

आत्मा उस स्थान में रहनेवालों को स्थान देता है। नाड़ियां उसका निबंधन हैं, चक्षु अध्यात्म हैं, देखी जानेवाली वस्तुएं अधिभूत हैं और आदित्य अधिदैवत है। जो नाड़ी में, प्राण में, विज्ञान में, आनंद में, हृदयाकाश में तथा समस्त जगत के अंदर विचरण करता है, वह यही आत्मा है। अतः इसकी उपासना करनी चाहिए। वह अजर (कभी वृद्ध न होनेवाला) अमर (कभी न मरनेवाला), अभय, शोक रहित तथा अनंत है। (1)

श्रोत्र (कान) अध्यात्म है, श्रोतव्य (सुनने योग्य) अधिभूत है और दिशाएं अधिदैवत हैं। उनका निबंधन (मूल स्थान) है। कानों में सुने जानेवाले शब्दों में, दिशाओं में, प्राण में हृदयाकाश में तथा इस सबके अंदर विचरण करनेवाला वह यही आत्मा है। अतः यह उपासना योग्य है। यह जरा, मृत्यु, भय तथा शोक से रहित और अनंत है। (2)

नासिका अध्यात्म है, सूंघने योग्य पदार्थ अधिभूत हैं और पृथ्वी अधिदैवत है। नाड़ी निबंधन है। नासिका में, घ्रातव्य (सूंघने योग्य पदार्थों में) में, पृथ्वी में, नाड़ियों में, वही अनंत का संचार करता है। (3)

जिह्वा अध्यात्म है, आस्वाद्य (स्वाद लेने योग्य पदार्थ) अधिभूत हैं तथा देवता वरुण अधि है। नाड़ी उनका निबंधन है। जो जिह्वा में, अस्वाद्य में, वरुण में तथा नाड़ियों में संचरण करता है उपासना करने योग्य यही आत्मा है। (4)

त्वचा अध्यात्म है, स्पर्श करने योग्य पदार्थ अधिभूत हैं और वायु इसका अधिदैवत है। इनका निबंधन है। जो त्वचा में, स्पर्श करने योग्य पदार्थों में तथा वायु में संचरणशील है आत्मा है। (5)

मन अधिभूत है, विचार करने योग्य (मंतव्य) अधिभूत है तथा चंद्रमा अधिदैवत है। उनका निबंधन है तथा मन, मंतव्य और नाड़ी में संचरण करनेवाला यह वही आत्मा है। (6)

बुद्धि अध्यात्म है, बोध्य अधिभूत है और ब्रह्म अधिदैवत्र है। नाड़ी उनका निबंधन है। बोधव्य एवं ब्रह्मा में संचरणशील वही उपास्य आत्मा है। (7)

अहंकार अध्यात्म है, अहंकर्तव्य (अहंकार करने योग्य विषय) अधिभूत है और रुद्र अधि है। नाड़ी उनका निबंधन है। अहंकार, अहंकर्तव्य तथा रुद्र में विचरण करनेवाला वही आत्म (8)

चित्त अध्यात्म है, चिंतन अधिभूत है और क्षेत्रज्ञ अधिदैवत है। नाड़ी उनका निबंधन है। में, चिंतन में, क्षेत्रज्ञ में तथा नाड़ी में संचरणशील वही उपास्य आत्मा है। (9)

वाणी अध्यात्म है, बोलना अधिभूत है तथा अग्नि अधिदैवत है। नाड़ी उसका निबंध वाणी में, बोलने में, अग्नि में तथा नाड़ी में विचरणशील वही उपास्य आत्मा है। (10)

हाथ अध्यात्म है, लेना अधिभूत है और इंद्र अधिदैवत है। नाड़ी उनका निबंधन है। लेने में, इंद्र में तथा नाड़ी में संचार करनेवाला वही आत्मा है। (11)

पांव अध्यात्म हैं, गंतव्य अधिभूत है और विष्णु अधिदैवत है। नाड़ी उनका निबंधन है पांव में, गंतव्य में, विष्णु में तथा नाड़ी में संचार करता है, वही उपास्य है। वही आत्मा है। (1

पायु अध्यात्म है, विसर्जन अधिभूत है, मृत्यु अधिदैवत है और नाड़ी उनका निबंधन है में, विसर्जन में, मृत्यु में तथा नाड़ी में संचरण करनेवाला उपास्य आत्मा है। (13)

उपस्थ अध्यात्म है, आनंदित करने योग्य कर्म अधिभूत हैं, प्रजापति अधिदैवत है तथा उनका निबंधन है। जो उपस्थ में आनंदितव्य में, प्रजापति में, नाड़ी में, प्राण में, विज्ञान में, आ

हृदयरूपी आकाश में तथा इस समस्त चराचर में संचरण करता है, उस अजर, अमर, अशोक एवं अनंत आत्मा की उपासना करनी चाहिए। (14)

यही सर्व है, सर्वेश्वर है, सर्वाधिपति है, अंतर्यामी है, सबकी योनि है, सब सुखों द्वारा उपास्य है, न कि सब सुखों की उपासना करनेवाला है, वेद-शास्त्रों द्वारा उपास्य है, न कि वेद-शास्त्रों का उपासक, इसी से यह सब उत्पन्न हुआ है, न कि यह सब इसे उत्पन्न करता है। यह सबका नयन रूप है, प्रशास्ता है, अन्नमय है, भूतात्मा है, प्राण, मन तथा इंद्रियों का आत्मा है। मन्त्रोमय है, संकल्पात्मा है, विज्ञानमय है, कालात्मा है, आनंदमय है एवं लयात्मा है। उसमें एकत्व ही नहीं है, तब द्वैतभाव कैसे हो सकता है ? वह मर्त्य (मरनेवाला) नहीं है, तब उसकी अमरता कैसे हो सकती है ? न वह अंतःप्रज्ञ है, न वहिःप्रज्ञ है और न उभयप्रज्ञ ही है। न वह प्रज्ञान धन है, न प्रज्ञ है और न अप्रज्ञ ही है। न वह विदित है न वेद्य ही है। यही निर्वाण का अनुशासन है और यही वेदों की शिक्षा है। (15)

षष्ठ खंड

सृष्टि से पूर्व कुछ भी नहीं था। बिना मूल और बिना आधार के यह प्रजा उत्पन्न हुई। (1)

चक्षु एवं देखने योग्य, कान और सुनने योग्य सब नारायण ही हैं। वही नाक और सूंघने योग्य हैं, जिह्वा और आस्वाद्य (स्वाद योग्य) हैं, त्वचा और स्पर्श योग्य हैं, मन और मंतव्य, चित्त और चिंतनीय हैं, वाणी और वक्तव्य हैं, हाथ और ग्रहण करने योग्य हैं, पांव और गंतव्य हैं, पायु और त्याज्य हैं, उपस्थ और आनंदनीय हैं, धाता और विधाता हैं तथा वही एक देव भगवान नारायण ही कर्ता और विकर्ता भी हैं। (2)

आदित्य, रुद्र, मरुत, वसु, अश्विनी कुमार, ऋक, यजुष तथा सामवेद, मंत्र अग्नि, घी की आहुति वही एक नारायण भगवान हैं। (3)

माता, पिता, भाई, निवास, शरण, मित्र तथा गति भी वही नारायण हैं। (4)

वही विराजा, चारुदर्शन, अजिता, सौम्या, माधा, कुमारा, अमृता, सत्या, मध्या आदि दिव्य नाड़ियां हैं। (5)

गरजनेवाला, गानेवाला, बहनेवाला, बरसनेवाला, वरुण, अर्यमा, चंद्रमा, काल, कवि, धाता, ब्रह्मा, इंद्र, अर्ध दिवस, दिवस, कला, कल्प, ऊपर, नीचे तथा सभी दिशाएं वही हैं। (6)

यह सब कुछ भूत एवं भविष्य में होनेवाला, परम पुरुष ही है। वह स्वर्ग में फैले हुए चक्षुओंवाला है। विष्णु के उस परम पद को ज्ञानी लोग सदा देखते हैं। क्रोधहीन और सचेत रहनेवाले विप्रजन इसका सदा साक्षात्कार करते हैं। अतः यही निर्वाण का उपदेश है, वेदों की शिक्षा तथा उनका अनुशासन है। (7)

सप्तम खंड

शरीर के अंदर स्थित गुहा में एक नित्य पुरुष रहता है, पृथ्वी जिसका शरीर है और वह पृथ्वी के अंदर संचार करता है, किंतु पृथ्वी उसे नहीं जानती है। जिसका जल शरीर है और जो जल में

संचार करता है, किंतु जल उसे नहीं जानता। इसी प्रकार तेज उसका शरीर है, वायु उसका शरीर आकाश उसका शरीर है, बुद्धि उसका शरीर है, अहंकार उसका शरीर है, चित्त उसका शरीर अव्यक्त, अक्षर तथा मृत्यु भी उसके शरीर हैं। यह इन सबसे संचार करता है, किंतु ये उसे जानते हैं। यह सभी प्राणियों का अंतरात्मा, अपहत आत्मा दिव्य देव नारायण है। (1)

यह विद्या नारायण ने अपांतरतम को दी, अपांतरतम ने ब्रह्मा को दी, ब्रह्मा ने घोरांगिरस को घोरांगिरस ने रैक्व को दी, रैक्व ने राम को दी तथा राम ने सभी प्राणियों को दी थी। यह मोक्ष उपदेश है, वेदों का अनुशासन और शिक्षा है। (2)

अष्टम खंड

सभी के अंत: शरीर में स्थित गुहा में वही आत्मा रहता है। यह शरीर रक्त एवं मांस से हुआ है तथा यह चित्रमय भित्ति (दीवार-चित्रवीथी) की तरह, गंधर्वों के नगर की तरह निःसार युक्त, केले के वृक्ष के अंदर के भाग की तरह सारहीन और पानी के बुलबुले की तरह चंचल है, इससे पृथक् रहनेवाला आत्मा अचिंतनीय रूपवाला, दिव्य देव, असंग, शुद्ध, तेजोमय देह अरूप, सर्वेश्वर तथा अचिंत्य देहवाला अशरीर है। यह हृदय गुहा का रहनेवाला ज्वाज्वल्यमान है। विद्वान मनीषी उसी में लय होकर उस आनंद स्वरूप को देखते हैं। (1)

नवम खंड

रैक्व ने घोरांगिरस से पूछा, 'ये सब चराचर जगत के प्राणी एवं पदार्थ अंत में किसमें होते हैं?' घोरांगिरस ने उत्तर दिया, 'जो पदार्थ चक्षु से प्राप्त होते हैं, वे चक्षु में ही अस्त होते हैं। दर्शनीय पदार्थों के लिए प्राप्त होता है, अत: ये दर्शनीय पदार्थों में ही अस्त हो जाते हैं। ये दर्शनीय पदार्थ सूर्य से प्राप्त होते हैं अत: उसी में अस्त हो जाते हैं। सूर्य विराट से प्राप्त होता है और उसी में अस्त हो जाता है। यह प्राण से प्राप्त होता है; प्राण में ही अस्त हो जाता है। प्राण विज्ञान से प्राप्त जाता है और उसी में अस्त होता है। विज्ञान आनंद से प्राप्त होता है, अत: आनंद में ही अस्त है। आनंद तुरीय से प्राप्त और उसी में अस्त होता है। वह अमृत, अभय अनंत निर्बीज प्राप्त है।

इसी प्रकार जो श्रोत्र को प्राप्त करता है वह श्रोत्र में ही अस्त होता है। श्रोत्र श्रोतव्य के श्रोतव्य दिशा से, दिशा सुदर्शना से, सुदर्शना अपान से और अपान विज्ञान से प्राप्त होता है। नियमानुसार ये क्रमशः श्रोतव्य में, दिशा में, सुदर्शना में, अपान में तथा विज्ञान में (अर्थात जो जिसके लिए अथवा जिससे प्राप्त होता है, यह उसी में अस्त होता है) अस्त होते हैं विज्ञान (विज्ञान के पश्चात यहां से इस खंड के अंत तक इससे पहले वाले अंश का ही अंतिम अंश अन्वय अर्थात—) आनंद से प्राप्त होता है, अत: आनंद में ही (पूर्ववत) । (2)

जिह्वा को प्राप्तकर जिह्वा में ही अस्त होता है। अत: उपर्युक्त प्रकार से जिह्वा, रसनीय, सौम्य, उदान एवं विज्ञान क्रमशः रसनीय के लिए, वरुण से, सौम्य से, उदान से, विज्ञान से एवं

से प्राप्त होते हैं, अतः इनका (पूर्व लिखितों का बाद में लिखे हुओं में) क्रमशः अस्त होता है। विज्ञान का (इसके बाद प्रथम अंश के समान)। (3)

नासा को प्राप्तकर नासा (नाक) में ही अस्त होता है। अतः नासिका घ्रातव्य (सूंघने योग्य), पृथ्वी, जिता, व्यान, विज्ञान एवं आनंद। प्रत्येक अपने से पूर्व से या उसके लिए प्राप्त हुआ है, अतः पूर्व लिखित का अपने से बाद वाले में अस्त होता है। विज्ञान आनंद में और आनंद पूर्ववत प्राप्त होता है। (5)

त्वचा को प्राप्त कर त्वचा में ही अस्ता होता है, अतः त्वचा, स्पर्श, वायु, मोघा, समान, विज्ञान और आनंद में प्रत्येक अपने से पश्चात वाले के लिए या उससे प्राप्त हुआ है, अतः उसका पश्चातवाले में ही अस्त होता है। आनंद के बाद पूर्ववत होता है। (5)

वाणी को प्राप्त कर वाणी में अस्त होता है। अतः वाणी, वक्तव्य, अग्नि, कुमार, वैरम्य, विज्ञान एवं आनंद में प्रत्येक अपने से बादवाले के लिए या उससे प्राप्त होता है, अतः इनका उसी में अस्त भी होता है। (6)

हाथों को प्राप्त कर हाथों में ही अस्त होता है और हाथ, लेने योग्य, इंद्र, ऋता, मुख्य एवं विज्ञान में प्रत्येक अपने से बादवाले को प्राप्त हैं, अतः प्रत्येक का अपने बादवाले में अस्त होता है। (7)

पांवों को प्राप्त कर पांवों में अस्त होता है और पांव गंतव्य, विष्णु, सत्य, अंतर्याम एवं विज्ञान में प्रत्येक अपने बादवाले को प्राप्त हैं, अतः उसका इसी में अस्त होता है (8)।

जो पायु को प्राप्त होता है, वह पायु में ही अस्त होता है। पायु, त्याज्य (मल), मृत्यु, मध्यमा, प्रभंजन एवं विज्ञान प्रत्येक अपने बादवाले को प्राप्त होता है, अतः उसका इसी में अस्त होता है। (9)

जो उपस्थ को (शिश्न या योनि) प्राप्त होता है, उसका उपस्थ में ही अस्त होता है। उपस्थ, आनंदनीय, प्रजापति, नासीरा, कूर्मिर एवं विज्ञान, ये प्रत्येक अपने बाद वाले को प्राप्त होते हैं और उसी में अस्त होते हैं। (10)

जो मन को प्राप्त होता है, उसका मन ही अस्त होता है। मन, मंतव्य (मनन करने योग्य), चंद्र, शिशु, नाड़ी, श्येन, विज्ञान एवं आनंद, ये अपने बाद वाले को प्राप्त होते हैं, अतः उसी में अस्त हो जाते हैं। (11)

जो बुद्धि को प्राप्त होता है, वह बुद्धि में ही अस्त होता है। बुद्धि, बोधव्य (बोध करने योग्य) ब्रह्मा, सूर्य, कृष्ण एवं विज्ञान, ये प्रत्येक अपने बाद वाले को प्राप्त करते हैं, अतः उसी में अस्त होते हैं। (12)

जो अहंकार को प्राप्त होता है, उसका अहंकार में ही अस्त होता है। अहंकार, अहंकर्तव्य (अहंकार के योग्य) रुद्र, असुरा नाड़ी, श्वेत एवं विज्ञान, सभी अपने परवर्ती (बाद वाले को) प्राप्त होते हैं और इसी में अस्त भी होते हैं। (13)

जो चित्त को प्राप्त होता है, उसका चित्त में ही अस्त होता है। चित्त, चेतितव्य (चिंतन योग्य), क्षेत्रज्ञ, भास्वत, नाड़ी, नाग, वायु एवं विज्ञान, ये सभी अपने से बादवाले को प्राप्त होते हैं तथा उन्हीं में अस्त होते हैं। (14)

इस तरह जो निर्बीज तत्त्व को प्राप्त होता है, वह स्वयं भी निर्बीज बन जाता है। वह जन्म नहीं लेता है, उसकी मृत्यु नहीं होती है, वह दु:खी नहीं होता, वह भेदा नहीं जा सकता, जल नहीं सकता, काटा नहीं जा सकता, कांपता नहीं, क्रोधित नहीं होता और इसे सबको जलानेवाला आत्मा कहा जाता है। (15)

यह आत्मा सैकड़ों प्रवचनों से, बहुत शस्त्रों के अध्ययन से या बुद्धि और ज्ञान पर आश्रित मेधा से प्राप्त नहीं होता। न वेदों से, न उग्र तप से, न सांख्य से, न योग से, न आश्रय-व्यवस्था से और न ही किसी अन्य उपाय से, इस आत्मा को प्राप्त किया जा सकता है। जो ब्रह्मज्ञानी प्रवचनों से, प्रशंसा से और समाधि से उठकर बाहर आते ही और आत्मा विषयक श्रवण करते हैं, व्याख्यान करते हैं, वे ही इसे प्राप्त करते हैं। शांत, इंद्रिय दमनवाला, उपरति एवं तितिक्षा में समाहित होकर ही ब्रह्मवेत्ता आत्मा में ही इस आत्मा को देखता है और वह सर्व आत्मामय हो जाता है। जो इस प्रकार जानता है, वह ऐसा ही हो जाता है। (16)

दशम खंड

(यह खंड प्रश्नोत्तर रूप में है। घोरांगिरस द्वारा एक लोक बताए जाने पर रैक्व उसी पर प्रश्न पूछ डालते हैं कि यह लोक किसमें ओत-प्रोत है, अत: प्रश्न रैक्व के हैं तथा उत्तर घोरांगिरस के।) रैक्व ने पूछा, 'भगवन किस लोक में सब कुछ अच्छी तरह प्रतिष्ठित है ?'— 'रसातल के लोकों में।' 'रसातल किसमें ओत-प्रोत है ?' —'भूलोक में।' भूलोक किसमें ओत-प्रोत है —'भुव: लोक में।' भुव: लोक ? (किसमें ओत-प्रोत है प्रत्येक प्रश्न के साथ अंकित मानें) —'मह: लोक में।' मह: लोक ? —'जल लोक में।' जन लोक ?— 'तपो लोक में।' तपोलोक ?— 'सत्य लोक में।' सत्य लोक ?— 'प्रजापति लोक में।' प्रजापति लोक ? — 'सभी लोक आत्मा रूपी ब्रह्म में माला की तरह ओत-प्रोत हैं।' (1)

इस प्रकार जो इन लोकों को आत्मा में ही प्रतिष्ठित है, ऐसा जान जाता है, वह भी उसी आत्मा में मिल जाता है। यही निर्वाण की शिक्षा है, वेदों का उपदेश एवं अनुशासन है।(2)

एकादश खंड

रैक्व ने पूछा, 'भगवन ! यह विज्ञानमय आत्मा बाहर निकलते समय किस मार्ग से तथा किस स्थान को छोड़कर जाता है ?' इस पर घोरांगिरस बोले, 'हृदय के बीच लोहित मांसपिंड में दहर पुंडरीक कुमुद के समान अनेक प्रकार से विकसित होता है, इसके मध्य में एक कोश है। उसमें चार नाड़ियां होती हैं। इनके नाम इस प्रकार हैं—रमा, अरमा, इच्छा तथा अपनर्भवा। रमा पुण्य से पुण्य लोक में तथा अरमा पाप से पाप लोक में ले जाती है। इच्छा स्मरण किए हुओं को प्राप्त कराती है तथा अपुनर्भवा इस कोश को भेदती है। कोश को भेदकर शीर्षकपाल को, शीर्षकपाल को भेदकर

पृथ्वी को, पृथ्वी को भेदकर जल को, जल को भेदकर, तेज को, फिर वायु को, फिर आकाश को, फिर मन, फिर अहंकार को, फिर महत को, फिर प्रकृति को, इसके बाद अक्षर को तथा अक्षर भेदकर मृत्यु को भेदती है। मृत्यु से परे परमदेव ही है और उसी से मिल जाती है। इससे आगे न 'सत' होता है, न 'असत' होता है; और न 'सत-असत' ही होता है। यही निर्वाण का उपदेश है, यही वेदों की शिक्षा है और यही वेदों का अनुशासन है। (1)

द्वादश खंड

नारायण से ही अन्न आया (उत्पन्न हुआ) है। यह ब्रह्मलोक में पका, इसके पश्चात यह माहसवर्तक में, आदित्य में तथा क्रव्यादि में पका है। साधु-संन्यासी इस अन्न को जल में भिगोकर, वासी करके पवित्र करें और तब खाएं। उनके द्वारा खाया जानेवाला यह अन्न स्वयं पैदा किया या मांगा हुआ नहीं होना चाहिए। उन्हें किसी से मांगना नहीं चाहिए (अर्थात स्वयं स्वतंत्र स्थानों पर उगा अन्न तथा कंदमूल ही उनका भोजन है। (1)

त्रयोदश खंड

बाल्यकाल में रहने की इच्छा करे, स्वभाव बच्चों की तरह सरल हो, आसक्ति एवं दोष से रहित हो, मौन साधन पांडित्य अर्जन के लिए ढोंग करनेवाले के अनुसार न चलना कैवल्य की पराकाष्ठा कही गई है। प्रजापति का कथन है कि महान पद को जानकर तरुतले वास, चिथड़े पहनना, किसी से सहायता न लेना तथा एकांत समाधि लेनेवाला व्यक्ति आप्तकाम (पूर्ण हो चुकी इच्छाओं वाला) और निष्काम होता है, इच्छाएं उसके लिए पुरानी (व्यर्थ की) चीजें हो जाती हैं। वह हाथी, शेर, मच्छर, नेवला, सर्प, राक्षस, मृत्यु आदि रूपों को जानकर उनसे डरता नहीं है। वह वृक्ष की तरह रहना चाहता है, कोई काट भी डाले, तो क्रोधहीन और कंपहीन, कोई छेद भी डाले, तो गुस्सा नहीं, ऐसे कमल की तरह, छिन्न-भिन्न कर दिए जाने पर भी अक्रोधी आकाश की तरह तथा सत्य की तरह रहना चाहता है। यह आत्मा ही सत्य है। (1)

सब गंधों का हृदय पृथ्वी है, सभी रसों का हृदय जल है, सब रूपों का हृदय तेज है, सब स्पर्शों का वायु, सब शब्दों का आकाश, सब गतियों का प्रकृति तथा सब प्राणियों का हृदय मृत्यु है। यह मृत्यु ही परमात्मा में एकाकार होता है। इसके बाद न 'सत' रहता है, न 'असत' और न 'सत-असत' ही। यही निर्वाण का उपदेश, वेदों की शिक्षा तथा वेदानुशासन है। (2)

चतुर्दश खंड

पृथ्वी अन्न है, जल अन्नभक्षी है। जल अन्न है, तेज अन्नद (अन्न भक्षी या अन्न खानेवाला) है। तेज अन्न है, वायु अन्नाद है। वायु अन्न है, आकाश अन्नाद है। आकाश अन्न है, इंद्रियां अन्नाद हैं। इंद्रियां अन्न हैं, मन अन्नाद है। मन अन्न है, बुद्धि अन्नाद है। बुद्धि अन्न है, अव्यक्त अन्नाद है। अव्यक्त अन्न है, अक्षर अन्नाद है। अक्षर अन्न है, मृत्यु अन्नाद है। मृत्यु ही परमात्मा में एकाकार होता है। (इत्यादि इससे पूर्ववत) । (1)

पंचदश खंड

रैक्व ने पूछा, 'भगवन जब यह विज्ञानमय आत्मा शरीर को छोड़ता है, तो किसके द्वारा कौ स्थान को जलाता है ?' घोरांगिरस बोले, 'जब यह विज्ञानमय आत्मा बाहर निकलता है, तो प्राण अपान को, व्यान को, उदान को, समान को, वैरम्य को, मुख्य को, अंतर्याम को, प्रमनन को, कुमा श्येन को, कृष्ण को तथा नाग को जलाता है। फिर पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश को जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय इन अवस्थाओं को, फिर महती, लोक एवं परलोक को, लोकालोक को, धर्म-अधर्म को, फिर सूर्य रहित अमर्यादित स्थानों को जलाता है। फिर महत, अ अक्षर और मृत्यु को जलाता है। मृत्यु ही परमात्मा में एकाकार होती है, इत्यादि इससे पूर्व खंड के अनुसार है।(1)

षोडश खंड

सौबाल बीजवाला यह ब्रह्म का उपनिषद (रहस्य) अत्यंत अशांत, पुत्रहीन, शिष्य के अ कोई अन्य, जो कम-से-कम एक वर्ष तक समीप में न रहा हो, उसे और अज्ञान कुल एवं शील, प्रकार के लोगों को न दिया जाए, क्योंकि कहा गया है कि जिसकी गुरु में परमेश्वर जैसी भक्ति यह विद्या उसी के लिए है। महापुरुष ऐसे ही व्यक्ति को इसकी दीक्षा देते हैं। यही निर्वाणानु वेद शिक्षा तथा वेदोपदेश है। (1)

39. मंडल ब्राह्मणोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमिदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेबावशिष्यते॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

महामुनि याज्ञवल्क्य सूर्यलोक गए। उन्होंने आदित्य से कहा, 'भगवान सूर्य देव कृपया आत्म-तत्त्व के विपय में उपदेश दीजिए।' सूर्य बोले यम आदि के सहित ज्ञान को अष्टांग योग कहते हैं। शीत, उष्ण, आहार एवं निद्रा पर अधिकार, सर्वदा शांति, निश्चलता तथा इंद्रिय निग्रह ये यम कहलाते हैं। गुरु-भक्ति सत्य, मार्ग के प्रति अनुराग, अपने-आपको कुछ भी मिल जाए, उसी पर संतोष करना, अनासक्ति, एकांत सेवन, मन की निवृत्ति, फलों की इच्छा न करना तथा वैराग्य, ये नियम हैं। लंबे समय तक एक ही आसन में सुखपूर्वक बैठना, यह आसन का नियम है। पूरक, कुंभक एवं रेचक को क्रमशः सोलह, चौसठ तथा बत्तीस मात्राओं तक करना प्राणायाम है। इंद्रियों के विषयों से मन को रोकना प्रत्याहार है। इस प्रकार के मन को चैतन्य में स्थापित करना धारणा है। सभी देहों में एक ही चैतन्य को देखना ध्यान है तथा ध्यान को भी भूल जाना समाधि है। इस प्रकार ये योग के सूक्ष्म अंग हैं, इन्हें जाननेवाला मुक्ति का अधिकारी होता है। (1)

काम, क्रोध, विषय, भय एवं निद्रा, ये देह के पांच प्रकार के दोष हैं। संकल्प का अभाव, क्षमा, अल्पाहार, निर्भयता एवं तत्त्व-चिंतन से ये दोष दूर किए जाते हैं। निद्रा एवं भय सरीसृप (सांप आदि) के समान, हिंसक विचार तरंगों के समान, तृष्णा भंवर सदृश और स्त्रियां कीचड़ सदृश हैं। संसार रूपी ऐसे सागर से पार होने के लिए सूक्ष्म मार्ग के आश्रय से सत्त्वादि गुणों को लांघकर तारक ब्रह्म का ध्यान करें। दोनों भौंहों के मध्य में स्थित ब्रह्म को अभ्यास द्वारा देखें। तीन लक्ष्यों का अवलोकन इसका उपाय है। मूलाधार से ब्रह्मरंध्र तक सूर्य की आभावाली सुषुम्ना नाड़ी है। इसके मध्य कमल नाल से भी सूक्ष्म कुंडलिनी है। इससे तमोगुण दूर होता है। इसके दर्शन से सभी पाप नष्ट होते हैं। तर्जनी से दोनों कानों को बंद करने पर सुनाई देनेवाले फूत्कार शब्द में मन को स्थित करने पर नेत्रों के मध्य नीली ज्योति दीखती है। ऐसे ही दर्शन हृदय में भी होते हैं। बहिर्लक्ष्य यह है कि नासिकोस चार, छः, आठ, दस एवं बारह अंगुली पर क्रमशः नीला, काला, लाल, पीला एवं दो रंगों का मिश्रण युक्त प्रकाश के दर्शन से योगी हो जाता है। जिसे चंचल दृष्टि से आकाश भाग को देखने पर तुरंत ही तेज किरणें दीखें, उसकी दृष्टि स्थिर हो जाती है। मस्तक के ऊपर बारह अंगुली लंबा प्रकाश दिखने पर अमरता मिलती है। मध्यम लक्षण यह है कि प्रातः, सूर्य, चंद्र, अग्नि, ज्वाला जैसा फिर इससे रहित अंतरिक्ष जैसा और बाद में स्वयं उसी के आकार जैसा दीखता है। पुनः अभ्यास करने पर यह निर्गुण आकाश के समान, प्रकाशमय तारों जैसा, गहन अंधकार सदृश 'पराकाश' जैसा, प्रलयकालीन अग्नि सदृश 'महाकाश' जैसा परम अद्वितीय स्वरूप में प्रकाशमान

'तत्त्वाकाश' और करोड़ों सूर्यों के समान आभामय सूर्याकाश होता है। इसका ज्ञाता अभ्यास... तन्मय होता है। (2)

योग के पूर्व और उत्तर दो भेद हैं। पूर्व भेद तारक ब्रह्म तथा उत्तर भेद अमस्क है। तारक मूर्ति तारक और अमूर्ति तारक, दो प्रकार का है। यह दोनों क्रमशः इंद्रियों तक तथा भौंहों के ... से आगे तक जानेवाले हैं। इन दोनों का अभ्यास अंतर्दृष्टि तारक ब्रह्म को प्रकट करने में समर्थ ... है। बाद में भौंहों के मध्य छिद्र में तेज का आविर्भाव होता है। यह पूर्व तारक है। उत्तर विभाग ... रहित होता है। तलु मूल के ऊर्ध्व भाग में महाज्योति रहती है, जिसके दर्शन से अणिमा आदि ... होती हैं। लक्ष्य से अंतर्दृष्टि तथा बाह्य दृष्टि के निर्निमेष (अपलक) स्थिर होने पर शांभवी मुद्रा ... है। यह सभी तंत्रों की एक गोपनीय मुद्रा है। उसके ज्ञान संसार से मुक्ति तथा पूजन से मोक्ष ... होती है। अंतर्लक्ष्य जल के समान ज्योति रूप है। इसे केवल महर्षि जानते हैं। यह अंदर और ... की इंद्रियों से अदृश्य रहता है। (2)

सहस्रसार में अंतर्लक्ष्य जल ज्योति है। अन्य लोगों के अनुसार बुद्धिगुहा में सर्वांग सुंदर ... ही अंतर्लक्ष्य है। मध्य के प्रशांत पंचमुख उमा सहित नीलकंठ शिव ही अंतर्लक्ष्य मानते हैं ... सभी विकल्प आत्मा रूप ही हैं। इन्हें शुद्ध आत्मा दृष्टि से देखनेवाला ही ब्रह्मनिष्ठ होता है ... पचीसवा तत्त्व है, किंतु इसके दर्शन पर वह स्वकल्पित चौबीस तत्त्वों को त्यागकर अनुभव ... लगता है कि वह छब्बीसवां तत्त्व स्वयं परमात्मा ही है, इस निश्चय से वह जीवनमुक्त हो जाता ... इस प्रकार अंतर्लक्ष्य के दर्शनों से जीवन मुक्त हो जाता है। इस प्रकार अंतर्लक्ष्य के दर्शन ... जीवनमुक्ति प्राप्त होने पर साधक एवं अंतर्लक्ष्य बनकर अखंड मंडल परम आकाश रूप हो ... है। (3)

द्वितीय ब्राह्मण

तब याज्ञवल्क्य ने आदित्य मंडल के पुरुष से पूछा, 'अंतर्लक्ष्य अनेक प्रकार से कहा गया ... किंतु मैं इसे नहीं जानता, अतः इसे मुझे बताइए।' वह पुरुष बोला, 'पंचभूतों का कारण विद्युत ... आभावाला एवं चार पीठोंवाला है। उसके मध्य में अति गूढ़ और अव्यक्त तत्त्व का प्रकाश ... है। ज्ञान-नौका पर चढ़कर ही उसे जाना जा सकता है। वही अंतर्लक्ष्य एवं बहिर्लक्ष्य है। ... मध्य में जगत लीन है। वह नाद, बिंदु एवं कला रहित अखंड मंडल और निर्गुण स्वरूप है। ... ज्ञान से मुक्ति होती है। पहले अग्नि-मंडल एवं इसके ऊपर सूर्य-मंडल है। उसके मध्य सु... चंद्र-मंडल और इसके मध्य अखंड ब्रह्म तेज-मंडल है, वह विद्युल्लेखा समान सफेद चमकीला ... यही शांभवी मुद्रा का लक्षण है। इसके दर्शन से अमावस्या, प्रतिपदा एवं पूर्णिमा, ये तीन ... दीखते हैं, बंद, अधखुली और खुली दृष्टि क्रमशः इनके रूप हैं। इनमें पूर्णिमा दृष्टि का अ... करना चाहिए, नासिकाग्र इसका लक्ष्य है। तालु मूल में गहन अंधकार के दर्श पर इसके अभ्यास ... अखंड मंडलाकार ज्योति के दर्शन होते हैं। यही सच्चिदानंद ब्रह्म है। इसमें मन के लय होने ... प्राणी को मिलनेवाली शांति खेचरी मुद्रा है। इसके अभ्यास से मन स्थिर होता है, फिर बुद्धि ...

होती है। इसमें पहले तार जैसा, फिर वज्र दर्पण, पूर्ण चंद्रमंडल, नौ रत्नों का प्रभा मंडल, मध्याह्न सूर्य मंडल और फिर अग्निशिखा मंडल क्रमशः दीखते हैं। (1)

तब पश्चिमाभिमुख स्फटिक समान धूम्रवर्ण नाद, बिंदु, कला, नक्षत्र, खद्योत, नेत्र, स्वर्ण, नवरत्न आदि की प्रभा दिखाई पड़ती है। यही प्रणत रूप है। प्राण एवं अपान को एक करके कुंभक में नाक के आगे दृष्टि रखकर प्रबल भावना से दोनों हाथ की अंगुलियों से षण्मुखी मुद्रा करे, तब नादश्रवण करके उसमें मन लीन होता है। उसे कर्म लिप्त नहीं करते। सूर्य के उदय-अस्त होने पर कर्म भी होते हैं, अतः चैतन्य सूर्य का उदय-अस्त न होने से कर्म भी नहीं रहते। शब्द-काल के लय से वह रात्रि एवं दिवस से रहित होने पर सर्व परिज्ञान की अवस्था में ब्रह्म से एकता और मनहीनता होती है। निश्चित अवस्था उसका ध्यान, सब कर्मों से दूर रहना आह्वान, निश्चय ज्ञान आसन, मन हीनता पाद्य, नित्य मन रहित होना अर्घ्य, प्रकाश और अनंत अमृत वृत्ति स्नान, ब्रह्म समानता की भवाना चंदन, दर्शन स्वरूप में स्थित अक्षत, चैतन्य सूर्य दीपक, परिपूर्ण नमस्कार, मौन साधना स्तुति तथा पूर्णतया संतोष विसर्जन है। इसका ज्ञाता ब्रह्मरूप हो जाता है। (2)

इस प्रकार ज्ञाता, ज्ञान औनज्ञेय रूपी त्रिपुटी के निरस्त होने पर देह तरंगहीन समुद्र जैसा, वायु रहित दीपक जैसा, अचल, पूर्ण, भाव-अभाव हीन 'केवल ज्योति' रूप हो जाता है। जागते-सोते भी अंतः परिज्ञान से ब्रह्मवेत्ता बनता है। सुषुप्ति एवं समाधि में मन की लीनता समान होने पर भी इनमें अंतर है, सुषुप्ति में यह आन में लीन होता है, किंतु समाधि में तपोगुण के विकारों का नाश और ब्रह्म से एकाकार होने पर जगत प्रपंच का लय हो जाता है, क्योंकि यह मन से ही कल्पित है। तब कभी समाधि से उठने पर भी यह प्रपंच मिथ्या जान पड़ता है। एक बार भी इस 'सत' आनंद का अनुभव हो जाने पर ब्रह्मवेत्ता उसी के समान हो जाता है। संकल्पनाश होने पर मुक्ति हाथ में हो जाती है। अतः भाव-अभाव के त्याग पर परमात्म के ध्यान द्वारा वह मुक्ति पाता है। फिर बार-बार सभी अवस्थाओं में ज्ञान ज्ञेय, ध्यान-ध्येय, लक्ष्य-अलक्ष्य, दृश्य-अदृश्य और ऊहा-पोह को त्यागकर मानव जीवन मुक्त हो जाता है, इसका ज्ञाता भी ब्रह्म को प्राप्त करता है। (3)

जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया तथा तुरीयातीत, ये पांच अवस्थाएं हैं। जागृत अवस्था में प्रवृत्त जीव प्रवृत्ति मार्ग का आसक्त होने से पाप के फलस्वरूप नरक आदि को जाता है। शुभकर्म के फल स्वर्ग की इच्छा से वह वैराग्य स्वीकार करके कर्मफल जन्य जन्म एवं संसार से मुक्ति हेतु निवृत्ति मार्ग अपनाता है। गुरु का आश्रय लेकर काम आदि को त्यागकर वेदानुसार कर्म करता हुआ चार साधन युक्त होता है। हृदय कमल स्थित भगवान की सत्ता-मात्रा अंतर्लक्ष्य से सुषुप्ति अवस्था रहित ब्रह्मानंद को स्मरण करता हुआ विचार करता है कि 'मैं एक अद्वितीय ही हूं, किंतु कुछ काल से अज्ञान के कारण अपना स्वरूप भूल गया हूं। जागृतावस्था के कारण स्वप्नावस्था में भी मैं स्वयं को तेज स्वरूप मानने लगा था, इन दोनों अवस्थाओं के बाद सुषुप्ति में मैं अपने को प्राज्ञ मानने लगा था, किंतु अब मैं स्वयं को 'एक ही हूं', ऐसा अनुभव करता हूं। स्थान-भेद से यह भी भिन्न अवस्थाएं थीं, किंतु मुझसे कुछ भी पृथक् नहीं है। इस विवेक के होने पर 'अब मैं अद्वैत ब्रह्म हूं।' इस अनुभूति से समस्त भेदभाव दूर हो जाते हैं। अपने अंतःस्थित भानु मंडल के ध्यान से ब्रह्म के तदाकार होकर मुक्ति मार्ग पर आरूढ़ होकर परिपक्व होता है। संकल्प आदि मन के बंधन के हेतु

(कारण) हैं। संकल्प रहित मन मोक्ष देनेवाला होता है। मोक्ष प्राप्त करनेवाला आत्मा चक्षु बाह्य प्रपंचों से सर्वथा रहित हो जाता है, वह समस्त जगत को आत्मवत देखता है। अहंकार 'मैं ब्रह्म हूं' ऐसा चिंतन तथा 'यह सब आत्मा ही है', ऐसी भावना से वह कृतार्थ हो जाता है।

योगी सभी प्रकार से परिपूर्ण तुरीयातीय ब्रह्मस्वरूप हो जाता है। उसकी ब्रह्म के समान करते हैं। इस प्रकार स्तुति योग्य बनकर वह सभी लोकों में संचरणशील परमात्मा रूप गगन में स्थापित करके शुद्ध अद्वैत, जड़ताहीन साथ ही उत्पन्न मन से रहित स्थितिवाली योग निद्रा में आनंद की अनुभूति से जीवनमुक्त हो जाता है। ऐसे योगी आनंद के समुद्र में मग्न हो जाते इनकी अपेक्षा इंद्र आदि भी कम आनंदवाले हैं। इस प्रकार के आनंद को परम योगी ही प्राप्त हैं। यही उपनिषद् (रहस्य की बात) है। (5)

तृतीय ब्राह्मण

महामुनि याज्ञवल्क्य ने मंडल पुरुष से पूछा, 'स्वामी ! मनहीनता का जो लक्षण आपने मैं उसे भूल गया हूं, अतः इसे पुनः कहिए।' 'बहुत अच्छा' कहता हुआ मंडल पुरुष बोला अमनस्क (मनहीनता) स्थिति अति रहस्यमय है, यह जिसके ज्ञान से मनुष्य नित्य कृतार्थ होता शांभवी मुद्रा से युक्त है। परमात्म दृष्टि से उसके लक्षणों को देखनेवाला उसके बाद अप्रमेय, अजन्मा, शिव परम आकाश, निरालंबन, अद्वैत, ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र आदि का लक्ष्य तथा सबके कारण परम ब्रह्म को अपनी ही आत्मा में देखता है। तब हृदय गुफा निश्चय जानकर भाव-अभाव आदि द्वंदों से रहित होकर मन को उन्मन (मन है ही नहीं) करता है। तदनंतर सभी इंद्रियों के नष्ट होने पर अमनस्क सुख के ब्रह्मानंद रूप समुद्र में प्रवाहित करके योग रूपी वायु रहित स्थान पर रखे दीपक के समान अचल ब्रह्म को प्राप्त कर तब सूखे वृक्ष के समान मूर्छा और निद्रावाली स्थिति में सांस का चलना भी नहीं रहता सुख-दुःख आदि द्वंदों का नाश होकर सदा अचंचल शरीरवाला योगी परम शांतिमय और शून्य होकर परमात्मा में लीन होता है। जैसे दुही हुई गाय के थनों में दूध नहीं होता, ऐसे ही इंद्रियों के नष्ट होने पर मन भी नष्ट हो जाता है, यही अमनस्क स्थिति है, तब मैं ही नित्य परमात्मा हूं', ऐसी अवस्था, 'तत्त्वमसि' (तुम वही ब्रह्म हो) का उपदेश मिलने पर 'तुम ही मैं हूं' 'मैं ही तुम हूं', योग मार्ग के इस तारक ब्रह्म रूप के आश्रय से योगी कृतार्थ होता है। परमाकाशमय मनवाले उन्मन अवस्था को प्राप्त योगी का इंद्रियगर्व छूट जाता है, तब वह जन्म के संचित पुण्यों से कैवल्य रूपी फल के पक जाने पर सभी दुःख एवं पापों के नष्ट अखंड आनंद से 'मैं ब्रह्म हूं' ऐसा अनुभव करता हुआ कृतकृत्य होता है। अतः परमात्मा पूर्ण ही मैं हो, कोई भेद नहीं है। ऐसा कहते हुए शिष्य का आलिंगन करते हुए गुरु ने शिष्य को दिया था।

चतुर्थ ब्राह्मण

याज्ञवल्क्य ने मंडल पुरुष से कहा, कि वह पांचों आकाशों के लक्षण को विस्तार से उसने बताया कि आकाश, पराकाश, महाकाश, सूर्याकाश और परमाकाश, ये पांच होते हैं। बाहर और भीतर से अंधकारमय है। पराकाश बाहर और भीतर से कालाग्नि के समान है

और भीतर से अपरमित द्युति के समान तत्त्व महाकाश है। सूर्याकाश बाहर एवं भीतर से सूर्य के समान है। परमाकाश अवर्णनीय ज्योतिवाला तथा असीम आनंदमय है। इस प्रकार इनमें जिसका दर्शन हो, उसी के समान रूप की प्राप्ति होती है। नौ चक्रोंवाले, छः आधारवाले तथा तीन लक्ष्योंवाले, इन पांचों आकाशों को जो सम्यक रूप में जानता है, वस्तुतः वही योगी है।

पंचम ब्राह्मण

विषयी मन बंधन कारक तथा निर्विषयी मन मुक्तिकारक होता है। अतः समस्त जगत चित्त का ही विषय है, यदि चित्त निराश्रय हो, तो मन उन्मन्य अवस्था से परिपक्व होकर लय योग्य होता है। अतः लय को परिपूर्ण 'मैं' के प्रति अभ्यास करें। क्यों मन के लय का कारण ही 'मैं' है। अनाहत शब्द के भीतर की ध्वनि के अंदर ज्योति है, इस ज्योति के अंतर्गत मन है और यह मन ही तीनों लोकों की उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार का कारण है। अतः जिसमें मन लय होता है, वही विष्णु का परम पद है। इसमें मन का लय होने से पूर्ण अभेदमय शुद्ध अद्वैत तत्त्व की प्राप्ति होती है। यही परम तत्त्व है। इसका ज्ञाता बालक, उन्मत्त या पिशाच के समान संसार में जड़ जैसा आचरण करता है। इस अमस्क का अभ्यास होने से नित्य तृप्ति, मल-मूत्र की अल्पता, कम आहार, दृढ़ शरीर, जड़ता का अभाव, निंद्रा और पलकों का न झपकाना आदि लक्षणों से युक्त हो जाता है। उसे ब्रह्मदर्शन हेतु सुखमय स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। अधिक समय तक समाधि के अभ्यास से उत्पन्न ब्रह्मरूपी अमृत पीने में परायण संन्यासी परम हंस अवधूत होता है। उसके दर्शन से जगत पवित्र हो जाता है। उसकी सेवा से अज्ञानी भी युक्त होकर अपनी एक सौ पीढ़ियों का तारण करता है। उसके माता-पिता, पत्नी और संतान सब मुक्त हो जाते हैं। यही उपनिषद है।

☐

40. कौशीतकी ब्राह्मणोपनि

शांतिपाठ :

ॐ वाङ्मे मनांस प्रतिष्ठता मनो मे वाचि प्रतिष्ठम् आविराविम एधि वेदस्तन आणीस्थः श्रु
प्रहासीरतेनाहोरात्रान्संदधाम्यृतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु ।
मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

हे परमात्मा मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो, मेरा मन वाणी में प्रतिष्ठित हो, तुम मेरे समक्ष होओ । मुझे वेदों का ज्ञान दो । मैं सुने हुए ज्ञान को न भूलूं । इस अध्ययन से मैं रात-दिन दूं, मैं ऋत एवं सत्य बोलूं । मेरी रक्षा करो । मेरे गुरु की रक्षा करो । हम दोनों की रक्षा करो । दैविक तथा भौतिक, तीनों प्रकार के ताप (कष्ट) शांत हों ।

प्रथम अध्याय

गर्ग ऋषि के प्रपौत्र महर्षि चित्र ने अरुण के पुत्र उद्दालक को यज्ञ में बुलाया । उद्दालक यज्ञ करने के लिए अपने पुत्र श्वेतकेतु को भेज दिया । श्वेतकेतु यहां जाकर एक ऊंचे आ बैठ गए तब महर्षि चित्र ने उनसे पूछा, 'क्या इस लोक में कोई ऐसा आवरणवाला ऊंचा स्थान जहां मुझे स्थित करोगे ? या किसी अदभुत आवरणवाले स्थान में स्थित करोगे ?' श्वेतके 'मुझे इस विषय में कोई ज्ञान नहीं है । मेरे पिता से जाकर पूछिए । तब वह स्वयं पिता के और यह प्रश्न पूछा । पिता ने कहा, 'मैं कैसे बताऊं ? मैं भी इस विषय में नहीं जानता । यज्ञ सभा में तत्त्व के अध्ययन से इस विषय को प्राप्त करेंगे । अन्य व्यक्तियों के समान धन मिलेगा । अतः चलते हैं । (1)

हाथों में समिधा लेकर उद्दालक चित्र के पास पहुंचे और बोले, 'मैं यहां ज्ञान-प्राप्ति हे हूं ।' इससे किसी को आश्चर्य नहीं हुआ । चित्र बोले, 'आप वस्तुतः ब्रह्मविद्या के अधि श्रेष्ठ होते हुए भी आप मेरे यहां आए हैं । मैं आपको यथार्थ ज्ञान दूंगा । श्रेष्ठ कर्मों को क लोग इस संसार से प्रयाण के बाद स्वर्ग को ही प्राप्त करते हैं । उनके प्राणों से शुक्ल पक्ष ला होता है, किंतु कृष्ण पक्ष में चंद्रमा के स्वर्ग में रहने से यह पक्ष लाभान्वित नहीं होता । चंद्र लोक का प्रसिद्ध द्वार ही है । स्वर्ग से पुनः गिरना ही है, ऐसा सोचकर जो निष्काम कर्मों से त्याग कर देते हैं, वे ब्रह्म लोक प्राप्त करते हैं । ऐसा न करनेवाले को पुण्य नष्ट होने पर वर्षा स्वर्ग से गिरा दिया जाता है । वे यहां कीट, पतंग, पक्षी, व्याघ्र, सिंह, मछली, कुत्ता, पुरुष अन्य योनि को प्राप्त करते हैं । इस कर्म एवं विद्यामय स्वर्ग नरक की गति को जानकर सद् शरण में जाने पर गुरु उससे पूछता है, 'तुम कौन हो ?' तो वह उत्तर दे—विलक्षण चंद्रमा होकर श्रद्धा, सोम, वर्षा और अन्न के प्रभाव से उत्पन्न वीर्य जो पुरुष रूप अग्नि में स्थित है

उत्पन्न मुझ प्राणी को संयोग की कामना करनेवाले पुरुष में स्थित किया है, फिर उसी पुरुष ने मेरा गर्भ में निसेचन किया। उसी से उत्पन्न हुआ मैं ब्रह्म जिज्ञासा से जीवित रहा हूं। अतः आप मुझे अमृत्व देनेवाले ब्रह्मज्ञान के लिए दीर्घायु दें, यही विचार करते हुए मैं देवताओं से भी इसके लिए प्रार्थना करता हूं। मेरे द्वारा कहे गए इसी सत्य एवं तपस्या से मैं ऋत हूं। यदि यह सत्य नहीं है, तो आप ही बताइए कि मैं कौन हूं? क्या मैं वही हूं, जो आप हैं? इस पर गुरु उसे पापों से छुड़ाकर मुक्त कर देता है। (2)

इस देवयजन मार्ग को प्रापत करके वह पहले अग्निलोक को जाता है। फिर क्रमशः वायुलोक में, वरुणलोक में, आदित्यलोक में, इंद्रलोक में, प्रजापतिलोक में तथा ब्रह्मलोक में जाता है। इस ब्रह्मलोक के प्रवेश-द्वार पर एक आर नाम का जलाशय है। कुछ ही दूरी पर येष्टिहा नामक देवता है, फिर विरजा नदी, तब इल्य नामक वृक्ष है और आगे इंद्र एवं प्रजापति के भवन से भी सुंदर एक भवन है, जिसमें ब्रह्मा के दो द्वारपाल बाहर से रहते हैं, जिसमें विभुप्रमति नामक सभी मंडप है, विचक्ष नाम की वेदी हैं, अमितौज नाम का ब्रह्माजी का पर्यंक (विस्तर) है। मानसी उनकी पत्नी है, प्रतिरूपा एवं चाक्षुषी उनकी छाया मूर्ति हैं। अंबा और अंबायत्री वहां अप्सराएं हैं। अंबया नाम की नदियां हैं, जो ज्ञानस्वरूप हैं। इस ज्ञान का ज्ञाता ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। तब ब्रह्माजी अपने सेवकों से उस ब्रह्मज्ञानी को बुलाने की आज्ञा देते हुए कहते हैं, 'जाओ उसे मेरे यश के अनुरूप आदर से बुला लाओ। वह साधना से विराजा नदी के समीप आ गया है। वह अब कभी वृद्ध नहीं होगा। (3)

तब पांच सौ अप्सराएं उसे लेने के लिए दौड़ती हैं और कई सौ उसके लिए हाथों में केसर, कुमकुम, वस्त्र आभूषण आदि लेकर उसे ब्रह्मा के अलंकारों से अलंकृत करती हैं। इस प्रकार अलंकृत होकर वह पूर्वकथित जलाशय के पास जाता है और मानसिक संकल्प से ही उससे पार हो जाता है। अज्ञानी वहां जाने पर उसमें डूब जाते हैं। यष्टिहा के समीप पहुंचने पर देवता उसके तेज के सामने ठहर नहीं पाते। विरजा को भी वह मन से ही तैर लेता है। उस पुण्यात्मा से द्वेष करनेवाले पाप के भागी बनते है, किंतु उससे प्रेम रखनेवालों को पुण्य मिलता है। वह रथारोही द्वारा चक्रों को देखने के समान रात्रि-दिन, सुकृत-दुष्कृत आदि को देखता भर है उनके संपर्क में नहीं आता। अतः ब्रह्मज्ञान से यह ब्रह्म को ही प्राप्त होता है। (4)

इसके बाद ईल्य वृक्ष के पास आने पर उसमें ब्रह्म गंध, सालज्य नगर के पास आने पर दिव्य ब्रह्म रस, अपराज़ित आयतन (भवन) के पास आने पर तेज ब्रह्म प्रविष्ट होता है। द्वारपाल उसके लिए मार्ग दे देते हैं विभुप्रमति के पास जाने पर उसमें ब्रह्मयश प्रविष्ट होता है। विचक्षणा के पास आने पर प्रज्ञा एवं महत् को देखता है। अमितौजस पर्यंक के पास आने पर उसे अगले पापों पर भूत एवं भविष्य तथा पिछले पापों पर श्री और ईश्वरी दीखती हैं। बृहद रथंतर में आने पर वह राम को देखता है। भद्र एवं यज्ञायज्ञीय नामक शीर्ष अमृत एवं साम इसके दो पाए हैं। इसकी पूर्व से पश्चिम तक और उत्तर से दक्षिण तक लगी पट्टियां क्रमशः ऋक-साम और यजुर्वेद की प्रतीक हैं। चंद्रमा की रश्मियां बिस्तर हैं तथा उद्गीथ चादर है। उसमें ब्रह्मा बैठते हैं। इस तत्त्व का ज्ञाता ब्रह्मज्ञानी इस पर पांवों से चढ़ता है। तब ब्रह्मा उससे पूछते हैं, 'तुम कौन हो?' तब वह कहे, 'मैं उस आकाश योनि स्वयंभू से उत्पन्न हुआ हूं, जो इस समस्त विस्व का कारण भूत तेज है, मैं उसका तेज रूप हूं, मैं आत्मा हूं, आप भी आत्मा हैं। जो आप हैं, वही मैं हूं। तब ब्रह्मा पूछते हैं, 'मैं कौन हूं?'। (5)

तब वह कहे, 'आप साक्षात सत्य हैं ।' ब्रह्म कहते हैं 'सत्य यथार्थ में क्या है ?' दिव्य प्राण से भिन्न अदभुत सत्य है । वही सत है, दिव्यता है और प्राण सत्य है । वाणी जिस सत्य कहती है, वह इन सबका संयोग है । जो सब कुछ है वही, सत्य है । आप में भी सब कुछ होने के कारण आप सत्य हैं । (यहां से आगे प्रश्नकर्ता ब्रह्मा हैं और उत्तरदाता ब्रह्मवेत्ता हैं) पु किसका बोध होता है —'प्राण का ।' स्त्रीलिंग से —'वाणी का ।' नपुंसक लिंग से ? —'मन गंध किसके द्वारा ग्राह्य है ? —'घ्राण से ।' रूप किसके द्वारा ? —'चक्षु से ।' शब्द ? —'श्रो रस ?— 'जिह्वा से ।' कर्म ? —'हाथों से ।' सुख-दुःख ? —'शरीर से ।' आनंद रति की प्र —'जननेंद्रिय से ।' चलना ?—'पांवों से ।' ज्ञान किसके द्वारा ?—'प्रजा से ।' तब ब्रह्मा 'यह मेरा लोक तुम्हारा है ।'

द्वितीय अध्याय

कौषीतकि ऋषि कहते हैं कि प्राण ही ब्रह्म है । इस प्राण ब्रह्म का मन दूत है, वाणी परिवे रक्षक हैं और श्रोत्र संदेश सुनानेवाले हैं । इस प्राण के, मन को, चक्षु को तथा वाणी को जान दूतोंवाला, रक्षकोंवाला संदेश पाठक वाला तथा परिवेष्ट्रीवाला होता है । समस्त इंद्रि देवताओं द्वारा बिना मांगे ही भेंट स्वरूप प्रदान की हैं । इस रहस्य के ज्ञाता को समस्त प्रा भेंट बिना मांगे ही प्राप्त होती है । जैसे गांव से भिक्षा न मिलने पर याचक प्रण कर लेता है कि मांगकर कभी न खाऊंगा, वैसे ही प्राण का उपासक किसी प्रकार की याचना न करे । इस दृढ़ता से पालन करे । याचक में दीनता होती है । इसलिए उसे भिक्षा दी जाती है (किंतु प्र याचक बिना मांगे ही सब कुछ पा जाता है) ।(1)

महर्षि पैंगप्रस्त ने भी प्राण को ब्रह्म कहा है । इस प्राण ब्रह्म के वाणी से परे चक्षु आदि हैं, चक्षु ने वाणी को चारों ओर से व्याप्त किया है । चक्षु से परे श्रोत्र हैं, इसने चारों ओर से व्याप्त किया है । इसी प्रकार फिर मन है, जो चक्षु को व्याप्त करता है । फिर प्राण है, जो मन ओर से व्याप्त करता है । देवता इस प्राण ब्रह्म को बिना याचना किए बलि (भेंट) प्रदान इस तथ्य के ज्ञाता (उपयुक्त की तरह) यह मानते हैं कि गांव में मांगने पर भी भिक्षा न मिलने याचक पुनः भीख न मांगने की प्रतिज्ञा करता है, वे भी किसी से कुछ नहीं मांगेंगे । (2)

इस प्रकार धन की प्राप्ति न होने पर यह अनुष्ठान करे—अमावस्या, पूर्णिमा अथ शुद्ध तिथि को पुष्य नक्षत्र में धन का इच्छुक अग्नि-स्थापना करके परि समूह न करके औ जल में कुशों का अभिषेचन करके इस प्रकार घृत की आहुति दे । अभीष्ट देने वाली वाणी रुके हुए धन को दे । उसके लिए यह आहुति है (तस्यै स्वाहा) । अभीष्ट सिद्धि में समर्थ प्रा मुझ उपासक को धन प्रदान करें । उसके लिए यह आहुति है । (इसी प्रकार चक्षु, श्रोत्र, मन देवताओं को भी प्रार्थना करते हुए आहुति दी जाती है ।) फिर धूप गंध को सूंघकर शरीर में लेप करके मौन रहकर धनवाले के पास जाकर प्रार्थना करने से धन की प्राप्ति होती है । ध दूर होता है, तो दूत से बुलवा लेता है । (3)

अभीष्ट सिद्धि हेतु किसी का प्रिय बनने के लिए साधक उपर्युक्त विधि से अग्नि स्थापन आदि करके घृताहुति देता हुआ इस प्रकार प्रार्थना करे—यह मैं तुम्हारी वाणी को अपने में हवन करता हूं, तस्यै स्वाहा। तुम्हारे प्राण को अपने में हवन करता हूं, तस्यै स्वाहा। इस प्रकार नेत्रों को, मन को एवं प्रज्ञा को आहुति देने के बाद पूर्वोक्त प्रकार से धूप गंध सूंघकर घी का लेप कर मौन होकर अभीष्ट व्यक्ति के पास जाकर इसी प्रकार मन में विचार करता हुआ खड़ा हो। इस प्रकार वह उस व्यक्ति का प्रिय तो होता ही है, साथ ही उसके वहां से चले जाने पर अन्य व्यक्ति भी उसे याद करते हैं। (4)

अब प्रतर्दन के 'सायमन्न अग्निहोत्र अनुष्ठान के' विषय में कहा जाता है। मनुष्य बोलते समय पूरी तरह श्वास नहीं ले पाता, अतः उस समय वाणी का प्राण में हवन होता। ये वाणी एवं प्राण रूप अनंत और अमर आहुतियां प्राणी द्वारा सोते-जागते हवन होती रहती हैं, जबकि अन्य आहुतियां कर्म से हवन होती हैं। इस प्राचीन ज्ञान का विद्वान केवल कर्ममयी आहुतियां नहीं देता। (5)

शुष्कभृंगा भी प्राणों को ब्रह्म मानते हैं। प्राण को ऋक मानकर उपासना करने से श्रेष्ठ बनने के इच्छुक लोग उस ज्ञानी की पूजा करते हैं। इसे यजुष मानकर उपासना करने से प्राणी (जो श्रेष्ठ बनना चाहते हैं) उससे सहयोग करते हैं। इसकी श्री मानकर उपासना करने से, यश-रूप में तथा तेज-रूप में उपासना करने से क्रमशः शास्त्रों की श्रीमत्ता, श्रेष्ठ यश एवं तेज प्राप्त होता है। इसका ज्ञाता विद्वान सभी प्राणियों में श्री, यश एवं तेज से संपन्न होता है। ईंटों की बनी वेदी पर प्राण-रूप अग्नि आत्म स्वरूप है। अध्वर्यु इसका संस्कार करता है। तभी वह प्राणों में यजुर्वेद से सिद्ध होनेवाले कार्यों की तथा यजुर्वेद से सिद्ध होनेवाले कार्यों में ऋग्वैदिक विधि से सिद्ध होनेवाले कार्यों की और इनमें सामवेद से सिद्ध होने वाले कार्यों की वृद्धि करता है। इन तीनों वेदों की विद्या का अध्वर्यु प्राण है, जो इसका आत्मा कहा जाता है। इसका ज्ञाता प्राणी स्वयं इस आत्मा के समान हो जाता है। (6)

कौषीतकि के द्वारा तीन उपासनाएं बतलायी गई हैं, यज्ञोपवीत को स्पर्श करके आचमन करें। फिर तीन बार पात्र भरकर सूर्य को अर्घ्य देते हुए कहें—'संसार का तिनके के समान त्याग कर देने से सूर्य देवता ! आप वर्ग कहे जाते हैं। आप मेरे पापों को नष्ट करें।' इसी प्रकार मध्याह्न में कहें 'हे सूर्य देवता ! आप उदवर्ग हैं। मेरे पापों को नष्ट करें।' सायंकाल अस्त होते हुए सूर्य से इसी प्रकार प्रार्थना करें—हे सूर्य देव ! आप संवर्ग कहलाते हैं। मेरे पापों को दूर करें। इस उपासना से वह रात या दिन में कभी पाप नहीं करता। (7)

प्रत्येक महीने अमावस्या का चंद्रमा की सूर्य के पश्चिम में उपस्थिति होती है। तब उपर्युक्त विधि से सूर्य की पूजा करें। जलयुक्त अर्घ्यपात्र में हरी दूब रखें। फिर निवेदन करें, 'हे चंद्र-मंडल की देवी सुंदर भावोंवाला तुम्हारा हृदय चंद्र-मंडल में विराजमान है। तुम अमृतपद की अधिकारिणी हो, मुझे पुत्रलोक में रोना न पड़े।' इससे उपासक का पुत्र उससे पहले नहीं मरता। पुत्रहीन इसी पूजा को करता हुआ यह स्तुति करे—'स्त्री रूप चंद्रमा ! तुम पुरुष रूप तेज को प्राप्त कर वृद्धि प्राप्त करो। उत्पत्ति का कारक तेज तुममें स्थित हो। तुम अन्न देनेवाले हो। हे सौम्य ! गुणोंवाले चंद्र ! तुम्हारा रस पुष्पों का उपकारी, शत्रुजयी एवं शक्तिप्रद है। अन्न-जल पर जीवन-यापन करनेवालों को यह सुलभ है। तुम तेज से हमें यश दो। स्वर्ग में यश को प्रतिष्ठित करो। जिस नारी रूपी चंद्र

को बारह आदित्य आनंदित करते हैं वह चंद्र तथा अक्षय बलवाला वृहस्पति हमें बलवान क
हे चंद्रमा ! हमारे जीवन,प्रजा तथा पशुओं से अपनी भूख शांत न करो । हमारे वैरी के जीवन,
तथा पशुओं से तृप्त होओ । मैं इस मंत्र के देवता (सूर्य) का तथा तुम्हारा अनुगमन करनेवाला
(8)

पूर्णिमा के दिन जब सामने चंद्रमा दिखाई दे, तो पूर्व विधि से चंद्रमा का उपस्थापन करे
प्रार्थना करें—'हे सोम ! तुम राजा हो, विलक्षण पांच मुखोंवाले हो, और प्रजापति हो।
अपने एक ही मुख से क्षत्रियों को तथा क्षत्रिय वैश्य को अपने एक ही मुख से जागृत करते हैं।
ब्राह्मण एवं क्षत्रिय तुम्हारा एक-एक मुख है । अपने इस मुख से तुम मुझे अन्न भक्षण की
पाचन-शक्ति दो । श्शेन (बाज) और अग्नि भी तुम्हारे एक-एक मुख हैं, जिनके द्वारा तुम
पक्षियों तथा समस्त अग्नियों का भक्षण करते हो । इन मुखों से मुझे भक्षण एवं पाचन शक्ति
पांचवां मुख समस्त जीवों का भक्षण करता है । इससे तुम मुझे अन्न (पूर्ववत) मेरे प्राण, संतान
पशु किसी का नाश न हो । मेरे शत्रुओं के प्राण संतान तथा पशु नष्ट करो । मैं मंत्र के देवता का
तुम्हारा अनुगामी हूं ।' इस प्रकार सोम का पूजन करने के बाद पत्नी के पास बैठकर उसके हृदय
स्पर्श करता हुआ कहे, 'हे श्रेष्ठ मार्ग का अनुसरण करने वाली तुम सोम रूपा हो और तुम्हारा
संतानों का पोषण करनेवाला है । इसमें स्थित अमृत रूप प्रजापति को मैं जानता हूं । यह सत्य
अत: मुझे कभी पुत्रशोक न हो । इस प्रकार साधक की संतान उससे पूर्व कभी नहीं मरती ।(9)

प्रवास से लौटा पिता पुत्र के माथे को सूंघकर कहता है, 'तुम अपने अंगों एवं शरीर सहित
हृदय में प्रकट होते हो । पुत्र अपना ही रूप होता है । तुम सौ वर्ष तक जिओ । वंश-परंपरा को
मत करो । पुन: सौ वर्ष जीवित रहो, मैं तुम्हारा माथा सूंघता हूं ।' फिर माथा सूंघें । जैसे गाय
के लिए रंभाती है, वैसे ही मैं भी तुम्हें पुकारता हूं । (मैं तुमसे अत्यधिक स्नेह रखता हूं)(11)

देव परिसर का वर्णन—अग्नि के जलने पर यह ब्रह्म प्रकाशित होता है । अग्नि के बुझ
पर यह तेज आदित्य में चला जाता है और इसी से ब्रह्म ही दीपित होता है । सूर्यास्त होने पर
तेज चंद्रमा में और प्राण वायु में चला जाता है । तब इसी से ब्रह्म प्रकाशित होता है । चंद्रमा
रहने पर यह विद्युत में, विद्युत के न रहने पर वायु में और प्राण भी वायु में चले जाते हैं । ये
देवता वायु में प्रविष्ट होकर तृप्त होते हैं और कभी निस्तेज नहीं होते । यहां से इनकी पुन:
कही गई है कि यह अधिदैवत है । अध्यात्म इस प्रकार है । (12)

मनुष्य जो वाणी बोलता है, यह ब्रह्म ही प्रकाशित होता है । इसकी मृत्यु पर यह तेज
चला जाता है और प्राण, प्राण में चले जाते हैं । चक्षु से देखना भी ब्रह्म रूप है । चक्षु के मरने पर
यह नहीं देखते तब इनका तेज कानों को प्राप्त हो जाता है और प्राण प्राण को । कानों से सुनना
ब्रह्म का प्रकाशन है । कानों की मृत्यु पर जब ये सुन नहीं पाते, तो इनका तेज मन को प्राप्त होता
है । मन से होनेवाला ध्यान भी ब्रह्म रूप ही है । मन के मरने पर ध्यान नहीं होता, तब इसका
प्राण को ही प्राप्त हो जाता है । अत: ये समस्त देवता प्राणों में प्रविष्ट होकर तृप्त होते हैं और
नहीं होते । यहां से इनका पुन: आविर्भाव होता है । इस ज्ञान के ज्ञाता की आज्ञा की
अवहेलना नहीं कर सकते । उससे द्वेष करनेवाले सर्वथा नष्ट हो जाते हैं ।(13)

अहंकार से अपने-अपने को श्रेष्ठ सिद्ध करते हुए देवता (इंद्रियां) परस्पर विवाद करके शरीर से निकल गए। शरीर मृत हो गया। बाद में इन इंद्रियों ने देह में प्रवेश किया, तो शरीर देखने, विचारने, सुनने तो लगा, किंतु प्राणों के अभाव में उठने और कार्य करने में समर्थ न हो सका। प्राणों के प्रवेश करने पर वह उठ पड़ा, अतः इन सबने प्राणों को श्रेष्ठ स्वीकार किया। और उसके साथ वायु से प्रतिष्ठित होकर आकाश रूपी स्वर्ग को प्रस्थान किया। अतः जो विद्वान सभी प्राणियों में प्राण ही प्रज्ञा और आत्मा है, ऐसा मानकर इसकी श्रेष्ठता को जानता है, इस वह शरीर को छोड़ने पर वायु पर होकर आकाश रूपी स्वर्ग में जाता है और वहां रहनेवाले देवताओं के समान अमर हो जाता है। (14)

जब पिता को अपने अंतकाल की समीपता प्रतीत होने लगती है, तो वह उसे अपना ज्ञान देना चाहता है। इससे पूर्व घर को नए तृणों से छप्पर डालकर अग्नि जलाकर पात्र सहित कुंभ को रखकर वस्त्र से उसे ढंककर पुत्र को बुलाकर अपनी समस्त प्राणशक्ति उसमें प्रतिष्ठित करता है। पुत्र के सभी अंगों को स्पर्श करता हुआ वह कहता है, 'मैं अपनी वाणी तुममें स्थापित करता हूं।' तब पुत्र कहता है, 'आप अपनी वाणी मुझ में स्थापित कीजिए।' फिर पिता कहता है, 'मैं अपने चक्षु तुम में स्थापित करता हूं,' और पुत्र कहता है, 'आप अपने चक्षु मुझमें स्थापित कीजिए।' इस प्रकार पिता एक-एक करके अपनी प्राण, घ्राण, श्रोत्र, रस, अन्न, कर्म, सुख-दुःख, प्रजननशंक्ति, गति प्रज्ञा आदि को कहता हुआ पुत्र में स्थापित करता है और पुत्र स्वीकार करता जाता है। ऐसा करने से पिता को स्वर्ग प्राप्ति होती है। इसके बाद यदि पिता जीवित रहे, तो पुत्र के आश्रय में रहे। अथवा संन्यासी बन जाए। इससे पुत्र को पिता की सारी शक्तियां प्राप्त होती हैं और वह वास्तविक उत्तराधिकारी बनता है। (15)

तृतीय अध्याय

राजा प्रतर्दन इंद्र के धाम स्वर्ग में गए। युद्ध में उनके पौरुष से प्रसन्न होकर इंद्र ने उनसे कहा, 'मैं तुम्हें क्या वर दूं' ? प्रतर्दन बोले, 'जिसे आप मनुष्य के लिए कल्याणकार समझते हैं, मुझे वही वर दीजिए।' इंद्र—'वर अन्यों के लिए नहीं मांगा जाता, आप अपने लिए मांगिए।' प्रतर्दन—'तब अपने लिए मांगने को मेरे पास कुछ नहीं है।' इंद्र भी अड़ गए, क्योंकि इंद्र सत्य रूप हैं और बोले, 'प्रतर्दन ! आप मुझे जानिए। मुझे भली भांति जानना ही मानव के लिए कल्याणकारक है। मैंने प्रजापति त्वष्ट्रा के पुत्र का वध किया। आचरणहीन यतियों को काटकर भेड़ियों को दे डाला। प्रह्लाद के पालक राक्षस को मार, पृथ्वी में पुलोमासुर तथा कालाश्य दैत्य को नष्ट किया। जो मुझे जानता हैद्व उसके मावन-वध, पितृ-हत्या, स्तेय (चोरी) , भ्रूण हिंसा आदि जन्य पाप नष्ट होते हैं। किसी भी कार्य में उसका मुख नीला नहीं होता (उसे किसी भी कार्य में असफलता नहीं मिलती)।(1)

मैं प्राण रूप हूं। मुझे प्राण (प्राण ही आयु है), आयु एवं अमृत मानक उपासना करो। प्राण रहने तक ही आयु रहती है। मुझे जानकर प्राणी को अमृत्व मिलता है। मैं प्रज्ञा हूं। सत्य-असत्य का निर्णय प्रज्ञा से होता है। मुझे इस रूप में अमृतमय मानने पर पूर्ण आयु के बाद स्वर्ग में अनंत

अमरता का आनंद प्राप्त होता है। कुछों का मत है कि सब प्राण एक भाववाले होते हैं। कानों से सुनने; नेत्रों से देखने तथा मन से विचार करने में एक साथ समर्थ नहीं है। अतः एक भाववाले हैं। प्रत्येक विषय की अनुभूति अलग-अलग समय में होती है। मन के विचार पर या कान के सुनने पर अन्य प्राण (प्राण अपान आदि) उसके साथ हो जाते हैं। मुख्य प्राण में अन्य प्राण वर्ग सहयोगी बनता है। समस्त प्राण एक ही है। पांचों प्राण (प्राण अपान, व्यान और समान) वस्तुतः अत्यंत कल्याणमय हैं। (2)

यह सब प्रत्यक्ष उदाहरण है कि प्राण रहने पर ही मनुष्य आदि प्राणी जीवित रहते हैं। जीवित रहता है, नेत्रहीन, बहरे, मनहीन बालक, अंगहीन सभी जीवित रहते हैं, किंतु प्राणहीन नहीं रहता। अतः प्राण ही उपासना करने योग्य है। प्राण ही प्रज्ञा (बुद्धि) है; प्रज्ञा ही प्राण है। दोनों शरीर में एक साथ रहते हैं और साथ ही बाहर निकलते हैं। अतः इसी दृष्टि से इन्हें जानें। के प्राण के साथ एकाकार हो जाने पर वह सुषुप्तावस्था में भी स्वप्न नहीं देखता। तब सभी नाम के, शब्द वाणी के, रूप चक्षु के, शब्द श्रोत्र के, चिंतन मन के साथ (सभी इंद्रियां अपने के साथ) मुख्य प्राण में लीन हो जाते हैं। प्रज्वलित अग्नि की चिनगारियों के समान सभी जागने पर अपने-अपने स्थानों को ग्रहण कर लेते हैं। फिर उनमें अग्नि आदि विभिन्न के प्रकट होने का कारण बनते हैं। इसकी सिद्धि इस प्रकार समझनी चाहिए। जब मनुष्य कारण से मरने लगता है, तो उस समय वह शक्ति एवं चेतना से रहित होने पर किसी परिचित नहीं पहचान सकता। उस समय के विषय में कहा जाता है कि वह तब न कुछ कहता है, न सुनता न देखता है और न चिंतन ही करता है, प्राणों में लीन मात्र हो जाता है। उस समय नाम, रूप सब प्राणों में लीन हो जाते हैं। पुनः जन्म लेने पर अग्नि से निकलनेवाली चिंगारियों के समान रूप आत्मा के प्राण, अपान आदि पांचों प्राण अपना-अपना स्थान प्राप्त कर लेते हैं। अधिष्ठाता देवता और लोक आदि भी प्रकट हो जाते हैं ।(3)

प्राण हमारे शरीरों से इंद्रियों सहित उत्क्रमण करता है। तब वाणी सब नामों को, घ्राणेंद्रिय को, नेत्र रूपों को, श्रोत्र शब्दों को तथा मन चिंतनीय विषयों को त्याग देते हैं। इस प्रकार सभी इंद्रियां समर्पित हो जाती हैं और अपने-अपने विषयों का परित्याग कर देती हैं। अतः प्रज्ञा हैं, प्रज्ञा ही प्राण हैं। दोनों साथ ही देह में निवास करते हैं और साथ ही उत्क्रमण भी करते प्रज्ञा में समस्त-समस्त भूतों के एकीकरण की व्याख्या इस प्रकार है। (4)

वाणी इसकी (प्रज्ञा की) एक अंग है और इसका विषय 'नाम' है, जो इंद्रियों का अंश है अंग की पूर्ति नासिका करती है, जिसका विषय गंध है, जो भूतों (इंद्रियों) का एक अंश है प्रकार नेत्र, श्रोत्र, जिह्वा, हाथ, देह, उपस्थ एवं पांव ने भी प्रज्ञा के एक-एक अंग की पूर्ति की है विषय क्रमशः रूप, शब्द, रस, आदान, सुख-दुःख, रति-प्रजनन एवं चलना है। प्रज्ञा के एक पूर्ति स्वयं प्रज्ञा ने की है, जिसके बाह्य विषय बुद्धि से अनुभूत वस्तुएं-कामनाएं हैं। (5)

प्रज्ञा द्वारा मनुष्य वाणी पर अधिकार रखकर नामों को प्राप्त करता है। इसी प्रकार घ्राण श्रोत्र, जिह्वा, हाथ, शरीर, उपस्थ, पांव आदि पर अधिकार रखकर क्रमशः गंध, रूप, शब्द, रस, सुख-दुःख, रति-प्रजनन, गमन (चलना) आदि पर अधिकारकरता है या उन्हें ग्रहण करता है।

प्रज्ञाहीन वाणी किसी नाम का बोध नहीं करा सकती । प्रज्ञा के साथ न देने पर व्यक्ति कहता है कि उसका मन कहीं अन्य जगह था, अतः वह इसे नहीं समझ पाया । इसी प्रकार प्रज्ञा से हीन होने पर घ्राण, श्रोत्र, नेत्र, जिह्वा, हाथ, देह, उपस्थ, पांव और मन क्रमशः सूंघना, सुनना, देखना, रस-ग्रहण, आदान, सुख-दुःख, रति-प्रजनन, गमन, मनन आदि का बोध नहीं होता या इन विषयों का ज्ञान नहीं रहता है । (7)

वाणी को नहीं, अपितु वक्ता को (आत्मा को) जानना चाहिए । गंध को नहीं, अपितु गंध ग्रहण करने वाले आत्मा को जानना चाहिए । इसी प्रकार रूप, शब्द, रस, आदान, सुख-दुःख, रति-प्रजनन, गमन तथा मन को नहीं, अपितु इनको ग्रहण करनेवाले अथवा इनको लिए प्रेरित करनेवाले आत्मा को जानना चाहिए । प्रज्ञा में नाम, रूप आदि दस भूत मात्राएं (विषय) तथा इन भूतों में वाणी, चक्षु आदि दस इंद्रियं प्रज्ञा मात्राएं हैं । भूत मात्राओं के न होने पर प्रज्ञा मात्राओं का तथा प्रज्ञा मात्राओं के न होने पर भूत मात्राओं का अस्तित्व संभव नहीं है । (8)

प्रज्ञा मात्राओं तथा भूत मात्राओं के स्वरूप में कोई भी अंतर नहीं है । जैसे रथ के नेति तथा अर नाभि में आश्रित रहते हैं, वैसे ही, भूत मात्राएं प्रज्ञा मात्राओं में तथा प्रज्ञा मात्राएं प्राण पर आश्रित हैं । प्राण ही अजर, अमर आनंदमय और प्रज्ञात्मा है । यह श्रेष्ठ कर्मों से बड़ा या निम्न कर्मों से छोटा नहीं होता है । प्रज्ञा एवं प्राणरूप परमेश्वर ही श्रेष्ठ कर्मों से मनुष्य को श्रेष्ठ लोकों में तथा दुष्ट कर्मों से निम्न लोकों में भेजता है । यह लोकपाल, लोकाधिपति, सर्वेश्वर हैं । इस प्रकार के गुणों से युक्त प्राण ही आत्मा हैं । (9)

चतुर्थ अध्याय

वेदों एवं शास्त्रों के पारंगत बालकि, गार्ग्य, उषीनर, मत्स्य, कुरु पांचाल, काशी, विदेह आदि देशों में भ्रमण करते हुए काशी नरेश अजातशत्रु के पास पहुंचे और बोले, 'मैं तुम्हें ब्रह्मज्ञान का उपदेश दूंगा ।' तब अजातशत्रु बोले, 'इसके लिए मैं आपको एक हजार गायें दूंगा । आजकल तो ऐसे विषय के लिए हर एक वाणी में केवल जनक का ही नाम है । सब उन्हीं के पास दौड़ते हैं ।' (1)

गार्ग्य बोले, 'मैं आदित्य में स्थित पुरुष की ही उपासना करता हूं ।' अजातशत्रु बोले, 'आप इस विषय में न बोलें । यह पांडु वस्त्रों में अधिष्ठित निश्चय ही महान हैं । यह सब प्राणियों में श्रेष्ठ है । में भी इसकी उपासना करता हूं । इसकी उपासना करनेवाला सभी प्राणियों से श्रेष्ठ बनता है' । (2)

गार्ग्य बोले, 'मैं चंद्रमंडल में स्थित पुरुष रूप ब्रह्म की उपासना करता हूं ।' इस पर अजातशत्रु बोले, 'यह चंद्रमा सबका राजा है । यही अन्न का प्राण है । मैं इसकी वैसा ही उपासना करता हूं । ब्रह्म रूप में इसकी उपासना करनेवाला अन्न का आत्मा बन जाता है ।' (3)

पुनः गार्ग्य बोले, 'मैं विद्युतमंडल स्थित पुरुष की ब्रह्म रूप में उपासना करता हूं ।' तब अजातशत्रु ने कहा, 'इस विषय में भी आप कुछ न कहें । इस तेज की मैं भी आत्मा के रूप में उपासना करता हूं । इस प्रकार से इसकी उपासना करनेवाला तेज का आत्मा हो जाता है ।' (4)

गार्ग्य—'मैं मेघमंडल स्थित अंतर्यामी परमेश्वर की ब्रह्म रूप में उपासना करता हूं।' अजातशत्रु—'आप इस संबंध में भी कुछ न बोलें। मैं भी आत्मा मानकर इसकी उपासना करता हूं। इसको शब्द का आत्मा मानकर उपासना करनेवाला भी शब्द रूप आत्मा ही बन जाता है।' (

गार्ग्य—'मैं आकाश में स्थित पुरुष का उपासक हूं।' अजातशत्रु, 'आप इस पर भी कुछ न बोलें। मैं इसे प्रकृति शून्य पूर्ण ब्रह्म मानकर उपासना करता हूं। इसकी इस भावना से उपासना करनेवाला संतान एवं पशुओं से युक्त होता है तथा उसकी संतान की अकाल मृत्यु नहीं होती।'

गार्ग्य—'मैं वायुमंडलस्थ पुरुष का उपासक हूं।' अजातशत्रु—'आप इस विषय में कुछ न कहें (संवाद संख्या 17 तक अजातशत्रु के हर कथन में यह अंश है, अतः इसे वहां तक सम्मिलित मानें) यही इंद्र है, यही बैकुंठ है और यही अपराजिता है। मैं इसी भावना से इसका उपासक हूं। इसकी इस भावना का उपासक अपराजित तथा शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला होता है।'

गार्ग्य—'मैं अग्नि में स्थित पुरुष का उपासक हूं।' अजातशत्रु—'··· यह विषाहहि है। इसी भाव से इसका उपासक हूं। इस प्रकार का उपासक दूसरों के आक्रमण को नहीं सह पाता।'

गार्ग्य—'मैं वारि मंडल स्थित पुरुष का उपासक हूं।' अजातशत्रु—'··· वह नामधारी का आत्मा है। मैं ऐसा मानकर ही इसकी उपासना करता हूं। ऐसा उपासक नामधारी प्राणी मात्र का आत्मा हो जाता है।' यह अधिदैविक उपासना है। अब आध्यात्मिक उपासना है (9)–

गार्ग्य—'इस दर्पण में स्थित पुरुष की मैं ब्रह्म भाव से उपासना करता हूं।' अजातशत्रु—'मैं इसकी प्रतिरूप भावना से उपासना करता हूं। इस भाव से इसकी उपासना करनेवाला उपासक प्रतिरूप गुण संपन्न होता है। उसकी संतान भी उसकी प्रतिरूप होती है।' (10)

गार्ग्य—'मैं प्रतिध्वनि में स्थित पुरुषक रूप ब्रह्म की उपासना करता हूं।' अजातशत्रु—'···मैं इसे द्वितीय अनपग मानकर इसकी उपासना करता हूं। इसकी इस भाव से उपासना करनेवाला स्वयं द्वितीय को प्राप्त करता है।' (11)

गार्ग्य—'मैं पग-ध्वनि की ब्रह्मरूप में उपासना करता हूं।' अजातशत्रु—'···मैं उसकी प्राणरूप में उपासना करता हूं। इसकी इस भाव से उपासना करनेवाला तथा उसकी संतान पूर्ण आयु प्राप्त करते हैं।' (12)

गार्ग्य—'मैं मनुष्य के पीछे चलनेवाली छाया की ब्रह्मरूप में उपासना करता हूं।' अजातशत्रु—'··· यह छाया मृत्यु रूप है। मैं इसकी इसी रूप में उपासना करता हूं। इसकी इस रूप में उपासना करनेवाला मनुष्य तथा उसकी संतति अकाल मृत्यु नहीं मरते हैं'। (13)

गार्ग्य—'मैं इस शरीर पुरुष की उपासना करता हूं।' अजातशत्रु—'··· मैं प्रजापति रूप में इसकी उपासना करता हूं। जो इसकी इस रूप में उपासना करता है, वह प्रजाओं एवं पशुओं से संपन्न होता है।' (14)

गार्ग्य—'मैं इस प्राज्ञ आत्मा की, जिसमें संयुक्त पुरुष सुषुप्तावस्था में संचरण करता है, उपासना करता हूं।' अजातशत्रु—'··· यह यम या राजा है। मैं इसी रूप में इसकी उपासना करता हूं। जो इसकी इस रूप में उपासना करता है, वह श्रेष्ठ बनता है, समस्त विश्व उसके सामने नत हो जाता है।' (15)

गार्ग्य—'मैं दक्षिण नेत्र स्थित पुरुष की उपासना करता हूं।' अजातशत्रु—'_मैं इसकी नाम-आत्मा, अग्नि-आत्मा तथा ज्योति आत्मा के रूप में उपासना करता हूं। इस भावना से इसकी उपासना करनेवाला सबका आत्म रूप हो जाता है।' (16)

गार्ग्य—'मैं इसकी बाएं नेत्र में स्थित पुरुष के रूप में उपासना करता हूं।' अजातशत्रु—'_यह सत्य आत्मा, विद्युत आत्मा और तेजस आत्मा है। मैं इसी रूप में इसकी उपासना करता हूं। जो इसकी इस भाव से उपासना करता है, वह इन सभी का आत्मा हो जाता है।' (17)

तब गार्ग्य चुप हो गए। इस पर अजातशत्रु बोले, 'क्या आपका ज्ञान इतना ही है'? गार्ग्य ने हामी भरी। अजातशत्रु पुनः बोला, 'तब आपने ब्रह्मज्ञान देने की बात व्यर्थ ही की। वस्तुतः आपके द्वारा कथित इन सब पुरुषों का कर्ता ही जानने योग्य है।' तब गार्ग्य समिधा लेकर अजातशत्रु के पास गए (समिधा लेकर किसी के पास जाना, उसे गुरु रूप में स्वीकार करना सूचित करता है) और बोले, 'मैं आपको गुरु के रूप में स्वीकार करने आया हूं।' अजातशत्रु ने कहा, 'ब्राह्मण द्वारा क्षत्रिय का गुरु रूप में वरण करना सामाजिक नियमों के प्रतिकूल होगा। आप मेरे साथ चलें। मैं आपको इस ज्ञान की प्राप्ति कराऊंगा।' इतना कहकर वह गार्ग्य का हाथ पकड़कर एक सोते हुए व्यक्ति के घर ले गए। राजा ने 'हे वृहन ! हे पांडरवास !' कहते हुए उसे जगाना चाहा, किंतु वह न जागा। तब राजा ने उसे छड़ी से पीटा। इस पर वह तत्काल जागकर खड़ा हो गया। राजा ने गार्ग्य से कहा, 'गार्ग्य ! यह व्यक्ति चेतना से हीन होकर कहां सो रहा था और जागकर अब कहां से आया है?' गार्ग्य इसका उत्तर न दे पाए। (18)

राजा अजातशत्रु उन्हें बताने लगे, 'जहां वह सोया था और जागकर जहां से आया, वह स्थान इस प्रकार है—हृदय कमल से हिता नाम की अनेकों नाड़ियां समस्त शरीर में व्याप्त हैं। ये बाल के हजारवें भाग के समान पतली हैं। इनका रंग श्वेत, पिंगल, लोहित, काला अनेक प्रकार का है। सुप्तावस्था में जब मनुष्य कोई भी स्वप्न देखता है, तो इन्हीं में रहता है। इसी अवस्था में जब मनुष्य स्वप्न नहीं देखता, तब प्राण में लीन हो जाता है। तब वाणी अपने विषय रूप समस्त नामों के सहित, नेत्र रूपों के सहित, श्रोत्र सभी शब्दों के सहित और मन सभी चिंतनीय विषयों के सहित प्राण में स्थित हो जाते हैं। मनुष्य के जागने पर अग्नि से निकली चिनगारियों के समान सभी इंद्रियां अपने-अपने स्थानों पर चली जाती हैं और अपने-अपने अधिदेवताओं के साथ प्रकट होकर अपने विषयों को प्रकट करते हैं। डिब्बे में रखे छुरे के समान अंगुष्ठ मात्र पुरुष के रूप में हृदय में परमात्मा रहता है। यह प्राज्ञ आत्मा सारे शरीर में नखों से लेकर लोकों तक सर्वत्र विद्यमान रहता है। (19)

जैसे किसी सेठ के सेवक उसी के साथ धन का भोग करते हैं तथा उसी के अनुगामी होते हैं, वैसे ही सभी इंद्रियां देह में आत्मा के साथ भोग करती हैं तथा उसी की अनुगामिनी होती हैं। ये

परस्पर एक-दूसरे का भोग करते हैं। इंद्र ने जब तक इस आत्मा को नहीं जाना, तब तक असुर पराजित करते रहते थे, परंतु जब उसने आत्मा को जान लिया, तब उसने असुरों को मार डाला जीतकर सभी देवताओं में श्रेष्ठ होकर स्वर्ग का राज्य आधिपत्य प्राप्त किया। विद्वान मनुष्य प्रकार प्राणियों में श्रेष्ठ बनकर स्वर्ग का आधिपत्य प्राप्त करता है। इसके ज्ञाता को भी यही प्राप्त होता है। (20)

41. जाबालदर्शनोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ अध्यायंतु ममांगानि वाक्प्राणचक्षुः श्रोत्रमथो बालमिंद्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकरोद निराकरण मस्त्वनिराकरर्णं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि संतु।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

मेरे समस्त अंग, वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र आदि इंद्रियां तथा बल पुष्ट हों। यह उपनिषद् ब्रह्म स्वरूप जानने योग्य हैं। मैं ब्रह्म का निराकरण न करूं, ब्रह्म मेरा निराकरण न करे; हमारा परस्पर अनिराकरण हो। उपनिषदों का धर्म आत्मज्ञान में निरत मुझमें व्याप्त हो। दैहिक (शारीरिक), दैवीय और भौतिक (प्राणियों द्वारा होनेवाला) तीनों प्रकार के ताप कष्ट शांत हों।

प्रथम खंड

भूत भावन भगवान चतुर्भुज महाविष्णु ने योगियों के साम्राज्य को दीक्षित करनेवाले महायोगी दत्तात्रेय के रूप में अवतार लिया था। एक बार मुनियों में श्रेष्ठ गुरुभक्त सांकृति नाम के उनके शिष्य ने अत्यंत विनम्रता के साथ अंजलि बांधकर एकांत में उनसे पूछा, 'भगवन ! कृपया समस्त प्रपंच सहित आठ अंगोंवाले योग के विषय में मुझे सब कुछ बताइए, जिसके ज्ञानमात्र से मैं जीवनमुक्त हो जाऊं।' इस पर दत्तात्रेय बोले, 'हे सांकृति ! मैं तुम्हें इस विषय में सब कुछ बताता हूं। ध्यान से सुनो, योगदर्शन आठ अंगोंवाला है। ये आठ अंग क्रमशः यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा और समाधि नामवाले हैं। इनमें नियमों के नाम सत्य, अहिंसा, दया, आर्जव, ब्रह्मचर्य, क्षमा, धृति, मिताहार, तथा शुचिता (पवित्रता) है। (1-6)

वेदों में बतायी गई विधि के अतिरिक्त यदि किसी को मन, वाणी अथवा शरीर द्वारा किसी भी प्रकार से सताया जाता है, तो यही हिंसा कहलाती है। इसके अतिरिक्त हिंसा और कुछ भी नहीं है। हे मुनि ! मैं मानता हूं कि यह आत्मा सर्वगत, अछेद्य (जिसे काटा नहीं जा सकता) तथा अग्राह्य है। और वेदांत के ज्ञाताओं ने अहिंसा को श्रेष्ठ कहा है। इस आत्मा को चक्षु, घ्राण, श्रोत्र आदि इंद्रियों द्वारा सूंघा अथवा सुना आदि नहीं जा सकता। अतः इसके विषय में केवल वाणी से कहा गया वर्णन ही सत्य है, अन्यथा इसके विषय में अन्य किसी भी प्रकार से नहीं बताया जा सकता। इसके प्रतिकूल परम ब्रह्म सब प्रकार से सत्य है, उसके अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं है, इस मत को वेदांत दर्शन के विद्वानों ने परम सत्य कहा है। अन्य धन, संपत्ति, मणि-मुक्ता, रत्न, स्वर्ण आदि किसी भी प्रकार की मूल्यवान अथवा तुच्छ वस्तु से मन को पूर्णतया आसक्ति रहित रखना इन विद्वानों के मत में अस्तेय (चोरी न करना) है। आत्मा के प्रति अनात्म भाव न रखना, अर्थात इसे न स्वीकार करना

और संसार के सभी व्यावहारिक कार्यों में अनात्म बुद्धि रखते हुए (इन्हें आत्मा से पृथक् मानकर) व्यवहार करना भी ज्ञानी पुरुषों की दृष्टि में अस्तेय है। मन, वाणी या देह से स्त्री सहवास का परित्याग ब्रह्मचर्य है और अपनी पत्नी से केवल ऋतु काल में सहवास करना भी ब्रह्मचर्य कहा गया है और इंद्रिय विषयों से हटाकर मन को ब्रह्म-भाव में लगाना भी ब्रह्मचर्य कहा गया है। प्राणियों को आत्मवत समझना तथा मन, वाणी और शरीर से उनके प्रति अपने समान ही व्यवहार करना, इस प्रकार की भावना को भी वेदांतवादियों ने दया नाम से पुकारा है। (7-15)

पुत्र; मित्र, पत्नी और शत्रु में भी साथ ही स्वयं में भी एकरूपता का अवलोकन मेरे अनुसार आर्जव है। काया, मन अथवा वाणी द्वारा भी शत्रुओं द्वारा दुःख पहुंचाए जाने पर भी बुद्धि में किसी प्रकार का विक्षोभ न होना क्षमा का लक्षण है। वेदों द्वारा बताए गए मार्ग से ही संसार की मुक्ति हो सकती है; अन्य किसी भी प्रकार से नहीं, इस ज्ञान के दृढ़ निश्चय को वैदिक विद्वानों ने धृति कहा है। 'मैं वही आत्मा हूं, इस प्रकार की बलवती भावना को मति कहा जाता है। अल्पमात्रा में ... भोजन से आधे पेट को अन्न से, एक चौथाई को जल से तथा शेष एक चौथाई को वायु के लिए रिक्त छोड़ देना योगी के परिमित आहार का लक्षण है। योग के लिए इसी प्रकार भोजन ... अनुकूल माना गया है। हे मुनि ! मिट्टी एवं जल से शरीर को स्वच्छ करना वस्तुतः इसकी ... शुद्धता है, किंतु मैं विशुद्ध आत्मा हूं, ऐसा मानसिक मनन विद्वानों की दृष्टि में वास्तविक ... है। देह तो अत्यंत मलिन है, किंतु देही (देह में रहनेवाला आत्मा) अत्यंत निर्मल है, इस प्रकार ... अंतर को जानकर किसे पवित्र करना चाहिए (अर्थात आत्मा की निर्मलता ही श्रेष्ठ है)। ज्ञान ... पवित्रता को छोड़कर जो व्यक्ति बाह्य पवित्रता में ही लगा रहता है, वह मूर्ख वस्तुतः ... परित्याग करके लोष्ठ (मिट्टी का टुकड़ा) को ग्रहण करता है। ज्ञान रूपी अमृत को पीकर ... योगी कृतार्थ हो जाता है। उसके लिए संसार में कुछ भी शेष नहीं रह जाता। यदि वह समझे ... उसे अभी कुछ करना शेष है, तो वह वास्तविक तत्त्ववेत्ता नहीं कहा जा सकता। आत्मवेत्ता के लिए तीनों लोकों में भी करने को कुछ भी शेष नहीं रहता, अतः हे सांकृति मुनि ! सभी ... प्रयत्न करते हुए अहिंसा आदि साधनों से अनुभवमय ज्ञान को प्राप्त करके आत्मा को ... (अविनाशी) ब्रह्म समझो। (16-25)

द्वितीय खंड

तप, संतोष, आस्तिकता, लज्जा, दान, व्रत, मति, ईश्वर, पूजन एवं सिद्धांतों का श्रवण, ... नियम कहे जाते हैं। इनका वर्णन इस प्रकार है—वेदों में कहे गए कृच्छ एवं चांद्रायण आदि द्वारा अपने शरीर को सुखान तप कहलाता है। मोक्ष के स्वरूप एवं आत्म को संसार रूपी ... प्राप्त होने के कारणों पर विचार करना तत्त्व ज्ञानियों की दृष्टि में तप है। भाग्य से जो कुछ ... जाए उसे ईश्वर की इच्छा समझकर स्वीकार करना संतोष है। सभी जगह अनासक्त ... ब्रह्मलोक आदि के सुखों के प्रति भी विरक्ति होना और तब भी प्रसन्न मन रहना श्रेष्ठ ... कहलाता है। वेदों एवं स्मृतियों में कथित धर्म में विश्वास धर्म है। संकट ग्रस्त अथवा श्रेष्ठ ... ज्ञान संपन्न विद्वानों को जो न्यायपूर्वक अर्जित किया हुआ धन दिया जाता है, मैं उसे दान कहता ...
(1-7)

असत्य, कटुता आदि से रहित भाषण, राग (आसक्ति) आदि से रहित मन तथा हिंसा आदि क्रूरता से रहित मन से किया गया कर्म ही ईश्वर-पूजन है। यह सत्य, नित्य, ज्ञान स्वरूप, अनंत, परम आनंद एवं ध्रुव है। इस सिद्धांत का पुनः-पुनः श्रवण एवं इसके अनुकूल आचरण ही सिद्धांत श्रवण है। वैदिक एवं लौकिक मतों ने जिन कार्यों को निंदनीय माना है, उनको करने में होनेवाला स्वाभाविक संकोच लज्जा है। सभी वैदिक सिद्धांतों पर श्रद्धा तथा इनसे संबंध रहित होने पर गुरु के द्वारा बताये गए मार्ग पर श्रद्धा ही मति है। वेदोक्त प्रकार से मंत्रों का बार-बार अभ्यास करना जप है। साथ ही कल्पसूत्र, वेद, धर्मशास्त्र, पुराण एवं इतिहास में मन का लगा रहना भी मेरे मत में जप ही है। जप के 'वाचिक' एवं मानस दो भेद होते हैं। वाचिक पुनः दो प्रकार का होता है 'उपांशु' और 'उच्च'। मानसिक जप भी 'मनन' और ध्यान के' भेद से दो प्रकार का होता है। उच्च जप से उपांशु जप हजार गुना तथा उपांशु से मानसिक जप हजार गुना श्रेष्ठ होता है। उच्च जप भी सभी को यथोक्त फल देता है, किंतु मंत्र-जप के समय यदि इसे नीच लोक सुन लें, तो यह फलहीन हो जाता है। (8-16)

तृतीय खंड

स्वास्तिक, गोमुख, पद्मासन, वीरासन, भद्रासन, मुक्तासन, मयूरासन तथा सुखासन— ये नौ आसन होते हैं। घुटनों और जांघों के बीच में दोनों पांवों को अच्छी तरह से रखकर गर्दन, सिर और शरीर को सीधा रखने पर स्वस्तिकासन होता है। इसका नित्य अभ्यास करें। दाहिने घुटने को बांई ओर से तथा बांए घुटने को दाहिनी ओर से पीछे की ओर ले जाएं— इसे गोमुखासन कहते हैं। तलुओं को ऊपर को करते हुए दो पांवों को (दाएं को बाएं में और बाएं की दाहिने में) दोनों जांघों में रखकर इनके अंगूठों को विपरीत हाथों से पीछे की ओर पकड़ने से पद्मासन बनता है। यह आसन सभी रोगों को दूर करनेवाला है। बाएं पैर को दक्षिण जंघा पर रखकर तनकर बैठने से वीरासन होता है। पांवों को दोनों अंडकोशों के नीचे पार्श्व में रखे हाथों से दोनों पांवों तथा पार्श्व भाग को दृढ़ता से बांधकर बैठें, इससे भद्रासन बनता है, जो समस्त विषजन्य रोगों को नष्ट करता है। सीवनी की सूक्ष्म रेखा को बाएं घुटने से दबाकर और फिर दाहिने घुटने से बाएं को दबाने पर मुक्तासन होता है। दोनों 'हथेलियों को फैलाकर भूमि में रखें फिर कुहनियों को नाभि के दोनों ओर लगाएं। तब सिर और पांवों को ऊंचा उठाकर आकाश में (शून्य में) दंड की तरह सीधे संतुलित हो जाएं। इस प्रकार बननेवाला यह मयूरासन समस्त पापों को नष्ट करनेवाला होता है, जिस प्रकार से बैठने पर सुख एवं धैर्य उत्पन्न होता है, उसे सुखासन कहते हैं। अशक्त-दुर्बल लोग इस आसन को करें। जो आसनों को सिद्ध कर लेता है, वह वस्तुतः तीनों लोकों को जीत लेता है। इसी प्रकार आसनों से प्राणायाम करें। (9-13)

चतुर्थ खंड

शरीर अपने हाथ की 96 अंगुलियों के बराबर होता है। इसके मध्य में तपे सोने के समान अग्नि का स्थान है। हे सांकृति ! मैं सत्य कहता हूं, यह त्रिकोण की आकृति का है। पायु से दो

अंगुल ऊपर तथा उपस्थ से दो अंगुल नीचे का स्थान ही देह का मध्य भाग है। यही मूलाधा इससे 9 अंगुल ऊपर कंद स्थान है। यह चार-चार अंगुल लंबा-चौड़ा तथा मुर्गी के अंडे के होता है। यह ऊपर से त्वचा आदि से ढका हुआ है। हे श्रेष्ठ मुनि ! इसी कंद स्थान के योगतत्त्व के ज्ञाता नाभि को बताते हैं। कंद के मध्य भाग की नाड़ी सुषुम्ना कहलाती है। इसके ओर बहत्तर हजार नाड़ियां हैं। इनमें सुषुम्ना, पिंगला, इड़ा, सरस्वती, पूषा, वरुणा, हस्ति यशस्विनी, अलंबुसा, कुहू, विश्वोदरी, तपस्विनी, शंखिनी तथा गांधारी— ये चौदह प्रमुख मानी जाती हैं। इनमें तीन नाड़ियां प्रधान हैं तथा इन तीनों में भी सुषुम्ना प्रमुख है, इसे ब्रह्म भी कहा जाता है। पीठ के मध्य भाग में अस्थियों का समूह मेरुदंड है। इससे निकलकर मस्तक पर्यंत प्रतिष्ठित है। नाभिकंद के दो अंगुल नीचे आठ प्रकृतियों से युक्त कुंडलि (9-11)

यह कुंडली वायु के प्रयत्न एवं अन्न-जल आदि को रोककर सदा नाभि स्कंद के दोनों को घेरे रहती है तथा अपने मुख से ब्रह्मरंध्र के मुख को आवृत्त किए रखती है। सुषुम्ना के एवं बाम भाग में क्रमशः पिंगला और इड़ा होती हैं और दोनों पार्श्वों में सरस्वती और कुहू हैं पिंगला के पृष्ठ और पूर्व में क्रमशः पूषा और यशस्विनी होती हैं। कुहू और हस्तजिह्वा के विश्वोदरी प्रतिष्ठित है। यशस्विनी और कुहू के बीच में वरुणा स्थित है। गांधारी और सरस्व मध्य शंखिनी कही जाती है। नाभिकंद के मध्य से पायु (गुदा) पर्यंत अलंबुसा है। सुषुम्ना राका के पूर्व भाग में कुहू स्थित है। यह ऊपर से नीचे तक स्थित होने से नासिका तक मानी है। इड़ा बाम नासिका तक है। यशविनी बाएं चरण के अंगूठे के अंत तक है। पूषा पिंगला से लेकर बांई आंख तक है। यशस्विनी बाएं कान तक है। सरस्वती जिह्वा तक तथा हस्तजि पांव के अंगूठे तक है। शंखिनी नाड़ी बाएं कान तक है। गांधारी को वेदांतवेत्ता बाएं नेत्र तक मानते हैं। (12-22)

विश्वोदरी नाभिकंद के मध्य में स्थित है। प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म देवदत्त तथा धनंजय— ये दस वायु सभी नाड़ियों में विचरण करते हैं। इनमें प्राण, अपान प्रारंभ के पांच ही मुख्य रूप से प्राण वायु कहे जाते हैं और इन पांचों में भी प्राण एवं अपान को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण माना जाता है। प्राण वायु नासिका, नाभि तथा हृदय में सदा संचार रहता है। अपान पायु में, उपस्थ में, घुटनों में, समस्त उदर में, कमर में, नाभि में तथा जांघों में है। व्यान कानों, नेत्रों, कंधों, घुटनों प्राण स्थान तथा गले में विद्यमान रहता है। उदान वायु हाथों तथा पांवों में रहता है। समान निःसंदेह समस्त देह में रहता है। शेष पांच वायु, नाग आदि त्वचा, अस्थि आदि में रहता है। प्राण के कार्य सांस लेना तथा उसे छोड़ना और खांसना अपान का कार्य मूत्र-पुरीष विसर्जन करना है। समान वायु का कार्य समस्त देह को अवस्था में रखना है। उदान वायु ऊर्ध्वगामी है। व्यान को वेदांती लोग नाद करनेवाला कह डकार आना, वमन आदि करना इसी के कार्य हैं। शरीर में शोभा आदि धनंजय के कार्य हैं खोलना, बंद करना आदि कूर्म के, भूख, प्यास आदि उत्पन्न करना कृकर के तथा तंद्रा, आदि उत्पन्न करना देवदत्त के कार्य कहे गए हैं। (23-34)

सुषुम्ना, इड़ा, पिंगला तथा सरस्वती नाड़ी के देवता क्रमशः शिव, विष्णु, ब्रह्मा और विराट हैं। पूषा का सूर्य, वरुणा का वायु, हस्तजिह्वा का वरुण, यशस्विनी का भास्कर, अलंबुसा का जल (वरुण), गांधारी का चंद्रमा तथा कुहू का देवता क्षुधा है। इसी प्रकार शंखिनी, पयस्विनी एवं विश्वोदरा नाड़ी के देवता क्रमशः चंद्रमा, प्रजापति तथा अग्नि है। इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों में क्रमशः चंद्र एवं सूर्य सदा संचार करते हैं। पिंगला से इड़ा में प्राणमय सूर्य के संक्रमण को वेदांत के ज्ञाता उत्तरायण कहते हैं। इसके विपरीत पिंगला में प्राणरूप सूर्य का संक्रमण दक्षिणायन कहलाता है। जब प्राण इड़ा एवं पिंगला की संधि में आता है, तो इसे अमावस्या कहते हैं। मूलाधार में प्राण का प्रवेश होना तपस्वियों की दृष्टि में अंतिम विषुव योग है। सभी उच्छवास एवं निःश्वास मासों की संक्रांतियां हैं। प्राण का इड़ा से कुंडली स्थान में आना सोम-ग्रहण कहा जाता है तथा पिंगला से कुंडली स्थान में सूर्य का आगमन सूर्य ग्रहण होना है। (35-47)

शरीर के मस्तक में श्री पर्वत तथा ललाट में केदार नामक तीर्थ हैं। नाक तथा दोनों भौंहों के मध्य वाराणसी है। स्तनों के स्थान पर कुरुक्षेत्र तथा हृदय-कमल में प्रयाग है। हृदय के मध्य में चिदंबर तथा मूलाधार से कमलालय नामक तीर्थ है। आत्मा सबसे महान तीर्थ है, अतः इसको न जानकर बाह्य तीर्थों में जाना हाथ में रखे हुए मूल्यवान रत्न को छोड़कर कांच को लेकर घूमने के समान है। भावतीर्थ सभी कर्मों में प्रमाण स्वरूप महान तीर्थ है, अतः इसी को गले से लगाएं। पत्नी को तथा पुत्री संतान का आलिंगन करना दूसरी बात है। तीर्थों में केवल जल और काष्ठ आदि से निर्मित मूर्तियां ही हैं; योगी आत्मा रूपी तीर्थ की पूजा करते हैं, अतः वे तीर्थों में नहीं घूमते-फिरते। बाह्य तीर्थ व्यर्थ हैं; आत्मा रूपी तीर्थ ही परम तीर्थ है। शरीर के अंदर स्थित दुष्ट चित्त-तीर्थों में स्नान करने से शुद्ध नहीं होता, क्योंकि यह भी मदिरा भरे पात्र को बाहर से धोने के समान शुद्ध नहीं हो सकता। शरीर में स्थित विषुव योग, उत्तरायण, दक्षिणायन, सूर्य-चंद्र ग्रहण, वाराणसी आदि तीर्थों में भावनामय स्नान से ही मनुष्य शुद्ध होता है। अज्ञानियों के भावों की शुद्धि के लिए ज्ञान योग में परायण योगियों के पाद प्रक्षालन का (पांव धोने का पानी) जल ही तीर्थों का जल है। (48-53)

मूर्ख व्यक्ति शिव को तीर्थ में, दान में, जप में, यज्ञ में काष्ठ पाषाण की प्रतिमाओं आदि में देखता है; अपने शरीर में नहीं देखता, जबकि वास्तविक शिव इसी शरीर में है। इस प्रकार के मुझ शिव को, जो मैं उसके हृदय में ही स्थित हूं, छोड़कर बाह्य स्थूल मूर्तियों को देखनेवाला वस्तुतः हाथ में रखे भोजन पिंड को छोड़कर कुहनी को चाटता है। योगी शिव को प्रतिमाओं में नहीं, अपितु आत्मा में देखते हैं। प्रतिमाएं तो अज्ञानियों की भावनाओं के लिए बनायी गई हैं। अपूर्व, अद्वितीय, सत्य, अगम्य, प्रज्ञानधन, आनंद स्वरूप ब्रह्म को अपने आत्मा में देखनेवाला ही वस्तुतः ब्रह्म को जानता है। यह नर देह नाड़ियों का पुंज मात्र है। इसे सदा सारहीन समझो। अतः इसके प्रति अपनत्व भाव को त्याग दो और अपने को परमात्मा ही समझो। इन शरीरों में रहनेवाले महान अशरीर आनंद धन, अविनाशी ईश्वर के समान ही स्वयं को भी साक्षात ब्रह्म माननेवाला धैर्यशाली शोकमुक्त हो जाता है। आत्मा-परमात्मा के मध्य भेद रूपी अज्ञान के नष्ट होने पर, जब ज्ञान प्राप्त होने पर कौन मूर्ख फिर इन दोनों में भेद की बात करेगा। (54-60)

पंचम खंड

सांकृति ने पुनः निवेदन किया है कि हे ब्रह्मन् ! संक्षेप में नाड़ी शुद्धि किस प्रकार सम्यक रूप से बतलाइए, जिसके शुद्ध होने पर 'सत' का ध्यान करता हुआ जीवन मुक्त हो तब भगवान दत्तात्रेय बोले—मैं नाड़ी-शुद्धि को संक्षेप में कहता हूं। इसे ध्यान से सुनो। द्वारा बताए कर्मों का पालन करते हुए कामना, संकल्प आदि का त्याग कर देना चाहिए। आठ अंगों का शांति एवं सत्य-परायणता से पालन करें। ज्ञानियों की सेवा में शिक्षा प्रा पर्वत शिखर, नदी-तीर बेल-वृक्ष के नीचे, वन में या किसी मनोरम शुद्ध स्थान में मठ बना उत्तर या पश्चिम को मुख करके आसन लगाएं। ग्रीवा, सिर एवं शरीर को सीधा रखते हुए बैठें। नासाग्र में (नाक के आगे) चंद्रमंडल की कल्पना करते हुए उसमें प्रणव बिंदु पर तुरीय ब्रह्म को अमृत प्रवाहित करते हुए आंखों से प्रत्यक्ष देखें। इड़ा से प्राण वायु को खींचकर भरें और देह के मध्य में स्थित अग्नि का चिंतन करें मानो खींची हुई वायु में अग्निदेव की उठ रही हैं। बिंदु-नाद युक्त अग्नि बीज का चिंतन करके पिंगला से रेचक करें। पुनः अ को विचारते हुए पिंगला से पूरक करें और इड़ा से रेचक करें। तीन-चार दिन तक लगातार नित्य तीनों संध्याओं को तीन, चार या छः बार इसी प्रकार करें। इससे नाड़ी शुद्ध होती है का हलकापन, जठराग्नि का बढ़ना, आहत नाद की अभिव्यक्ति आदि कुछ प्रत्यक्ष अनुभव सिद्धि के लक्षण हैं। इनका अनुभव न होने तक अभ्यास करते रहने से अभ्यास में अवश्य मिलती है। ऐसा न करने पर आत्मशुद्धि का अनुष्ठान करना चाहिए। आत्मा शुद्ध, स सुखरूप एवं स्वयं प्रकाशित है। अज्ञान के कारण ही इसमें मलिनता आती है और ज्ञान यह शुद्ध हो जाता है। अज्ञान रूपी मल का कीचड़ को ज्ञान रूपी जल से धोकर पुरुष सर्व हो जाता है। सांसारिक कार्यों में रत व्यक्ति शुद्ध नहीं हो पाता। (1-14)

षष्ठ खंड

हे सांकृति ! आदर से सुनो, मैं प्राणायाम के क्रम को बताता हूं। प्राणायाम पूरक कुं रेचक इन तीन क्रियाओं से होता है। प्रणव (ओम—अ + अम) में तीन वर्ण हैं, जो क्रमश कुंभक एवं रेचक के प्रतीक हैं। इन तीनों का सम्मिलित स्वरूप ही प्रणव है। सोलह मा समय में 'अ' को स्मरण करते हुए इड़ा से पूरक करें। चौंसठ मात्राओं तक 'उ' का ध्यान कुंभक करें। जब तक संभव हो जप करते हुए उसे धारण करते रहें। बाद में धीरे-धीरे 'म' करते हुए बत्तीस मात्राओं के समय में पिंगला से रेचक करें। यही प्राणायाम है। इसका पुनः करें। दूसरों बार सोलह मात्राओं तक 'अ' को स्मरण करते हुए पिंगला से पूरक, 'उ' का ध्या हुए चौंसठ मात्राओं तक कुंभक तथा 'म' का ध्यान करते हुए इड़ा से बत्तीस मात्राओं से रे इसी प्रकार पुनः इड़ा से पूरक (आदि क्रमशः) करें। नित्य उसका अभ्यास करें। छः मास तक करने पर पूर्ण ज्ञान हो जाता है। योगी इसका नित्य अभ्यास करें। एक वर्ष तक अभ्यास ब्रह्म साक्षात्कार होता है। (1-11)

प्राणायाम के ज्ञान द्वारा ही मुक्तता मिलती है। बाहर से वायु को उदर में भरना पूरक है। भरे हुए कुंभ की तरह इसे उदर में धारण करना कुंभक है। इसे खाली करके वायु को बाहर निकालना रेचक है। प्राणायाम के समय पसीना आना प्राणायाम की निम्नता को बताता है, पसीना आना मध्यम श्रेणी के प्राणायाम को सूचित करता है और साधक का इस अवस्था में भूमि से ऊपर उठ जाना प्राणायाम की उत्तमता का परिचायक है। इस उत्तम श्रेणी का प्राणायाम होने तक अभ्यास करते रहें। अंततः यह प्राणायाम भी सिद्ध हो जाता है। सिद्धि पर सुखानुभूति होती है। प्राणायाम से चित्त शुद्ध होता है, जिससे अंत में साक्षात आत्म-तत्त्व के दर्शन होते हैं, और प्राण चित्त से संयुक्त होकर परमात्मा में स्थित होता है। इस अवस्था में देह के भूमि से उठने पर मुक्ति होती है। अब उसे पूरक एवं रेचक का अभ्यास छोड़कर केवल कुंभक का ही नित्य अभ्यास करना चाहिए। इससे योगी सभी पापों से मुक्त होकर श्रेष्ठ ज्ञान को प्राप्त करता है। उसे मन के अनुसार तेज गति मिलती है तथा वृद्धावस्था के चिह्न सफेद बाल, झुर्रियों आदि से मुक्ति मिल जाती है। केवल प्राणायाम में ही निष्ठा होने से योगी के लिए कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं रहती, अतः पूर्ण प्रयत्न से प्राणायाम का सम्यक अभ्यास करना चाहिए। (12-20)

अब मैं प्राणायाम के विनियोगों के विषय में कहता हूं। प्रातः-सायं दोनों संध्याओं में, ब्रह्म मुहूर्त में अथवा मध्याह्न में सदैव बाह्य प्राण वायु को खींचकर उदर को भर लें। इसे नासिकाग्र में, नाभिमध्य में तथा पांव के अंगूठे में धारण करें। इससे मनुष्य सभी रोगों से मुक्त होकर सौ वर्ष तक जीवित रहता है। नासिका के अग्रभाग में धारण करने से प्राण वायु को जीत लेता है, नाभि मध्य में धारण करने से रोग-निवृत्ति होती है तथा पांव के अंगूठे में धारण करने से शरीर में हलकापन होता है। जिह्वा द्वारा खींचकर वायु पान करने से श्रम एवं दाह शांति होकर नीरोगता प्राप्त होती है। जिह्वा से वायु को खींचकर जिह्वा मूल में रोककर पीने से सारे सुख प्राप्त होते हैं। इड़ा से वायु को खींचकर भ्रूमध्य में रोकने के बाद इसे अमृत समझकर पीने से समस्त रोगों से मुक्ति मिलती है। इड़ा एवं पिंगला से वायु को खींचकर नाभि में रोकने से भी व्याधि से मुक्ति प्राप्त होती है। एक मास तक तीनों संध्याओं में शनैः-शनैः वायु को खींचकर अमृत की तरह पीते हुए नाभि में रोकने से बात एवं पित्त जनित रोग पूर्णतया नष्ट हो जाते हैं। नाक के छेदों से वायु को खींचकर दोनों आंखों में तथा कानों में इसे रोकने से नेत्र रोग नष्ट होते हैं। इस प्रकार की वायु को रोककर सिर में धारण करने से सिर के रोग सचमुच नष्ट हो जाते हैं। (21-32)

एकाग्र मन से स्वस्तिकासन लगाकर अंगूठों से कानों को ढंककर तर्जनियों से नेत्रों को बंद कर लें तथा अन्य अंगुलियों से नाक को भी बंद कर लें। तब धीरे-धीरे अपान को ऊपर उठाते हुए प्रणव का जप करें। आनंद की अनुभूति होने तक वायु को रोके रहें। इससे प्राण का ब्रह्मरंध्र में प्रवेश होता है, इस पर पहले शंख के समान नाद ध्वनि होती है, फिर मेघ जैसी ध्वनि होती है। इसके बाद सिर के मध्य में वायु के जाने पर पर्वत शिखर से गिरते हुए झरने के समान ध्वनि होती है। इसके बाद योगी प्रसन्नता के साथ साक्षात आत्मा के प्रति उन्मुख हो जाता है। फिर इस ज्ञान की निष्पत्ति स्वरूप जगत के प्रपंचों से मुक्ति मिल जाती है। दाहिने गुल्फ से सीवनी को दबाकर घुटनों के नीचे जोड़ों में स्थित भगवान—त्रयंबक का ध्यान करके गणेश एवं सरस्वती का स्मरण करें। फिर लिंग की

नाल से वायु को खींचकर उसे आगे की ओर से खींचते हुए, साथ-ही-साथ प्रणव का जप क
वायु को मूलाधार के मध्य में स्थापित करें। इससे वहां की अग्नि प्रदीप्त होकर कुंडली
जाती है। फिर यह वायु सुषुम्ना द्वारा अग्नि के साथ चली जाती है। इस प्रकार का अभ्या
रहने से वायु को जीता जाता है। (32-43)

पहले स्वेद (पसीना), फिर कंपन तथा अंत में शरीर का ऊपर उठना वायु को जीत लेना
करता है। इस अभ्यास के चलते रहने पर रोगों का मूलतः नाश हो जाता है। भगंदर (बवास
रोग भी ठीक हो जाते हैं। छोटे-बड़े पापों के नाश होने के फलस्वरूप चित्त शुद्ध एवं दर्पण
निर्मल हो जाता है। फिर ब्रह्मा आदि देवताओं के भोगों से भी वैराग्य हो जाता है। संसार
कैवल्य प्राप्ति का साधन है। इसी पाप नाश के बाद भगवान सदा शिव के ज्ञान से जो एक
ज्ञान रूप अमृत का पान कर लेता है, वह सब कुछ छोड़कर उसी के प्रति दौड़ पड़ता है। अ
विश्व को ज्ञान स्वरूप कहते हैं, ज्ञानी इसे भोग रूप समझते हैं। आत्म स्वरूप का ज्ञान
अज्ञान का नाश होता है। अज्ञान का नाश होने पर राग आदि विषय भी नष्ट हो जाते हैं। इन
के नष्ट होने पर पुण्य पाप भी नष्ट हो जाते हैं। इनके नाश से पुनर्जन्म भी नहीं होता। (43-

सप्तम खंड

हे महामुनि ! अब मैं प्रत्याहार के विषय में बताता हूं। स्वाभाविक रूप में अपने वि
विचरणशील इंद्रियों को बलात उनसे लौटाना आहरण कहलाता है। समस्त दृश्यमान ब्रह्म
इस प्रकार की भावना का होना भी ब्रह्मवेत्ताओं की दृष्टि में प्रत्याहार ही है। मानव मृत्यु प
कुछ भी शुद्ध या अशुद्ध करता है, उसे ब्रह्म को समर्पित कर देना भी प्रत्याहार है। ब्रह्म की
समझते हुए नित्यकर्मों अथवा कामनाओं का करना भी प्रत्याहार ही है। या वायु को खींचक
स्थान पर रोकें, दांतों के मूल से वायु को खींचकर पहले कंठ में फिर कंठ से हृदय में तथा
नाभि में ले जाकर रोकें। फिर यहां से भी ले जाकर कुंडली में रोकें। कुंडली से मूलाधार में
फिर अपान से कमर के दोनों ओर फिर उस मध्य में, तब दोनों जंघेओं में और अंत में पांव के
में रोकें। प्रत्याहार में निरत लोग इसी को प्रत्याहार कहते हैं। इस अभ्यास में लगे हुए महा
के सभी पाप तथा सांसारिक रोग नष्ट हो जाते हैं। स्वस्तिकासन में निश्चल बैठकर नाक
को खींचकर पांवों से लेकर मस्तक पर्यंत भर लें। फिर इस वायु को दोनों पांवों में, मूल
नाभिकंद में, हृदय मध्य में, कंठमूल में, तालुओं में, भ्रूमध्य में, ललाट में तथा मूर्धा में धार
एकाग्रचित से आत्मबुद्धि को त्याग कर निर्विकल्पक आत्मा में बुद्धि को स्थित करें। सा
के वेत्ताओं ने इसी को प्रत्याहार कहा है। इसके अभ्यास से योगी के लिए कुछ भी दुर्ल
रहता। (1-14)

अष्टम खंड

इसके पश्चात अब मैं पांच प्रकार की धारणाओं के विषय में बताता हूं। शरीर में
आकाश में बाह्य आकाश को धारण करें। इसी तरह प्राण से बाह्य वायु को, जठराग्नि में बाह्

को और शारीरिक जल में बाह्य जल को धारण करें। तथा इन पांचों धारणाओं के समय क्रमशः 'ह' 'य' 'व' 'र' 'ल' इन मंत्रों का उच्चारण करें। इसे सभी पापों को नष्ट करनेवाली धारणा को श्रेष्ठ माना गया है। जानुओं के अंत तक पृथ्वी का अंश, घुटनों से गुदा तक का भाग जल का अंश, गुदा से हृदय तक अग्नि का अंश, हृदय से भौंहों तक वायु का अंश और यहां से मस्तक तक आकाश का अंश कहा गया है। पृथ्वी के अंश में ब्रह्मा का, जल के अंश में विष्णु का, अग्नि के अंश में महेश का, वायु के अंश में ईश्वर का तथा आकाश के अंश में सदाशिव के अंश की धारणा करनी चाहिए। हे सांकृति मुनि ! अब मैं एक अन्य धारणा के विषय में बताता हूं। बुद्धिमान योगी स्वयं को आत्मा में नित्य, सर्वशासक, बोधमय एवं आनंदमय परमात्मा को धारण करें। इससे सभी पापों से मुक्ति मिलकर साधक सर्वथा शुद्ध हो जाता है। ब्रह्मा आदि कार्य रूपों को उनके अपने-अपने कारणों में लय करके सर्व कारण, अव्यक्त, अनिरूप्य, अचेतन एवं साक्षात तत्त्व को अपने आत्मा में धारण करें तथा इस धारणा में समस्त कलाओं से परिपूर्ण प्रणव (ओम) रूपी परमात्मा में अपने मन का लय कर दें और मन के साथ इंद्रियों को भी उसमें ही संयुक्त कर दें। (19)

नवम खंड

अब ध्यान के विषय में बताता हूं। इस ध्यान से समस्त सांसारिकता का नाश हो जाता है। ऋत (ऋत का अर्थ प्राकृति नियम हैं, जो कभी नहीं बदलते; सर्वथा सत्य होते हैं। जैसे दिन के बाद रात, जन्म के बाद मृत्यु अवश्य होती है, सूर्य पूर्व में ही उदय होता है। इत्यादि) सत्य, परम ब्रह्म, समस्त संसार की एकमात्र औषधि, ऊर्ध्वरेता, विश्वरूप तथा विकराल नेत्रोंवाले महेश्वर की, जो ईश्वरों का भी ईश्वर है, 'सोऽहम्' भावना से धारणा करें। अथवा सत्य, ईश्वर, ज्ञानस्वरूप, आनंदमय, अद्वैत, परम निश्चल, नित्य, आदि-मध्य-अंत में स्थित, स्थूल, अनाकाश, अस्पर्श्य, अदृश्य, रूप, गंध रहित, अप्रमेय, अनूप, सच्चिदानंद अनंत ब्रह्म मैं ही हूं, ऐसी अभेद प्रतीत भी मुक्ति देनेवाली होती है। इस प्रकार अभ्यास करते रहने से महात्मा पुरुष को निःसंदेह क्रमशः वेदांत ज्ञान की प्राप्ति होती है। (1-6)

दशम खंड

'अब भवनाशक समाधि के विषय में बताता हूं। परमात्मा एवं जीवात्मा की एकता का निश्चयात्मक ज्ञान ही समाधि है। यह आत्मा नित्य, सर्वगत देह रहित एवं दोष रहित है। एक होते हुए भी यह माया द्वारा उत्पन्न भ्रम के कारण अनेक दिखाई देता है। वस्तुतः आत्मा एवं परमात्मा में कोई भेद नहीं है; माया के प्रपंच नाम की कोई वस्तु नहीं है। जैसे एक ही आकाश (शून्य) घड़े में घटाकाश तथा मठ के ऊपर मठाकाश कहलाता है, वैसे ही जीवात्मा और परमात्मा में कोई भेद नहीं है। अज्ञानी इन्हें दो रूपों में मानते हैं। जो ज्ञानी अपने को देह, प्राण, इंद्रिय, मन आदि नहीं मानते तथा साक्षी रूप में एकमात्र परमात्मा शिवरूप को ही मानते हैं, उनकी ऐसी निश्चयात्मक बुद्धि ही समाधि कही जाती है। (1-5)

'मैं वही ब्रह्म हूं; कोई अन्य सांसारिक जीव नहीं, मुझसे परे किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है। जैसे फेन एवं लहरें समुद्र से उत्पन्न होकर पुनः उसी में मिल जाती हैं, उसी प्रकार यह जगत मुझसे

ही उत्पन्न होकर मुझमें ही लीन हो जाता है। इसी प्रकार मेरा मन भी मुझसे पृथक नहीं है। प्रकार की अनुभूतिवाला योगी परम आनंद स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करता है। जब उसके सर्वव्यापक आत्म चैतन्य की अनुभूति होने लगती है, तब वह स्वयं परमात्मा रूप में स्थित हो है। जब वह समस्त प्राणियों को स्वयं में तथा स्वयं को समस्त प्राणियों में देखने लगता है, साक्षात ब्रह्म ही हो जाता है। समाधि में स्थित योगी परमात्मा से एकाकार हो जाने पर अपने से किसी भी प्राणी को नहीं देखता। इस अवस्था में वह परमात्मा में ही स्थित हो जाता है। आत्मा को ही सत्य रूप में देखने तथा विश्व को माया की क्रीड़ा मात्र देखने पर वह परम आनंद प्राप्त कर लेता है। (6-12)

'इस समस्त ज्ञान को देने पर भगवान दत्तात्रेय चुप हो गए। सांकृति मुनि अपने स्वरूप जानने के बाद निर्भय होकर परम आनंद को प्राप्त हुए'। (13)

42. हंसोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

गौतम ने सनत्कुमार से निवेदन किया, 'भगवन् ! आप समस्त धर्म-तत्त्वों के ज्ञाता हैं; सभी शास्त्रों में विशारद हैं। अतः कृपया यह बताएं कि ब्रह्म विद्या का ज्ञान किस उपाय से हो सकता है ?' इस पर सनत्कुमार बोले, 'समस्त धर्मों पर विचार करने के बाद उनके मतों को जानकर भगवान् शिव ने पार्वती को जो कुछ भी बताया था, हे गौतम ! उसी सब ज्ञान को तुम मुझसे सुनो। इस गोपनीय ज्ञान को हर किसी को नहीं देना चाहिए। योगियों के लिए यह कोष के समान है। हंस आत्मा की स्थिति को बताने वाला यह वर्णन मुक्तिरूप फल को प्रदान करनेवाला है। केवल शांत प्रकृति, इंद्रियजयी गुरुभक्त ब्रह्मचारी के सामने ही इस ज्ञान को प्रकट करना चाहिए। जैसे काष्ठ में अग्नि एवं तिलों में तेल होता है, वैसे ही सारे शरीर में यह 'हंस-हंस' का ध्यान करता हुआ होता है। इसके ज्ञाता मृत्यु को जीत लेते हैं। (1-5)

सर्वप्रथम वायु को खींचकर आधार चक्र की वायु को बाहर निकालकर स्वाधिष्ठान चक्र की तीन बार प्रदक्षिणा करें। मणिपूरक चक्र में जाकर अनाहत चक्र का अतिक्रमण करके विशुद्ध चक्र में प्राणों को रोककर आज्ञाचक्र के ध्यान के बाद ब्रह्मरंध्र का ध्यान करो। ऐसा करते हुए 'मैं त्रिमात्रा स्वरूप हूं', इस प्रकार का ध्यान करने से साधक उसी के समान बन जाता है। यह परम हंस, जिसने समस्त जगत को व्याप्त कर रखा है, करोड़ों सूर्य के समान प्रकाशमान है। इसकी आठ प्रकार की वृत्ति होती है। पूर्व दल में पुण्यमती, आग्नेय में निद्रा, आलस्य आदि, दक्षिण में क्रूर बुद्धि, नैऋत्य में पाप बुद्धि, वारुणी में क्रीड़ा-बुद्धि, वायव्य में गमन बुद्धि, चंद्रमंडल में रति तथा ईशान कोण में द्रव्य आदन होता है। साथ-ही-मध्य में वैराग्य, केश में जागृत अवस्था, कर्णिका में स्वप्न-लिंग में सुषुप्ति और तुरीय होता है। इस प्रकार का ध्यान करने से आधार चक्र से ब्रह्मरंध्र तक जो नाद होता है, उसे शुद्ध स्फटिक के समान परमात्मा कहा गया है। (6-9)

इसमें हंस ऋषि है, अव्यक्त गायत्री छंद, परम हंस देवता, 'हं' बीज, 'सः' शक्ति तथा 'सोऽहम्' कीलक है। इस प्रकार इन छः में एक रात-दिन में बीस हजार छः सौ से भी अधिक सांसें होती हैं। सूर्य, सोम, निरंजन, निराभास आयतन सूक्ष्म तनु, प्रेरित करें। अग्नि के लिए वौषट्—इस प्रकार हृदय से अन्य अंगों में इसके अंगन्यास एवं करन्यास होते हैं। ऐसा करके हृदय में हंस स्वरूप आत्मा का ध्यान करें। (10-13)

अग्नि एवं सोम इस हंस के पक्ष (पंखे) हैं, 'उ' सिर है, बिंदु नेत्र हैं, मुख रुद्र है, रुद्राणी दोनों

चरण हैं और काल दोनों हाथ हैं। इस प्रकार मन रहित होकर इसका अजय उपसंहार कहा गया है। इस स्थिति में भाव हंस के वश में रहते हैं। इसी जप कोटि से नाद का अनुभव होता है, जो दस प्रकार का है। दसों नाद क्रमशः इस प्रकार हैं—पहले चिणि नाद होता, फिर चिणि-चिणि होता है। इसके बाद क्रमशः घंटानाद, शंखनाद, तंत्रीनाद, तालनाद, वेणुनाद, भेरीनाद, मृदंगनाद तथा दसवां मेघ का नाद होता है। (14-16)

दसों नादों में प्रथम नौ को छोड़कर केवल दसवें का ही ध्यान करना चाहिए। प्रथम नाद के अभ्यास से शरीर में चिणचिणाहट होती है, दूसरे के अभ्यास से शरीर टूटने का भय रहता है। तीसरे से पसीना आता है, चौथे से सिर कांपने लगता है, पांचवें से तालु से लार का स्राव होता है, छठे से अमृत-वर्षा होती है, सातवें से गूढ़ ज्ञान प्राप्त होता है, आठवें से परा वाणी की प्राप्ति होती है, नवें से अदृश्य होने की शक्ति तथा निर्मल दिव्य दृष्टि की प्राप्ति और दसवें नाद से परम ब्रह्म का ज्ञान एवं उसका सान्निध्य (समीपता) मिलता है। (17-20)

उसमें मन के लय होने पर, संकल्प-विकल्पों का नाश होने से पाप-पुण्य दग्ध हो जाते हैं। तब सदाशिवमय, सर्वत्र व्यापक, स्वयं ज्योति, शुद्ध, बुद्ध, नित्य, निरंजन परम शांत ब्रह्म से साधक प्रकाशमय हो जाता है। यही वेदों का वचन है। यही ज्ञान का सार है। (21)

□

43. स्वसंवेद्योपनिषद

जल के बुलबुलों के समान प्राणी अदृश्य अमर ब्रह्म में लीन हो जाता है। लीन हो जानेवालों का जन्म नहीं होता। जैसे घड़ा टूटकर मिट्टी में, कपड़ा फटकर धागों में बंट जाता है, वैसे ही प्राण की भी स्थिति हो जाती है। जगत का न तो उपादान कारण है, न उसकी कोई उपादेयता है और न वह निमित्त कारण है। वस्तुतः विद्या, पुराण, वेद, इतिहास, यह जगत, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर, बिंदु, कला, प्रारंभ, मध्य, अंत आदि सभी हैं ही नहीं। मुनि भी शब्दों के बुलबुलों से बने हुए हैं। वे पुराण, इतिहास आदि का अभिमान करते हैं। उन्हें वास्तविक ज्ञान प्राप्त ही नहीं होता; वे अज्ञान से घिरे रहते हैं। अतः उन्हें प्रमाण नहीं माना जा सकता।

उसके ज्ञान से कोई भी प्रयोजन नहीं। जो चीज सचमुच में है या जो नहीं है वह भी सच है। जगत में सब कुछ समय एवं स्वभाव के कारण है। न पाप है न पुण्य है, अतः सोने का पहाड़ या गाय दान करनेवाले तथा गौ हत्यारे, शराबी, चोर, ठग आदि सब एक समान हैं। समय के कारण यह सब होता है, आत्मा इन सबसे अलग है। उसके द्वारा गाय, ब्राह्मण, शराबी, चोर, ठग आदि के कोई कार्य नहीं होते। यह सब अपने-अपने मत हैं। अतः उनका निर्वाण और नरक कुछ नहीं होता। यह सभी जानते हैं।

तत्त्वज्ञान अंधकार है, क्योंकि अज्ञानियों के मार्ग को इसमें उचित कहा गया है। उन्हें इस पर गर्व है। वे सुंदर वचनों से मोहित होते हैं। यह सब गुड़ के अंदर कड़वी दवा देने जैसा धोखा है। सब लोभ के कारण ही अनेक देवताओं, गुरुओं, तीर्थों आदि की शरण लेते हैं। कुछ हमें वैदिक (वेदों को माननेवाला) कहते हैं, कुछ नहीं कहते। कोई सर्वशास्त्रों का ज्ञाता बनता है, कोई स्वयं को देवों की कृपा का पात्र बताता है, कोई स्वप्न में देवता की कृपा से सब कुछ बता देने की बात करते हैं, कोई अपने को देवता कहते हैं, कोई वैष्णव बनता है, कुछ नाचते हैं, कुछ मूर्ख स्वयं को परम भक्त बताते हुए नाचते हैं और रोते हैं। ये सब अज्ञानी होते हैं। जो ज्ञानी होते हैं, वे वस्तुतः तत्त्वज्ञानी होते हैं। उनके मतों में भेद हो सकता है। जिस ईश्वर में ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि जाते हैं उसी में कुत्ते, गधे आदि भी लीन होते हैं, अतः कुत्ते, गधे आदि भी न ऊंच है; न नीच हैं और न मध्यम हैं, अर्थात सब समान हैं। अतः यह सब ठीक ही है।

इस प्रकार न तो 'वह', 'क्या' आदि शब्द, माता, पिता, भाई, पत्नी, पुत्र या मित्र कुछ भी नहीं है। अतः साधक अपने स्वरूप को जानने के लिए या मोक्ष के लिए संतों की सेवा करें। पत्नी, पुत्र, घर, धन आदि सब कुछ उनके ऊपर छोड़ दें। कर्माद्वैत (दो प्रकार के कार्य) नहीं, अपितु भावाद्वैत करना चाहिए। सर्वाद्वैत (सब एक जैसा) सबसे अच्छा है। गुरु सबसे बढ़कर है, अतः उसे अलग ही समझना चाहिए। वही प्रकाश दिखाता है। उससे बड़ा कौन हो सकता है ? वह सत्य ही जीवनमुक्त है। इसे भली-भांति समझना चाहिए।

□

44. जाबाल्योपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ अप्यायंतु ममांगानि वाक्प्राणचक्षुः श्रोत्रमथो बलमिंद्रियाणिच सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकरोद् निराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि संतु।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

भगवान् जाबालि से पिप्पलादि ने पूछा, 'परमतत्त्व के बारे में बताइए। तत्त्व क्या है? जीव क्या है? पशु कौन है? ईश्वर क्या है? मोक्ष का उपाय क्या है?' जाबालि बोले, 'तुमने बड़ी अच्छी बात पूछी है, जो भी मुझे ज्ञात है, मैं बताता हूं।' पिप्पलादि ने फिर पूछा, 'यह सब आपको किसने बताया?' 'कार्तिकेय ने'—उत्तर मिला। 'उन्हें किसने बताया?' पुनः पूछने पर जाबालि बोले, 'ईशान ने।' इस पर पिप्पलादि ने कहा, 'यह रहस्य मुझे भी बताइए।' (1-9)

जाबालि बोले, 'अज्ञान से पशुपति ही प्राण धारण कर जीव बनता है। पंच तत्त्वों के कारण ही वह पशु हो जाता है। (पशु कौन है?) जन्म लेने के कारण जीव ही पशु है। जीवों का स्वामी होने से ईश्वर पशुपति है।' पिप्पलादि—'जीव पशु कैसे है? उसकी उत्पत्ति कैसे होती है?' जाबालि—'घास खानेवाले, बुद्धिहीन, दूसरे के अधीन, खेती आदि कार्य करनेवाले, सब दुःखों को सहनेवाले, अपने स्वामी के दास गाय के समान सभी प्राणी पशु ही हैं। ईश्वर उनका स्वामी है।' पिप्पलादि—'तब ज्ञान कैसे होता है?' जाबालि—'विभूति धारण करने से।' पिप्पलादि—'यह कैसे धारण की जाती है? कहां-कहां धारण की जाती है?' (10-18)

जाबालि बोले—'सद्योजातादि०' 'अग्निरति०' 'मामस्तोक०' 'त्र्यायुष०' 'त्र्यंबक०' इन मंत्रों से क्रमशः भस्म ग्रहण करें, अभिमंत्रित करें तथा हाथ जल से गीला करें, सिर-ललाट, छाती-कंधों में लगाएं और तीन रेखाएं लगाएं। सभी वेदों में वेदवादियों ने इसे शांभव व्रत कहा है। अतः मोक्ष पाने के लिए इसे लगाएं।' (19)

सनत्कुमार ने इसे प्रमाण बताते हुए कहा है कि ललाट, भौंहों के बीच तथा आंखों के ऊपर विभूति की तीन रेखाएं (त्रिपुंड) लगाएं। इसकी पहली रेखा गार्हपत्य अग्नि, रजोगुण, (ओम का) 'अ' भूलोक, अपनी आत्मा, क्रिया शक्ति, प्रातः पूजा तथा प्रजापति है। दूसरी रेखा दक्षिण अग्नि, 'उ' सत्त्वगुण, अंतरिक्ष लोक, अंतरात्मा, इच्छाशक्ति, मध्य दिन की पूजा और विष्णु है। तीसरी रेखा आह्वनीय अग्नि, 'म' द्यु लोक, परमात्मा, ज्ञानशक्ति, सामवेद, सायं की पूजा और महादेवी है। इस भस्म के त्रिपुंड को लगानेवाला विद्वान, ब्रह्मचारी, गृहस्थ या यती, जो भी हो, वह सभी पापों से छूट जाता है। वह सभी वेदों को पढ़नेवाले के समान, सभी देवताओं की पूजा करनेवाले के समान, सभी तीर्थों में नहाए के समान और रुद्रमंत्रों का जप करनेवाले के समान हो जाता है। उसका फिर से जन्म नहीं होता। यह सत्य रहस्य है। (20-23)

□

45. मैत्रेयोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ अप्यायंतु ममांगानि वाक्प्राणचक्षुषः श्रोत्रमथो बलमिंद्रयाणिच सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकरोद् निराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि संतु।

ॐ शांतिः शांतिः शांति।

प्रथम अध्याय

शरीर नष्ट होनेवाला है, ऐसा विचार करते हुए वैराग्य के कारण राज्य बड़े पुत्र को देकर राजा वृहद्रथ वन में चला गया। वहां उसने हाथ ऊपर करते हुए सूर्य पर दृष्टि जमाकर कठोर तपस्या की। एक हजार वर्ष बाद बिना धुएं की अग्नि के समान शाकटान्य मुनि वहां आए। उन्होंने राजा से वर मांगने को कहा। राजा बोला, 'आप आत्मा को जाननेवाले हैं। आप मुझे आत्मतत्त्व का उपदेश दीजिए।' मुनि बोले, 'यह कठिन विषय है। दूसरा वर मांगो।' ऋषि के चरण छूते ही राजा बोले, 'समुद्र सूख जाते हैं, पर्वत टूट जाते हैं, पृथ्वी डूब जाती है और देवता भी नहीं रहते। अतः सारा विश्व नाश होनेवाला और विषयों में डूबा हुआ है। इनमें डूबे प्राणी को बार-बार जन्म लेना पड़ता है। मैं कुएं के मेंढक के समान हूं। आप ही मेरा उद्धार कीजिए। मनुष्य मां-बाप के मैथुन से उत्पन्न होता है। यह शरीर मूत्र द्वार से निकला, मांस से लीपा, चमड़े से मढ़ा हुआ हड्डियों का ढांचा है। इसमें मल-मूत्र आदि भरे हैं। ज्ञान रहित शरीर व्यर्थ है। मुझे शरण दें।' (1-3)

मुनि बोले, 'तुम धन्य हो। आत्मा 'मरुत' कहा जाता है।' राजा ने कहा, 'आत्मा क्या है?' इस पर मुनि बोले, 'शब्द-स्पर्श आदि अनर्थकारी विषयों में पड़कर प्राणियों का आत्मा ब्रह्म को भूल जाता है। तप से ज्ञान होता है, ज्ञान से मन वश में होता है। इससे आत्मा की प्राप्ति होने पर संसार से मुक्ति मिलती है। जैसे अग्नि बुझ जाती है, वैसे ही वृत्तियों के नाश होने से, सारे विषय झूठ लगते हैं, चित्त ही संसार है, अतः प्रयत्नपूर्वक इसे शुद्ध करने से तन्मयता होती है। चित्त के शुद्ध होने पर ही शुभ-अशुभ कर्म नष्ट होने पर आत्मा में लीनता और कभी कष्ट न होनेवाला सुख मिलता है। चित्त जितना सांसारिक विषयों में लगता है, उतना यदि ब्रह्म में लगे, तो मुक्ति अवश्य मिलती है। हृदय कमल में रहनेवाला आत्मा कर्मों का साक्षी है। परमात्मा मन, वाणी आदि से नहीं जाना जानेवाला है। वह आदि-अंत सब में है। वह स्वयं प्रकाश, भावना की गतिवाला, अहेय, अनुपादेय, विचित्र, ध्रुव, गंभीर, प्रकाशमान, चारों ओर निराभास, निर्वाणमय और अकेला है। यह परम आनंदमय, प्रत्येक प्रत्यक्ष रूप को धारण करनेवाला निःसंदेह मैं ही हूं। (अर्थात प्रत्येक आत्मा परमात्मा ही है) (4-15)

'जिसे आत्मा का ज्ञान हो जाता है, वह असंग कहलाता है। वह आशा के पिशाच को दूर क देता है और उसे संसार मदारी के खेल के समान लगता है। तब उसे दुःख छू भी नहीं सके वर्ण-आश्रम को माननेवाले मूर्ख कर्मों का फल भोगते हैं। इन्हें छोड़कर आत्मा में रहनेवाला आन भोगता है। वर्ण-आश्रम और शरीर नाश होनेवाले तथा कष्ट देनेवाले हैं, अतः पुत्र, शरीर आदि मोह त्यागकर अनंत सुख (आत्मा को जानना) चाहिए।' (16-18)

द्वितीय अध्याय

भगवान् मैत्रेय एक बार कैलाश गए। उन्होंने भगवान शिव से कहा, 'हे ईश्वर ! मुझे पर तत्त्व का रहस्य बताइए।' शिव बोले, 'शरीर को मंदिर कहा गया है। इसमें जीव केवल शिव ही है अतः अज्ञान को छोड़कर 'मैं वही हूं', ऐसा मानकर उसे पूजो। आत्मा-परमात्मा में भेद न समझ ज्ञान है, विषय-बुराइयों रहित मन ध्यान है, मन को शुद्ध रखना स्नान, तथा इंद्रिय-निग्रह शुद्धता है ब्रह्म-अमृत पीएं, केवल जीवित रहने हेतु भिक्षा लें तथा एकांत में रहें। बुद्धिमान को इसी से मुक्ति मिलती है। मां-बाप के मल से उत्पन्न सुख-दुःख के घर इस अपवित्र शरीर के मरने पर इसे छूक स्नान किया जाता है। धातुओं से बने, महारोगी, पाप के घर, नश्वर और विकारोंवाले इस शरीर को छूकर स्नान किया जाता है। आंख, कान आदि शरीर के नौ द्वार गंदगी उत्पन्न करने वाले हैं। ज के समय इसे माता के कारण सूतक होता है और मृत्यु पर भी सूतक होता है, अतः इसे छूकर स्न करना चाहिए। मल-मूत्र आदि की शुद्धता जल आदि से हो जाती है, किंतु 'मैं-मेरा', इस अज्ञान की सफाई ही शुद्ध पवित्रता है, जो चित्त की सफाई के साथ ही, वासनाओं का नाश करके वैराग्य पै करती है। अद्वैत (जीव-ब्रह्म एक ही है) भावना सच्ची भिक्षा है। द्वैत भावना अभक्ष्य (न खाने योग्य जैसी है, अतः गुरु की आज्ञा के अनुसार ही भिक्षा मांगनी चाहिए। (1-10)

'विद्वान कैद से छूटे चोर की तरह संन्यास लेकर घर से दूर रहने लगे। अहंकार रूपी पुत्र, ध रूपी भाई, मोह रूपी बंधु एवं आशा रूपी पत्नी को छोड़कर निःसंदेह जीवन्मुक्ति मिलती है। म रूपी मां मरी और ज्ञान रूपी पुत्र उत्पन्न हुआ। दो सूतक एक साथ होने से संध्यावंदन कैसे करूं हृदयाकाश में चैतन्य सूर्य सदा चमक रहा है। न तो यह अस्त होता है; न उदय ही। अब संध्या कै हो ? गुरु के कहने पर यह ज्ञान हो गया कि सब कुछ एक ब्रह्म ही है। इसे ही एकांत कहते हैं; कि मठ या वन को नहीं। जिसे इसमें संदेह नहीं है, वही मुक्त होता है। शंकालु को जन्म-जन्मांतर त मुक्ति नहीं होती। कर्मों को छोड़कर या कहने मात्र से कोई संन्यासी नहीं कहलाता। समाधि में जी और ब्रह्म एक ही हैं; ऐसा ज्ञान ही संन्यास है। जिसे समस्त इच्छाएं उलटी के समान लगती हैं औ शरीर का मोह नहीं होता, वही संन्यास लेने योग्य है। सभी वस्तुओं से वैराग्य होने पर ही संन्या लें, अन्यथा पतन होता है। धन, अन्न या वस्त्र के लिए संन्यास लेने पर दोनों लोक नष्ट होते हैं, उ कभी मुक्ति नहीं मिलती है। व्यक्ति के लिए तत्त्व-चिंतन श्रेष्ठ कर्म है, शास्त्र चिंतन मध्यम, चिंतन नीच तथा तीर्थों में जाना इससे भी घटिया है। मूर्ख व्यक्ति सच्चे ज्ञान के बिना ब्रह्म को प के विचार से प्रसन्न होता है, यह प्रसन्नता वृक्ष की छाया के फल देखने की प्रसन्नता जैसी है। इ में वृद्ध के सामने धनवृद्ध, आयुवृद्ध तथा विद्यावृद्ध शिष्य जैसे हैं। 'मैं' इस आत्मा को न जानने

विद्वान भी माया में पड़े हुए तथा पेट भरने के लिए घूमनेवाले कौओं की तरह हैं। पत्थर, लोहे, सोने या मिट्टी की मूर्तियों की पूजा फिर जन्म और भोग देती है। मोक्ष-प्राप्ति हेतु संन्यासी इन बाहरी पूजाओं को छोड़कर हृदय में आत्मा की पूजा करें। सागर में रखे घड़े के बाहर-भीतर पानी ही है। खाली स्थान में रखा घड़ा बाहर-भीतर से खाली होता है। संसार से कुछ भी ग्रहण करने की भावना मत करो। इसके अलावा जो भी है, उसमें तन्मय बनो। देखे दृश्य और देखने की इच्छा को ही छोड़कर दर्शन का प्रथम आभास करानेवाले आत्मा को भजो। सारी इच्छाएं समाप्त होने पर जो पत्थर के समान बन चुका है, जो न जागता है और न सोता है, वही परम रूप एवं अवस्था है।' (11-30)

तृतीय अध्याय

'मैं ही हूं, दूसरा भी मैं हूं, मैं ब्रह्म, सबका गुरु, सभी लोक, मैं ही हूं। मैं ही सदा, नित्य, विमल, विज्ञान, विशेष, चंद्रमा, पूर्ण, शुभ, शोकहीन, चैतन्य, सम, मान-अपमान रहित, निर्गुण, शिव, द्वैत-अद्वैत से अलग, द्वंद्वहीन, भाव-अभाव-रहित, भाषाहीन, प्रकाश, शून्य-अशून्य, प्रभावी, सुंदर-असुंदर, समानता-असमानता रहित, नित्य शुद्ध, सदा शिव, सब और कुछ नहीं से भी अलग और सात्त्विक सब मैं ही हूं। मैं एक भी नहीं हूं और दो भी नहीं हूं, सत-असत के भेद से बाहर हूं, अखंड आनंद हूं, 'मै' भी नहीं हूं और 'अन्य' भी नहीं हूं। मैं देह, आधार, आश्रय, बंधन एवं मोक्ष इन सबसे रहित हूं। मैं शुद्ध, ब्रह्म 'वह' हूं। चित्त आदि से रहित परम, परात्पर, सदा विचार रूप एवं निर्विचार रूप हूं।' (1-10)

'मैं (ओम का) 'अ', 'उ' और 'म्' हूं, सनातन हूं, ध्याता, ध्यान एवं ध्येय से रहित हूं, सर्वत्र परिपूर्ण, सच्चिदानंद, सभी तीर्थ, परमात्मा, लक्ष्य (दीखनेवाले) अलक्ष्य से रहित, लयहीन, रस रूप, प्रमाण-प्रमेय आदि हीन शिव, नेत्र आदि रहित हूं, समस्त जगत को देखनेवाला नहीं हूं, प्रबुद्ध प्रसन्न हर, सभी इंद्रियों से हीन सब कर्म करनेवाला, वेदांत में कहा गया और सर्वसुलभ हूं (11-15)।

'मैं आनंद भी हूं, शोक भी हूं, मौन धारण का फल भी हूं, मैं नित्य, चिन्मय, सच्चिदानंद जो कुछ भी है, उससे हीन, हृदय ग्रंथिहीन, हृदय-कमल से, छः विकारों से, छः कोशों से, छः शत्रुओं से रहित हूं, अंदर से भी अंदर, देशकाल से परे, दिशाओं और आकाश का सुख हूं, मैं, 'नहीं है' से रहित, विमुक्त, सकारात्मक, अखंड आकार रूप, प्रपंचमुक्त हूं। मैं सर्वप्रकाश रूप चैतन्य ज्योति भूल-भविष्य-वर्तमान, तीनों कालों से रहित, काम, मोह आदि रहित, कामना रहित, निर्गुण, केवल, मुक्तिहीन, मुक्त, मोक्षहीन, सत्य-असत्य से परे, सत मात्र, गंतव्य, स्थान, चलने से रहित, सदा समान रूप, शांत, पुरुषोत्तम, प्रत्येक के अनुभव जैसा और वह (ब्रह्म) मैं ही हूं, इसको एक बार सुननेवाला भी ब्रह्म हो जाता है। यही उपनिषद् का मत है।'

□

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभ्यः शृणुयामः देवा भद्रं पश्येमार्ताक्षिर्भिर्यजत्राः ।
स्थिरेरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नर्स्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

हम कानों से कल्याणमय वचन सुनें, नेत्रों से कल्याणमय चीजों को देखें और दृढ़ अंगोंवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करें । इंद्र हमारा कल्याण करें पूषा हमारा कल्याण करें, अमंगल नाशक गरुड़ और वृहस्पति हमारा कल्याण करें । दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दुःख शांत हों ।

प्रथम अध्याय

शांडिल्य ने अथर्वांगिरस से कहा, 'मुझे आत्मा की प्राप्ति के उपाय अष्टांग योग का बताइए।' तब मुनि बोले—'यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि— ये योग के आठ अंग हैं । नियम भी दस हैं । आसन आठ, प्राणायाम तीन, प्रत्याहार पांच, धारणा पांच, ध्यान दो तथा समाधि एक प्रकार की होती है । अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, सरलता, क्षमा, धीरज, अल्प भोजन तथा पवित्रता— ये दस यम हैं । मन, वचन एवं शरीर से किसी भी प्राणी को दुःख न देना अहिंसा है, मन, वचन एवं शरीर से प्राणियों की भलाई में सच बोलना सत्य है । इसी प्रकार दूसरे के धन की इच्छा न करना अस्तेय है, सब प्रकार का मैथुनत्याग ब्रह्मचर्य है, सभी प्राणियों पर अनुग्रह दया है, लोग कुछ भी करें उनके प्रति एकरूपता आर्जव है, प्रिय-अप्रिय एवं प्रशंसानिंदा, सब कुछ सहना क्षमा है, धनहानि बंधु आदि से वियोग एवं मिलन में एक समानता धृति है । एक चौथाई पेट को खाली रखते हुए स्निग्ध-मधुर आहार अल्प भोजन है और पवित्रता अंदर और बाहर दो प्रकार की होती है । बाहर की पवित्रता मिट्टी, जल आदि से तथा अंदर-मन की पवित्रता अध्यात्म से होती है । (1)

'तप, संतोष, आस्तिकता, दान, ईश्वर-पूजा, सिद्धांतों को सुनना, लज्जा एवं व्रत— ये दस नियम हैं । कृच्छ्र चांद्रायण आदि से शरीर को सुखाना— तप और भाग्य से जो भी मिले, उसी पर संतोष करना— संतोष है, वेदों में विश्वास— आस्तिकता, न्याय से कमाए धन को श्रद्धा से देना— दान, प्रसन्नता से शिव, विष्णु आदि की पूजा— ईश्वरपूजन, वेदों के अर्थ पर विचार, सिद्धांत— श्रवण, वेदविरुद्ध कार्य में अनुभूति— लज्जा, वेदों के बताए मार्ग में श्रद्धा मति, गुरु द्वारा प्राप्त मंत्र का अभ्यास— जप है, जो वाचिक एवं मानसिक दो प्रकार का होता है । ध्यान लगने पर मन से जप

करना मानसिक जप है। वाचिक भी दो प्रकार का होता है—ऊंची आवाज में और उपांशु। ऊंची आवाज का जप भी फल देता है, किंतु उपांशु हजार गुना और मानसिक जप करोड़ गुना श्रेष्ठ होता है। वेदों द्वारा वर्जित कार्यों का कभी आचरण न करना व्रत है। (2)

'स्वस्तिक, गोमुख, पद्म, वीर, सिंह, भद्र, मुक्त तथा मयूर— ये आठ आसन हैं। दोनों पांवों के तलुओं को जानुओं के बीच में रखकर तनकर बैठना स्वस्तिकासन है। बाएं घुटने को बाईं ओर तथा दाहिने को दाहिनी ओर पीठ में लगाकर गाय के मुख के समान बैठना गोमुखासन है। दोनों जांघों पर दोनों पैरों को रखकर हाथों से विपरीत पांवों के अंगूठों को पकड़ना पद्मासन है। दोनों पांवों को दोनों जांघों से मिलाकर बैठना वीरासन है। दोनों घुटनों को मिलाकर, हाथों को अंगुलियां फैलाकर जांघों पर रखकर बैठें, एकाग्र होकर दृष्टि को नाक के आगे चलाएं— यह सिंहासन है। योगी इसकी प्रशंसा करते हैं। गुदा को बाएं से दबाएं तथा लिंग के ऊपर दाहिने पांव को रखकर भौंहों के बीच में दृष्टि रखने से सिद्धासन होता है। जननेंद्रिय के नीचे दोनों घुटनों को जमाएं और हाथों से पैरों को अगल-बगल से दृढ़ता से पकड़ें। बिना हिले बैठें। इसे भद्रासन कहते हैं। यह सभी रोगों और विषों का नाश करता है। बाएं घुटने से हलके से दबाएं, इस पर दाहिना पांव रखने से मुक्तासन बनता है। हथेलियों को फैलाकर भूमि में रखे कुहनियों को नाभि की बगलों में फिर इस पर संतुलित होकर शरीर एवं सिर को लकड़ी के समान हवा में उठाने से सभी पापों को नष्ट करनेवाला मयूरासन बनता है। इन आसनों से शरीर के विषों एवं रोगों का नाश होता है। दुर्बल इनका सुखपूर्वक आसानी के साथ अभ्यास करें। आसन जीतना तीनों लोक जीतना है। यम नियमों से भली-भांति परिचित होकर ही प्राणायाम करें। इससे नाड़ी शुद्धि होती है। (3-10)

'नाड़ियां कैसे शुद्ध होती हैं? ये कितनी हैं? कैसे उत्पन्न होती हैं? उनमें कितने वायु हैं? किसका स्थान कहां है? शरीर में उनके क्या कार्य हैं? इस विषय में सभी जानने योग्य मुझे बताइए।' शांडिल्य के इस प्रकार पूछने पर अथर्वा बोले, 'शरीर 96 अंगुल लंबा तथा प्राण वायु इससे 12 अंगुल अधिक है। योगाभ्यास से प्राण को अग्नि के साथ या कुछ कम करनेवाला श्रेष्ठ योगी होता है। मानव शरीर में तपे सोने के समान त्रिकोण चौपायों में चतुष्कोण तथा पक्षियों में गोल आकार की अग्नि होती है। गुदा से दो अंगुल ऊपर और जनन इंद्रिय से दो अंगुल नीचे मनुष्य देह में, चौपायों में हृदय के मध्य में और पक्षियों में बीच पेट में इसका स्थान है। यह नौ अंगुल लंबा-चौड़ा अंडे जैसा होता है। (11-15)

'नाभि में बारह अरोंवाला चक्र है। इसमें पुण्य-पाप से प्रेरित जीव घूमता है। शरीर में जीव प्राणों पर सवार है। नाभि के पास में ऊपर-नीचे कुंडली का स्थान है। इसकी कुंडल के समान आठ प्रकृतियां हैं। यह योग के समय वायु को सही रूप में चलाकर अन्न-जल आदि को चारों ओर कंधों के पास रोकती है और मुख से ब्रह्मरंध्र को घेरती है। समाधि में अपान एवं अग्नि के साथ हृदयाकाश को प्रकाशित करती हुई ज्ञान रूप बनती है। मध्य में स्थित कुंडलिनी से इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, सरस्वती, वारुणी, पूषा, हस्तजिह्वा, यशस्विनी, विश्वोदरा, कुहू, शंखिनी, पयस्विनी, अलंबुसा तथा गांधारी, ये चौदह मुख्य नाड़ियां निकलती हैं। सुषुम्ना विश्व को धारण करनेवाली

एवं मोक्ष देनेवाली है। गुदा के पीछे वीणा दंड के समान मूर्धा में ब्रह्मरंध्र तक सूक्ष्म वैष्णवी होती है।(16-20)

'सुषुम्ना के बाएं एवं दाहिने क्रमशः इड़ा एवं पिंगला हैं। इड़ा में चंद्रमा चलता है, यह तमोगुण रूप और अमृत का भाग है। पिंगला में सूर्य चलता है, जो रजोगुण रूप एवं विष का भाग है। ये दोनों सारे समय को धारण करते हैं। सुषुम्ना समय को भोगती है। इसके पीछे और बगल में सरस्वती और कुहू हैं। यशस्विनी एवं कुहू के बीच वारुणी, पूषा एवं सरस्वती के बीच पयस्विनी, गांधारी एवं सरस्वती के बीच यशस्विनी, कंद के बीच अलंबुसा तथा सुषुम्ना के पूर्व से लिंग तक कुहू है। कुंडलिनी के ऊपर-नीचे चारों तरफ वारुणी है। यशस्विनी एवं सौम्या पांव के अंगूठे तक, पिंगला ऊपर को बाईं नाक तक, पूषा पिंगला के पीछे बाईं आंख तक, यशस्विनी बाएं कान तक, सरस्वती जीभ के ऊपरी भाग तक, शंखिनी ऊपर को बाएं कान तक, गांधारी इड़ा के पीछे से बाएं नेत्र तक और अलंबुसा गुदा-मूल से ऊपर-नीचे को जाती है। इनके अतिरिक्त भी बहुत-सी नाड़ियां हैं। उनसे भी नाड़ियां निकलती हैं। जैसे पीपल के पत्ते में शिराएं होती हैं, वैसे ही शरीर में नाड़ियां फैली हैं। (21)

'प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनंजय— ये दस वायु इन सभी नाड़ियों में चलते हैं। मुख, नाक, गला, दोनों पांव के अंगूठे और कुंडली में प्राण! कान, नाक, कमर, आंख में व्यान !गुदा, लिंग, जानु, पेट में अपान! जोड़ों में उदान, हाथों, पांवों तथा सारे देह में समान रहता है। पेट में अन्न और अग्नि के साथ भी समान फैला रहता है। नाग, कूर्म आदि त्वचा, हड्डी आदि में रहते हैं। पेट में अन्न, जल आदि से प्राण रस को पृथक् करता है। अग्नि में पानी, पानी में अन्न आदि को रखकर प्राण अपान के पास जाकर उसके साथ शरीर की अग्नि के पास जाता है। यह अग्नि अपान से बचकर धीरे-धीरे जलता है और प्राण के साथ मिलकर भोजन को पचाकर उसमें से पसीना, मूत्र, जल, रक्त, वीर्य, मल आदि को अलग करता है और समान के साथ नाड़ियों में रस पहुंचाता है। प्राण सांस रूप में सारे देह में चलता है। देह के नौ छिद्रों से वायु, पसीना, मल आदि त्यागते हैं। सांस लेना प्राण का, मूत्रादि त्यागना अपान का, लेना-देना आदि व्यान का, शरीर को उठाना उदान का तथा पोषण करना समान का कार्य है। डकार आदि नाग का, पलकें झपकना कूर्म का एवं भूख लगना कृकर का कार्य है। इस प्रकार नाड़ी वायु स्थानों को सही-सही जानकर नाड़ी शुद्धि करे। (22)

'योगाभ्यास करके यम-नियम के साथ संग (लगाव) छोड़कर सत्यता से क्रोध को जीतकर गुरु की सेवा से, माता-पिता के अधीन रहकर आश्रम में शिक्षा को पाकर तप करने, फल-मूल आदि के स्थान में जाएं। आश्रम के पास, फूल-फलों वाले मंदिर, नदी तीर, ग्राम या नगर में जहां भी उपयुक्त हो, सुंदर स्थान पर, न अधिक ऊंचा, न अधिक नीचा, न अधिक लंबा, न. चौड़ा हो ऐसे दरवाजेवाला गोबर से लिपा सुंदर मठ बनाएं। वहां वेदांत का श्रवण करता हुए योगाभ्यास करे। गणेश-पूजा और इष्ट को नमस्कार करके आसन में बैठें। मुख पूर्व या उत्तर को हो। बैठने का आसन कोमल हो। तनकर बैठते हुए नाक के आगे दृष्टि हो। भौंहों के बीच चंद्र बिंब को देखते हुए

नेत्रों से अमृत पीए। बारह मात्राओं से इड़ा से पूरक करें। ज्वालाओं वाले 'र' और बिंदु के साथ अग्नि का ध्यान करता हुआ पिंगला से रेचक करें, फिर पिंगला से पूरक के बाद कुंभक करके इड़ा से रेचक करें। तीन, चार या सात मास तक तीनों संध्याओं में तीन-चार बार और बीच में छः बार अभ्यास से नाड़ी शुद्धि होती है। तब शरीर में हलकापन, सुंदरता तथा भूख में वृद्धि होती है। नाद सुनाई देता है। (23)

'प्राण एवं अपान को मिलाना ही प्राणायाम है, जिसके पूरक, कुंभक और रेचक तीन भेद हैं। यह तो केवल वर्ण हैं, वस्तुतः प्रणव (ओम) ही प्राणायाम है। पद्म आदि आसन में बैठकर नाक के आगे दृष्टि जमाकर ऐसा ध्यान करें— चंद्रमंडल की चांदनी से लिपटी मूर्ति-सी लाल रंग की हंस पर बैठी हाथ में दंडवाली गायत्री ओम (अ + उ + म) की 'अ' है, 'उ' सफेद अंगोंवाली, गरुड़ पर बैठी, हाथ में चक्रवाली युवती सावित्री है और 'म' श्याम अंगों, बैल पर बैठी हाथ में त्रिशूलवाली सरस्वती है। इस प्रकार ओम अक्षर इन तीनों का कारण परम ज्योति है। तब इड़ा में सोलह मात्राओं में 'अ' का चिंतन करते हुए पूरक करें। 'उ' का चिंतन करते हुए चौंसठ मात्राओं तक कुंभक करके बत्तीस मात्राओं में 'म' के चिंतन के साथ रेचक करें। इसी क्रम से बार-बार करें। (24)

'आसन दृढ़ होने पर जितेंद्रिय योगी अल्पाहार से सुषुम्ना के मल को शुद्ध करने हेतु पद्मासन लगाकर पहले पूर्वोक्त विधि से तथा फिर पिंगला से पूरक और इड़ा से रेचक करें। इसी क्रम से नित्य प्राणायाम करने से योगी की नाड़ी तीन मास में शुद्ध हो जाती है। प्रातः, दोपहर, शाम एवं मध्यरात्रि में धीरे-धीरे 80 मात्रा तक कुंभक का अभ्यास करें। हलके प्राणायाम में पसीना तथा मध्यम प्राणायाम में कंपकंपी होती है। उत्तम प्राणायाम में पद्मासन उठ जाता है। पसीने को शरीर में ही मल लें, इससे योगी का शरीर दृढ़ और हलका होता है। अभ्यास के आरंभ में घी-दूध का भोजन उत्तम है, किंतु अभ्यास पक्का होने पर कोई नियम नहीं होता। शेर, हाथी, व्याघ्र आदि को वश में करने के समान वायु भी वश में हो जाती है। उलटा-सीधा प्राणायाम साधक का नाश करता है। उचित रीति से ही पूरक, कुंभक एवं रेचक करें, तभी सिद्धि मिलती है। शक्ति के अनुसार कुंभक करने से अग्नि बढ़ती है। नाड़ी शुद्धि तथा नाद श्रवण होता है। विधि अनुसार प्राणायाम से नाड़ी शुद्धि होने पर सुषुम्ना के मुख को भेदकर वायु सुख देता है। वायु के मध्य में जाने से मन स्थिर होता है। मन का सुंदरता से स्थिर होना ही मनोंमयी अवस्था है।

'पूरक के एवं कुंभक के अंत में तथा रेचक के आरंभ में क्रमशः जालंधर बंध, उड्डीयाण एवं उड्डीण करें। नीचे मूलरंध्र को सिकोड़ने से शीघ्र ही कंठ सिकुड़ता है। मध्य को पश्चिम में तानने से प्राण ब्रह्म नाड़ी में जाता है। अपान को ऊपर रोककर प्राण को कंठ से नीचे ले जाता हुआ रोगी सोलह वर्षीय बन जाता है।

'सुखासन में बैठकर दाहिनी नाड़ी से वायु को खींचकर केशों से नाखूनों तक में कुंभक करके बाएं से रेचक करें। इससे कपाल शुद्धि होकर नाड़ी का वायु रोग नष्ट होते हैं। चलते-रुकते हृदय से गले तक ध्वनि सहित दोनों नाक से पूरक करके शक्ति भर कुंभक करके इड़ा से रेचक करें। इससे कफ-नाश होकर भूख बढ़ती है। मुख से 'सी-सी' करते हुए पूरक करें। यथाशक्ति कुंभक के

बाद दोनों नाकों से रेचक करने से भूख, प्यास, आलस्य एवं निद्रा नहीं लगती। जीभ से कुंभक करके ऐसा करने से गोला, तिल्ली, ज्वर, पित्त एवं भूख का नाश होता है। कुंभक दो प्रकार का होता है—सहित एवं केवल। रेचक-पूरक के साथवाला सहित तथा बिना इनके केवल कुंभक है। केवल की सिद्धि तक अभ्यास करें। इसके सिद्ध होने से तीनों लोकों में कुछ भी दुर्लभ नहीं है। इससे कुंडलिनी का ज्ञान होता है। तब शरीर हलका, मुख प्रसन्न, आंखें निर्मल हो जाती हैं। नाद सुनाई देता है, बिंदु जीत लिया जाता है और रोग नष्ट हो जाते हैं। लक्ष्य भीतर हो, दृष्टि बाहर हो तथा पलकें न गिरें, यह सब तंत्रों की गोपनीय वैष्णवी मुद्रा है। लक्ष्य अंदर हो, योगी का चित्त और वायु विलीन हो गया हो, अपलक बाहर नीचे देखता हुआ भी कुछ न देखता हो, यह खेचरी मुद्रा है। यह केवल लक्ष्य में ही एकचित्त होने से और मंगलमय होने से वैष्णवी भी कहलाती है। अधखुली आंखें, स्थिर मन, नाक के आगे दृष्टिवाला योगी सूर्य एवं चंद्र नाड़ी को भी लीन कर देता है। ज्योतिरूप समस्त विषयों से परे देदीप्यमान तत्त्व ही तब उसका विषय होता है।

पुतलियों को ज्योति में लगाकर कुछ भौंहों को उठाया हुआ जैसा यह पूर्व मार्ग का अभ्यास है। इससे क्षण-भर में उन्मन अवस्था प्राप्त होती है। फिर योग निद्रा प्राप्त होती है, जिससे योगी का काल नहीं होता। शक्ति एवं मन को एक-दूसरे के बीच में रखकर मन से मन को देखकर सुखी होओ। आकाश एवं आत्मा को एक-दूसरे के मध्य में रखकर सब आकाशमय है, ऐसा मानकर कुछ भी चिंतन न करें। बाहर और अंदर की समस्त चिंताओं को त्यागकर चैतन्यमात्र परायण बनो।

जैसे कपूर अग्नि में और लवण पानी में लीन हो जाता है, वैसे ही लीन होने पर मन में लय होता है। जानने योग्य सब जान लेने पर यह ज्ञान ही मन कहलाता है। ज्ञान और जानने योग्य सब ही नष्ट हों, यही श्रेष्ठ मार्ग है। जानने योग्य (ज्ञेय) का परित्याग करने से मन लीन होता है, तब कैवल्य (मोक्ष) ही शेष रहता है। चित्त नाश के योग एवं ज्ञान दो मार्ग हैं। चित्तवृत्ति को रोकना योग है। यथार्थ दृष्टि ज्ञान है। चित्तवृत्ति को रोकने से मन अवश्य शांत हो जाता है, तब संसार के भ्रम का भी लय हो जाता है। सूर्यगति के शांत होने से जगत व्यवहार रुकने के समान शास्त्रों और सज्जनों की कृपा से वैराग्य के अभ्यास पर संसार शांत हो जाता है। इस प्रकार वैराग्य होने पर लंबे समय तक ध्यान एवं तत्त्व के अभ्यास से प्राणायाम वश में हो जाता है, पुनः इसके दृढ़ अभ्यास से मन के वश में होने पर ओंकार के उच्चारण से शब्द तत्त्व का ज्ञान होता है और सुषुप्ति का रूप भी ज्ञात हो जाता है। तालु के मूल ग्रंथि को सावधानी से जिह्वा द्वारा दबाने पर प्राण ऊपर चला जाता है और उसकी गति रुक जाती है।

तालु से बाहर अंगुल ऊपर प्राण के चेष्टारहित होने पर ऊपर के छिद्र से इसकी गति रोकी जाती है। नासिका के सामने बारह अंगुल पर निर्मल आकाश में ज्ञान दृष्टि से तथा भौंहों के बीच में तारक ब्रह्म के दर्शन से जगत प्रपंच नष्ट होने पर मानसिक संकल्प से प्राण गति रोकी जाती है। कल्याणकारक ओंकार ज्ञान के होने पर जब कोई भी विकार शेष नहीं रहता, तब प्राण-गति रोकी जाती है। दीर्घकाल तक हृदय में आकाश का अनुभव होने पर वासनारहित मन के ध्यान द्वारा प्राण की गति रुकती है।

इस प्रकार अनेक अन्य कर्मों द्वारा भी प्राण को रोका जाता है। कुंडलिनी को संकुचित करके

से मोक्ष का द्वार खुलता है। जिस मार्ग से जाना होता है,उसके मुख को ढंककर कुंडलिनी सोई रहती है,जो सर्प के समान लिपटी होती है। इसे शक्ति से चलायमान करने पर योगी मुक्त होता है। कंठ से ऊपर सोई कुंडलिनी योगियों में होती है,जो मुक्ति देती है,इससे नीचे की कुंडली मूर्खों में होती है तथा बंधन कारक होती है। यदि यह इड़ा-पिंगला के मार्ग को छोड़कर सुषुम्ना से चले,तो विष्णु का परम पद देती है। विद्वान मन के साथ ही प्राणायाम का अभ्यास करें। दिन या रात्रि का विचार किए बिना सदा विष्णु की पूजा करें। पांच स्त्रोतों वाले सुषिर का ज्ञान खेचरी मुद्रा है। दाईं-बाईं नाड़ी में संचरणशील वायु का स्थिर हो जाना खेचरी मुद्रा है।

इड़ा एवं पिंगला के बीच का शून्य स्थान वायु को ग्रस लेता है। वहीं खेचरी भी रहती है। छेदन आदि से जिह्वा को नुकीली बनाकर भ्रू मध्य में दृष्टि लगाकर जब जिह्वा उलटी जाने लगे,तो खेचरी मुद्रा होती है। जिह्वा और चित्त दोनों कपाल आकाश में घूमते हैं, तब ऊर्ध्व जिह्वावाला व्यक्ति अमर हो जाता है,बाएं पैर से मूल रंध्र को दबाकर पसरे हुए दाहिने पैर को हाथों से पकड़ें। नाक से वायु को ऊपर चढ़ाकर इसे रोकने से क्लेश नष्ट होते हैं। तब विष भी अमृत जैसा पच जाता है और क्षय, गुल्म एवं चर्म-गुदा रोग नष्ट हो जाते हैं। यह प्राणों को जीतनेवाली और मृत्यु को भगानेवाली क्रिया है। बाईं एड़ी को योनि स्थान में लगाकर दाहिने पांव को बाएं के ऊपर रखें। वायु को भरकर हृदय एवं ठोड़ी में धारणकर योनि मार्ग को संकुचित कर मन में धारण करके यथाशक्ति अपने आत्मा का ध्यान करें। इससे अपरोक्ष सिद्धि होती है। वायु खींचकर उदर में भरें, मन से इसे नाभि,नाक के आगे और पांव के अंगूठे में धारण करें। संध्याकाल में ऐसा करने से योगी रोगों एवं थकान से रहित हो जाता है। नाक के आगे धारण करने से वायु विजय, नाभि मध्य में धारण से सभी रोगों का नाश और पांव के अंगूठे में धारण करने से देह में हलकापन आता है। जीभ से लगातार वायु पीने से रोग, थकान एवं दाह का नाश होता है।

संध्या के समय तीन मास तक जीभ से वायु पीने पर तीन माह में वाणी में कल्याणमय सरस्वती आ जाती है। छः माह तक ऐसा करने से सब रोग नष्ट हो जाते हैं। जीभ से वायु को लेकर उसकी जड़ में रोककर पीने से सब प्रकार से भला होता है। इड़ा से भौंहों के मध्य आत्मा में आत्मा को धारण करने से अमृत भेदन होता है और रोगी भी रोगमुक्त हो जाता है। एक माह तक तीनों संध्याओं में जिह्वा से वायु को पेट में भरने से अमृत भेदन होता है। क्षण-भर भी नाक के आगे वायु को मन से नित्य धारण करने पर सभी ज्वर,विष तथा सैकड़ों जन्मों के पाप नष्ट होते हैं। मन के साथ आंख की पुतली के संयम से समस्त विषयों का ज्ञान,नाक के साथ संयम से सभी लोकों का,चित्त के संयम से वायुलोक का, आंख के संयम से सभी लोकों का,श्रोत्र संयम से यमलोक का,पार्श्व से निर्ऋति लोक का, पृष्ठ भाग से अरुणलोक का, बाएं कान से वरुणलोक का, कंठ से चंद्रलोक का, बाईं आंख से शिवलोक का, तलवों से अतललोक का, पांवों से वितललोक का, पांवों के जोड़ों से अनित्य लोक का ज्ञान होता है। इसी प्रकार शरीर के विभिन्न अंगों से तथा शरीर के तत्त्वों आदि से मन का संयम करने पर अनेकों लोकों का ज्ञान होता है।

प्रत्याहार पांच प्रकार का होता है। इंद्रियों को उनके विषयों से बलपूर्वक हटाना प्रत्याहार है और सब कुछ दिखाई पड़नेवाला, नित्य कर्म फलों का त्याग, सभी विषयों से विमुख होना तथा

अठारह मर्मस्थलों को धारण करना, ये सभी प्रत्याहार हैं। पांव का अंगूठा, गुल्फ, जंघा, जानु, गुदा लिंग, नाभि, हृदय कंठ छिद्र, तालु, नाक, आंख, भ्रूमध्य, ललाट एवं मस्तक, इन स्थानों में उतार-चढ़ाव क्रम द्वारा क्रमश: प्रत्याहार करें।

धारण के तीन भेद हैं—आत्मा में मन को धारण करना, दहर आकाश में बाहरी आकाश को धारण करना तथा पृथ्वी, जल, तेज, वायु एवं आकाश में पांच मूर्तियों को धारण करना।

ध्यान सगुण एवं निर्गुण दो प्रकार का होता है। मूर्ति का ध्यान सगुण तथा आत्मा का ध्यान निर्गुण ध्यान है।

जीवात्मा एवं परमात्मा की एकता की अवस्था समाधि है। यह (ज्ञान, ज्ञेय एवं ज्ञाता) त्रिपुटी रहित परमानंद स्वरूप शुद्ध चैतन्य अवस्था है।

द्वितीय अध्याय

चारों वेदों से भी ब्रह्म विद्या प्राप्त न होने पर शांडिल्य ने अथर्वा के पास जाकर कहा, 'भगवन्, मेरे कल्याण के लिए मुझे ब्रह्म-विद्या का उपदेश दीजिए।'

तब अथर्वा बोले, 'ब्रह्म सत्य, अनंत और विज्ञानमय है। जिसमें यह जगत और जो इसमें पिरोया गया है और जिसको जानने पर समस्त ज्ञान हो जाता है, वह हाथ, पांव, आंख, कान, जीभ आदि रहित एक अवर्णनीय तत्त्व है। जिससे मन के साथ वाणी आदि सभी इंद्रियां उसे पाए बिना लौट आती हैं। जो केवल ज्ञान से प्राप्त होता है। जिससे प्रज्ञा-जन्मी है, जो अद्वितीय है, आकाश के समान सबमें है, अत्यंत सूक्ष्म, निरंजन, निष्क्रिय, 'सत' मात्र आनंदमय रस, शिव, प्रशांत, अमृत और परम ब्रह्म है। तुम भी वही हो, उसे ज्ञान से जानो। एक ही देव आत्मा की प्रधान शक्ति है, सर्वज्ञ सर्वेश्वर, प्राणियों का अंतरात्मा, सभी प्राणियों में गूढ़ और रहनेवाला तथा सबका कारण है। जो विश्व को बनाता है, पालता है तथा उसका उपभोग करता है, वही आत्मा है। इसी में समस्त लोकों को समझो। शोक मत करो। आत्मज्ञानी शोक का अंत कर देता है।'

तृतीय अध्याय

'शांडिल्य ने पूछा, यह ब्रह्म एक, अक्षर, निष्क्रिय, शिव एवं सत मात्र है तब यह विश्व कैसे उत्पन्न होता है? कैसे स्थित रहता है? और कैसे लय होता है? मेरी शंका को दूर कीजिए।' अथर्वा बोले, 'ठीक है, ब्रह्म अक्षर और निष्क्रिय है, किंतु इसके सकल, निष्कल तथा सकल-निष्कल ये तीन रूप हैं। जो सत्य, विज्ञान, आनंद, निष्क्रिय, निरंजन, सर्वगत एवं अति सूक्ष्म है, निष्कल रूप है। इसके साथ ही उत्पन्न होनेवाली लाल, सफेद एवं काली मूल प्रकृति माया है। इसकी सहायता से वह देव काला-पीला महेश्वर होता है, यह इसका सकल-निष्कल रूप है। ज्ञान तप करके इसने अनेक प्रकार का बनना चाहा। फिर तप करने पर तीन अक्षर, तीन व्याहृतियां तीन गायत्री, तीन वेद, तीन देव, तीन वर्ण तथा तीन अग्नियां उत्पन्न हुईं। यह ऐश्वर्ययुक्त, सर्वव्यापी, सभी प्राणियों के हृदय में स्थित मायावी और माया के साथ क्रीड़ा करनेवाला ब्रह्म ही ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, इंद्र आदि सब देव है। यह प्राणियों के आगे-पीछे, उत्तर-दक्षिण, ऊपर-नीचे सभी जगह है। वही सब कुछ है। यह दत्तात्रेय के समान रूपवाला, वस्त्ररहित, नीलकमल के समान, चार भुजाओंवाला और भयंकरता रहित है। यह उसका सकल रूप है।' (1)

शांडिल्य ने पूछा, 'इस सन्मात्र आनंद और रस रूप को परम ब्रह्म क्यों कहते हैं ?' अथर्वा ने कहा, 'वह स्वयं बढ़ता है और दूसरों को बढ़ाता है, इसलिए उसे परम ब्रह्म कहते हैं। सबमें व्याप्त रहने से, सबको ग्रहण करने से तथा सबको खा जाने से वह आत्मा कहलाता है। वह शब्द, ध्वनि तथा आत्मशक्ति में सबसे बड़ा और सबका शासक होने के कारण वह महेश्वर कहलाता है। अत्रि ने पुत्र की इच्छा से कठिन तपस्या की, ज्योतिर्मय भगवान् प्रसन्न होकर स्वयं अत्रि-अनसूया के पुत्र बने। अतः वह दत्तात्रेय कहलाता है। जो इन नामों के अर्थ को जानता है और जो इस विद्या की उपासना करता है, वह सब कुछ और ब्रह्म को भी जान लेता है। दत्तात्रेय, शिव, शांत, इंद्रनील मणि के समान, मायामय, अवधूत, दिगंबर, सारे शरीर में भस्म लगाए हुए, जटाधारी, चार भुजावाले, खिले कमल जैसे नेत्रोंवाले, ज्ञानयोग की निधि, विश्वगुरु, योगियों के प्रिय, भक्तों पर कृपा करनेवाले, सर्वसाक्षी; सिद्धों द्वारा पूजित, ऐसे रूप का जो लगातार ध्यान करता है, वह सारे पापों से मुक्त होकर मोक्ष प्राप्त करता है। यह सत्य रहस्य है।' (2)

□

47. परब्रह्मोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभ्यः शृणुयाम: देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा: ।
स्थिरेरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायु: ।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवा: स्वस्ति न: पूषा विश्ववेदा:
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमि: स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।
ॐ शांति: शांति: शांति: ।

हम कानों से कल्याणमय वचन सुनें, नेत्रों से कल्याणमय चीजों को देखें और दृढ़ अंगों स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करें । इंद्र हमारा कल्याण करें, पूषा हमारा कल्याण करें । अमंगल नाशक गरुड़ और बृहस्पति हमारा कल्याण करें । दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दु:ख शांत हों ।

शौनक ने भगवान् पिप्पलाद से पूछा, 'संसार में उत्पन्न होनेवाले पदार्थ क्या पहले ही भगवान के हृदय रूपी आकाश में रहते हैं ? इन्हें विभाग सहित अपने में कैसे बनाता है ? यह महान प्रभु कौन हैं ?' तब पिप्पलाद बोले, 'जो सत्य है, वह बताता हूं । ब्रह्मपुर में, विरज (तीनों गुणों से रहित) निष्फल, स्वच्छ अक्षर (जो नष्ट नहीं होता) ब्रह्म रहता है । वह जीवों के बंधन और मोक्ष को बनाता है, अत: उसे निर्मक कहते हैं । वह जीवों को अविद्या (माया) से नियमित कर देता है और मोक्ष पानेवालों के लिए इसे समाप्त कर देता है । निष्काम बुद्धि से काम करनेवाले को उसके कर्म विषय में नहीं खींच सकते । चार प्राण देवता हैं । थके हुए बाज की तरह प्राण इन्हें प्राप्त करनेवाली नाड़ियों में आश्रय लेता है । यह हिरण्यमय परम कोश में रमा आदि तीन नाड़ियों में घूमता है । तब उसका त्रिपाद स्वरूप ब्रह्म ही शेष रहता है । जैसे सोए व्यक्ति को लाठी से पीटने पर वह बैठ जाता है, फिर नहीं सोता, वैसे ही जीव भी वेदांत तत्त्व को जानकर फिर अज्ञान में नहीं पड़ता । मनचाही चीज मिलने पर बच्चे के समान प्राणी भी स्वप्न एवं जागृत अवस्था में आनंदित होता है । मैंने परम ज्योति को जान लिया है, 'मैं परम ज्योति और उसका प्रकाश हूं', ऐसे चित्तवाला परम आनंद प्राप्त करता है । तब चित्त की प्रसन्नता प्राप्त होती है । तब प्राण उसी मार्ग से निर्विकल्पक समाधि से स्व अवस्था में विश्राम करता है । फिर एक-एक कर ईश्वर की इच्छा से तीनों अवस्थाओं में संचरण की प्रवृत्ति हो जाती है, इससे आत्मा आनंदित होता है । इस प्रकार वह ब्रह्म को अपने से अभिन्न मानकर उसे नहीं छोड़ता । इसी प्रकार स्तन की तरह लटके हुए इस आत्मा की साधना करो । यही योग का आधार है । यही इंद्रयोनि और वेदयोनि है, जो इसमें जागृत रहता है । इसका ध्यान करनेवाला शुभ-अशुभ से लिप्त नहीं होता । यह देव अत्यंत प्रसन्नतावाला, असंग, चैतन्य, पुरुष, प्रणव, हंस और परम ब्रह्म है । प्राण का अर्थ यहां प्रणव है; जीव नहीं है । प्रणव ही जीवों का आधार है । इसे जाननेवाला जीव ब्रह्म की एकता को जानकर ब्रह्म को पाता है । (1-2)

'ब्रह्मज्ञान ही पुरुष की आंतरिक शिखा है। ब्रह्मवेत्ता और मुमुक्षु, इसे (आंतरिक शिखा को) एवं जनेऊ धारण करें। बाह्य शिखा एवं जनेऊ गृहस्थ धारण करें। आंतरिक शिखा एवं यज्ञोपवीत बाहरी धागे के समान दीखनेवाले नहीं हैं। अव्यक्त होने पर भी ये ब्रह्म से मिलते हैं। (3)

'अविद्या (माया) 'है', 'नहीं है', 'सत', 'असत', भिन्न, भाग सहित, भागहीन या दोनों आदि से अलग है। वह मिथ्या स्वरूप है, अतः ब्रह्मज्ञान होने पर यह सब छोड़ दिया जाता है। (4)

'ब्रह्म की जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय एवं तुरीयातीत अवस्था नहीं होती। जीव के देह में उसके चार पाद (स्थान) हैं—नाभि, हृदय, कंठ तथा सिर। पूर्व की चार अवस्थाओं तथा आह्वानीय आदि अग्नियों में आत्मा की भावना करें। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय में क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु एवं अक्षर ब्रह्म का ध्यान करें। जनेऊ को चार अंगुलियों में लपेटना इन चार अवस्थाओं का प्रतीक है। 96 तत्त्व इसमें लिपटे हैं, जिनमें तीन (गुणों) का भाग देने पर 32 तत्त्वों का निष्कर्ष निकलता है। इसके तीन पल्ले तीन गुणों (सत्त्व, रजस एवं तमस) के प्रतीक हैं। साथ ही यह त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र भी माने जाते हैं। नौ पल्ले नौ ब्रह्म हैं। इनमें फिर 3 का भाग देने पर आई 3 की संख्या सूर्य, चंद्रमा एवं अग्नि स्वरूप हैं। इनकी कला स्वरूप से एक करके आदि-अंत से तीन आवृत्ति करें। इसमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र को समझें। इसकी चित्त गांठ को अद्वैत ग्रंथि बनाकर बाएं कंधे से कमर तक पहनने से चित्त-शुद्धि होती है। नाभि से ब्रह्मरंध्र तक 27 स्थानों के सूचक इसके 27 सूत्र होते हैं। जिस प्रकार मिट्टी से बने बर्तन मिट्टी ही होते हैं, वैसे ही ब्रह्म से निर्मित वस्तुएं ब्रह्म ही होती हैं। ऐसा ही यज्ञोपवीत को भी समझना चाहिए। 'मैं उस हंस ब्रह्म का ही अंश हूं', ऐसा निश्चय करके ही ब्राह्मणत्व ध्यान की योग्यता यति के गुणों की प्राप्ति होती है। तभी व्यक्ति में आंतरिक यज्ञोपवीत की योग्यता आती है, बाह्य यज्ञोपवीत गृहस्थों का लक्षण है।

'बाल की शिखा एवं कपास तंतुओं से बना जनेऊ वैदिक कर्म करने का आभास कराते हैं। चौबीस तत्त्वों के प्रतीक इस जनेऊ में भले ही नौ तागे हों, किंतु यह एक ही ब्रह्म का स्वरूप है। अपनी-अपनी बुद्धि से लोग भले ही अनेक मत बना लें। ब्राह्मणादि, देव, ऋषि सभी की मुक्ति, ब्रह्म तथा ब्राह्मणत्व एक ही हैं; वर्ण आश्रम, नियम भले ही अलग हों, वर्णाश्रमवालों की शिखा एक ही है। मोक्ष के अधिकारी यति की शिखा एवं यज्ञोपवीत का कारण प्रणव भी एक ही है। इनकी शिखा एवं जनेऊ ब्रह्मज्ञान एवं प्रणव हैं तथा नाद इन्हें जोड़ता है। यह धर्म भिन्न नहीं है, क्योंकि प्रणव, हंस, नाद एवं जनेऊ परमात्मा ही हैं। पर और अपर दो प्रकारका ब्रह्म है, उसे जानो। उसे जानने के लिए शिखा, जनेऊ आदि प्रपंच त्याग दें। (5)

'केशों को काटकर तथा जनेऊ को त्यागकर ब्रह्म रूपी जनेऊ धारण करें। पुनर्जन्म से मुक्ति के लिए रात-दिन मोक्ष का चिंतन करें। ब्रह्म की सूचना देने के कारण ही जनेऊ को सूत्र कहते हैं। जो वस्तुतः इसे जान लेता है, वही मुमुक्ष है, वही भिक्षु है, वही वेद जाननेवाला, सदाचारी ब्राह्मण और पवित्र है। जिसमें सब कुछ तागे में मोतियों के समान पिरोया गया है, उस सूत्र को योगी, योग ज्ञाता, ब्राह्मण तथा यति धारण करें। योग ज्ञान में लगा हुआ ब्राह्मण बाह्य सूत्र को त्यागकर ब्रह्म भाव के सूत्र को धारण करें, इससे उसे मुक्ति मिलती है। इसे धारण करने से अपवित्रता तथा जूठापन नष्ट होते हैं। (6-10)

'ज्ञान रूपी आंतरिक जनेऊ धारण करनेवाले ही सच्चे सूत्रविद तथा जनेऊ धारक हैं। ज्ञान ही जिनकी शिखा, भक्ति एवं जनेऊ है उनका ज्ञान ही परम ज्ञान एवं पवित्र ज्ञान है। अग्नि के समान आंतरिक शिखावाला ही वास्तविक शिखावाला है अन्य बालों की शिखावाला नहीं। वैदिक या लौकिक कर्मकांडी सच्चे ब्राह्मण न होकर, ब्राह्मणों की छाया के समान तथा केवल पेट भरनेवाले हैं, जो बार-बार जन्म रूपी नरक में जाते हैं। विद्वान बाएं कंधे से दाहिनी कमर तक ज्ञान रूप आंतरिक जनेऊ को, जो ब्रह्म सूत्र है, नाभि से ब्रह्मरंध्र तक प्रमाण सहित धारण करें। ज्ञानमयी शिखा एवं जनेऊ धारक ब्राह्मण का जन्म ही सफल है। इस परम परायण यज्ञोपवीत को धारण करनेवाला विद्वान मुक्ति पाता है। केवल बाहरी जनेऊ धारण करने से ही संन्यासी नहीं बना जाता; इसके लिए आंतरिक जनेऊ भी अनिवार्य है। अतः मोक्ष का इच्छुक सभी प्रयत्नों से बाहरी जनेऊ को त्यागकर भीतरी जनेऊ धारण करे।' (11-20)

□

48. कठरुद्रोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

परमात्मा हम (गुरु-शिष्य) की साथ ही रक्षा करें। हम साथ-साथ उपभोग एवं वीरता के कार्य करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो। हम परस्पर विद्वेष न करें। तीनों प्रकार के दुःख शांत हों।

देवताओं ने ब्रह्मा से कहा, 'कृपया हमें ब्रह्मविद्या का उपदेश दें।' तब प्रजापति बोले, 'शिखा सहित केशों को काटकर यज्ञोपवीत त्याग दो। पुत्र को देखकर उससे कहो—तुम ब्रह्म हो, यज्ञ हो, वषट्कार, ओंकार, स्वाहा, स्वधा, धाता और विधाता हो। तब पुत्र कहे—मैं ब्रह्म हूं, यज्ञ हूं··· । तब संन्यास लेकर घर से चलने पर पीछे आते हुए पुत्र आदि को देखकर आंसू न गिराए। आंसू गिरने से संतान नष्ट हो जाती है। तब सभी संन्यासी की प्रदिक्षणा करते हैं और इधर-उधर न देखकर घर लौट आते हैं। ऐसा संन्यासी स्वर्ग प्राप्त करता है। (1-2)

'ब्रह्मचर्याश्रम में वेदों को पढ़कर युवावस्था आने पर विवाह करें। पुत्रोत्पत्ति के पश्चात उसे योग्य बनाकर यथाशक्ति धार्मिक कार्य करें। फिर सबकी अनुमति से संन्यास ले सकता है। संन्यास लेने पर बारह रात्रि तक दूध का आहार लेते हुए दूध का ही हवन करें। तब वैश्वानर एवं प्रजापति के लिए विष्णु एवं प्रजापति को दिए जानेवाले चरु से हवन करे। तब दारुपात्रों को तथा मिट्टी पात्रों को क्रमशः हवन एवं जल में विसर्जित करें। स्वर्ण आदि की वस्तुओं को गुरु को दे दें और कहें, 'तुम मुझे छोड़कर न जाना; मैं तुम्हें नहीं छोडूंगा।' कुछ शास्त्रों का मत है कि गार्हपत्य आदि अग्नियों की भस्म मुट्ठी में लेकर खाएं। चोटी सहित बाल काटकर जनेऊ को 'ॐ भूः स्वाहा' कहता हुआ जल में विसर्जित कर दें। फिर अनशन, जलप्रवेश, अग्निप्रवेश या वीरों की तरह जैसे चाहे, प्राणांत करे या किसी बूढ़े संन्यासी के आश्रम में रहे। दूध-जल के साथ संन्यासी जो कुछ खाता है, उसी का हवन करें। अमावस्या एवं पूर्णिमा का भोजन क्रमशः 'दशयज्ञ' एवं प्रौर्णमास है। वसंत में केश, दाढ़ी आदि कटवाना ही उसका अग्निष्टोम है। (3)

'संन्यास लेने पर फिर यज्ञ के लिए अग्नि नहीं जलाई जाती। केवल आध्यात्मिक मंत्रों को पाठ होता है। 'सब जीवों का कल्याण हो', इस भावना से हाथ ऊपर उठाकर प्रपंचरहित घूमता रहे। घर का त्याग कर दे। भिक्षा में जो मिले, उसी में संतोष करे। किसी स्थान पर कम ही ठहरे। वर्षा होने पर रुक सकता है। कुंडिका, चमसा, शिक्य, तिपाही आदि पूजा के बर्तनों, जूतों तथा लंगोट के अतिरिक्त वस्त्रों, कुश का आसन, जनेऊ तथा वेदादि के अध्ययन का संन्यासी त्याग कर दे। पवित्र जल से स्नान करे। मंदिर या नदी किनारे सोए, अधिक आराम न करे और अधिक परिश्रम भी न करे। प्रशंसा या निंदा से प्रसन्न या क्रोधित न हो। आलस्य छोड़ ब्रह्मचर्य से रहे। ज्ञानियों ने स्त्री

को देखना, स्पर्श करना, उसका चिंतन करना, क्रीड़ा या काम-भोग चिंतन, इसकी चर्चा, इच्छा तथा समागम, ये आठ प्रकार के मैथुन कहे हैं। मोक्ष चाहनेवाला या संन्यासी इनका त्याग करके ब्रह्मचर्य से रहे। (4-11)

'प्रकाशमान स्वयं प्रकाशित आत्मा ही विश्व को प्रकाशित करने वाला है। वह स्वच्छ स्वरूप साक्षी, सबका आत्मा, सबमें स्थित है। मनुष्य को अपने किसी भी कर्म, प्रयत्न या संतान द्वारा ब्रह्म की प्राप्ति नहीं हो सकती। ब्रह्म अवर्णनीय, सत्य, ज्ञान एवं आनंदमय है। संसार अज्ञान और माया है। इसमें व्याप्त ब्रह्म को जाननेवाले की सब इच्छाएं पूर्ण होती हैं। मैं ब्रह्म हूं, इस प्रकार माया को समझ लेनेवाला ब्रह्म ही बन जाता है। रस्सी को सांप समझने के समान ही ब्रह्म से शब्द, स्पर्श आदि की उत्पत्ति हुई। फिर आकाश से वायु, वायु से अग्नि आदि उपजे। फिर परमात्मा ने पंच तत्वों से ब्रह्मा की तथा ब्रह्मांड में उनके कर्मों के अनुसार देवता-दैत्य-यक्ष-किन्नर-मनुष्य आदि रचे। सभी प्राणियों के अन्न से बने इस स्थूल शरीर के साथ ही एक प्राणमय आत्मा है, जो इस स्थूल शरीर में है। इसके भीतर एक सूक्ष्म आनंदमय आत्मा है। प्राणमय आत्मा आनंदमय आत्मा से तथा आनंदमय आत्मा प्राणमय से परिपूर्ण होता है। ये इनके बिना पूर्ण नहीं हैं। आनंदमय आत्मा में सर्वव्यापक परिपूर्ण ब्रह्म आत्मा है, किंतु ब्रह्म को पूर्ण करनेवाला कोई नहीं है, यह स्वयं पूर्ण, सत्य, ज्ञानस्वरूप, सबका आश्रय, सार तथा रसमय है। देहधारी केवल इसी को पाकर सुखी होता है। यही सबका आत्मा है; इसके बिना कोई भी जीवित नहीं रह सकता। सबके चित्त में रहनेवाला यह अंतर्यामी ही दुःखी प्राणियों को आनंद देता है। (12-30)

'इस भेदरहित परम तत्त्व को पानेवाला महान योगी देशकाल से परे, सतरूप, परब्रह्म, परम अमृत रूप तथा कल्याणमय बन जाता है। अपने को इससे दूर माननेवाला कभी निर्भय नहीं बन सकता। छोटे तिनके से विष्णु तक इसी से आ नंदित होते हैं। पूर्ण विरक्त ही इसका स्वयं अनुभव करता है। वाणी किसी उद्देश्य को लेकर ही कार्य करती है, परम तत्त्व कारणहीन है, अतः वह इसे पाए बिना ही लौट आती है। यह सभी विषयों से शून्य है, अतः शब्दों का विषय नहीं बन सकता। यह सूक्ष्म तत्त्व सर्वत्र विचरण करता है। नेत्र आदि इंद्रियों की शक्ति सीमित हैं। अतः ये उसे नहीं प्राप्त कर सकतीं। इस निर्द्वंद्व-निर्गुण आदि ब्रह्म को जाननेवाला भयमुक्त हो जाता है। गुरुजनों के उपदेश से इसे जानने वाला अच्छे-बुरे कर्मों से मुक्त होकर तपते सूर्य के समान, ब्रह्म को जान लेता है। वेदांत में प्रत्येक आत्मा के ब्रह्म, ईश्वर चैतन्य, जीव चैतन्य, प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय एवं फल, ये सात तत्त्व कहे गए हैं। यह भेद केवल सुविधा के लिए हैं। ब्रह्म शुद्ध चैतन्य माया रहित है। माया के कारण ब्रह्म ईश्वर तथा अज्ञान के कारण जीव बनता है। अंतःकरण के कारण वह प्रमाता, तदवृत्ति से प्रमाण, अज्ञात चैतन्य से प्रमेय तथा इसका ज्ञान हो जाने पर फल कहलाता है। अपने को उपाधि (अज्ञान) रहित अनुभव करने पर वह ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है। यही वेदांत का सार है। अपने कर्मों से प्राण जन्म-मृत्यु को प्राप्त होता है, अन्यथा सब आत्मा ही है। यही रहस्य है।' (31-47)

□

49. कुंडिकोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ अप्यायंतु ममांगान वाक्प्राणचक्षुषः श्रोत्रमथो बलमिंद्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषदं माहं ब्रह्म निराकरोद निराकरणमस्त्व निराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सुधर्मास्ते मयि संतु।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

मेरे समस्त अंग, वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र आदि इंद्रियां तथा बल पुष्ट हों। यह उपनिषद् ब्रह्मस्वरूप, जानने योग्य हैं । मैं ब्रह्म का निराकरण न करूं, ब्रह्म मेरा निराकरण न करें; हमारा परस्पर अनिराकरण हो । उपनिषदों का धर्म आत्मज्ञान में निरत मुझमें व्याप्त हो । दैहिक (शारीरिक), दैवीय और भौतिक (प्राणियों द्वारा होनेवाला) तीनों प्रकार के ताप-कष्ट शांत हों ।

वेदों का अध्ययन करके ब्रह्मचर्य आश्रम की समाप्ति पर जिसे गुरु घर जाने की आज्ञा दे, वह आश्रमी कहलाता है । अनुरूप पत्नी को पाकर शक्ति के अनुसार अग्नि में ब्राह्म यज्ञ का पूजन करें । फिर पुत्रों को सब कुछ सौंपकर वन में जाकर भ्रमण करे । वायु, जल या कंदमूल का भोजन करे । किसी भी कष्ट में आंसू न गिराए। यह एक सामान्य नियम है, केवल इसी से कोई संन्यासी नहीं कहलाता । अतः इच्छारहित होकर वर्ण (जाति) एवं अग्नि का त्यागकर संन्यासाश्रम को त्यागकर वानप्रस्थ ग्रहण किया जाता है । जनसाधारण की तरह स्त्री आदि सुखों के त्याग से ही कोई लाभ नहीं, अन्यथा पुनर्जन्म के भय से, शीत-उष्ण के भय से कोई भी भोगों को नहीं छोड़ता । छोड़ने का कारण केवल परम पद को प्राप्त करना ही है। फिर वह हाथ ऊपर उठाकर ब्रह्म का स्मरण, मृत्युंजय-जप, मुंडन, भिक्षा आदि मांगता हुआ घूमता है । निदिध्यासन, पवित्र व्रत धारण करता है । कमंडलु, चमसा, गुदड़ी, लंगोट, धोती आदि के सिवा संन्यासी सब वस्तुओं को त्याग दे । (1-10)

संन्यासी नदी-तट पर या मंदिर में सोए। अधिक सुख या दुःख से शरीर को कष्ट न दे। स्नानादि से पवित्र रहे । निंदा-प्रशंसा से संतुष्ट या क्रोधित न हो । भिक्षापात्र या जल, जैसा भी प्राप्त हो ग्रहण करे । इस प्रकार से संयमी बने । आकाश, वायु आदि में व्याप्त ब्रह्म से ही अपने को उत्पन्न हुआ माने अतः अपने को उसी के समान अजर, अमर आदि समझे । ब्रह्म एवं स्वयं के बीच माया की लहरों को उत्पन्न एवं विलीन होती देखे, देह से कोई संबंध न समझे । जागृत, स्वप्न आदि अवस्थाओं को व्यर्थ माने । (11-15)

'मैं आकाश की तरह अकल्पनीय हूं, सूर्य की तरह अन्य जातियों से भिन्न निश्चल, समुद्र के समान पारहीन, नारायण, नरकांतक, पुरारि, अखंड आदि गुणोंवाला ईश्वर हूं', संन्यासी स्वयं को ऐसा ही माने । इस प्रकार प्राण-अपान को संयमित करे । हाथों को गुदा एवं अंडकोष के मध्य रखकर जीभ को जो के बराबर बाहर निकालकर दांतों से दबाए, दृष्टि एवं कानों को भूमि से स्थापित करे, जिससे शब्द कानों में एवं गंध नासिका में न पहुंचे । इस प्रकार ब्रह्म का ध्यान करनेवाला ब्रह्म और शिव ही है । पूर्व जन्म के पुण्य से अभ्यास द्वारा ही उसे प्राप्त किया जा सकता है । (16-20)

वायु से नाद सुनना ही हृदय का तप है, यह देह को भेदकर मूर्धा की ओर जाता है। इसके मू तक पहुंच जाने पर पुनर्जन्म से मुक्ति तथा परम गति प्राप्त होती है। उस सबके साक्षी को साक्ष्य वैसे ही नहीं छूते, जैसे घर का दीपक पर और घड़े का खाली स्थान पर प्रभाव नहीं पड़ता। मैं इ प्रकार निर्लिप्त, निष्क्रिय, निर्विकार आदि हूं। मैं आनंदमय निर्विकल्प हूं। चलते रुकते, सोते प्रत्ये अवस्था में मुनि इच्छानुसार रहे। यही उपनिषद् है। (21-30)

□

50. अरण्योपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ अप्यायंतु ममांगानि वाक्प्राणचक्षुषः श्रोत्रमथो बलमिंद्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकरोद् निराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सुधर्मास्ते मयि संतु।

ॐ शांतिः शांतिः शांति।

मेरे समस्त अंग, वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र आदि इंद्रियां तथा बल पुष्ट हों। यह उपनिषद् ब्रह्म स्वरूप जानने योग्य हैं। मैं ब्रह्म का निराकरण न करूं, ब्रह्म मेरा निराकरण न करे; हमारा परस्पर अनिराकरण हो। उपनिषदों का धर्म आत्मज्ञान में निरत मुझमें व्याप्त हो। दैहिक (शारीरिक), दैवीय और भौतिक (प्राणियों द्वारा होनेवाला) तीनों प्रकार के ताप-कष्ट शांत हों।

प्रजापति लोक जाकर आरुणि प्रजापति से बोले, 'भगवन, मैं सारे कर्मों को कैसे छोड़ूं ? कृपया बताइए।' प्रजापति बोले, 'पुत्र, भाई-बंधु, शिखा-जनेऊ, यज्ञ-अध्ययन को छोड़कर, भूः, भुवः, स्वः, महः आदि लोकों की भी इच्छा न करो। केवल दंड, कौपीन (लंगोट) और ऊपर ओढ़ने के वस्त्र के अतिरिक्त सभी कुछ त्याग दो। ब्रह्मचारी, गृहस्थ या वानप्रस्थ जो भी हो, जनेऊ को जल में विसर्जित कर दे। लौकिक अग्नि को उदर की अग्नि में रखकर वाणी में गायत्री को रखे। कुटी में रहनेवाला ब्रह्मचारी कुटुंब, पात्र, पवित्री आदि को त्याग दे। दंड, अग्नि, मंत्र, मन की चंचलता को भी त्यागकर औषधि के समान भोजन करे, तीनों संध्याओं में स्नान करे, संधि के समय समाधि ले तथा ब्रह्म के सूचक अंतःसूत्र को धारण कर बाहरी सूत्र (जनेऊ) को भी त्याग दे। (1-2)

'मैंने संन्यास ले लिया है', ऐसा तीन बार कहे। 'सभी प्राणी मुझसे निर्भय रहें', इस मंत्र से दंड धारण करे। दवा के समान खाकर जो कुछ भी मिले उसी में संतोष करे। ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह और सत्य का यत्नपूर्वक पालन करे। परिव्राजक परमहंस की तरह भूमि में सोए। मिट्टी या लकड़ी का बर्तन रखे। काम, क्रोध आदि को त्याग दे। वर्षा ऋतु में एक स्थान पर रहे, शेष आठों महीने घूमता रहे। पिता, पुत्र या पत्नी को त्याग दे। हाथ या उदर रूपी पात्र को लेकर भिक्षा हेतु गांव में जाने पर तीन बार 'ओम हि' कहे। जनेऊ के बाद श्रेष्ठ ज्ञानी पलाश, बेल, गूलर आदि की पत्तियों, दंड एवं मूंछ के कमरबंध को भी त्याग देता है। भगवान विष्णु के परम व्योम में स्थित सूर्य के समान प्रकाशित लोक के ऐसे ज्ञानी सदा दर्शन करते हैं। निष्काम उपासक उसे प्राप्त कर लेते हैं। यही निर्वाण का उपदेश है, वेदों का मार्ग है तथा वेदों की शिक्षा है।

□

51. संन्यासोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ अप्यायंतु ममंगानि वाक्प्राणचक्षुषः श्रोत्रमथो बलमिंद्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषं माहं ब्रह्म निराकरोद् निराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सुधर्मास्ते मयि संतु।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

मेरे समस्त अंग, वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र आदि इंद्रियां तथा बल पुष्ट हों। यह उपनिषद ब्रह्मस्वरूप, जानने योग्य हैं। मैं ब्रह्म का निराकरण न करूं, ब्रह्म मेरा निराकरण न करे; हमारा परस्पर अनिराकरण हो। उपनिषदों का धर्म आत्मज्ञान में निरत मुझमें व्याप्त हो। दैहिक (शारीरिक) दैवीय और भौतिक (प्राणियों द्वारा होनेवाला) तीनों प्रकार के ताप-कष्ट शांत हों।

संन्यास उपनिषद इस प्रकार है—क्रम से संसार को त्यागकर व्यक्ति संन्यासी बनता है। संन्यास क्या है ? कैसे ग्रहण किया जाता है ? इनका उत्तर इस प्रकार है—माता-पिता, पुत्र आदि की अनुमति मिलने पर यज्ञ करानेवाले ऋत्विज को प्रणाम करके वैश्वानर यज्ञ करे। समस्त सम्पति दान कर दे, ऋत्विज यज्ञ पात्रों को भी हवन कर दे। प्राण, अपान आदि को आरोपित कर केशों आदि का मुंडन कर दे। पुत्र से 'तू यज्ञ है' कहे, पुत्र न हो तो स्वयं से कहे। फिर पूर्व या उत्तर दिशा में चल पड़े। चारों वर्णों से भिक्षा ले। हाथ को ही पात्र मानकर भिक्षा ले। दवा के समान भोजन करे, जिससे मोटापा न बढ़े। शरीर को दुबला करता हुआ गांव में एक तथा नगर में पांच रात्रि तक रुके या पक्ष को ही मास समझकर दो मास तक रहे। फटे वसत्र या पेड़ों की छाल पहने। वर्षा ऋतु में एक ही जगह रुक जाए। इस प्रकार का क्लेश ही तप है। इस प्रकार के संन्यासी के लिए ध्यान ही जनेऊ, ज्ञान ही शिखा, जलाशय ही पात्र और उनका तट निवास-स्थान है। उसके लिए रात-दिन समान है, अर्थात् सदा दिन ही है, अतः उसे आचमन, जनेऊ आदि की आवश्यकता नहीं है। (1)

संन्यासी चालीस संस्कारोंवाला, पूर्ण विरक्त, शुद्ध चित्त, काम, क्रोध आदि से रहित, धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष से संपन्न होता है। निश्चय करने पर भी संन्यास न लेने पर कृच्छ्र व्रत करके फिर संन्यास लिया जा सकता है। संन्यास से गिर जानेवाला, पतित को दीक्षा देनेवाला तथा संन्यास ग्रहण करने में विघ्न डालनेवाला, ये सभी पतित (गिरे हुए) हैं, पतित, स्त्रैण (स्त्री के स्वभाववाला), अंगहीन, बहरा, बालक, गूंगा, पाखंडी, चक्री, लिंगी, ब्राह्मणत्व से पतित ब्राह्मण, घरेलू नौकर, वेतन लेनेवाला अध्यापक, अग्निहोत्र रहित ब्राह्मण, नास्तिक तथा वैरागी संन्यास योग्य नहीं है। संन्यास ले भी लें, तो उपदेश देने के अधिकारी नहीं हैं। पतित, संन्यासी, खराब नाखूनवाला, मैले दांतवाला, क्षय रोगवाला, विकलांग, एकाएक वैराग्य होनेवाला, महापापी, संस्कारहीन और बदनाम लोगों को संन्यास की दीक्षा न दें। व्रत, तप, दान आदि से हीन लोगों को भी संन्यास न दें। यदि ये चाहें तो, आतुर संन्यासी बन सकते हैं। 'ओम भूः स्वाहा' कहकर शिखा का तथा 'यशो बलं...' कहकर जनेऊ

को त्याग दें। 'ओं स्वाहा' कहकर कटि सूत्र (कमर का तागा) एवं वस्त्रों का परित्याग करे। फिर 'मैंने संन्यास ले लिया है' ऐसा तीन बार कहे। संन्यासी द्विज को देखकर सूर्य भी 'यह मेरे मंडल को भेदकर परम ब्रह्म में जा रहा है, ऐसा सोचकर हिल उठता है। जो ज्ञानी संन्यास लेता है, वह अपनी पीछे की एवं आनेवाली साठ-साठ पीढ़ियों का तारण करता है। वह अपने पैत्रिक एवं शारीरिक दोषों को अग्नि में सोने के दोषों के समान जला देता है। 'मित्र, मेरी रक्षा करो' कहता हुआ दंड धारण करे। दंड सीधा बिना गांठवाले बांस का हो, स्वच्छ, बेदाग हो, कीड़ों का खाया न हो तथा इसकी लंबाई नाक, भौंह या चोटी तक हो। (2-14)

दंड एवं आत्मा का संबंध उचित है, अतः संन्यासी एक से दूसरे स्थान तक तीन बार बाण फेंके जाने की दूरी से अधिक बिना दंड के न जाए। 'जगज्जीव ··' मंत्र से कमंडलु एवं योग पट्ट से सुशोभित होकर सुखपूर्वक चले। धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य को त्यागकर फिर इस त्यागनेवाले को भी त्याग दे। वैराग्य, ज्ञान, ज्ञान-वैराग्य और कर्म संन्यासी, संन्यासी के ये चार भेद होते हैं। देखे-सुने विषयों के प्रति पूर्व जन्म के कर्मों से वैराग्य होने पर बना संन्यासी वैराग्य संन्यासी है। शास्त्र ज्ञान से भले-बुरे को विचारकर देह, शास्त्र एवं लोक की इच्छा को त्यागकर संसार प्रपंच को वमन के समान समझकर संन्यास ग्रहण करनेवाला ज्ञान संन्यासी है। क्रम से सब अनुभव प्राप्त करके ज्ञान एवं वैराग को भली-भांति समझकर संन्यास लेनेवाला ज्ञान-वैराग्य संन्यासी है। तीनों आश्रमों का पालन करने पर बिना वैराग्य के संन्यास लेना कर्म संन्यासी होता है। संन्यासी छः प्रकार के होते हैं—कुटीचक्र, बहूदक, हंस परमहंस, तुरीयातीत एवं अवधूत। कुटीचक्र शिखा, यज्ञोपवीत, दंड, कमंडलु, कौपीन, चादर एवं कंथा धारण करता हुआ माता-पिता एवं गुरु की आराधना करनेवाला बटलोई, कुदाल, छींका रखनेवाला, एक स्थान पर भोजन करनेवाला, सफेद खड़ा त्रिपुंड धारण करनेवाला और तीन दंड धारण करनेवाला होता है। बहूदक भी ऐसा ही होता है, किंतु उसका भोजन केवल आठ कौर का होता है। (15-25)

हंस जटाओंवाला, त्रिपुंड या खड़ा तिलक लगानेवाला, इधर-उधर मांगकर खानेवाला तथा केवल एक कौपीन पहननेवाला होता है। परमहंस शिखा-जनेऊ रहित, पांच घरों से हाथ में ही मांगकर खानेवाला, एक चादर, एक दंड, एक कौपीन अथवा केवल चादर से शरीर ढकनेवाला होता है। तुरीयातीत गाय की तरह केवल तीन घरों से अन्न-फल खानेवाला तथा शरीर को मृत जैसा मानकर नंगा रहनेवाला होता है। अवधूत नियमहीन, केवल पतितों को छोड़कर सभी वर्णों के यहां अजगर की तरह खाने वाला होता है। वह केवल आत्मा की खोज में रहता है। यह वक्ष आदि मुझसे भिन्न है। दिखाई पड़नेवाली वस्तुएं जड़ हैं, मैं विभु काल की कल्पना तथा शीघ्र ब्रह्म में लय होनेवाला हूं।' यही उसके विचार होते हैं। (26-30)

मैं कान द्वारा कल्पित अचेतन शून्य शब्द नहीं हूं। नाश होनेवाली त्वचा द्वारा स्पर्श भी नहीं हूं; स्पर्श जड़ है। रसभोग जीभ का विषयरस भी नहीं हूं। दृश्य एवं दर्शन में क्षण-भर में लीन होनेवाला रूप भी नहीं हूं। गंध भी नासिका को जड़ कल्पना है; मैं गंध भी नहीं हूं। इस प्रकार मैं इंद्रियों का विषय भी नहीं हूं। मैं निर्मल, शांत, प्रपंच रहित, शुद्ध चैतन्य और उससे भी बढ़कर हूं। मैं सबके बाहर-भीतर व्याप्त निष्फल, निर्विकल्प, चिदाभास हूं। मेरे कारण ही घड़े-वस्त्र से लेकर

सूर्य तक तेज युक्त हैं। मेरे आंतरिक प्रकाश से ही इंद्रियां काम करती हैं। यह दृष्टि अनंत आ का भोग करनेवाली तथा अन्य दृष्टियों को जीतनेवाली है। यह मुक्त सभी भावनाओं में स्थि रहता है। इस प्रत्येक आत्मा को नमस्कार। निष्कल-अकल्पनीय चित शक्ति ही इन विचित्र, स्व एवं समान भाववाली शक्तियों को प्रकट करती है। यह तीनों कालों में सर्वाधिक शक्तिशाली ए बंधनरहित है। यह अवर्णनीय, शाश्वत एवं आत्मा के समान शेष रहनेवाली है। इच्छा-अनिच्छा युक्तों में रहनेवाली यह शक्ति मैली पंख बंधे पक्षी के समान उड़ने में असमर्थ है। ईर्ष्या एवं इच्छा के द्वंद्व से प्राणी मोह रूप पृथ्वी के गर्त में गिरे कीटों के समान है। (31-46)

अचिंतनीय चिदात्मा को और मुझे नमस्कार। मैं विकल्पहीन बुद्धि रूप उदय होनेवाला आ जो भी हूं, मुझे नमस्कार। हे अनंत ईश्वर ! तू रुकने पर भी रुका नहीं है, चलने पर भी जाता हुआ नहीं है, तू परमेश्वर है; मैं शिव हूं, तू शांत रहने पर भी काम करता है और कार्य करने पर भी इसमें लिप्त नहीं होता। इस प्रकार के तुझे तथा मुझे दोनों को नमस्कार। यह ईश्वर सदा सुलभ, सर्गों की तरह चतुर तथा शरीर कमल में भंवरे की तरह रहने वाला है। इच्छा एवं भोगों से मुझे कुछ नहीं करना है। जिसे आना है आए, जिसे जाना है जाए। मन, अहंकार एवं भाव का नाश हो जाने पर मैं केवल शुद्ध रूप में हूं। मेरा शत्रु कोई कैसे हो सकता है ? मेरे शरीर की अहंकार रूपी चिड़िया इच्छा रूपी रस्सी को काटकर न जाने कहां उड़ गई है। जो अपने को कार्य करनेवाला (कर्ता) नहीं समझता, जिसकी बुद्धि लिप्त नहीं होती और जो सबको समान समझता है उसी का जीवन उचित है। (46-55)

जिसका अंतःकरण शीतल एवं राग-द्वेषहीन है, जो जगत को साक्षी के समान देखता है, जिसे ज्ञान प्राप्त हो गया है, जिसने उचित-अनुचित का ध्यान छोड़ दिया है तथा जिसका चित्त, चित्त में ही जुड़ गया है, ऐसे व्यक्ति का जीवन ही सुंदर है। ग्राह्य-ग्राहक संबंध नष्ट होने पर मिलनेवाली शांति ही मोक्ष है। जैसे भुना हुआ बीज नहीं जमता, वैसे ही जीवन मुक्त का हृदय शुद्ध हो जाता है। वह वह पवित्र, उदार, शुद्ध, सत्त्व होकर ध्यानयुक्त और नित्य में स्थित होता है। चित्तहीन चेतन ही आत्मचेतन कहलाता है। मन रहित होने पर दोष शांत होते हैं। यही सब जानना ज्ञान एवं तृप्ति है। बोलने, आदान-प्रदान करने, आंखें खोलने पर भी मैं मनन करने योग्य आनंदमय आत्मा हूं। संवेद्य (जानने योग्य) मन को इच्छारहित करके आशा के बंधन को काटकर अब मैं ज्ञान रूप हूं। शुभ-अशुभ, इष्ट-अनिष्ट संकल्पों एवं भावों से रहित अब मैं निरामय एवं ज्ञान ही हूं। (56-65)

राग-द्वेष हीन होकर मैं विभागहीन जगत में वज्र स्तंभ के समान आत्मा के सहारे हूं। मैं निर्मल एवं इच्छा रहित दशा में प्रयत्न, हेय, उपादेय आदि भावना से रहित स्थित हूं। मैं कब निर्विकल्प समाधि में निश्चल शिला जैसा बनूंगा ? कब संतुष्ट होऊंगा ? कब स्वयं प्रकाश पद मिलेगा ? कब पर्वत गुफा में शांत होकर मनन करूंगा ? और कब उस ब्रह्म के ध्यान में लीन होने पर कोयलें मेरे माथे में घोसला लगाएंगी ? संकल्प तृष्णा के वृक्ष-लताओं को काटकर मन के मैदान में प्रसन्नता से घूमता हूं तथा परमपद मिलने पर कैवल्य रूप अपना ही नाम जपता हूं। अब मैं निर्वाण, निरीह, निरंश, स्वच्छ, विजेता, सत्य एवं ज्ञानरूप हो गया हूं। आनंद, इंद्रिय शमन, सदा प्रसन्नता, पूर्णता, उदारता, शोभा तथा अद्वैत की भावना करता हुआ संन्यासी अपने रूप में स्थित रहकर निर्विकल्प

रूप को जानकर निर्विकल्पक बना रहे। जीवित रहने पर आतुर संन्यासी क्रम संन्यास ले। नीच स्त्री, पतित और रजस्वला से वार्तालाप न करे। देवता-पूजन न देखे, यह संन्यासी का कार्य नहीं है। आतुर, कुटीचक्र, बहूदक, हंस एवं परमहंस को क्रमशः भूः, भुवः, स्वः, तप एवं सत्य लोक मिलता है। तुरीयातीत एवं अवधूत अपने स्वरूप को खोजते हुए कैवल्य पाते हैं। अपने को जानने के प्रयत्न के अतिरिक्त कार्य संन्यासी के लिए ऊंट को केसर लगाने के समान व्यर्थ है। योग, सांख्य, मंत्र-तंत्र आदि संन्यासी के लिए वर्जित हैं। ऐसे कार्य करना शव पर अलंकार लगाने के समान संन्यास के विरुद्ध है। उसके लिए नाम कीर्तन में भाग लेना भी मना है। जो कर्म किया जाता है, उसका फल भी मिलता है। वह अंडी के फेन के समान सब कुछ त्याग दे। देवता का प्रसाद लेना या किसी देवता की पूजा भी न करे। (66-75)

अपने अतिरिक्त सब कुछ त्यागकर उसे हाथ या मुंह से मधुकरी (भिक्षा) ग्रहण करके जीवन यापन करना चाहिए। शरीर में चर्बी न बढ़े, इसके लिए घूमने रहना। आधा पेट भोजन और एक चौथाई जल पीकर शेष पेट वायु के लिए खाली रहना चाहिए। एक ही घर से लगातार न खाए। श्रद्धा से उसकी प्रतीक्षा करनेवालों के घर से ही भिक्षा यथासंभव प्राप्त करे। पांच-सात घरों से भिक्षा पाने के लिए गाय दुहने तक के समय तक प्रतीक्षा करे। एक घर में दोबारा न जाए। रात को उपवास उचित है। बिना मांगे मिली भिक्षा श्रेष्ठ है। इसके लिए घर में दाएं-बाएं मार्ग से न जाए। निर्दोष घरों को न छोड़े। वेद न जाननेवाले, श्रद्धाहीन और संस्कारहीन के घर से न मांगे। श्रद्धालु संस्कारहीन के घर से ग्रहण कर ले। भिक्षा पांच प्रकार की होती है, असंकल्पित, प्राक्प्रणीत, अयाचित, तात्कालिक तथा उपपन्न। बिना विचार किए तीन, पांच या सात घरों से मधुमक्खी के समान भिक्षा लेना असंकल्पित मधुकरी है। पहले दिन या प्रातः किसी के द्वारा प्रार्थना करने पर उससे भिक्षा लेना प्राक्प्रणीत है, चलते-फिरते कोई निमंत्रण दे, तो यह अयाचित है, जाते ही कोई ब्राह्मण भोजन कराने का आग्रह करे, तो तात्कालिक तथा यदि वह तैयार भोजन लाए तो इसे उपपन्न मधुकरी कहते हैं। (76-88)

संन्यासी म्लेच्छ से भी भिक्षा ले, किंतु बृहस्पति के घर से लगातार न ले। वह याचित या अयाचित भिक्षा से ही जीवनयापन करे। वायु सभी को स्पर्श करता है, अग्नि जला देता है और जल में लोग गंदगी कर देते हैं, किंतु ये उससे अपवित्र नहीं होते। इसी तरह संन्यासी भी दोषों से दूषित नहीं होता। धुआं एवं मूसल की ध्वनिहीन जगह पर, जहां आग बुझ जाए और लोग भोजन करते हों, वहां दोपहर बाद भिक्षा मांगे। आपत्तिकाल में नीच एवं पाखंडी को छोड़कर चारों वर्णों से भिक्षा ले सकता है। उसके लिए घी, शहद, तेल लहसुन युक्त और उड़द के पकवान तथा दूध क्रमशः कुत्ते के मूत्र के, शराब के, सुअर के पेशाब के, गोमांस के तथा मूत्र के समान हैं। अतः इन्हें कभी न खाए। हाथ ही उसका बर्तन है, अतः उसी में भोजन करे। इसी प्रकार एक दिन में एक ही बार भोजन करे। गाय के समान भोजन करने से समानता की भावना के बाद अमरता मिलती है। (89-96)

वह घी, एकत्रित अन्न, सुगंधित उबटन, नमक, वस्त्र, तेल, मालिश, हंसी-मजाक, घमंड, परिचित घर की भिक्षा, स्त्री, राजधानी और एक ही घर के भोजन को क्रमशः खून (रक्त), मांस, गंदी वस्तु, अस्पर्श्य, जूठे बर्तन, स्त्री-सहवास, मूत्र, गोमांस, चांडाल, सर्पिणी, कालकूट विष, श्मशान, कुंभीपाक

नरक तथा शव के समान त्याग दे। देवपूजन न करे। सांसारिकता को त्यागकर जीवन्मुक्त बने। आसन, पात्र लोप, इकट्ठा करना, शिष्य बनाना, दिन में सोना तथा व्यर्थ बोलना, ये छः संन्यासियों के लिए पाप हैं। वर्षा काल के अलावा कहीं अधिक रुकना आसन है, कहे गए सामान से अधिक रखना संग्रह है, इनमें से किसी के खो जाने पर दूसरा लेना पात्र लोप है तथा एक दंड के साथ दूसरा लेना परिग्रह है। साथ ही आगे के लिए रखना संचय, सेवा-पूजा-यश के लिए प्रयत्न करना परिग्रह और स्वयं आत्मकल्याण के लिए आए हुए व्यक्ति के अतिरिक्त को शिष्य बनाना शिष्य—संग्रह है। उसके लिए विद्या प्रकाशमय दिन तथा अविद्या रात्रि है। विद्याभ्यास में आलस्य दिन में सोना है। आध्यात्मिक चर्चा और भिक्षा के लिए बोलने के अलावा बोलना व्यर्थ का वार्तालाप है। घमंड, मात्सर्य, गंध, पुष्प, आभूषण, पान, तेल, क्रीड़ा, भोगों की इच्छा, रसायन, प्रशंसा, निंदा, कुशल प्रश्न, क्रय-विक्रय, क्रिया-कर्म, वाद-विवाद, गुरु का कहना न मानना, संधि-विग्रह की बातें, पलंग, सफेद वस्त्र, वीर्य पात, दिन में निद्रा, भिक्षा का बर्तन रखना, स्वर्ण, विष, शास्त्र, हिंसा, क्रोध एवं मैथुन वर्जित हैं। उसके लिए गृहस्थियों के कर्म, गोत्र का विचार, माता-पिता की संपत्ति आदि लेना मना है। इन्हें लेने से नीच गति मिलती है। विद्वान संन्यासी वृद्धा का भी विश्वास न करे, क्योंकि जीर्ण कथा (गुदड़ी) में जीर्ण कपड़ा ही लगता है। चल-अचल, बीज, स्वर्ण, विष एवं हथियारों को मल-मूत्र समझकर कभी संचित न करे। (97-110)

केवल आपत्तिकाल में मार्ग के लिए रखने के अलावा संन्यासी को कुछ भी पास में नहीं रखना चाहिए। अन्न न मिलने पर पका अन्न ले सकता है। सुंदर युवक संन्यासी कभी किसी के घर में न रहे। दूसरे के लिए मांगना या कुछ देना मना है। सबके कल्याण के लिए विनम्र आचरण करे। पका या बिना पका मांगने से अधोगति मिलती है। खाने के लालची तथा ऊनी या सूती या रेशमी किसी भी वस्त्र को ग्रहण करने से उसका पतन होता है। उसे अद्वैतरूपी नाव में बैठकर जीवन्मुक्त अवस्था प्राप्त करनी चाहिए। वाणी, शरीर तथा मन को दंड देने के लिए क्रमशः मौन धारण, उपवास तथा प्राणायाम करे। कर्म से बंधन तथा विद्या से मुक्ति मिलती है, अतः संन्यासी कर्म से पृथक रहते हैं। गलियों में वस्त्र, सब जगह भिक्षा तथा सोने को विस्तृत भूमि की पलंग मिल जाती है, तब वे दुःखी कैसे रहेंगे। समस्त प्रपंच को ज्ञान की अग्नि में जला दे। आत्मा में अग्नि को रखनेवाला महान अग्निहोत्री है। मार्जारी एवं वानरी दो प्रवृत्तियां हैं। ज्ञान के अभ्यासवालों की मुख्य प्रवृत्ति मार्जारी तथा सहायक वानरी है। बिना पूछे और अन्यायी प्रश्न पूछने पर भी न बोले। ऐसे समय में सब कुछ जानता हुआ भी मूर्ख जैसा बन जाए। पाप का प्रसंग होने पर बारह हजार तारक मंत्र का जप करके पाप को काट दे। प्रतिदिन बारह हजार प्रणव जप से बारह मास में ही परम ब्रह्म से साक्षात्कार होता है। (111-116)

□

52. नारद परिव्राजकोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभ्यः शृणुयामः देवा भद्रं पश्येमाताक्षिर्भिर्यजत्राः
स्थिरेरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

हम कानों से कल्याणमय वचन सुनें, नेत्रों से कल्याणमय चीजों को देखें और दृढ़ अंगोंवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करें। इंद्र हमारा कल्याण करें, पूषा हमारा कल्याण करें। अमंगलनाशक गरुड़ और बृहस्पति हमारा कल्याण करें। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दुःख शांत हों।

प्रथम उपदेश

एक बार परिव्राजकों (संन्यासियों) में श्रेष्ठ नारद सब लोकों में संचार करते हुए पुण्य स्थलों, तीर्थों को पवित्र करते हुए चित्त-शुद्धि प्राप्त करके निर्वैर-शांत- दानपूर्ण-विरक्त होकर अपने स्वरूप का अनुसंधान करते हुए संयम-नियम से आनंदमय और मुनियों के आश्रय स्थान नैमिषारण्य पहुंचे। इस पुण्य स्थल को देखकर वीणा के द्वारा 'स-रे-ग-म-प-ध-नि' स्वरों से वैराग्य की स्वर झंकार निकल रही थी। सांसारिकता से दूर उनकी हरिकथा को सुनकर स्थावर (वृक्ष आदि) और जंगम (चलनेवाले प्राणी) सभी मनुष्य आनंदित हुए। उनका भक्तिमय संगीत पशु, मनुष्य, देवता, गंधर्व, किन्नर, अप्सरा सभी को आकर्षित कर रहा था। भगवदभक्त ब्रह्मा के पुत्र नारद को देखकर वहां हो रहे बारह वर्षीय 'सत्र यज्ञ' में उपस्थित वेदज्ञ, सर्वज्ञ, तपस्वी और ज्ञान-वैराग्य-संपन्न शौनक आदि महर्षि उठ खड़े हुए और उन्होंने नारद का यथोचित सत्कार करके उन्हें एक आसन पर बैठाया तथा स्वयं भी बैठ गए। तब उन ऋषियों ने उनसे कहा, 'भगवन ! मुक्ति का क्या उपाय है ? कृपया हमें बताएं।' (1)

तब नारद बोले, 'उच्च कुल में उत्पन्न होकर उचित विधि ले उपनयन संस्कार करके चौबीस संस्कारों से संपन्न गुरु के आश्रम में अपनी शाखा के अनुसार सभी विद्याएं पढ़कर बारह वर्ष ब्रह्मचर्य आश्रम में रहकर पच्चीस वर्ष तक गृहस्थ जीवन बिताएं और फिर 25 वर्ष वानप्रस्थ में रहे और नियम पालन सही रूप में करे। विद्वानों ने इन तीनों आश्रमों को क्रमशः चार, छः और चार प्रकार का कहा है। इनका नियमपूर्वक पालन करे। फिर धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष इन चारों साधनों से संपन्न होकर संपूर्ण संसार से ऊपर उठकर मन, वाणी और कर्म से सभी आशाओं को त्यागकर वासना एवं इच्छा को भी त्याग दे। किसी के प्रति वैर न रखकर, शांत तथा इंद्रियों का दमन करके

संन्यास लेकर अबाध रूप में आत्मा का ध्यान करते हुए देह त्याग करने से निःसंदेह व्यक्ति मुक्त होता है ।' (2)

द्वितीय उपदेश

शौनक आदि ऋषियों ने नारद से फिर कहा, 'कृपया हमें संन्यास की विधि समझाइए।' इस प्रकार उन्हें देखते हुए नारदजी बोले कि इसे पितामह ब्रह्मा के मुख से सुनना उचित होगा। अत: 'सत्र यज्ञ' के पूर्ण होने पर वह उन सबको साथ लेकर ब्रह्मलोक गए। ब्रह्मा के प्रति विधिपूर्वक निष्ठा दिखाकर प्रणाम कर स्नान से पवित्र होकर उन्हें अपने साथ बैठाकर नारद ब्रह्मा से बोले, 'आप पिता, गुरु, सब विद्याओं के रहस्य को जाननेवाले और सर्वज्ञ हैं। अत: मेरे एक रहस्य के बारे में बताइए। आपके अलावा मेरे प्रश्न का उत्तर और कौन दे सकता है ? यदि आप कृपा करें, तो संन्यास के स्वरूप एवं क्रम को समझाइए। ब्रह्मा चारों ओर देखते हुए क्षण-भर के लिए आंखें बंद कर समाधिस्थ हो सांसारिक दुःखों से मुक्ति का उपाय सोचने लगे। फिर आंखें खोल नारद को देखकर कहा, 'प्राचीन काल में पुरुष सूक्त एवं उपनिषदों में कहा गया गूढ़ रहस्य, जो विराट पुरुष ने मुझे उपदेश में दिया था, वही तुम्हें बताता हूं। इस रहस्य क्रम को ध्यान लगाकर सुनो।

'नारद ! माता-पिता के आज्ञाकारी बालक का यदि उपनयन न हुआ हो, तों पहले इस संस्कार को करें। फिर वह किसी उच्च कुलीन विद्वान गुरु के आश्रम में जाकर विनम्र भाव से प्रणाम करके अपनी इच्छा बताए। बारह वर्ष तक गुरु-सेवा सहित विद्याओं का अभ्यास करे। फिर अध्ययन पूर्ण होने पर गुरु की आज्ञा से अनुरूप कन्या से विवाह करे। पच्चीस वर्ष तक गृहस्थ धर्म का पालन करे। वंश चलाने के लिए पुत्र उत्पन्न करे। फिर संन्यासी के रूप में अगले पच्चीस वर्ष बिताए। दिन में तीन बार स्नान तथा चौथे प्रहर एक बार भोजन करे। ग्राम-नगर के परिचित मार्गों को त्यागकर एकांत वन में रहे। स्वयं उपजे हुए चावलों को एकत्र कर आश्रम के धार्मिक कार्य करे। लोक-परलोक से वैराग्य ले ले। चालीस संस्कारों से पवित्र होकर आशा, असूया आदि का त्याग कर दे। तब चालीस संस्कारों से पवित्र होकर ही संन्यास लेने का अधिकारी होता है।'

तृतीय उपदेश

नारद बोले, 'संन्यास कैसे और किसके द्वारा लिया जाता है, कृपया बताएं।' ब्रह्मा ने कहा, 'पहले संन्यास का अधिकारी कौन है ? इसी पर प्रकाश डालता हूं। अंगहीन, नपुंसक, पतित, स्त्रैण, बहरे, गूंगे, बच्चे, पाखंडी, चक्री, लिंगी, वैतानिक अध्यापक आदि विरक्त होने पर भी संन्यास के अधिकारी नहीं हैं, यदि संन्यास ग्रहण भी कर लें, तो महावाक्यों का उपदेश ग्रहण नहीं कर सकते। पहले से ही संन्यास के अनुकूल आचरण करनेवाला ही इसे ग्रहण कर सकता है, क्योंकि किसी से न डरनेवाला और किसी को न डरानेवाला ही स्मृतियों के अनुसार संन्यास ले सकता है। नपुंसक, अंगहीन आदि संन्यास लेने पर केवल आतुर संन्यासी ही हो सकते हैं, किंतु क्रम संन्यासी नहीं। (2-4)

'आतुर संन्यास का समय : प्राण निकलते समय आतुर संन्यास लिया जाता है। ठीक समय

पर प्राप्त हो जाने पर यह भी मुक्ति देता है। इसे भी मंत्रों सहित विधिपूर्वक लें। नियमों एवं मंत्रों में इसमें और संन्यास में कोई अंतर नहीं है। सभी कर्म मंत्र युक्त होते हैं, अतः मंत्र-त्याग न करें। बिना मंत्र का कर्म बुझी हुई आग में आहुति डालने के समान है। नियमपूर्वक मंत्रों को पढ़ने पर ही कर्म संन्यास की प्रक्रिया पूरी होती है। अग्निहोत्री को विदेश में वैराग्य होने पर वह जल में प्राजापत्य करे और संन्यास ले। यह कर्म वह मन से, विधि सहित मंत्रोच्चारण से या वैदिक रीति से करे, तभी संन्यास ले, अन्यथा वह धर्मच्युत हो जाएगा। पदार्थों से पूर्ण वैराग्य होने पर ही संन्यास का विचार करे। थोड़ा-सा भी अनुराग मन में हो, तो घर को त्यागे। अन्यथा पतन होने पर नरक मिलता है। जिसकी इंद्रियां वश में हों या जो ब्रह्मचारी ब्राह्मण हों, ये तथा पूर्ण वैराग्य होने पर अविवाहित भी संन्यास ले सकते हैं। कर्म प्रवृत्ति एवं ज्ञान संन्यास का लक्षण है, अतः ज्ञान के लिए ही संन्यास लेना चाहिए। (5-16)

'परमतत्त्व सनातन ब्रह्म का ज्ञान होने पर यज्ञोपवीत एवं शिखा त्यागकर दंड ग्रहण करे। सब पदार्थों से वैराग्य और परमात्मा से पूर्ण अनुराग होने पर ही भिक्षा का अन्न खाया जा सकता है। आदर मिलने पर होनेवाली प्रसन्नता पिटने पर भी बनी रहे, तभी भिक्षु बनने का अधिकारी होता है। 'मैं ही अद्वितीय ब्रह्म हूं,' ऐसी भावना होने पर ही भिक्षुक कहलाता हैं। जिसमें शक्ति, दमन, संयम आदि हो एवं जो मन, वाणी और कर्म से ईर्ष्या भाव न रखे, वही संन्यासी है। इस प्रकार का आचरण करता हुआ एक आसन से उपनिषदों को सुनता हुआ तथा ब्रह्मचर्यपूर्वक अध्ययन करके ऋषि ऋण से मुक्त होकर ही संन्यास ले। धैर्य, क्षमा, दमन, अस्तेय, पवित्रता, इंद्रिय, संयम, बुद्धि, विद्या, सत्य और क्रोध न करना, ये दस धर्म के लक्षण हैं। बीते सुखों का स्मरण एवं आगे की कल्पना न करनेवाला, इंद्रियों एवं मन को जीतनेवाला तथा प्राणों के रहने पर भी मृत के समान सुख-दुःख का अनुभव न करनेवाला ही संन्यासी बनने का अधिकारी है। दो कौपीन, एक गुदड़ी और डंडा इससे अधिक का लोभ करनेवाला संन्यासी रौरव नरक में जाता है और फिर पशु-पक्षियों की योनि में जाता है। शीत से बचने के लिए फटे वस्त्रों की गुदड़ी बनाए। एक वस्त्र पहनें या वस्त्रहीन रहे। चंचल दृष्टि न हो, अकेला रहे, वर्षा में ही एक स्थान पर रहे और परिवार, वेदांग एवं जनेऊ भी त्याग दे। अपनी प्रशंसा न करे। (17-32)

'ममता, काम, क्रोध, राग, द्वेष से दूर रहे। स्वर्ण को मिट्टी-पत्थर समझे। दंभ, अहंकार का त्याग तथा आत्मज्ञान से ही मोक्ष मिलता है। इंद्रियों के वश में होने से दोष तथा इन्हें वश में करने से सिद्धि मिलती है। भोगों को भोगने से इच्छाएं शांत न होकर और अधिक भड़कती हैं। मीठे या कटु शब्दों से, स्वादिष्ट या अरुचिकर भोजन से, कोमल या कठोर वस्तु को छूकर, सुंदर या असुंदर को देखकर और सुगंध या दुर्गंध को सूंघकर जो समान रहता है, वही जितेंद्रिय है। मन-वाणी से पवित्र हो वेदों का फल पाते हैं। विद्वान सम्मान को विष एवं अपमान को अमृत के समान समझे। अपमान होने पर मनुष्य सुख से सोता, जागता एवं घूमता है, किंतु अपमान करनेवाला नष्ट हो जाता है। नश्वर शरीर के लिए किसी से शत्रुता न करे। कठोर वचनों को सहे। क्रोध करनेवाले से भी क्रोध न करे और गाली देनेवाले को गाली न दे। वाणी दो-दो नाक, कान और आंख तथा मुख सात छिद्रों से संबंधित है। इससे झूठ न बोले। सुख की इच्छा होने पर आध्यात्मिक चिंतन करे। अपनी सहायता

से ही घूमे । इंद्रिय संयम से प्राणियों का कल्याण करे । शरीर अस्थि-मांस आदि से बना रोगों का घर है । वीर्य एवं रज से बनने के कारण यह रजस्वल है । पंच तत्त्वों का बना यह शरीर त्यागने योग्य है । इससे प्रेम करनेवाला नरक में जाता है । इसमें स्थित अहंकार महाबीचि नरक देनेवाला है इसका मल असिपत्र नरक है । यह अंश कुत्ता खानेवाली चांडालिनी के समान है । (41-50)

'अपने प्रिय-अप्रिय, सुकर्मों एवं दुष्कर्मों को त्यागकर ध्यान योग से ब्रह्म को प्राप्त करे । इस प्रकार धीरे-धीरे आसक्ति को छोड़कर ब्रह्म को प्राप्त करता है । सिद्धि के लिए अकेला ही रहे प्राप्त सिद्धि को देखकर प्रयास न छोड़े । कपाल लकड़ी का पात्र, वृक्ष-मूल का भोजन, सबके प्रति समानता, सबका कल्याण चाहनेवाला संन्यासी केवल राम को हृदय में रखकर दंड एवं कमंडलु के साथ भिक्षा के लिए जाए । एक होने पर संन्यासी, दो होने पर जोड़ा तथा तीन होने पर पूरा नगर है माना जाता है, अतः अकेला ही रहे; एक से दो न होने दे । नगर, ग्राम या जोड़े के रूप में रहने पर संन्यासी अधर्मी हो जाता है । एक से अधिक होने पर परस्पर राजनीति एवं भिक्षा की बातें होने पर स्नेह, द्वेष आदि उत्पन्न होते हैं । अतः शास्त्रों की आज्ञा है कि अकेला ही रहे । व्यर्थ में न बोले नमस्कार का उत्तर 'नारायण' कहकर दे । एकांत में रहकर मन, वाणी एवं कर्म से ब्रह्म का ही ध्यान करे । मृत्यु या जीवन का स्वागत न करे । आयु पूरी होने तक काल की प्रतीक्षा करे । नपुंसक लूले-लंगड़े, बहरे-अंधे तथा मूर्ख की तरह रहकर काम-क्रोधादि से दूर रहनेवाला संन्यासी मुक्त होता है । भोजन के स्वाद को न देखनेवाला तथा अभी उत्पन्न, सोलह वर्षीया या सौ वर्ष की बुढ़िया को देखकर निर्विकार रहनेवाला षंडक कहलाता है । (51-64)

'केवल शौचादि या भिक्षा के लिए प्रतिदिन एक कोस से अधिक न घूमनेवाला संन्यासी पंगु है, चलते या रुकते जो इधर-उधर न देखनेवाला अंध, हित-अहित या मनोहर शब्दों को सुनते हुए भी न सुननेवाला बहरा तथा स्वस्थ शरीर होने पर भी विषयों से अनासक्त रहनेवाला मुग्ध (मूर्ख) कहा जाता है । संबंधियों, तमाशा, जुआ, युवती, रजस्वला स्त्री तथा पकवानों को न देखे । राग, द्वेष आदि का मन से भी विचार न करे । स्त्रियों की बातें, सफेद वस्त्र, चटोरपन, दिन में नींद तथा कोई सवारी उसके लिए पाप है । जहां तक हो, लंबी यात्रा न करे । विद्याभ्यास से मुक्ति की चिंता करे । तीर्थाटन, अधिक उपवास, अन्य विषयों का अध्ययन तथा व्याख्यान देना भी मना है । पाप, धृष्टता, कुटिलता को त्यागकर इंद्रियों को कछुवे के अंगों के समान समेट ले । इस प्रकार हर्ष-शोक से भी दूर होकर नमस्कार एवं स्वधा को भी त्यागता हुआ ममता-अहंकारहीन संन्यासी एकांत में रहे और किसी वस्तु की कामना न करे । ऐसा संन्यासी निःसंदेह मुक्त हो जाता है । (65-76)

प्रमादरहित तथा त्याग एवं भक्ति-ज्ञान संपन्न ब्रह्मचारी गृहस्थ या वानप्रस्थ कोई भी वैराग्य होने पर संन्यास ले सकता है । वैराग्य कम होने और आश्रमों की इच्छा होने पर ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थ आश्रम में, फिर वानप्रस्थ के बाद ही संन्यास ले । ब्रह्मचारी या इससे रहित, स्नातक या अस्नातक, अग्निहोत्र करनेवाला या न करनेवाला, कोई भी वैराग्य होने पर संन्यासी बन जाए । तब प्राजापत्य यज्ञ करे या न करे, अथवा आग्नेयी ही करे । अग्नि ही प्राण है । अतः इससे वह अपने प्राण को पुष्ट करता है । इस समय त्रैधातवीय कर सकता है । इससे सत्त्व, रजस एवं तमस का ही हवन होता है । विधि सहित मंत्र पढ़कर अग्नि को सूंघे । अग्नि न हो, तो जल में हवन करे और कहे

'सब देवता जलस्वरूप हैं, मैं उनके लिए हवन करता हूं। यह आहुति उन्हें मिले।' फिर उस जल से आचमन करे। घी मिली हवि रोगनाशक है। इसके पश्चात चोटी, जनेऊ, पिता, पुत्र, स्त्री, अध्ययन एवं मंत्रों को त्याग दे। इससे आत्मज्ञानी संन्यासी हो जाता है। त्रैधातवीय मंत्र मोक्ष देनेवाला है, इसी से ब्रह्मज्ञान प्राप्त करे और सत्य ज्ञानमय है, इसी की उपासना करे। (77-79)

'यज्ञोपवीत त्यागने पर ब्राह्मण कैसे रहेगा?' नारद के इस प्रश्न पर ब्रह्मा कहने लगे—(यह कथन इससे पूर्व परब्रह्मोपनिषद के 'शिखा सहित चोटी काटकर बाह्य सूत्र को त्याग दे' (6-14) इत्यादि में आ चुका है, अतः यहां उल्लेख करना अर्थहीन होगा)। (80-89)

'इस तत्त्व को जानकर ब्राह्मण संन्यासी बने। सिर मुंड़ाकर, एक ही वस्त्र धारण करता हुआ शारीरिक कष्ट सहे। या पुत्र आदि को त्यागकर स्वाध्याय एवं सत्कर्म करता हुआ ब्रह्मांड सहित कौपीन, दंड, वस्त्र त्याग दे। द्वंदों को सहनेवाला संन्यासी शीत-उष्ण, सुख-दुःख, निंदा, मान-अपमान इन छः उर्मियों से अलग रहे। निंदा, अहंकार, काम, क्रोध आदि को भी छोड़ दे। अपने देह को शव समझे। आत्मा के अतिरिक्त किसी भी वस्त्र के स्वाहा, स्वधा, निंदा, प्रशंसा से कोई प्रयोजन न रखे। भाग्य से जो मिले उसी में संतोष करे। स्वर्ण आदि संग्रह न करे। किसी भी देवता का आह्वान, विसर्जन, मंत्र, ध्यान उपासना आदि न करे। एक ही स्थान पर न रहे। छोड़े हुए घर, वृक्ष के नीचे, मंदिर, झोपड़ी, कुम्हार का छप्पर, यज्ञशाला, नदी-तट, कछार, गुफा, झरना, चबूतरा, जो भी स्थान मिले वहीं रह ले। श्वेतकेतु, ऋभु, निदाघ, ऋषभ, दुर्वासा आदि ऋषियों की तरह कोई चिह्न न रखे। दंड, झोली, कमंडलु सबको 'भूः स्वाहा' कहकर जल में विसर्जित कर दे। (90)

'नग्न होकर रहे। आत्मा को खोजने में लगा रहे, द्वंदों को सहता हुआ, ब्रह्म के मार्ग में शुद्ध मन से रहे और प्राण-रक्षा के लिए, जो अन्न-जल स्वयं मिल जाए, उसे हाथ की ही बर्तन समझकर ग्रहण करे। लाभ, हानि, ममता आदि को त्यागकर केवल आत्मध्यान एवं अभ्यास में लगा रहे। पाप-पुण्य के कर्मों ससे मुक्त रहे। स्वयं को ब्रह्म समझकर केवल उसी का चिंतन करे। अहं-भाव एवं सांसारिकता से संबंध तोड़कर ही शरीर छोड़े। इस प्रकार संन्यासी सार्थक होता है। (91-92)

चतुर्थ उपदेश

'संसार वेद, इंद्रियों और उनके विषयों के छोड़ने पर आत्मा में स्थित योगी को परम गति मिलती है। संन्यासी अपने नाम, गोत्र, वर्ण, देश, उम्र, चरित्र, व्रत, ज्ञान आदि की किसी से चर्चा न करे। स्त्री से न बोले, परिचित स्त्री का चित्र देखना मना है। इससे मन में विचार उठते हैं, जो भ्रष्टता पैदा करते हैं। उसके लिए माया-मोह, संग्रह, शिल्प, चिकित्सा करना, दूसरे के घर में रहना, मंत्र प्रयोग, आशीर्वाद देना आदि वर्जित है। अपने मित्र का भी स्वागत न करे और न उसे अपने पास ठहराए। दान न ले और न दिलाए। अपने किसी प्रिय व्यक्ति के शुभ या अशुभ समाचारों से सुखी या दुःखी न हो। हर्ष-शोक का पूर्णतया त्याग कर दे। अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि का धर्म समझकर पालन करे। निर्द्वंद्व, समदर्शी, तुरीय, परमहंस संन्यासी साक्षात नारायण होता है। गांव में एक और नगर में पांच रात्रि रहे। वर्षा ऋतु में कहीं पर भी चार मास रहे। यदि गांव में दो रात्रि रहता है, तो अनुराग उत्पन्न होने से नरक मिलता है। गांव के निर्जन स्थान में

रहे। कहीं भी अपने लिए आश्रम न बनाए। आठ महीने कीड़े के समान घूमता रहे। एक ही वस्त्र पहने या नग्न रहे। उसकी दृष्टि चंचल न हो,इस पवित्र मार्ग को कलंकित न करे। सदा भूमि की ओर देखे। शून्य,कठिन,भयंकर स्थानों पर भी न घूमे। रात्रि,दोपहर या संध्या को न घूमे। गांव में एक,पत्तन में तीन,पुर में दो तथा नगर में पांच रात्रि रहे। बहूदक एवं वानप्रस्थ तीन बार तथा हंस केवल एक बार स्नान करे। परमहंस के लिए स्नान आदि का कोई भी नियम नहीं है। (1-22)

'एक दंडी संन्यासी के लिए मौन रहना,योग आसन,एकांत में रहना,वितिक्षा,निस्पृहता तथा समता,ये सात नियम हैं। परमहंस के लिए केवल चित्तवृत्तियों का त्याग ही उचित है। त्वचा,मांस आदि से बने शरीर से भोग करनेवालों और गंदगी के कीड़ों में कोई अंतर नहीं है। यह शरीर कफ आदि का घर है,तब इसकी सुंदरता का क्या महत्त्व है ? फिर भी मानव घृणित पदार्थों से भरे इस शरीर से प्रेम करता है। वह नरक से भी प्रेम करेगा। स्त्रियों के न कहने योग्य अंगों और सड़े फोड़े में कोई अंतर नहीं है। फिर भी मनुष्य भ्रम में ठगा जाता है। स्त्रियों का अंग अपान वायु की दुर्गंध से भरा है,उससे भोग करनेवाले मनुष्यों को नमस्कार है ! इससे अधिक दुःसाहस क्या हो सकता है ? संन्यासी के लिए न कोई चिह्न है और न करने योग्य कोई कार्य ही। वह भय,ममता,भोजन की चिंता आदि से दूर रहता है। वह एक कौपीन या उसके बिना ही ध्यान करे। ज्ञान व्रत से ही ब्रह्म भाव तथा मोक्ष प्राप्त होता है। ज्ञान न होने पर चिह्न धारण करना भी व्यर्थ है। सच्चे ब्रह्मज्ञानी की इस बात को कोई नहीं जानता कि वह साधु है,असाधु है,मूर्ख है या विद्वान है। बिना चिह्न के केवल ब्रह्म चिंतन ही करे। इस प्रकार रहे कि लोगों को उसके विषय में कुछ भी पता न चले; संदेह ही बना रहे। इस प्रकार के शांत योगी के दर्शनों की देवता भी इच्छा करते हैं और उसी की तरह व्यवहार करना चाहते हैं। आत्मा के अतिरिक्त सब कुछ भूल जाने पर ही मोक्ष मिलता है। यही ब्रह्म तत्त्व का उपदेश है।' (23-66)

तब नारद ने पितामह से संन्यास की विधि बताने के लिए निवेदन किया। इस पर पितामह ब्रह्मा बोले—आतुर या कर्म-संन्यास लेने से पहले कृच्छ्र व्रत लेकर प्रायश्चित्त करना पड़ता है और तब देवता,ऋषि,स्वर्गीय मनुष्य,प्राणी,माता-पिता तथा आत्मा इन आठों के लिए श्राद्ध किया जाए। फिर पहले सत्य एवं वसु नाम के विश्वदेवों और बाद में देवश्राद्ध में ब्रह्मा,विष्णु एवं महेश का,ऋषि श्राद्ध में देवर्षि,राजर्षि एवं मानव ऋषियों का,दिव्य श्राद्ध में आठ वसुओं,ग्यारह रुद्रों एवं बारह आदित्यों का,मानव श्राद्ध में सनक,सनंदन,सनत्कुमार एवं सनत्सुजात का,भूत श्राद्ध में पृथ्वी आकाश आदि पांच भूतों का,पितृश्राद्ध में पिता,पितामह (दादा) एवं पड़दादा का,मातृ श्राद्ध में माता एवं पितामही का तथा आत्म श्राद्ध में अपना,पिता का एवं पितामह का आह्वान (बुलावा) करे। पिता जीवित हों,तो उनका आह्वान नहीं किया जाता। इन आठों श्राद्धों को एक ही अनुष्ठान का अंग बनाए (सबको एक ही अनुष्ठान समझे)। प्रत्येक में दो-दो ब्राह्मणों का पूजन करे। आठों श्राद्धों को अलग-अलग करने पर अपनी ही शाखा के मंत्रों से आठ दिन में अथवा एक ही दिन में किए जा सकते हैं। पितृयोग में बताए गए विधान के अनुसार ब्राह्मणों का पूजन आदि करके पिंडदान देना चाहिए। फिर दक्षिणा,पान आदि देकर विदा करना चाहिए।

'शेष कार्यों को संपन्न करने के लिए केवल सात बालों को छोड़कर सभी बालों,दाढ़ी-मूंछ

सहित नाखूनों को भी काट डाले। आंख एवं गुप्त अंगों के बाल न काटे। तब स्नान करके सायंकालीन संध्या के समय एक हजार गायत्री मंत्र जपे। बाद में ब्रह्मयज्ञ करके अलग अग्नि की स्थापना करके अपनी शाखा के अनुसार उपसंहार करके घी की आहुति दे। इसके पूर्ण होने पर तीन कौर सत्तू के खाए। आचमन करे। अग्नि में ईंधन देकर काले मृगचर्म पर बैठे। उत्तर की ओर मुख करके पुराण आदि सुनता हुआ रात्रि-भर जागता रहे। पुरुष सूक्त के सोलह मंत्रों से आहुतियां दे। विरजा होम, आचमन, दक्षिणा, वस्त्र-गौ-स्वर्णदान करके ब्रह्मा को विसर्जित करे। आधिदैविक अग्नि को आत्मा में प्रतिष्ठित करे। अग्नि का ध्यान प्रदक्षिणा एवं नमस्कार के बाद अग्नि को यज्ञशाला में विसर्जित करे। प्रातःकाल की संध्या में गायत्री का जप एवं सूर्य की स्थापना करे। नाभि तक जल में प्रवेश करके आठों दिक्पालों को अर्घ्य दे। बाद में गायत्री का विसर्जन तथा सावित्री का व्याहृतियों में प्रवेश कराए। अब अपनी बुद्धि, शरीर, जिह्वा आदि के लिए मंगलकामना करता हुआ धन-संपत्ति एवं लोक की इच्छा का परित्याग करता हुआ 'ॐ भुवः सन्यस्तं मया…' इत्यादि मंत्रों को धीमे-ऊंचे स्वर में या मन ही मन उच्चारण करता हुआ पूर्व दिशा में अंजलि से जल डालकर शिखा को उखाड़ डाले। फिर इन्हीं मंत्रों को कहता हुआ वस्त्र और कमर में बांधे जानेवाले डोरे को भी त्याग दे। 'मैंने समस्त कर्म त्याग दिए हैं,' ऐसा विचार करता हुआ हाथों को ऊपर उठाकर उत्तर की ओर चल दे। (37)

'इसके बाद संन्यासी गुरु से प्रणव (ओम) तथा महावाक्य (तत्त्वमसि, सोहं महावाक्य कहे जाते हैं) उपदेश प्राप्त करके 'कोई भी मुझसे अलग नहीं है; सभी मुझमें हैं', ऐसा सोचता हुआ सुख से विचरण करे। फल, पत्तों एवं जल का आहार करे। पर्वत, वन, मंदिर आदि में ठहरे। दिगंबर (वस्त्रहीन) संन्यासी हो तो केवल आत्मा की अनुभूति को ही अपने हृदय में रखे। कर्मों से दूर रहना ही लाभदायक है। ऐसा विचार करता हुआ फल, रस, पत्ते, जड़ आदि से प्राणों को धारण करता हुआ, मोक्ष की इच्छा करता हुआ पर्वतों की गुफा में देह त्याग करे। यदि ज्ञान-प्राप्ति के लिए संन्यास लिया हो, तो आज्ञा मिलने पर ही किसी गुरु के पास जाकर उससे दंड, कमंडलु प्रणव तथा महावाक्य का उपदेश ग्रहण करे। दंड को ग्रहण करते समय 'सखा मा गोपायौज…' तथा कमंडलु लेते समय 'जज्जीवन जीवनाधारभूतं…' इन मंत्रों का उच्चारण करे। इसी प्रकार कौपीन, चादर आदि भी ग्रहण करे। योगपट्ट मिल जाने पर अपने को धन्य समझता हुआ संन्यासी बनकर घूमे। (38-39)

पंचम उपदेश

'नारद ने अपने पिता ब्रह्मा से पूछा, 'एक ओर आप संन्यास आश्रम को सभी कर्मों से मुक्त कहते हैं तथा दूसरी ओर कहते हैं कि संन्यासी अपने आश्रम के आचरण का उचित पालन करे। इसमें परस्पर विरोध जैसा प्रतीत होता है। कृपया इसका समाधान करें।' इसके उत्तर में ब्रह्मा बोले, 'शरीर धारण किए हुए प्राणी की जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय, ये चार अवस्थाएं होती हैं। इन्हीं से प्राणी कर्म एवं वैराग्य में प्रवृत्त होता है। सभी को इन अवस्थाओं में आश्रम के अनुसार आचरण करना पड़ता है।' (1)

'संन्यास के कितने भेद हैं ? तथा इनके अनुष्ठानों में क्या अंतर है ?' नारद के इस प्रश्न के उत्तर में ब्रह्माजी बोले, 'संन्यास के भेद से संन्यासियों का आचरण भी अलग-अलग प्रकार का हो है। वास्तव में संन्यासी एक ही प्रकार का होता है। यह भेद अज्ञान के कारण, असमर्थता के का तथा कर्मलोप के कारण किया जाता है। इस प्रकार इसके चार भेद किए जाते हैं—वैराग्य संन्या ज्ञान संन्यास, ज्ञान वैराग्य संन्यास तथा कर्म संन्यास। पूर्व जन्म के पुण्यों के कारण काम विकारों के नष्ट हो जाने पर वैराग्य को वैराग्य संन्यास कहते हैं। शास्त्रों के अध्ययन से अपने अनुभवों के कारण संसार की नश्वरता का ज्ञान होने पर क्रोध, ईर्ष्या, या, पत्नी, धन, संपत्ति आदि सबसे मुक्त हो जाना तथा सभी भोगों को जूठन के समान समझना ज्ञान संन्यास है। सभी शास्त्रों के अध्ययन तथा कर्म से सभी अनुभवों को प्राप्त करके ज्ञान एवं वैराग्य के कारण आत्मा की खोज में लग जा वैराग्य संन्यास कहा जाता है। ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद क्रमशः गृहस्थ एवं वानप्रस्थ आश्रम को भोगकर संन्यास लेने से कर्म संन्यास होता है तथा ब्रह्मचर्य आश्रम (विद्यार्थी जीवन) के बाद सी दिगंबर हो जाना वैराग्य संन्यास लेना है। विद्वान संन्यासी को ज्ञान संन्यासी तथा विद्या प्राप्त करने की इच्छावाले को कर्म संन्यासी कहा जाता है। (2-7)

'कर्म संन्यास भी दो प्रकार का होता है—निमित्त कर्म संन्यास तथा अनिमित्त कर्म संन्यास। आतुर संन्यास ही निमित्त संन्यास है और कर्म संन्यास अनिमित्त संन्यास है। रोग, बुढ़ापा आदि कारणों से अशक्त हो जाने पर देहांत के समय संन्यास लेना निमित्त संन्यास है। शरीर के स्वस्थ होने पर भी सारे जगत को तथा शरीर को भी नाशवान समझने पर और एकमात्र ब्रह्म को ही सर्वव्यापक एवं अविनाशी समझने पर लिया गया संन्यास अनिमित्त संन्यास है। कुटी चक्र, बहूदक, हंस, परमहंस, तुरीयातीत और अवधूत (आध्यात्मिक उन्नति की दृष्टि से) संन्यासियों के ये छः भेद होते हैं। कुटीचक्र संन्यासी शिखा (चोटी) एवं जनेऊ का परित्याग नहीं करता। वह दंड, कमंडलु कौपीन एवं कंथा धारण करता हुआ माता-पिता की सेवा करता रहता है; मंत्र सिद्धि में लगा रहता है, माथे में सफेद खड़ा त्रिपुंड धारण करता है तथा एक ही स्थान पर भोजन करता है। बहूदक भी कुटीचक्र के समान ही शिखा, जनेऊ एवं त्रिपुंडवाला होता है। सबको समान समझता हुआ अनेक घरों से भिक्षा मांगता है और केवल आठ ग्रास (कौर) भोजन करता है। हंस संन्यासी खड़ा त्रिपुंड लगाते हैं, कौपीन धारण करते हैं तथा तूंबा रखते हैं। परमहंस शिखा-जनेऊ से रहित होते हैं। पांच घरों से मांगकर केवल रात्रि में भोजन करते हैं तथा हाथ ही उनका बर्तन होता है। अतः इन्हें करपात्र (हाथ ही जिसका पात्र है) भी कहते हैं। वे कौपीन, एक ओढ़ने का कपड़ा तथा बांस का डंडा रखते हैं। यदि ओढ़ने के लिए कुछ न हो, तो शरीर में भस्म लगा लेते हैं तथा अन्य सब कुछ का त्याग कर देते हैं। तुरीयातीत संन्यासी गाय के समान जो कुछ भी प्राप्त हो जाए, उसी में संतोष करते हैं, कि से कुछ भी नहीं मांगते। अधिकतर फलों का आहार करते हैं, यदि अन्न का भोजन करना हो तो केवल तीन घरों से लेते हैं तथा अपने शरीर के अतिरिक्त अपने पास कुछ भी नहीं रखते। वे दिगंबर रहते हैं और अपनी इंद्रियों को मरे हुए के समान निष्क्रिय कर देते हैं। अवधूत के लिए कोई भी बंधन नहीं होता। वे कलंकित एवं नीच (गिरे हुए) व्यक्ति को छोड़कर अन्य सबके यहां से जो कुछ भी मिल जाए, उसे अजगर के समान ग्रहण करते हुए आत्मा के चिंतन में लगे रहते हैं। (8-17)

'संन्यास लेने के बाद यदि आतुर संन्यासी जीवित रहता है, तो वह कर्म संन्यास लेता है। कुटीचक्र, बहूदक और हंस ब्रह्मचर्य, गृहस्थ एवं वानप्रस्थ के बाद संन्यास लेते हैं। परमहंस, तुरीयातीत एवं अवधूत, इन तीनों को कटिसूत्र, कौपीन, वस्त्र, कमंडलु, दंड आदि नहीं रखने चाहिए। वे सभी वर्णों के यहां से भिक्षा लेते हैं। वस्त्र, दंड आदि को जल में बहाकर उन्हें तब तक अध्ययन करते रहना चाहिए, जब तक यह विश्वास न हो जाए कि अब उनका अध्ययन पर्याप्त हो गया है। दिगंबर होने पर कौपीन, कंथा, अध्ययन, भाषण, प्रणव के अलावा चिंतन, शब्द शास्त्र, तर्क शास्त्र आदि कुछ भी रखने या पढ़ने की आवश्यकता नहीं है। वाणी का व्यर्थ में दुरुपयोग न करें। संकेतों से बात करना भी इनके लिए मना है। नीचों, पतितों एवं स्त्रियों से कदापि न बोलें। रजस्वला स्त्री से भूलकर भी बात न करें। उत्सव देखना, तीर्थों में जाना तथा देवता पूजन भी दिगंबर के लिए मना है। (18-20)

'कुछ विशेष नियम इस प्रकार हैं कि कुटीचक्र एक स्थान पर ही भिक्षा मांगे, बहूदक जितने चाहे, उतने घरों से मांगे, हंस केवल आठ घरों से आठ ग्रास मांगे, परमहंस केवल पांच घरों से हाथ रूपी बर्तन में फल आदि का भोजन करे, तुरीयातीत गाय के समान जो भी मिल जाए उसे खा ले तथा अवधूत सभी वर्णों से ले। संन्यासी किसी के भी घर में एक रात्रि भी न रहे और किसी को नमस्कार न करे। तुरीयातीत और अवधूत में कोई भी छोटा य बड़ा नहीं है। जो अपने स्वरूप को नहीं जानता, वह बड़ा होने पर भी छोटा ही है। हाथों से तैरकर नदी पार करना, वृक्ष या वाहन में चढ़ना, खरीदना-बेचना, अदला-बदली घमंड या असत्य भाषण, ये कर्म नहीं करने चाहिए। संन्यासी के लिए यदि कोई कार्य है, तो वह है—केवल चिंतन करना। आतुर एवं कुटीचक्र क्रमशः भूः एवं भुवः लोक को तथा बहूदक हंस एवं परमहंस क्रमशः स्वर्ग, तप एवं सत्यलोक और तुरीयातीत एवं अवधूत भ्रमर एवं कीट के समान सदा आत्मा की खोज में लगे रहते हैं, अतः वे कैवल्य को प्राप्त करते हैं। वेदों का यह कथन सत्य है कि प्राण त्याग करते समय जिस भाव का स्मरण किया जाता है, वह वस्तु अगले जन्म में प्राप्त होती है। (21-23)

'इस सबको जान लेने पर आत्मरूप के अतिरिक्त किसी भी विषय में न लगे। आचरण के अनुसार ही लोकों की प्राप्ति भी होती है। ज्ञान एवं वैराग्य संपन्न संन्यासी की मुक्ति स्वयं में ही होती है। अपने अनुसार ही संन्यासी को आचरण भी करना चाहिए। शरीर जागृत, स्वप्न एवं सुषुप्ति इन तीन अवस्थाओं में रहता है। यही जागृत, स्वप्न एवं सुषुप्ति में क्रमशः विश्व, तेजस एवं प्राज्ञ कहलाता है। इन अवस्थाओं के भेदों से साधक के कार्य भेद भी होते हैं। कार्य भेद ही कारण भेद है। चौदह कारणोंवाली बाहरी एवं भीतरी सभी वृत्तियों का कारण एक ही है। मन, बुद्धि, अहंकार एवं चित्त, ये चार भीतरी वृत्तियां हैं। वृत्तियों के भेद के कारण ही आचरणों में भी भेद हो जाता है। जागृत, स्वप्न एवं तुरीय अवस्थाओं में विश्व, तेज एवं प्राज्ञ क्रमशः नेत्र, कंठ एवं मूर्धा में स्थित हो जाते हैं। 'इन अवस्थाओं को प्रकाशित करनेवाला मैं ही हूं और मैं तुरीय अक्षर ब्रह्म हूं', ऐसा जाननेवाला जागृत अवस्था में भी सुषुप्ति के समान देखी एवं सुनी बातों को बिना देखी एवं बिना सुनी जैसी समझता है। वह स्वप्न अवस्था में भी जागता रहता है। ऐसा ही व्यक्ति जीवन मुक्त कहा जाता है। वेद इसी मुक्ति को बताते हैं। संन्यासी इस लोक के साथ ही परलोक की इच्छा

भी त्याग देता है, क्योंकि इच्छा करने पर फिर वैसा ही बनना पड़ता है। अपने स्वरूप का चिं छोड़कर अन्य विषयों का चिंतन करना ऊंट के पीठ में लदे हुए केसर के समान है, जो उसके किसी काम का नहीं होता। वह योग, सांख्य, मंत्र आदि के चक्कर में न पड़े; इन्हें शव पर चढ़ाए गए आभूषणों के समान समझे। जैसे चर्मकार चमड़े को उतारकर दूर रख देता है, संन्यासी को ऐसे ही इन सब कर्म विद्याओं से दूर रहना चाहिए। प्रणव का जप भी जोर से नहीं करना चाहिए। कर्मों को रेंडी (अंडी) के तेल के झाग के समान त्याग दे। संन्यासी के लिए आत्मचिंतन ही सब कुछ है। दिगंबर, पागल, मूर्ख या पिशाच के समान जीने या मरने की इच्छा न करे। नौकर द्वारा स्वामी की आज्ञा पालन करने के समान समय की प्रतीक्षा करे कि जब भी समय आएगा, इस शरीर को त्यागकर चल देंगे। (24-26)

'तितिक्षा, ज्ञान, वैराग्य आदि गुणों से हीन केवल भिक्षा मांगनेवाला संन्यासी पेट भरनेवाला ही है। दंड रखने, सिर मुंड़ाने या वेश रख लेने से ही मुक्ति नहीं होती। यह तो पाखंड है। ज्ञान का दंड धारण करें, दिखावे के लिए दंड रखने पर अज्ञानी संन्यासी नरक में पड़ता है तथा प्रतिष्ठा को सूअरी की विष्ठा के समान कहा गया है। अतः इन्हें त्यागकर कीड़े के समान घूमते रहना चाहिए। दिगंबर स्वयं मिले भोजन को ही खाए तथा दूसरों के कहने पर ही वस्त्र पहने या स्नान करे। जो स्वप्न में भी जागृत जैसा रहता है, वही श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी है। शिक्षा मिलने पर प्रसन्न या न मिलने पर दुःखी न हो। जितने से पेट भर जाए, उतनी ही भिक्षा ले। सम्मान के प्रति उदासीन रहे। इनसे घृणा करे। इससे आसक्त होने पर संन्यासी मुक्त होकर भी बंधन में पड़ जाता है। (27-34)

'प्राणों की रक्षा के लिए ही संन्यासी उत्तम लोगों के घर से भिक्षा ले। रसोई की आग बुझ जाने पर जब सब लोग भोजन कर चुकें तभी भिक्षा के लिए निकले। करपात्री बार-बार न मांगे एक ही बार जो भी मिले, चलते-चलते हाथ में ही खा ले और पानी पीकर समुद्र की तरह मर्यादा में रहे। जब वह गाय की तरह रहने लगता है, तो समस्त प्राणी उसके लिए समान हो जाते हैं और तब वह अमरता प्राप्त कर लेता है। निंदित घरों में तथा बंद दरवाजेवाले घरों में संन्यासी न जाए। धूल-भरे निर्जन घर में या वृक्ष के नीचे निवास करे और अच्छी-बुरी भावनाओं से दूर रहे। सूर्य न दिखनेवाले स्थान में सोए। घर न बनाए। अग्नि न जलाए। इंद्रियों को संयमित रखे। ज्ञान से परिपूर्ण रहता हुआ विचरण करे। किसी भी प्राणी को भयभीत न करनेवाला संन्यासी स्वयं भी प्राणियों से निर्भय हो जाता है। इस प्रकार के आचरणवाला काम, क्रोध आदि से दूर संन्यासी ब्रह्म भाव को प्राप्त करता है। संन्यासी गृहस्थों एवं वानप्रस्थों से दूर रहे, अपनी जीवनचर्या को गुप्त रखे तथा शांत रहे। (35-46)

'संन्यासी शुभ एवं हिंसायुक्त दोनों कर्मों को त्याग दे, संग्रह न करे, शास्त्र आदि पर जीविका न चलाए, शिष्य न बनाए, ग्रंथों का अध्ययन या व्याख्या न करे, कोई भी चिह्न धारण न करे, गूंगे-मूर्ख आदि की तरह रहे, इंद्रियों पर संयम रखे, अकेला घूमे। सब वेदों का ज्ञाता होकर भी गाय के समान रहे। दुष्टों द्वारा अपमान आदि होने पर भी इसे सहन कर ले। यहां तक कि उसके शरीर पर मल-मूत्र आदि डालने पर भी वह निर्विकार रहे। अपना उद्धार करता रहे। सम्मान संन्यासी का पतन करता है और अपमानित होने पर वह शीघ्र अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। कोई भी ऐसी बात न करे

जिससे लोग उससे दूर ही रहना चाहें या उसका अपमान करें। मन, वाणी या कर्म से किसी के प्रति द्वेष न रखे तथा काम आदि वासनाओं को छोड़ दे। इस प्रकार के आचरण से संन्यासी निर्भय हो जाता है। (47-59)

'भिक्षा, तप, मौन रहना, ज्ञान प्राप्त करना तथा विरक्ति ही संन्यासी का धर्म है गेरुआ वस्त्र पहनना, ध्यान में लगा रहना, गृहस्थ के यहां भोजन न करना, अपने आश्रम के अनुकूल आचरण, सर्वत्र आत्मा के अंदर-बाहर ब्रह्म को ही देखना तथा क्षमा, संतोष एवं ब्राह्मण, गाय, घोड़े आदि को एक जैसा देखना संन्यासी का परम कर्तव्य है। जो दंडी संन्यासी कामना मुक्त हो जाता है या जो दिगंबर समस्त संसार के बंधन से मुंह फेर लेता है, वह अवश्य मुक्त हो जाता है। (60-66)

षष्ठ उपदेश

'नारद ने पुनः पूछा, 'भ्रमर, कीट आदि की तरह अपने स्वरूप का ज्ञान हो जाने पर मोक्ष तो मिल जाता है, किंतु यह भी बताने की कृपा करें कि इसके लिए अभ्यास किस प्रकार किया जाए?' इस प्रश्न पर ब्रह्माजी कहने लगे, 'सत्य बोले तथा ज्ञान-वैराग्य द्वारा देह के प्रति सर्वथा अनासक्त हो जाए। इनसे रहित शरीर में स्थित रहे। यह बचा हुआ शरीर ज्ञान ही है, प्राण वैराग्य है, शम-दम नेत्र हैं, शुद्ध मन, मुख, बुद्धि, कला, पांच ज्ञानेंद्रियां, पांच कर्मेंद्रियां, पांच प्राण, पांच इंद्रियों के विषय, चार अंतःकरण और प्रकृति, ये पच्चीस, जागृत आदि पांच अवस्थाएं, शाखा कर्म, भक्ति, ज्ञान और वैराग्य इन सबमें प्रथम चौदह कारण कीचड़ में फंसे हुए खंभे के समान कमजोर हैं। जैसे कुशल नाविक दलदल में फंसी नाव को कुशलता से निकालकर सही मार्ग पर ले जाता है, संसार सागर को दलदल में फंसी जीवन नौका को श्रेष्ठ बुद्धि से पार लगाना चाहिए। या उन्मत हाथी को जैसे महावत वश में करता है, वैसे ही इस देह को वश में करना चाहिए। इस शरीर को नश्वर मानकर संन्यासी 'मैं ब्रह्म हूं' ऐसा मानकर जीवन्मुक्त बनकर अपने जीवन को सफल करे। कभी भी अपने को ब्रह्म से पृथक् न समझकर जागृत आदि चार अवस्थाओं को पार करके संन्यासी तुरीयातीत अवस्था में प्रवेश करता है। जागृत, स्वप्न एवं सुषुप्ति क्रमशः दिन-रात्रि रूप हैं। चारों पूर्व की अवस्थाएं अंत में तुरीयातीत अवस्था में स्थित हैं। मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार के अधीन रहनेवाले चक्षु आदि चौदह कारण होते हैं। नेत्र, कान, जिह्वा, नाक, वाणी, हाथ, पांव, पायु, उपस्थ, त्वचा, मन, बुद्धि, अहंकार एवं चित्त के विषय क्रमशः रूप, शब्द, रस, गंध, शब्द, लेना (आदान), गमन (जाना), निसर्जन, रति-आनंद, मनन, बोध, अहं करना और चिंतन है। इन सबके साथ देह के अभिमान को भी त्यागकर जीव तुरीय चेतन हो जाता है। अपना घर समझकर जीव, अन्यथा अभिमान के कारण इस देह में घूमता है। देह के अष्टदल कमल में विचरण करनेवाला यह जीव जब पूर्वी दल (पंखुडी) में भ्रमए करता है, तो पुण्यों में प्रवृत्ति होती है, आग्नेय कोणवाले दल में जाने पर निद्रा एवं आलस्य आ जाता है, दक्षिणी दल में जाने पर क्रूरता, नैऋत्य में बुद्धि का उदय, पश्चिम में क्रीड़ा से प्रेम, वायव्य में चलना-फिरना, उत्तर में शांतिप्राप्ति, ईशान में ज्ञान का उदय, कमल की कर्णिका में जाने पर वैराग्य तथा केसर में जाने पर आत्मचिंतन करता है। (दिशाएं और उनके बीच के कोण जिन्हें उपदिशाएं कहा जाता है, क्रमशः आठ होती हैं—पूर्व, आग्नेय, दक्षिण; नैऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर तथा ईशान, अतः यही मुख के समान महत्त्वपूर्ण है)। (1-3)

'जागृत स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय के बाद चौथी तुरीयातीत अवस्था है। विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तटस्थ के भेद से एक ही आत्मा चार प्रकार का है। अतः स्वयं को निर्गुण ब्रह्म ही माने। तुरीयातीत अवस्था चारों अवस्थाओं से भिन्न ही है इसीलिए इसके भेद नहीं होते। स्थूल सूक्ष्म एवं कारणरूपी विश्व तैजस और प्राज्ञ ब्रह्म है। इन सभी अवस्थाओं में उसके साथ एक साक्षी भी रहता है, जो तटस्थ द्रष्टा है। यह तटस्थ मायायुक्त ईश्वर होता है अतः इसका कोई द्रष्टा (देखनेवाला) नहीं होता है। अतः तटस्थ भी द्रष्टा नहीं हो सकता। जीव भी अहंकार आदि से युक्त होने से द्रष्टा नहीं है। जीव में उसका जीव परमात्मा के कारण है। जैसे आकाश (शून्य) में घड़ा रखा होने पर उसके अंदर भी आकाश हो जाता है। प्राण भी सांस लेने में सोऽहं जपता हुआ अपने वास्तविक रूप को खोजता है। अतः शरीर के लिए अभिमान करना निरर्थक है। इस अभिमान के नष्ट होने पर ही जीव ब्रह्म कहलाता है। (4)

'अतः संन्यासी अनासक्ति, अक्रोध तथा अल्प आहार से इंद्रियों को जीतकर मन को ध्यान में लगाए सूने स्थानों में, गुफाओं में या वन में सदा चिंतन में लगा रहे। उसे अतिथि सत्कार, श्राद्ध, यज्ञ, देवयात्रा, उत्सव आदि में भाग नहीं लेना चाहिए। उसे लोगों के साथ ऐसा व्यवहार करना चाहिए कि वे उससे दूर ही रहें और उसका अनादर करें। वाणी, कर्म एवं मन ये तीन दंड कहे गए हैं। इन तीन दंडों को वश में रखनेवाला संन्यासी ही दंडी है। चूल्हे की आग बुझ जाने पर भिक्षा मांगना अच्छा है। जो मन से संन्यासी न होने पर भिक्षा मांगता है, वह नीच गति पाता है। जहां भिक्षा सरलता से मिलती हो, लोभ के कारण वहां द्रोबारा न जाए। स्वयं प्रकाशवान, सुख-स्वरूप, देह-इंद्रिय आदि से रहित परम ब्रह्म को वह अपने ही स्वरूप में देखता है, अतः वह वर्णों एवं आश्रमों से अलग ही है, क्योंकि ये बंधन माया के अज्ञान के कारण बने हैं। अपने को माया के बंधनों से तथा वर्ण आश्रम से ऊपर ज्ञान रूप माननेवाला संन्यासी सच्चे अर्थों में संन्यासी है। आत्म-साक्षात्कार हो जाने पर इन विचारों का त्याग कर देनेवाले संन्यासी को वेदांत में अतिवर्णाश्रमी कहा गया है। वर्ण एवं आश्रम शरीर से पृथक् हैं अतः इन्हें भ्रमवश वेदांत को न जाननेवाले मूर्खों ने बनाया है। ब्रह्म ज्ञानी के लिए कोई भी नियम-बंधन नहीं होते। उनके लिए कोई वस्तु त्याज्य नहीं है। (5-19)

'ब्रह्म को जानने का इच्छुक पद की कामना न करे। वह धन, पुत्र आदि की भी कामना न करे। केवल मोक्ष प्राप्त करने के प्रयत्न में लगा रहे। हाथों में कोई भेंट लेकर किसी सच्चे गुरु के आश्रम में जाए और दीर्घ समय तक वहां गुरु की सेवा करता हुआ वेदांत का ज्ञान प्राप्त करे। ममता, अहंकार, आसक्ति आदि को छोड़कर शमन-दमन आदि से आत्मा को देखे। संसार के दोषों को देखकर वैराग्य होने पर ही संन्यास लिया जाए। मोक्ष का इच्छुक परमहंस नामक मोक्ष के साधन का अभ्यास करे और वेदांत को सुने। भय-ममता आदि को त्यागकर पदार्थों का संग्रह करना छोड़ दे, मुंडन करके कौपीन, पुराने वस्त्र पहनकर अथवा दिगंबर ही रहे। मित्र-शत्रु को समान माननेवाला परम शांत संन्यासी संसाररूपी सागर को तैर लेता है। गुरु के आश्रम में सेवा करता हुआ वह सावधानी से नियमों का पालन करके एक वर्ष रहे। उत्तम ज्ञान योग को प्राप्त करके वर्ष के अंत में गुरु के आश्रम को छोड़कर परम आश्रम का मार्ग प्राप्त करे। फिर आसक्ति आदि को छोड़कर पृथ्वी पर भ्रमण करे। (20-33)

'कार्य करनेवाला संन्यासी एवं कार्य न करनेवाला गृहस्थ, ये दोनों शोभा नहीं देते। सुरा को पीकर नशा होता है, किंतु नारी को देखने से ही नशा होता है, अतः संन्यासी नारी को दूर से ही त्याग दे। उनके साथ वार्तालाप, नृत्य, गान, हंसी-मजाक, निंदा आदि न करे। स्नान, जप, पूजा, हवन आदि भी संन्यासी को नहीं करने चाहिए कीट-पतंगों या वनस्पतियों को भी नष्ट न करे, अपितु इनका कल्याण करे। वह अंतर्मुखी, स्वच्छ एवं प्रसन्न आत्मावाला विद्वान संन्यासी आसक्ति को त्यागकर घूमता रहे। अराजकतावाले राज्यों में न जाए। किसी से नमस्कार आदि की इच्छा न करे।' (34-42)

सप्तम उपदेश

नारद द्वारा संन्यासियों के नियमों के विषय में पूछे जाने पर ब्रह्मा कहने लगे, 'वैराग्य-संन्यासी वर्षा के चार महीनों को छोड़कर अन्य दिनों घूमता रहे। किसी के आग्रह करने पर भी एक स्थान पर अधिक न रुके। नदी स्वयं न पार करे, वृक्ष पर न चढ़े। देव-पूजा या उत्सव आदि में भाग न ले। केवल आत्मा की ही उपासना करे। एक ही घर से दोबारा भिक्षा न ले। चंदन आदि सुगंधित वस्तुओं को मल-मूत्र समझे। कम खाकर दुबला बना रहे। घी को रुधिर, अन्न को मांस, लवण को मांस, मालिश को स्त्री अंग, मनोरंजन को मूत्र, इच्छा को गोमांस, परिचित स्थान को चांडाल-घर, स्त्रियों को सांप, स्वर्ण को विष, सभा को श्मशान, राजधानी को कुंभीपाक नरक तथा एक ही घर के भोजन को मृतक को दिया जानेवाला अन्न समझे। देह को आत्मा से अलग न समझे, अपने जन्म-स्थान का त्याग कर दे, परिचित स्थानों को भी छोड़ दे, अपने स्त्री, पुत्र आदि से दूर रहे, बिना मांगे जो मिले उसी में संतोष करे तथा सदा प्रण का ध्यान करे। काम, क्रोध आदि को भस्म कर दे। भूख-प्यास से व्याकुल न हो। किसी से वैर न करे। पवित्र मन रहे। ग्राम, नगर, पुण्य क्षेत्र अथवा तीर्थ में क्रमशः एक रात्रि एवं पांच-पांच रात्रियों से अधिक न रहे। झूठ न बोले। अकेला घूमे। किसी पहाड़ की गुफा में दो संन्यासी साथ न रहें। तीन को ग्राम तथा चार व्यक्तियों को नगर माना गया है। इंद्रियों को विषयों पर न सोचने दे। सब कुछ को अपना ही स्वरूप माने। आत्मा का ही साक्षात्कार करे। इससे जीवन्मुक्ति मिलती है। फिर भी मृत्यु तक आत्मा का चिंतन करता रहे। कुटीचक्र, बहूदक और हंस क्रमशः तीन, दो तथा एक बार स्नान करे। परमहंस, तुरीयातीत तथा अवधूत के लिए स्नान क्रमशः मन से, भस्म से तथा वायु से करने का नियम है। कुटीचक्र का तिलक खड़ा त्रिपुंड्र, बहूदक का त्रिपुंड्र, हंस का ऊर्ध्व (खड़ा) विपुंड्र, परमहंस का भस्म, तुरीयातीत का तिलक पुंड्र तथा अवधूत का कोई भी तिलक नहीं होता। तुरीयातीत भी कुछ भी तिलक न लगाने के लिए स्वतंत्र है। कुटीचक्र ऋतु में एक बार अर्थात प्रति दो मास में एक बार, बहूदक चार मास में एक बार, हंस एवं परमहंस छः मास में एक बार क्षौरकर्म करें (सिर एवं दाढ़ी-मूंछ के बाल कटाएं), तुरीयातीत तथा अवधूत को क्षौरकर्म करने की कोई आवश्यकता नहीं होती। (1-4)

'कुटीचक्र एक स्थान से लेकर अन्न खाए। बहूदक मधुकरों वृत्तिवाला होता है, अर्थात जितनी जगह चाहे, भिक्षा ले। हंस एवं परमहंस हाथ में भिक्षा मांगकर खाएं। तुरीयातीत गाय की तरह तथा अवधूत अजगर की तरह खाए। कुटीचक्र दो तथा बहूदक एक वस्त्र रखे। हंस वस्त्र का एक टुकड़ा

रखे। परमहंस कौपीन धारण करे। तुरीयातीत और अवधूत बिना वस्त्र के रहें। कुटीचक्र एवं बहूदक देव पूजन करें। हंस एवं परमहंस मन से पूजा करें। तुरीयातीत और अवधूत 'सोऽहं' का चिंतन करें। कुटीचक्र एवं बहूदक मंत्र जपें। हंस एवं परमहंस ध्यान करें। तुरीयातीत एवं अवधूत महावाक्यों (तत्त्वमसि और सोऽहं) का उपदेश दें। परमहंस भी यह उपदेश दे, किंतु कुटीचक्र एवं बहूदक को यह अधिकार नहीं है। बहूदक एवं कुटीचक्र मानव प्रणव, हंस एवं परमहंस भीतरी प्रणव तथा तुरीयातीत एवं अवधूत का ब्रह्म प्रणव है। कुटीचक्र एवं बहूदक को सुनने का, हंस एवं परमहंस को मनन का और तुरीयातीत एवं अवधूत को निदिध्यासन करना चाहिए। आत्मा का अनुसंधान करना प्रत्येक का कर्तव्य है। इस प्रकार मोक्ष की इच्छा करनेवाले को संसार से पार होने का प्रयत्न करना चाहिए। उस तारक का स्मरण करते हुए जीवन्मुक्त होकर कैवल्य प्राप्त करें।' (5-11)

अष्टम उपदेश

नारद ने पूछा, 'कौन-सा ऐसा मंत्र है, जो सारे संसार का तारण कर सके?' इस पर ब्रह्माजी कहने लगे, 'इस प्रकार का मंत्र 'ओम' है। इसके दो भेद हैं। समष्टि तथा व्यष्टि (संक्षेप में व्यष्टि एवं समष्टि को इस प्रकार समझें जैसे सारी सृष्टि समष्टि है, एक प्राणी व्यष्टि है या देश समष्टि है, राज्य आदि व्यष्टि हैं अथवा जनता समष्टि है एक आदमी व्यष्टि है)।' ब्रह्मा से नारद ने पुनः पूछा, 'समष्टि एवं व्यष्टि क्या होती है?' एक ही ब्रह्म संहार प्रणव, सृष्टि प्रणव तथा उभयात्मक (दोनों स्वरूपोंवाला) प्रणव, प्रणव के ये तीन भेद हैं। उभयात्मक प्रणव के बाह्य एवं भीतरी भेद हैं। इसीलिए इसे उभयात्मक कहा जाता है। ब्रह्म प्रणव का एक भेद व्यावहारिक प्रणव है। बाह्य प्रणव भी है। इस उभयात्मक प्रणव को विराट कहते हैं। संहार प्रणव के ब्रह्म प्रणव को अर्द्धमात्रा प्रणव भी कहते हैं। (1)

'ओम ही ब्रह्म है। इसी को एकाक्षर अंतः प्रणव समझना चाहिए। इसके आठ भेद किए जाते हैं—अ, उ, म् अर्द्धमात्रा नाद, बिंदु, कला और शक्ति। इसकी प्रत्येक मात्रा के अनेक भेद हैं। 'अ' के दस हजार अवयव, 'उ' के एक हजार तथा 'म' के सौ अचयव कहे जाते हैं। अर्द्धमात्रा प्रणव अनंत अवयवों वाला है। विराट प्रणव सगुण, संहार प्रणव निर्गुण और उत्पत्ति प्रण सगुण-निर्गुण दोनों प्रकार का है। संहार प्रणव चार मात्रावाला तथा अर्द्धमात्रायुक्त है। (2)

'विराट प्रणव सोलह प्रकार का तथा छत्तीस मात्राओं से परे है। अ, उ, म, अर्द्धमात्रा, बिंदु, नाद, कला, कलातीत, शांति, शांति अतीत, उन्मनी, मनोन्मनी, पुरो, मध्यमा, पश्यंती तथा परा इसके सोलह प्रकार हैं। इसके बाद प्रणव चौंसठ मात्राओंवाला तथा प्रकृति-पुरुष इन दो भेदोंवाला होने से एक सौ अट्ठाईस मात्राओंवाले स्वरूप का हो जाता है। एक ही प्रणव इस प्रकार सगुण-निर्गुण आदि रूपों से अनेक भेदोंवाला हो जाता है। (3)

'यह प्रणव (ओम्) ही सबका आधार, परम ज्योति, सर्वेश्वर, सभी देवताओं युक्त, सृष्टि के प्रपंच का आधार, सभी अक्षरों वाला, काल, सर्वांगमय, शिव, सर्वश्रुति, उत्तम, मृग्य, नमस्य उपनिषदमय तथा मोक्षदायक है। उसी को आत्मा, ब्रह्म, अजर, अमर आदि कहा गया है। वही मुक्ति देनेवाला आत्मा है। इसी को स्थूल, सूक्ष्म और दिखाई देने वाला समस्त प्रपंच समझो।

विश्व को भी 'ओम' ही समझो। आत्मा के तीनों प्रकार के देहों की उपाधि भी इसी को समझो। इस प्रकार आत्मा-परमात्मा में दृढ़ एकता को समझते हुए आत्मा रूपी ब्रह्म का निरंतर चिंतन एवं अभ्यास करे। (4-8)

'स्थूल और स्थूल का भोक्ता तथा सूक्ष्म एवं सूक्ष्म का भोक्ता होने से इसके चार भेद माने गए हैं। इन्हीं चार भेदों के कारण इसे चार पदोंवाला कहा गया है। जो स्थूल प्रज्ञ है, विश्व का भोग करनेवाला है। जो उन्नीस मुखों (कर्मेंद्रियां आदि), आठ अंगों (भूः भुवः आदि लोक), जो स्थूल भोक्ता, चार आत्माओंवाला सर्वव्यापक वैश्वानर आदि हैं, वह एक ही है। यह वैश्वानर उसका प्रथम पाद है। वह सूक्ष्म तत्त्वों का अनुभव करनेवाला, तैजस, प्राणियों का स्वामी हिरण्य गर्भ है, जिसे द्वितीय पाद कहा जाता है। प्राणी जब तक सोता नहीं तभी तक इच्छाएं रखता है, जब तक सुषुप्ति अवस्था नहीं होती, तभी तक स्वप्न देखता है। परमात्मा इस अवस्था में एकमात्र स्थित रहनेवाला प्रज्ञानवान, सुखी, नित्य आनंदमय तथा सभी जीवों के अंदर स्थित रहता है। यह सर्वगत, अविनाशी अपने ही रूप का उपभोग करता है। इस प्रकार के परमात्मा को अपने आत्मा में देखनेवाले प्राज्ञ ही उसका तृतीय पाद कहे गए हैं। (9-20)

'वही परमात्मा सबका ईश्वर, सर्वज्ञ, सूक्ष्मता से चिंतन करने योग्य, सभी में स्थित, सभी की उत्पत्ति का कारण है। तीन अवस्थाओं से युक्त यह विश्व सुषुप्ति रूप है। यह स्वप्न के समान तथा मायायुक्त है। चौथी अवस्था तुरीय है। यह सच्चितदेव रसलीन है। इसके चारों ही भेद तुरीय हैं। इस अवस्था में ओत, अनुज्ञान, अनुज्ञा तथा अविकल्प, ये चार रूप माने गए हैं। ओत, अतुज्ञाता और अनुज्ञा, ये तीन भेद वैकल्पिक ज्ञानात्मक हैं। इसे (विकल्प को) स्वप्न या माया ही समझना चाहिए। इन विकल्पों से पृथक सच्चिदानंद परमात्मा ही केवल एक स्वरूप है, यही मानना चाहिए। जो स्थूल, सूक्ष्म या इन दोनों ज्ञानों से परे है, जो कम या अधिक द्वारा जाना नहीं जाता है, जो बाहर या भीतर से भी नहीं जाना जाता, जो प्रज्ञान रूप नहीं है, जो देखा नहीं जा सकता (क्योंकि उसका कोई रूप नहीं है), जो पकड़ा नहीं जा सकता, न जिसे व्यवहार से जाना जा सकता, जो किसी परिभाषा या ध्यान में नहीं आता, जो केवल आत्मा के विश्वासवाले रूप के अनुसार ही है तथा जो माया के प्रपंच से बाहर है, वह अद्वितीय, शांत, शिव (कल्याण स्वरूप) ही उसका चतुर्थ पाद है। यही ब्रह्म प्रणव है न कि तुरीय मोक्ष की इच्छा करनेवालों का यही लक्ष्य है। वह ज्योति स्वरूप एवं आकाश स्वरूप है। वह परम ब्रह्म के रूप में सदा प्रतिष्ठित है।' (21-23)

नवम उपदेश

नारद ने कहा, 'भगवन, ब्रह्म का क्या स्वरूप है ?' ब्रह्मा बोले, 'ब्रह्म अन्य ही है और मैं अन्य ही हूं, ऐसा कहनेवालों को पशु ही समझना चाहिए (क्योंकि अपना स्वरूप ही ब्रह्म है)। पशुओं से उत्पन्न न होने पर भी उनका स्वभाव पशु के समान होने के कारण वे पशु ही हैं। अपने को ब्रह्म ही समझनेवाला मृत्यु के मुख से बच जाता है। मोक्ष प्राप्त करने का केवल एक ही मार्ग है—परमात्मा का ज्ञान। काल, स्वभाव, नियति (भाग्य), आकाश आदि पांच महाभूत,जीव, संयोग आदि क्या इस संसार के हेतु (कारण) हैं ? सुख-दुःख पूर्वजन्म के कर्मों के कारण होते हैं। तब जीवात्मा भी इसका

कारण नहीं हो सकता । ऐसा विचार करने पर उन मनीषियों ने ध्यान लगाया तब उन्होंने ध्यान से देखा कि अपने गुणों से ढका हुआ ब्रह्म आत्मशक्तिस्वरूप है। यह समस्त शक्ति अचिंतनीय परमात्मा की है, जो अकेला होने पर भी समस्त कारणों का कारण है। वह वृत्तोंवाला, सोलह कोणोंवाला, पचास अरोंवाला, बीस सहायक अरोंवाला, छः अष्टकों विश्वरूपी एक बंधनवाला तथा अनंत रूपोंवाला है। उन्होंने पांच स्रोतोंवाली विषरूपी जलों संपन्न, पांच स्थानों से निकली प्रचंड वेगवाली वक्र गति, पांच प्राण रूपी तरंगों से युक्त मन मूलवाली, पांच भंवरोंवाली तथा पचास भेदोंवाली एक नदी को देखा । (1-5)

'वह परमात्मा समस्त प्राणियों को उनके इस आश्रय में घुमाता रहता है। स्वयं को तथा सबको प्रेरणा देनेवाले उस परमात्मा को उन्होंने स्वीकार किया तथा अमरता को प्राप्त हुए। उद्गीथ रूप तीन अक्षरों में स्थित परमब्रह्म को अपनाकर वे उसी में लीन हो गए। इस अक्षर स्वरूप से व्यक्त एवं अव्यक्त सभी का पोषण होता है। वह परम ब्रह्म सबका आत्मा है, उसका कोई भी ईश्वर नहीं है। जीवात्मा सांसारिक भोगों का उपभोग करता है। इसके इस को जानकर ज्ञानी इस समस्त बंधन से मुक्त हो जाते हैं। आत्मा ज्ञानी-अज्ञानी समर्थ-असमर्थ) दो प्रकार का होता है। समस्त भोग्य पदार्थों को उत्पन्न करनेवाली माया है, जीव नहीं है तथा यह तृतीय शक्ति है। ब्रह्म में इस सृष्टि को बनाने का अभिमान नहीं, किंतु ईश्वर, जीव एवं प्रकृति तीनों को ब्रह्म समझता है। तभी उसके बंधन छूट जाते हैं। माया नश्वर जो जीव के साथ ही ब्रह्म के अधीन है। उसी में अपने को लगा देनेवाले ज्ञानी माया से मुक्त इसे प्राप्त करते हैं। उसके जन्म-मृत्यु के बंधन कट जाते हैं।' (6-11)

'ज्ञानी शरीर के नष्ट होने पर तृतीय लोक में अनासक्त, शुद्ध तथा पूर्णकाम होकर रहता है। वह ब्रह्म इसी जीव में स्थित है, ऐसा मानना चाहिए। उससे अधिक जानने योग्य कुछ भी नहीं है। भोक्ता, भोग्य तथा प्रेरणा देनेवाला परमात्मा, इन तीनों को जान लेने पर समस्त ज्ञान की प्राप्ति जाती है। वस्तुतः इन तीनों में एकमात्र वही ब्रह्म व्याप्त है। उसको जानने का मार्ग आत्मज्ञान तप है। जो इस प्रकार जानकर अपने स्वरूप के विषय में विचार करता है, जो उसी ब्रह्म से एकता को देखता है तथा उसी को सबसे श्रेष्ठ, विराट, भूत-भविष्य और अनश्वर समझता है, मोह एवं शोक से मुक्त हो जाता है। वह ब्रह्म अणु से भी छोटा तथा महान से भी महान है, वह के हृदय में रहता है तथा उसको जान जाने पर जीव उसकी कृपा से दुःखों से मुक्त हो जाता है। (12-15)

'वह परमात्मा बिना हाथ-पांवों के अत्यंत तेज गतिवाला है। वह बिना आंखों एवं कानों देखता और सुनता है। उस सबसे प्रमुख महान आत्मा को अपने आत्मा में देखनेवाला ही जानता है। वही एकमात्र जानने योग्य है, किंतु उसके लिए कुछ भी जानने योग्य नहीं है। शरीरवाला न होने पर भी सभी शरीरों में रहता है। उस महान आत्मा को जानकर धैर्यशाली शोकों का त्याग कर देते हैं। वह सबको धारण करनेवाला है। उसकी शक्ति का कोई भी अनुमान नहीं लगा सकता। सभी वेद आदि उसी के स्वरूप का वर्णन करते हैं। उसका प्रारंभ, मध्य या अंत नहीं है। वह अनंत, अव्यय (नाश या विकार न होनेवाला), कल्याणमय तथा प्रलय पर

रहनेवाला है। वह कवि (कांतदर्शी, जो होनी को पहले ही जान लेता है), सबसे प्राचीन, सबका स्वामी तथा सभी देवताओं द्वारा पूजा जानेवाला है। उसी ने ब्रह्मा को भी बनाया है। उसी ने इस आकाश, जल आदि पांच महाभूतों की सृष्टि को बनाया है। वही इन पांचों में विद्यमान है, किंतु वह स्वयं इन पांचों के प्रभाव से मुक्त है।' (16-20)

सांसारिक विषयों में लगा हुआ दुश्चरित्र, असंयमी तथा अशांत मनवाला इसे नहीं देख सकता। इसे केवल श्रेष्ठ ज्ञान द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। वह न तो बाहर रहनेवाला है, न भीतर, और न दोनों जगह ही। वह स्थूल-सूक्ष्म, ज्ञान या फिर अज्ञान रूपवाला भी नहीं है। उसे कोई ग्रहण भी नहीं कर सकता और न किसी व्यवहार में ला सकता है। वह आत्मा में स्थित है। आत्मज्ञान होने पर वह स्वयं ही प्राप्त हो जाता है।' इतना सब बताने के बाद ब्रह्मा बोले, 'जो इस प्रकार परम आत्मा के स्वरूप को जान जाता है, वह निःसंदेह मुक्त हो जाता है। संन्यासी अपने स्वरूप को जानता है, अतः वह अकेला ही रहता है। जैसे भयभीत हिरन कहीं पर नहीं रुकता, वैसे ही संन्यासी भी किसी एक स्थान पर नहीं ठहरता। अपने शरीर के अतिरिक्त सब कुछ त्यागकर वह भ्रमर के समान आत्मा की खोज में लगा रहता है। इसी से उसे मुक्ति मिलती है। वह क्रिया-कारक के भेद को नहीं मानता। गुरु-शिष्य और शास्त्रादि के बंधन भी उसके लिए नहीं हैं। सारे संसार को छोड़कर वह कभी दुःखी नहीं होता। इन सभी सुखों को त्यागकर वह वास्तव में सुखी हो जाता है। ब्रह्म रूपी धन को पाकर वह ज्ञान-अज्ञान एवं सुख-दुःख से ऊपर उठ जाता है। तब वह स्वयं प्रकाश रूप सबके जानने योग्य, सर्वज्ञ, सर्वसिद्धि दाता और सबके ईश्वर के रूप में स्वयं को भी अनुभव करता है। इसके बाद वह विष्णु के परम पद को प्राप्त करता है। वहां जाकर फिर कभी जन्म लेकर योगी इस संसार में नहीं लौटते हैं। इस लोक में सूर्य-चंद्रमा प्रकाश नहीं करते, क्योंकि यह स्वयं प्रकाशमय है। यही कैवल्य है। यही ज्ञान का सार है।' (21-23)

□

53. पैंगलोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

यह ब्रह्म पूर्ण है, यह कार्य जगत भी पूर्ण है । उसी पूर्ण से इस पूर्ण की उत्पत्ति हुई है, अतः इस पूर्ण से इस पूर्ण को निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है ।

प्रथम अध्याय

पैंगल ऋषि याज्ञवल्क्य के पास गए और उन्होंने बारह वर्षों तक उनकी सेवा की तब उन्होंने याज्ञवल्क्य से कैवल्य विद्या के परम रहस्य को बतलाने के लिए निवेदन किया । इस पर याज्ञवल्क्य कहने लगे, 'सर्वप्रथम केवल 'सत' ही था । वही सदा रहनेवाला, सब प्रकार से मुक्त, विकारहीन, सत्यस्वरूप, ज्ञान एवं आनंद से परिपूर्ण तथा सनातन (सदा बना रहनेवाला), एकमात्र, अद्वितीय ब्रह्म है । उस मरुस्थल के समान अवस्था में जल, शुक्ति (सीप) में चांदी, स्थाणु (खंभा) में पुरुष तथा स्फटिक में एक रेखा के समान लाल, सफेद एवं कृष्ण अर्थात् सत्त्व, रजस एवं तमोगुण से युक्त मूल प्रकृत्ति उत्पन्न हुई । इसमें ये तीनों गुण समान अवस्था में थे । यह प्रकृति अनिवर्चनीय (जो शब्दों में न कहा जा सके) थी । उसमें प्रतिबिंब रूप में विद्यमान ही इस जगत आदि एकमात्र साक्षी और चैतन्य (चेतनावाला) है ।' (1-3)

'इस प्रकृति में फिर विकार (बदलाव) आया और सत्वगुण की अधिकतावाली आवरण शक्ति उत्पन्न हुई, इसे अव्यक्त कहा जाता है । प्रकृति में विद्यमान प्रतिबिंबित उस ईश्वर में भी चेतना आई । वह सर्वज्ञ माया को अपने अधीन रखनेवाला समस्त दृष्टि का बनाने वाला, पालन करनेवाला तथा प्रलय करने वाला इस जगत का अंकुर रूप है । वही अपने में विलीन इस संपूर्ण जगत को प्रकट करता है । प्राणियों के कर्मों के अनुसार वही इस विश्व रूपी वस्त्र को पहले फैलाता है तथा फिर उनके कर्मों का नाश होने पर इसे समेट लेता है । समस्त विश्व उसी में सिमटे हुए वस्त्र के समान रहता है । आवरण शक्ति में रजोगुण की अधिकता से विक्षेप शक्ति उत्पन्न होती है, जो महत् भी कहलाती है । इसके प्रभाव से चैतन्य हिरण्यगर्भ कहा जाता है, यह महत् से कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट शरीरवाला होता है । (4-5)

'हिरण्यगर्भ में स्थित विक्षेप शक्ति से अहंकार नामक तमोगुणी शक्ति उत्पन्न होती है और उसमें स्थित विराट चैतन्य, जो महत् का अभिमानवाला है, स्पष्ट शरीरवाला होकर स्थूल जगत का पालन करनेवाला प्रधान पुरुष होता है, जिसके आत्मा से आकाश उत्पन्न हुआ । आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई । फिर इनसे तीन गुणोंवाली

तन्मात्राएं पैदा हुईं। उस जगत कर्ता को तमोगुण के कारण सूक्ष्म तन्मात्राओं को स्थूल रूप में बनाने की इच्छा हुई। अतः उसने रचे हुए महाभूतों में प्रत्येक के पहले दो-दो भाग कर दिए, फिर प्रत्येक के चार-चार भाग करके प्रत्येक भूत के आधे भाग में अन्य भूतों का आठवां भाग मिलाया। इस प्रकार पांच बार में पांच प्रकार के भूत (पंचीकृत भूत) बने। इनसे उसने असंख्य ब्रह्मांडों, चौदह लोकों तथा इनके लिए स्थूल शरीरों को बनाया।' (6-7)

'उसने इन पांच भूतों में प्रत्येक के रजोगुणवाले अंश को चार भागों में विभक्त करके तीन भागों से पांच प्रकार के प्राण तथा चौथे भाग से कर्मेंद्रियों को बनाया। इसके बाद इसी प्रकार उसने सत्त्व गुण वाले भाग को चार भागों में विभक्त किया। तीन भागों से पांच प्रकार के वृत्तियों वाले अंतःकरण तथा चौथे भाग से ज्ञानेंद्रियों की रचना की। सत्त्व गुण के समस्त रूप से इंद्रियों के देवता बनाए। उन्हें ब्रह्मांडों में स्थापित कर दिया। उसकी आज्ञा से अहंकार से युक्त विराट स्थूल जगत की रक्षा करने लगा और हिरण्यगर्भ भी उसी की आज्ञा से सूक्ष्म जगत का पालन करने लगा।' (8-10)

'ब्रह्मांडों में स्थित वे देवता उसके बिना चेष्टा नहीं कर पाए। उसने उन्हें चेतन करना चाहा और ब्रह्मांड को चीरकर ब्रह्मरंध्रों में प्रवेश किया। तब वे जड़ (निर्जीव) होते हुए भी चेतन की तरह अपने-अपने कार्य करने लगे। सर्वज्ञ ईश्वर माया के प्रभाव में आने से व्यष्टि देह में प्रवेश कर गया तथा मोह के कारण जीव बन गया। स्थूल आदि तीन प्रकार के शरीरों के संपर्क से वह कर्ता और भोक्ता होने का अनुभव करने लगा। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति, मृत्यु आदि से युक्त होकर जैसे घड़ी या कुम्हार का चाक घूमते रहते हैं, उसी तरह इस जगत में घूमने लगा।' (11-12)

द्वितीय अध्याय

'इसके बाद पैंगल ने पूछा कि समस्त लोकों की सृष्टि, पालन एवं विनाश करने वाला ईश्वर जीव कैसे बनता है ? इस पर याज्ञवल्क्य बोले, 'ध्यान से सुनो, मैं स्थूल, सूक्ष्म और कारण शरीरों की उत्पत्ति तथा जीव-ईश्वर का संबंध बताता हूं। ईश्वर ने पंचीकृत महाभूतों के अंशों से क्रमशः व्यष्टि एवं समष्टि के स्थूल शरीरों को बनाया। कपाल, त्वचा, हड्डियां, मांस और नाखून पृथ्वी के अंश हैं। रक्त, मूत्र, लार, पसीना आदि जल के अंश हैं। भूख प्यास, गर्मी, मोह, मैथुन आदि अग्नि के अंश हैं। उठना, चलना, सांस लेना आदि वायु के तथा काम, क्रोध आदि आकाश के अंश हैं। इन सबके अंशों से निर्मित त्वचा आदिवाले इस स्थूल शरीर में बचपन आदि अवस्थाएं, अभिमान आदि अनेक दोष होते हैं। (1-2)

'अपंचीकृत महाभूतों के रजोगुण अंश से तीन भाग लेकर प्राणों को बनाया गया। प्राण, अपान, व्यान, उदान एवं समान, ये पांच प्राण हैं तथा नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त या धनंजय, ये पांच उपप्राण हैं। हृदय, नासिका, कंठ आदि सभी अंग इनके स्थान हैं। आकाश आदि के रजोगुण के चतुर्थ भाग से कर्मेंद्रियों की रचना हुई। वाणी, हाथ, पांव, पायु तथा उपस्थ, ये पांच कर्मेंद्रियां हैं। बोलना (शब्द), आदान (लेना), चलना, मल त्याग तथा रति-आनंद क्रमशः इनके विषय हैं। इसी प्रकार महाभूतों के सत्त्वगुण वाले अंश के तीन भागों से अंतःकरण बना, जिसकी मन, चित्त, बुद्धि

तथा अहंकार वृत्तियां हैं। संकल्प, निश्चय, स्मरण, अभिमान तथा अनुसंधान इसके विषय हैं। गु मुख, नाभि, हृदय तथा भ्रूमध्य स्थान हैं। इस सत्त्वगुण के चौथे भाग से ज्ञानेंद्रियों की रचना हुई, जो इस प्रकार हैं—कान, त्वचा, नेत्र, जिह्वा तथा नाक। शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध इन पांच ज्ञानेंद्रियों के विषय हैं। दिशाएं, वायु, वरुण, सूर्य, अश्विनी, अग्नि, इंद्र, उपेंद्र, मृत्यु, यम, चंद्रमा, विष्णु, ब्रह्मा एवं शिव इनके देवता हैं। अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनंदमय, ये पांच कोश हैं। अन्नमय कोश अन्न के रस बढ़ानेवाला, बनानेवाला तथा अन्नमय पृथ्वी में लय हो जानेवाला है। यही स्थूल शरीर होता है। पांच कर्मेंद्रियों तथा पांच प्रकार के प्राणों से प्राणमय कोश बनता है। ज्ञानेंद्रियों के साथ मन द्वारा मनोमय कोश बनता है। ज्ञानेंद्रियों और बुद्धि के संयोग से विज्ञानमय कोश बनता है। इन तीनों संयोग से लिंग शरीर बनता है, जिसे स्वरूप का ज्ञान नहीं होता। यही कारण शरीर और आनंदमय कोश है। इस प्रकार पांच ज्ञानेंद्रियों, पांच कर्मेंद्रियों पांच प्राणों, पांच महाभूतों, चार अंतःकरणों, काम, कर्म तथा अज्ञान इन सबको व्यष्टि कहते हैं। (3-5)

'विराट ईश्वर की आज्ञा से व्यष्टि में प्रविष्ट हुआ, बुद्धि में स्थित हुआ तथा विश्व नाम से जाना गया। विज्ञानात्मा, चिदाभास, विश्व, व्यावहारिक, जागृत स्थूल, देहाभिमानी, कर्म तथा भू, ये सब इसी के नाम हैं। ईश्वर की आज्ञा से सूत्रात्मा ने व्यष्टि में प्रवेश किया और मन में स्थित हुआ। तब यह तेजस कहा गया। तेजस, प्रतिभा शक्ति, स्वप्न कल्पित, ये सब इसी के नाम हैं। ईश्वर की आज्ञा से माया युक्त अव्यक्त ने व्यष्टि में प्रवेश किया। इसी को प्राज्ञ कहते हैं। अविछिन्न, पारमार्थिक सुयुक्ति तथा अभिमानी, ये प्राज्ञ के ही नाम हैं। पारमार्थिक जीव, जो अज्ञान से ढका रहता है, तत्त्वमसि आदि महा वाक्यों के बोध से इसे ब्रह्म से अपनी एकता का पता लगता है, किंतु अन्य व्यावहारिक या प्रतिभासिक अंश ब्रह्म से ऐसी एकता नहीं रखते। पारमार्थिक जीव वस्तुतः ब्रह्म का ही अंश होता है। अंतःकरण में प्रतिबिंबित होनेवाला चैतन्य ही तीन अवस्थाओं को प्राप्त करता है। जागृत स्वप्न एवं सुषुप्ति—इन अवस्थाओं को प्राप्त करके रहट के समान संसार चक्र में भ्रमण करता हुआ उद्विग्न होकर मृतक जैसा हो जाता है। (6-10)

'प्राणी को जागृत-स्वप्न-सुषुप्ति-मूर्च्छा एवं मरण, ये पांच अवस्थाएं होती हैं। अपने-अपने देवताओं से मिलकर कान, नाक आदि इंद्रियों द्वारा शब्द, गंध आदि विषयों को ग्रहण करने पर जागृत अवस्था होती है। इस अवस्था में जीव भौंहों के बीच में रहता है और पांवों से मस्तक पर्यंत व्याप्त रहकर कृषि, देखना, सुनना आदि सभी कार्य करता है। साथ ही इनके फलों को उपभोग भी करता है। दूसरे लोक में भी उसे इन कर्मों का फल भोगना पड़ता है। अंत में वह एक सार्वभौम सम्राट की तरह थक जाता है तथा अंदर के विश्राम स्थल में जाने की इच्छा से मार्ग का सहारा लेकर रुक जाता है। इंद्रियों द्वारा अपने कार्य बंद कर देने पर जागृत अवस्था के संस्कारों से ग्रहण करने योग्य तथा ग्रहण करनेवाला होने के कारण जो प्रतिक्रिया होती है, वह स्वप्न अवस्था कही जाती है। तब यह विश्व (जीव) जागृत अवस्था के कार्यों को नहीं करता। इन कार्यों के लुप्त हो जाने पर वह नाड़ियों के मध्य में पहुंचकर तैजस बन जाता है। तब यह अपनी वासनाओं के अनुसार एक विचित्र आभासीय जगत की सृष्टि करके इच्छानुसार उसका उपभोग करता है। सुषुप्त अवस्था में एकमात्र कारण चित्त ही होता है। जैसे थके हुए पक्षी पंखों को समेटकर घोंसले की ओर जाते हैं, वैसे ही जीव

भी जागृत एवं स्वप्न अवस्थाओं के कार्यों से थककर अज्ञान में प्रवेश करके आनंद का उपभोग करता है।' (11-13)

'दंड या मुद्गर से यकायक पीटे जाने पर जब व्यक्ति अज्ञान एवं मय से हक्का-बक्का होकर कांपने लगता है, तो इस अवस्था को मूर्छा कहते हैं। मृत्यु—इन चारों अवस्थाओं (जागृत, स्वप्न, एवं मूर्छा) से भिन्न अवस्था मृत्यु है। इस अवस्था से एक तुच्छ कीड़े से लेकर ब्रह्मा तक सभी भयभीत होते हैं। इसी से स्थूल शरीर का नाश होता है। तब कर्मेंद्रियों, ज्ञानेंद्रियों, इनके विषयों और प्राण, इन सबको संकल्पित करके काम एवं कर्म से संयुक्त होकर अविद्यामय जीव अन्य देह को प्राप्त करके दूसरे लोक को जाता है। पूर्व जन्म के फल में फंसा जीव भंवर में फंसे कीड़े के समान मुक्ति नहीं पाता। शुभ कर्मों के परिणाम से अनेक जन्मों के बाद उसकी मति मोक्ष की ओर होती है तब किसी सच्चे गुरु का आश्रय मिलता है और लंबे समय तक उसकी सेवा करके वह मोक्ष को प्राप्त होता है। बुरे चिंतन से बंधन तथा अच्छे चिंतन से मोक्ष होता है। अतः सदा उत्तम चिंतन करना चाहिए। माया के अध्यारोप एवं अपवाद को जानकर ही स्वरूप का निश्चय होता है। अतः सदा जगत, जीव एवं परमात्मा के विषय में चिंतन करना चाहिए। इससे जीव एवं जगत से मुक्त एकमात्र ब्रह्म ही शेष रहता है।' (14-18)

तृतीय अध्याय

इसके पश्चात पैंगल ने याज्ञवल्क्य से महावाक्यों के विषय में बताने का निवेदन किया, तब याज्ञवल्क्य बोले—'तत्त्वमसि (तुम वही हो), 'त्वं तदसि' (तुम वह हो), 'त्वं ब्रह्मासि' (तुम ब्रह्म हो) तथा 'अहं ब्रह्मास्मि' (मैं ब्रह्म हूं), ये महावाक्य हैं, इनके विषय में चिंतन करना चाहिए। तत (वह) से सर्वज्ञता आदि लक्षणोंवाले माया की उपाधि से युक्त, सच्चिदानंद स्वरूप, अव्यक्त ईश्वर का बोध होता है, जो जगत का मूल स्थान है। अंतःकरण की उपाधि के कारण ईश्वर से भिन्न होने का बोध होने से 'त्वम्' पद द्वारा सूचित किया जाता। ईश्वर की उपाधि माया तथा जीव की अविद्या है। इन दोनों उपाधियों को अलग कर देने से 'तत' और 'त्वम' (वह और तुम) शब्द फिर प्रत्यक्ष आत्मा ब्रह्म को बताते हैं। इसी प्रकार 'तत्त्वमसि' एवं 'अहं ब्रह्मास्मि' वाक्यों को सुना जाता है। एकांत में इन महावाक्यों पर खोज करनी चाहिए। इसी को मनन कहा गया है। श्रवण एवं मनन से जो निष्कर्ष निकलता है, उसके साथ चित्त को लगाना निदिध्यासन है। ध्याता एवं ध्यान को छोड़कर जब चित्त केवल ध्येय में रहता है, तब उसकी स्थिति वायुरहित स्थान में रखे दीपक की जैसी हो जाती है। इसी अवस्था को समाधि कहते हैं। इसमें सभी वृत्तियां आत्मा से मिल जाती हैं, दिखाई नहीं पड़तीं, उनका केवल स्मरण ही होता है। इस अवस्था से करोड़ों योनियों के कर्म लय हो जाते हैं। फिर कुशल अभ्यास से हजार धाराओं से अमृत फूटता है इसीलिए समाधि धर्म मेध कही जाती है। इसमें सभी वासनाएं और पाप-पुण्य नष्ट हो जाते हैं। 'तत्त्वमसि' का पहले विचार हुआ अर्थ हथेली में रखे आंवले के समान स्पष्ट हो जाता है। ब्रह्म से साक्षात्कार होकर योगी जीवन्मुक्त हो जाता है।' (1-5)

'ईश्वर उपर्युक्त पंचीकृत भूतों को पुनः अपंचीकृत (मूल रूप में) करना चाहता है। ब्रह्मांड

आदि लोकों को पुनः इनके (बनाने वाले) कारणों में पांच भूतों को मिला दिया। भूमि जल में, जल अग्नि में, अग्नि वायु में, वायु आकाश में, आकाश अहंकार में, अहंकार महत् में तथा महत् अव्यक्त पुरुष में क्रम से विलीन हो जाते हैं। विराट, हिरण्यगर्भ तथा ईश्वर भी उपाधि के लय हो जाने पर परमात्मा में लीन हो जाते हैं। पंचीकृत महाभूतों से उत्पन्न और कर्मों के संचय से प्राप्त यह स्थूल भी बंधन करने वाले कर्मों के नष्ट होने से तथा सत कर्मों के परिणाम से अपंचीकृत होकर सूक्ष्म में मिलकर फिर अपने कारणों को प्राप्त होता है। अंत में यह कारणों के भी कारण कूटस्थ परमात्मा में विलीन हो जाता है। विश्व, तेजस और प्राज्ञ भी अपनी-अपनी उपाधियों के लय हो जाने पर प्रत्यगात्मा में लीन हो जाते हैं।' (6-7)

'ब्रह्मांड अपनी कारण अविद्या के साथ ज्ञान की अग्नि में जलकर परमात्मा में लीन होता है। इसलिए ब्रह्मज्ञानी को 'तत' (वह—ब्रह्म) तथा 'त्वं' (तुम—जीव) दोनों शब्दों में सदा एकता देखनी चाहिए। ऐसा करने से उसका आत्मा से वैसे ही साक्षात्कार होता है, जैसे बादलों के हट जाने पर सूर्य से। कलश में रखे हुए दीपक के समान ही अपने शरीर में रखे हुए धुएं से रहित ज्योति के समान अंगुष्ठ मात्र आत्मा का ध्यान करना चाहिए। अंत में स्थित प्रकाशमय कूटस्थ आत्मा का मृत्यु के समय तक ध्यान करनेवाला व्यक्ति जीवन्मुक्त होकर मृत्यु के बाद बंद वायु के समान विदेह मुक्ति को प्राप्त करता है। फिर शब्द आदि विषयों से रहित, अव्यय, नित्य, अनादि, अनंत एवं महत् से भिन्न ध्रुव एवं निरामय ब्रह्म ही शेष रहता है।' (8-12)

चतुर्थ अध्याय

याज्ञवल्क्य से पैंगल द्वारा यह पूछे जाने पर कि ज्ञानियों के क्या कर्म हैं? तथा उनकी स्थिति कैसी है? याज्ञवल्क्य बोले—'अमानित्व आदि साधनोंवाला मोक्ष का इच्छुक अपनी इक्कीस पीढ़ियों का तथा ब्रह्म को जान लेनेवाला अपनी एक सौ एक पीढ़ियों का तारण करता है। आत्मा को रथी, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथी, मन को लगाम तथा इंद्रियों को घोड़े समझो, जो शब्द आदि विषयों के मार्ग पर चलते हैं। किन्तु मनीषियों का हृदय विमान के समान इन मार्गों से हटकर चलता है। महर्षियों का कहना है कि आत्मा इंद्रियों आदि से युक्त होकर भोक्ता बनता है और इसके हृदय में साक्षात नारायण रहते हैं। पूर्व जन्म के कर्मों का नाश होने तक जीव को सांप की केंचुल के समान शरीर धारण करने पड़ते हैं। जो अपने कर्मों को कृष्ण-पक्ष के चंद्रमा की तरह घटाते हुए आगे बढ़ते हैं, वे मुक्त हो जाते हैं। ऐसा व्यक्ति चाहे तीर्थ में देह त्यागे या चांडाल के यहां, वह कैवल्य ही पाता है। उसके शरीर को चाहे फिर अग्नि में जलाया जाए अथवा गड्ढे में दबाया जाए (यहां केवल संन्यासियों के लिए ही गड्ढे में दबाने से तात्पर्य है) संन्यासी की मृत्यु पर सूतक नहीं होता तथा उसे पिंड, जल आदि भी नहीं दिए जाते, क्योंकि जले हुए को पुनः नहीं जलाया जाता और पके हुए को पुनः नहीं पकाया जाता। संन्यासी का शरीर ज्ञान की अग्नि में पहले से ही जला होता है, अतः उसकी श्राद्ध क्रिया भी नहीं की जाती है।' (1-10)

'जब तक सांसारिक उपाधि का नाश न हो, तब तक गुरु, उसकी पत्नी तथा उसके पुत्र की सेवा करनी चाहिए। मैं शुद्ध मनवाला, चित्त रूप, 'वही सहिष्णु हूं', इस ज्ञान के मिलने पर जब ज्ञान

स्वरूप आत्मा हृदय में स्थित हो जाए, तब साधक मन एवं बुद्धि से शून्य होकर परम शांति पद को पाता है। अमृत छक लेने पर दूध की कोई आवश्यकता नहीं होती। इसी प्रकार अपनी आत्मा का ज्ञान हो जाने पर वेदों से कोई प्रयोजन नहीं रह जाता, ज्ञान के अमृत से तृप्त योगियों को कोई भी कर्तव्य नहीं रह जाता। यदि कोई कर्तव्य शेष रहे, तो समझना चाहिए कि वह पूर्णज्ञानी नहीं है। वह दूर रहने पर भी पास है तथा पिंड में रहने पर भी इससे पृथक् सर्वव्यापी प्रत्यगात्मा है। हृदय को निर्मल करके 'मैं ही अनामय ब्रह्म हूं', और 'परम सुख हूं', जैसे जल में जल या दूध में मिलाने पर दोनों एकरूप हो जाते हैं, उसी प्रकार जीवात्मा एवं परमात्मा के मिल जाने पर दोनों एक ही हो जाते हैं। जब देह के ज्ञानमय हो जाने पर बुद्धि अखंडाकार हो जाती है, तब विद्वान इस ज्ञान की अग्नि से कर्म बंधनों को जलाए। तब पवित्र होकर निर्मल आकाश के समान अद्वैत ब्रह्म में स्वयं को उपाधि रहित आत्मा के रूप में पाकर जल में जल के समान मिला दे। आत्मा आकाश जैसा सूक्ष्म और वायु के समान न दिखाई देनेवाला है। वह भीतर एवं बाहर दोनों ओर से निश्चल है। केवल ज्ञान की मशाल से ही उसे देखा जा सकता है। ज्ञानी चाहे कहीं भी और कैसे भी मृत्यु को प्राप्त हो, वह ब्रह्म में ही लीन होता है, क्योंकि आकाश के समान ही ब्रह्म भी सर्वत्र है।' (11-20)

'चाहे व्यक्ति एक पांव पर खड़ा होकर हजार वर्ष तक तप करे, तब भी वह ध्यान योग की सोलह कलाओं में एक कला को भी नहीं पा सकता। समस्त ज्ञान को प्राप्त करने के लिए यदि एक हजार वर्ष तक भी शास्त्रों का अध्ययन करे, तब भी उसे इसका अंत नहीं मिलेगा। अतः मनुष्य जान ले कि केवल अक्षर ब्रह्म ही सत्य है। जीवन चंचल है। इसलिए शास्त्रों के जाल को छोड़कर इसी सत्य की उपासना करनी चाहिए। अनंत कर्म, पवित्रता, जप, यज्ञ तीर्थ आदि का महत्त्व तत्त्व ज्ञान के प्राप्त होने तक ही है। महात्माओं के लिए मोक्ष का 'मैं ब्रह्म हूं', यही एकमात्र आधार है। मोक्ष एवं बंधन के लिए कारण केवल दो ही शब्द हैं। पहला 'मेरा नहीं है' दूसरा 'मेरा है'। सांसारिकता को अपना समझना बंधन है तथा इसे अपना न समझना मोक्ष का कारण है। उन्मनी अवस्था होने पर यह द्वैत भाव समाप्त हो जाता है और परम पद प्राप्त हो जाता है। इसमें जहां भी मन रहता है, वहीं परम पद रहता है। परम ब्रह्म को सब जगह स्थित मानना चाहिए। अपने को ब्रह्म न मानना आकाश में मुट्ठी मारने तथा चावलों के लिए भूसी कूटने के समान है। इससे उसकी कभी मुक्ति नहीं होती। इस उपनिषद् का नित्य अध्ययन करने से व्यक्ति अग्नि, वायु, सूर्य, ब्रह्म तथा रुद्र के समान पवित्र हो जाता है। उसे सभी तीर्थों में स्नान का, सभी वेदों के अध्ययन का तथा उनके व्रतों का फल मिलता है। उसे इतिहास-पुराणों का, एक लाख रुद्र जप का तथा दस हजार प्रणव जप का फल मिलता है। उसकी दस पिछली तथा दस आनेवाली पीढ़ियां तर जाती हैं। उसके साथ बैठने से ही लोग पवित्र हो जाते हैं। वह वस्तुतः महान हो जाता है; साथ ही वह ब्रह्म-हत्या, सुरापान, स्वर्ण की चोरी, गुरु-पत्नी से व्यभिचार आदि के दोषों से मुक्त हो जाता है। जैसे आंखों से आकाश दिखाई देता है, वैसे ही वह विद्वान विष्णु के परम पद को देखता है। वे क्रोधहीन विप्र विष्णु के उस परम पद की स्तुति करके उसे देखते हैं। यह सत्य ज्ञान का सार है।' (21-30)

□

54. महावाक्योपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभ्यः श्रृणुयामः देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

हम कानों से कल्याणमय वचन सुनें, नेत्रों से कल्याणमय चीजों को देखें और दृढ़ अंगोंवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करें। इंद्र हमारा कल्याण करे, पूषा हमारा कल्याण करें। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दु:ख शांत हों।

एक बार भगवान् ब्रह्मा ने कहा, 'मैं प्रत्यक्ष अनुभव से प्राप्त उपनिषद् की व्याख्या करता हूं। यह ज्ञान परम गोपनीय है; अतः इसे साधारण व्यक्तियों को नहीं बताना चाहिए। सात्त्विक, अंतर्मुखी तथा गुरु की सेवा करनेवाले को ही यह ज्ञान देना चाहिए। संसार में बंधन और मोक्ष के दो नेत्र (कारण) हैं—विद्या तथा अविद्या (ज्ञान एवं अज्ञान)। इन्हें अच्छी तरह समझकर इस बात को जान लेना चाहिए कि यह समस्त संसार अविद्यारूपी नेत्र है। इस नेत्र से दिखाई देनेवाला सब कुछ असत्य है। समस्त वेदों में कहा गया सकाम कर्म का व्यवहार भी इसी के कारण है। आत्मा अज्ञान के अंधकारवाला नहीं है। विद्या (ज्ञान) इस अज्ञान से भिन्न परम ज्योति से प्रकाशित है। अतः इसी को ग्रहण करना चाहिए। आदित्य रूप ब्रह्म सांसों द्वारा प्रत्येक शरीर में रहता है। यह बिना अधिक प्रयत्न द्वारा प्राप्त होनेवाला हंस नामवाला है। स्वयं को इसी का अंश मानकर प्राण, अपान, श्वास, प्रश्वास को जानकर लंबे समय तक साधना करें। तब तीन स्वरूपोंवाले ब्रह्म का ध्यान करने पर सच्चिदानंद परमात्मा का ज्ञान होता है। (1-6)

'यह तत्त्व ज्ञान हजारों सूर्यों से युक्त अविचल समुद्र के समान है। यह समाधि, योगसिद्धियां, मन का लय होना भी नहीं है। समस्त रूपों पर विचार करके अज्ञान का नाश होने पर ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इंद्र आदि ने भी कहा है कि उस ब्रह्म को इस प्रकार समझनेवाला इसे प्राप्त करता है। मोक्ष का कोई अन्य मार्ग नहीं है। इंद्र आदि ज्ञानलय द्वारा यज्ञ करके जीवन्मुक्त होकर अपने साध्य के स्थान में पहुंच गए। मैं वही अर्क हूं, परम प्रकाशमान कल्याणस्वरूप हूं, वही आत्मज्योति, शुक्र, सबके ज्योति ब्रह्म से मैं अलग नहीं हूं। इस ब्रह्मज्ञान को प्रातः पढ़ने से रात्रि में किए गए पाप नष्ट होते हैं। सायंकाल पढ़ने से दिन के पाप नष्ट होते हैं। सांय-प्रातः दोनों समय पढ़ने से व्यक्ति पापहीन हो जाता है। दोपहर में सूर्य की ओर मुख करके पढ़ने से पांच महापापों से मुक्ति मिलती है तथा सभी वेदों के अध्ययन का फल मिलता है और श्री महामाया एवं विष्णु के लोक की प्राप्ति होती है। (7-12)

□

55. आत्मबोधोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविराविम् एधि। वेदस्य न आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्संदधामृतं वदिष्यामि। सत्यं बदिष्यामि तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतुवक्तारमवतु वक्तारम्।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

हे परमात्मा ! मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो, मेरा मन वाणी में प्रतिष्ठित हो, तुम मेरे समक्ष प्रकट होओ। मुझे वेदों का ज्ञान दो। मैं सुने हुए ज्ञान को न भूलूं। इस अध्ययन से मैं रात-दिन एक कर दूं, मैं ऋत एवं सत्य बोलूं। मेरी रक्षा करो। मेरे गुरु की रक्षा करो। हम दोनों की रक्षा करो। दैहिक, दैविक तथा भौतिक, तीनों प्रकार के ताप (कष्ट) शांत हों।

प्रथम अध्याय

प्रत्यक्ष आनंद ब्रह्म पुरुष प्रणव के 'अ', 'उ' तथा 'म्' ये तीन अक्षर हैं। इसी प्रणव को 'ओम' भी कहा जाता है, जिसके जप से योगी जन्म और संसार के बंधन से छूट जाता है। 'शंख, चक्र तथा गदा धारण करनेवाले भगवान नारायण को नमस्कार है।' इस मंत्र से 'ॐ नमो नारायणाय', इस मंत्र का उपासक बैकुंठ लोक को जाता है। इस हृदय के ब्रह्मपुर कमल में प्रकाशित होनेवाला दीपक या विद्युत के समान देवकी पुत्र, मधुसूदन, पुंडरीकाक्ष तथा अच्युत विष्णु ब्रह्मज्ञानियों के हितैषी हैं। वही नारायण सभी प्राणियों में रहनेवाले जो सबके कारण हैं और जिनका कोई कारण नहीं है, वही परम ब्रह्म 'ओम्' है। इस प्रकार के विष्णु का ध्यान करने से व्यक्ति शोक एवं मोह से छूट जाता है। वह द्वैत भी है, अद्वैत भी है और द्वैत-अद्वैत भी है। जो इसे नहीं जानता है, वह मृत्यु के बाद भी मृत्यु को प्राप्त करता है। हृदय कमल में रहनेवाला ब्रह्म ही प्रज्ञान स्वरूप, प्रज्ञान नेत्र तथा प्रज्ञान में ही रहनेवाला है। इसको जाननेवाला ज्ञानी इस लोक के बाद स्वर्ग लोक में जाकर समस्त कामनाओं को प्राप्त करके अमर हो जाता है। जहां कभी समाप्त न होनेवाली ज्योति है, जहां चारों ओर पूजा होती है, उस अमर लोक में हमें स्थान दे।

द्वितीय अध्याय

मेरे लिए माया गल गई है, मेरा 'मैं' समाप्त हो गया है, आत्मा एवं परमात्मा का भेद नष्ट हो गया है तथा अब मैं अतुलनीय रूप मात्र हूं। मैं अलग नहीं हूं, समस्त नियम-निषेध मेरे लिए नष्ट हो गए हैं, मैंने धर्म त्याग दिया है, मैं परम सुखी तथा ज्ञानी हूं। मैं साक्षी हूं, निरपेक्ष हूं, अपनी महिमा में स्थित हूं, अचल, अजर, अमर, अव्यय, पक्ष-विपक्ष से ऊपर, ज्ञान स्वरूप, मोक्ष के आनंद का समुद्र, सूक्ष्म तथा अक्षर हूं। मेरे लिए सत्त्व, रजस एवं तमस इन तीनों गुणों का नाश हो गया। मैं कूटस्थ चेतन, एक, अविकल, निर्मल, निर्वाण रूप, हंस, केवल, विभु, जानने योग्य, परमानंद, शुद्ध, शाश्वत आदि हूं। (1-10)

विवेक बुद्धि से मैं जानता हूं कि आत्मा अद्वैत है, तथापि बंधन एवं मोक्ष का व्यवहार प्रतीत हो रहा है। जैसे रस्सी से सांप का भ्रम दूर हो जाता है और रस्सी की वास्तविकता का पता लग जाता है, वैसे ही माया का भ्रम दूर होने पर केवल ब्रह्म ही दिखाई दे रहा है। जैसे गन्ने में मिठास व्याप्त होती है, वैसे ही मैं अद्वैत ब्रह्म के समान तीनों लोकों में व्याप्त हूं। ब्रह्मा से कीड़े तक सब मुझमें हैं। केवल आनंद रूप होने से अब मुझे विषयों की इच्छा नहीं है। संपन्न के लिए दरिद्रता के समान मुझे इनकी कोई संभावना नहीं है। अमृत और विष में से विष का त्याग करने के समान मैंने आत्मा को देखकर अनात्मा का त्याग कर दिया है। घड़े के टूट जाने पर भी जैसे उसे प्रकाशित करनेवाला सूर्य नष्ट नहीं होता, वैसे ही देह का साक्षी इसके नष्ट होने पर स्वयं नष्ट नहीं होता। अब मेरे लिए बंधन, मोक्ष, शास्त्र, गुरु, कुछ भी नहीं है। प्राण चला जाए, आ नंद मन कर्मों सहित नष्ट हो जाए, किंतु आनंद ज्ञानमय होने से मुझे अब कोई दुःख नहीं है। (11-21)

मेरा अज्ञान नष्ट हो गया है। मैं आत्मा का सत्य स्वरूप जान चुका हूं। 'मैं कार्य करनेवाला हूं' मेरा यह भाव भी नष्ट हो गया है। मुझे अब कुछ कार्य नहीं करना है। ब्राह्मणत्व, कुल-गोत्र, नाम, सुंदरता आदि का संबंध स्थूल देह से होता है, किंतु मैं स्थूल देह से अलग हूं। अतः इन सबसे अब मेरा संबंध नष्ट हो गया है। भूख, प्यास, काम, क्रोध आदि लिंगी शरीर के गुण हैं, मैं इस शरीर से रहित हूं। अतः अब मैं इनसे मुक्त हूं। इसी प्रकार जड़ता, प्रियता आदि से भी मुक्त हो गया हूं, क्योंकि ये कारण शरीर के धर्म हैं, जबकि मैं विषय एवं निर्विकार हूं। जैसे उल्लू को सूर्य अंधकारमय दिखाई देता है, वैसे ही अज्ञानी को स्वयं प्रकाश परमानंद अज्ञानमय दिखाई देता है। जैसे बादलों से ढका सूर्य दिखाई नहीं पड़ता वैसे ही अज्ञानी को अज्ञान से परमात्मा नहीं दिखाई देता और वह 'ब्रह्म नहीं है', ऐसा मानने लगता है। जैसेअमृत का विष पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, वैसे ही जड़ जगत का मुझ पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। छोटा दीपक भी जैसे अंधकार नष्ट करता है, वैसे ही थोड़ा-सा आत्मज्ञान अज्ञान को नष्ट करता है। रस्सी में जैसे सर्प तीनों कालों में नहीं होता, वैसे ही मेरे लिए देह और अज्ञान नहीं है। चैतन्य-सत्य के दर्शन से मेरे लिए जड़ता एवं असत्य नष्ट हो गए हैं और अज्ञान के कारण सत्य प्रतीत होनेवाले दुःख भी आनंदमय हो जाने से समाप्त हो गए हैं। इस आत्म-प्रबोध उपनिषद का क्षण-भर के लिए भी मनन करने से पुनर्जन्म से मुक्ति मिल जाती है। (22-31)

□

56. कैवल्योपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

परमात्मा हम दोनों (गुरु एवं शिष्य) की एक साथ रक्षा करे, एक साथ हमें उपभोग प्रदान करे। हम साथ ही पराक्रम करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो, हम द्वेष न करें।

महर्षि अश्वलायन समिधा लेकर ब्रह्मा के पास गए और उन्होंने उनसे निवेदन किया कि वह उन्हें श्रेष्ठ एवं गोपनीय ब्रह्मविद्या का उपदेश दें, जिस पर चलने से पूर्वजन्म के कर्मों से छुटकारा मिलकर ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस पर ब्रह्मा बताने लगे, 'उस परम तत्त्व की प्राप्ति के लिए श्रद्धा, भक्ति एवं योग का सहारा लेना पड़ता है, अतः तुम भी ऐसा ही करो। उसे संपत्तियों या कर्म से नहीं पाया जा सकता। त्याग के मार्ग से ही उसे प्राप्त कर सकते हैं। एकांत में पवित्र होकर सुखासन में तनकर बैठकर भक्ति से गुरु को चिंतन प्रणाम करके देह में स्थित शोकरहित हृदय पुंडरीक का चिंतन करें। चिंतन से परे प्रशांत ब्रह्म, आदि, मध्य एवं अंतहीन, अदभुत, आनंद स्वरूप उमा सहित तीन आंखोंवाले भगवान शिव का ध्यान करने से मुनि लोग यम से भी ऊपर ब्रह्म को प्राप्त करते हैं। वही विष्णु, अग्नि, प्राण, चंद्रमा, भूत, भविष्य एवं सनातन हैं। मृत्यु से मुक्ति के लिए उसके ध्यान के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। अतः सभी प्राणियों को अपने में और अपने को सभी प्राणियों में देखने से ही ब्रह्म मिलता है। (1-10)

'स्वयं को तथा प्रणव को अरणि बनाकर ज्ञान से इन्हें घिसने पर पाप जल जाते हैं। माया से पागल बना हुआ प्राणी स्त्री आदि भोगों से तृप्ति अनुभव करता है और स्वप्नावस्था में वह माया से कल्पना करके तमोगुण से दुःख-सुखों की अनुभूति करता है। सुषुप्ति में माया का प्रपंच समाप्त हो जाने पर भी जीव तमोगुण से पराजित होकर पूर्वजन्म के कर्मों से सुख प्राप्त करता है। स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीरों के लय होने पर माया से छुटकारा मिलता है और अखंड आनंद मिलता है। इसी से मन, प्राण, इंद्रियां आदि जन्म लेती हैं, जो आकाश आदि को धारण करती हैं। अत्यंत सूक्ष्म, सबका आत्मा एवं निवास ब्रह्म ही नित्य तत्त्व है, इसके दिखाई देने पर जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाएं नष्ट हो जाती हैं और 'वह ब्रह्म मैं ही हूं' ज्ञान होने पर समस्त माया का बंधन नष्ट हो जाता है। तब लगता है कि तीनों अवस्थाओं का भोग करनेवाला, भोग आदि सब मैं ही हूं, वह सदा शिव-चैतन्य-विचित्र लक्षणोंवाला सब मैं ही हूं, सब कुछ मुझमें ही स्थित है, मुझमें ही लय होगा और मैं ब्रह्म से भिन्न नहीं हूं। मैं अणु से भी छोटा तथा अत्यंत विशाल हूं। मैं सबसे पुराना पुरुष ईश्वर आदि हूं।' (11-20)

'मैं हाथ-पांव रहित अदभुत शक्ति हूं, बिना आंखों एवं कानों के देखता एवं सुनता हूं, मैं विशेष जानकर हूं, मुझे जाननेवाला कोई नहीं है, सारे वेद मेरा ही गुणगान करते हैं, मैं ही वेदों को

बनानेवाला हूं, मैं पाप, पुण्य, जन्म, मृत्यु, देह, इंद्रिय, पृथ्वी, अग्नि आदि से रहित हूं, इस प्रकार गुहा में स्थित कलारहित अद्वितीय परमात्मा को जानकर व्यक्ति सत्-असत् परमात्मा के स्वरूप को प्राप्त करता है। जो सौ रुद्रीय का अध्ययन करता है; वह अग्नि के समान पवित्र हो जाता है। उसके सोने की चोरी, सुरापान, ब्रह्महत्या, बुरे-भले पाप छूट जाते हैं और वह पवित्र हो जाता है। इससे भवसागर का नाश करनेवाला ज्ञान प्राप्त होता है। अतः इसे जानकर कैवल्य का फल मिलता है' (21-26)।

□

57. ब्रह्मविंदूपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

परमात्मा हम दोनों (गुरु एवं शिष्य) की एक साथ रक्षा करे, एक साथ हमें उपभोग प्रदान करे। हम साथ ही पराक्रम करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो, हम द्वेष न करें।

शुद्ध एवं अशुद्ध, मन दो प्रकार का होता है। इच्छाओंवाला अशुद्ध तथा इच्छारहित न शुद्ध मन होता है। विषयों में लगा मन बंधन और विषयरहित मन मोक्ष देता है। अतः मोक्ष का इच्छुक मन को विषयरहित करे। इस मन को हृदय में रोककर उन्मन अवस्था के बाद परमपद प्राप्त होता है। मन के नाश होने तक इसे रोकना चाहिए तभी मोक्ष प्राप्त होता है। ऐसा न करने पर बंधन का ही विस्तार होता है। मोक्ष होने पर चिंतन-अचिंतन से परे निष्पक्ष ब्रह्म प्राप्त होता है। अतः साधक स्वरों की साधना करे। वही योगसिद्धि का मार्ग है। तब 'मैं निष्कल, निर्विकल्प, निरंजन ब्रह्म हूं' ऐसा ज्ञान होता है। इस प्रकार के कारणरहित ब्रह्म को (जो अप्रमेय है), जानकर विरोध, जन्म, बंधन, तथा, मोक्ष की इच्छा तथा मुक्ति की भी कामना नहीं रह जाती है। (1-10)

जागृत, स्वप्न एवं सुषुप्ति में एक ही आत्मा मानना चाहिए। एक ही आत्मा प्रत्येक प्राणी में विभिन्न जलों में दिखाई देनेवाले एक ही चंद्रमा के समान रहता है। शून्य में घड़ा होने पर उसमें भी शून्य होता है, किंतु फूटने पर शून्य नष्ट नहीं होता; अतः शरीर के नाश पर परमात्मा का नाश नहीं होता। शब्द एवं ब्रह्म दोनों अक्षर (नाश न होने वाले) हैं। अतः शब्द के नष्ट होने पर जो शेष रहता है, महात्मा उसी का ध्यान करें। 'शब्द ब्रह्म' एवं 'परम ब्रह्म' दो ब्रह्म हैं। 'शब्द ब्रह्म' (वेदादि) में कुशलता पाने के बाद परम ब्रह्म को जानें। ज्ञान प्राप्त होने पर विद्वान व्यक्ति धान लेने पर पुआल को छोड़ने के समान ग्रंथों को त्याग दे। अनेक रंगोंवाली गायों में अधिक दूधवाली का चयन करने के समान विद्वान का वेश न देखकर ज्ञान देखना चाहिए, दूध में घी के समान ही प्राणियों में ब्रह्म रहता है, अतः उसे मन से मथकर प्राप्त करना चाहिए। ज्ञान की प्राप्ति पर निष्कल, निर्मल, शांत 'वह ब्रह्म मैं हूं' ऐसा मानना चाहिए। सभी प्राणियों में रहनेवाला और उनका निवास स्वरूप 'ब्रह्म मैं ही हूं' ऐसा समझना चाहिए। (11-22)

□

58. आत्मोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभ्यः शृणुयाम: देवा भद्रं पश्येमाताक्षिभिर्यजत्रा:
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायु: ।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवा: स्वस्ति न: पूषा विश्ववेदा: ।
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमि: स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।

ॐ शांति: शांति: शांति: ।

हे देवताओं, हम कानों से कल्याणकारी वचन सुनें, आंखों से कल्याणकारक देखें, समस्त अंगों सहित शरीर से देवताओं के समान आयु को प्राप्त करें । यशस्वी इंद्र हमारा कल्याण करें, सूर्य हमारा कल्याण करें तथा अरिष्टनाशक बृहस्पति हमारा कल्याण करें ।

परमात्मा तीन रूपों में पैदा हुआ—आत्मा, अंतरात्मा एवं परमात्मा । शरीर के त्वचा, मांस, बाल आदि उत्पन्न होते तथा मर जाते हैं, यहां आत्मा है । पृथ्वी, अग्नि आदि इच्छा-द्वेष, सुख-दु:ख, स्मृति, लिंग, ह्रस्व-दीर्घ, नृत्य, गीत, देखने-सुनने, सूंघनेवाला विज्ञान, आत्मा पुरुष, पुराण, न्याय, मीमांसा आदि शास्त्र, इन सबमें विद्यमान— यही अंतरात्मा है । परमात्मा अक्षर उपासना करके योग्य होता है । प्राणायाम, प्रत्याहारर, धारणा, ध्यान एवं समाधि योग द्वारा आत्मचिंतन से बा:ल के हजारवें भाग की कल्पना से भी सूक्ष्म 'सोऽहम्' भावना से जाना जाता है अन्यथा यह प्राप्त नहीं होता । न यह मरता है, न सूखता, जलता, भीगता आदि है । यह निर्गुण, ममता, शब्द-स्पर्श आदि से रहित है । यह सर्वव्यापक, अचिंतनीय एवं अवर्णनीय, अशुद्ध-अपवित्रों को पवित्र करता है । वह निष्क्रिय तथा संसाररहित है । (1-4)

ब्रह्म शुद्ध, शिव, एकमात्र आभासमान है । विद्या-अविद्या और भाव-अभाव भी वही है। गुरु-शिष्य का भेद भी वही है । वस्तुत: विद्या-अविद्या या जगत की कोई भी वस्तु सत्य नहीं है । यह सब एकमात्र ब्रह्म ही है । जैसे सामने रखी वस्तु का ज्ञान बिना प्रमाण के हो जाता है, वैसे ही इस आत्मा से ब्रह्म के लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं है । जैसे देवदत्त नाम के किसी व्यक्ति को अपने नाम के लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती, वैसे ही 'सोऽहं' का ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण है। सूर्य से संसार के समान उसी ब्रह्म के तेज से ब्रह्मांड प्रकाशित है । अत: उसके लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं है । वेद, शास्त्र आदि उसी के कारण अर्थवान हैं, जैसे बालक खिलौने को देखकर भूख, प्यास आदि भूलकर उसके साथ खेलने लगता है, उसी प्रकार ममता, अहंकार आदि से रहित विद्वान सुखी रहता है । आत्मज्ञानी निर्धन होने पर भी संतुष्ट और असहाय होने पर भी स्वयं को बलवान समझता है । न खाने पर भी तृप्ति अनुभव करता है । कुंछ न करने पर भी क्रियाशील रहता है तथा भोक्ता न होने पर भी फलों का भोग करता है । शरीर होने पर भी शरीरहीन होता है । पृथक् होने पर भी सर्वव्यापक होता है तथा सबको समान समझता है । (5-14)

इस प्रकार उसे शुभ-अशुभ एवं प्रिय-अप्रिय छूते भी नहीं हैं। वह राहु द्वारा न ग्रसा हुआ होने पर भी ग्रसे हुए सूर्य के समान संसार में रहता हुआ भी इससे मुक्त होता है। वह सांप की केंचुल के समान देह को अपने से पृथक् समझता है। पानी में बहाई जाती हुई लकड़ियों के समान ही वह काल आने तक सांसें लेता रहता है। जैसे भाग्य शरीर का उपयोग करता है, वैसे ही वह भी लक्ष्य-अलक्ष्य को त्यागकर स्थित हो जाता है। ऐसा श्रेष्ठ ब्रह्मवेत्ता साक्षात शिव बन जाते हैं। वह जीवित रहते हुए भी मुक्त होकर कृतार्थ हो जाता है। वेश त्यागने पर पुनः अपने रूप में आए हुए नट के समान वह भी देह को त्यागकर ब्रह्म में मिल जाता है। घड़े के टूटने पर शून्य में मिल जाने के समान वह ब्रह्म में मिलकर ब्रह्म ही बन जाता है। आत्मज्ञान से अविद्या के नष्ट हो जाने पर ब्रह्म भाव के बाद योगी दूध-में-दूध, तेल-में-तेल तथा जल में जल के समान ब्रह्म में मिल जाता है। तब उसका पुनर्जन्म नहीं होता। माया उसका स्पर्श नहीं कर सकती। रस्सी से सांप का भ्रम दूर होने पर रस्सी ही शेष रहने के समान उसके लिए भी 'असत्' दूर होकर केवल सत् ही शेष रहता है। ब्रह्म की आवृत्ति नहीं होती, यदि ऐसा हो, तो वह ब्रह्म नहीं होता है। आत्मा को बंधन या मोक्ष नहीं होते। उस कलाहीन, क्रियाहीन, शांत आदि गुणों वाले ब्रह्म में आकाश के भेदों की तरह कल्पना नहीं हो सकती। सत्य तो यह है कि ब्रह्म जन्मा, अजन्मा, बद्ध, साधक, मुमुक्षु या मुक्त कुछ भी नहीं है। (15-31)

□

59. पंचब्रह्मोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ॥

परमात्मा हम दोनों (गुरु एवं शिष्य) की एक साथ रक्षा करें, एक साथ हमें उपभोग प्रदान करे। हम साथ ही पराक्रम करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो, हम द्वेष न करें।

'आरंभ में क्या उत्पन्न हुआ ?' शालक के यह पूछने पर पिप्पलादि ने कहा, 'सद्योजात ब्रह्म'। शालक द्वारा इसके अन्य भेद पूछे जाने पर केवल 'अघोर' और 'वामदेव' ये दो भेद बताए। 'क्या इतने ही भेद हैं ?' यह पूछे जाने पर पिप्पलादि ने तत्पुरुष एवं ईशान-दो भेद और बताए। ईशान सभी देवताओं का प्रेरक, भूत, भविष्य तथा शासक है। इसके कितने भेद हैं ? वर्ण है ? यह सब अयोग्य व्यक्तियों को नहीं बताना चाहिए। इस महादेव को नमस्कार हो। सद्योजात संसार की परम गोपनीय वस्तु है। यह सभी सिद्धियां देता है। यही पूषा, त्रिवृत्त सभी स्वर, ऋग्वेद, गार्हपत्य अग्नि, मंत्र संगीत के सातों स्वर, पीला वर्ण तथा क्रिया, शक्ति है। अघोर, जल, चंद्र, गौ, सामवेद, नारदाभास स्वर, ये सब दक्षिणाग्नि के रूप हैं। पचास वर्णों सहित उनकी इच्छा तथा क्रियाशील रूपी अपनी विकल्प शक्ति से रक्षा करनेवाला अघोर सभी पापों-दुष्टों का नाश करके ऐश्वर्य देनेवाला है। (1-9)

वामदेव ज्ञान देनेवाला, अग्निरूपी, विद्या के प्रकाश से युक्त, करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशमान है। यह प्रसन्न, सामवेद स्वरूप आठ आकाशों से युक्त, धीर स्वरों के अधीन, श्रेष्ठ आह्वान करने योग्य ज्ञान एवं संहार, इन दो शक्तियोंवाला, शुक्ल वर्ण का, तमोगुण मिश्रित, पूर्ण ज्ञान करानेवाला, तीनों लोकों को शासित करनेवाला तथा इनसे युक्त है। लोगों को कर्मफल तथा सौभाग्य देनेवाला यह उनके हृदय के अष्टदल कमल में रहता है। 'सत्पुरुष' ब्रह्म वायुमंडल से आवृत्त, पांच अग्नियोंवाला मंत्र शक्तियों का नियामक, पचास वर्णों के स्वरूपवाला, अथर्ववेद रूप, करोड़ों लोकों का स्वामी, ब्रह्मांडों के शरीरवाला, लाल रंग का, कामना पूरी करनेवाला, सभी रोगों की औषधि, सर्वशक्तिमान, सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय का कारण तीन अवस्थाओं से भिन्न तथा ब्रह्मा आदि देवों द्वारा सेवित तुरीय ब्रह्म है। ईशान परम प्रेरक तथा बुद्धि का साक्षी है। यह आकाश स्वरूप 'ओम' से विभूषित, सर्वदेवमय, शांत, स्वरों से बाहर, अकार आदि स्वरों का पति, पांच कार्यों का शासक, पांच ब्रह्ममय, इसका निष्कर्ष, अपनी आत्मा में स्थित, अपनी माया से सभी वैभवों को अपने में रखने वाला तथा आदि-मध्य-अंतहीन स्वयं प्रकाशित है। (10-23)

देवता भी माया के कारण जगदगुरु, भगवान शंकर को नहीं जानते, उनके सामने कोई भी नहीं ठहरता। जो विश्व को प्रकाशित तथा लय करता है, 'मैं वही ब्रह्म हूं'। वही सद्योजात ब्रह्म है, ऐसा देखा-सुना जाता है। वह पंचात्मक एवं पांचों में स्थित है। 'मैं वही पंचब्रह्म हूं', ऐसे ज्ञान से ब्रह्म

अमृत का आस्वाद तथा मुक्ति मिलती है। इस पंचाक्षर मंत्र (नमः शिवाय) के आदि में 'न' तथा अंत में 'य' है, इसका जप करना चाहिए। यह सब पंचब्रह्म का ही स्वरूप है। इस परमात्मिकी विद्या को पढ़नेवाला स्वयं इसी के समान बनकर उसी में मिल जाता है। यह उपदेश स्वयं गालव को महादेव ने दिया था। गालव इससे लीन हो गए थे। इसको सुनने मात्र से न सुना हुआ सुने के समान, न जाना हुआ जानने के समान हो जाता है तथा अज्ञात का भी ज्ञान हो जाता है। जैसे मिट्टी के एक बर्तन से मिट्टी का पता लग जाता है, वैसे ही इस विद्या का ज्ञान सबके ज्ञान के समान है। (24-35)

जैसे नाखून काटने के यंत्र से उसके लोहे का ज्ञान हो जाता है, वैसे ही यदि जगत को उसके कारण ब्रह्म के समान माना जाए, तो यह सत्य नहीं होगा। वह कारण एक ही होने पर भी भिन्न भी है, अभिन्न भी तथा दोनों तरह का भी। यह भेद केवल स्वरूप के आरोप के कारण है। इस सबका कारण केवल चैतन्य ब्रह्म ही है। हृदयाकाश के दहर पुंडरीक (कमल) में ही इस शिव को मुमुक्षु देखें। यह सबका साक्षी तथा संसार को मुक्ति देनेवाला इस हृदय में रहता है। अतः इसे हृदय (बंधन से छुड़ानेवाला) कहते हैं। (36-41)

□

शारीरकोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

परमात्मा हम दोनों (गुरु एवं शिष्य) की एक साथ रक्षा करें, एक साथ हम उपभोग प्राप्त करें। हम साथ ही पराक्रम करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो, हम द्वेष न करें।

पृथ्वी, आकाश आदि महाभूतों का समूह ही शरीर है। इनमें कठिन अंश पृथ्वी, द्रव जल, उष्ण तेज, चलनेवाला वायु तथा खाली अंश आकाश का है। कान आदि ज्ञानेंद्रियां हैं। आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी में क्रमशः कान, त्वचा, नेत्र, जीभ तथा नाक हैं। वाणी, हाथ, पांव, गुदा तथा जननेंद्रिय, कर्मेंद्रियां हैं। इनके कार्य क्रमशः बोलना, लेना, चलना, मल विसर्जन तथा संभोग हैं। ये क्रमशः पृथ्वी आदि से उत्पन्न हैं। मन, बुद्धि, अहंकार एवं चित्त ये चार अंतःकरण हैं। इनके विषय क्रमशः संकल्प विकल्प, निश्चय, अभिमान तथा अवधारणा है। मन, बुद्धि, अहंकार एवं चित्त के स्थान क्रमशः गले का अंत, मुख, हृदय एवं नाभि हैं। अस्थि, चर्म, मांस, नाड़ी एवं रोम पृथ्वी के, मूत्र, रक्त, कफ एवं पसीना जल के, भूख, प्यास, आलस्य, मोह एवं मैथुन अग्नि के दौड़ना, चलना आदि वायु के तथा काम, क्रोध, मोह आदि आकाश के अंश हैं। (1-5)

शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध पृथ्वी के गुण हैं, जल के प्रथम चार अग्नि के प्रथम तीन, वायु के दो तथा आकाश का एक ही गुण शब्द है। सत्त्व, रजस एवं तमस तीन गुण हैं। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अक्रोध आदि गुण विशेषतः सत्त्वगुणी व्यक्ति के हैं। 'मैं करनेवाला हूं', 'भोगनेवाला हूं' इस प्रकार का अभिमान रजोगुणी व्यक्ति का लक्षण है। निद्रा, आलस्य, चोरी, मैथुन ये तमोगुण के चिह्न हैं। सत्त्व, रजस एवं तमस क्रमशः श्रेष्ठ, मध्यम और अधम माने जाते हैं। सही-सही ज्ञान सात्त्विक, धर्म ज्ञान रजस तथा अज्ञान तमस है। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय चार अवस्थाएं हैं। जागृत अवस्था में पांच कर्म की तथा पांच ज्ञानेंद्रियां और चार अंतःकरण, कुल चौदह रहते हैं, स्वप्न में चार अंतःकरण, सुषुप्ति में केवल चित्त और तुरीय में आत्मामात्र रह जाता है। खुले जीव तथा बंद परमात्मा के मध्य जीव क्षेत्रज्ञ होता है। (6-15)

पांच-पांच ज्ञान की, कर्म की इंद्रियां एवं पांच प्राण, मन तथा बुद्धि का सूक्ष्म रूप लिंग कहलाता है। मन, बुद्धि, अहंकार, आकाश, वायु, जल एवं पृथ्वी, ये त्वचा प्रकृति के आठ विकार हैं। सोलह विकार और कहे गए हैं। कान, शब्द, जिह्वा, नासिका, गुदा, उपस्थ, हाथ, पांव, वाणी, स्पर्श, रूप, रस एवं तेईस गंध, ये तत्त्व हैं। प्रकृति चौबीसवीं तथा पच्चीसवीं अव्यक्त या प्रधान है, पुरुष इससे भिन्न है। (16-20)

☐

61. शाटयायनीयोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है । उस पूर्ण ब्रह्म से इस पूर्ण (जगत) की उत्पत्ति हुई है, अतः उस पूर्ण ब्रह्म से यदि इस पूर्ण (जगत) को पृथक् भी कर दें तो पूर्ण ही शेष रहता है ।

विषयी मन बंधन का तथा निर्विषयी मन मोक्ष का कारण है । मन जितना विषयों में लगता है उतना यदि ब्रह्म में लगे, तो मुक्ति अवश्यंभावी है । विषयों में लगे चित्त को प्रयत्नपूर्वक शुद्ध करने से सनातन ब्रह्म से तन्मय होता है । वेद को न माननेवाला ब्रह्म को भी नहीं मानता और उसे ब्रह्मधाम भी नहीं प्राप्त होता । तत्त्व का ज्ञाता उसको जानकर ज्ञानवान बनता है । निष्काम वेदज्ञ उस सत्य से भी ऊंचे ब्रह्म को जानकर विषय रहित एवं शांत हो जाते हैं । वे मुनि किसी भी आश्रम में क्यों न रहें, अंतिम संन्यास आश्रम में पंच मात्राओं को धारण कर मोक्ष प्राप्त करें । इसमें त्रिदंड उपवीत, कौपीन, शिक्य पवित्र को जीवन पर्यंत धारण करें । ये ब्रह्म मात्राएं हैं, इन्हें मृत्यु पर ही भूमि में गाड़ना चाहिए । ये व्यक्त एवं अव्यक्त दो प्रकार के हैं, जिनमें से एक का भी त्याग करने पर पतन होता है । वेदों के अनुसार त्रिदंड वैष्णव चिह्न विप्रों को मुक्ति देनेवाला तथा सभी धर्मों का निर्वाण है । (1-10)

कुटीचक्र, बहूदक, हंस एवं परमहंस चारों प्रकार के संन्यासी विष्णुचिह्न, शिखा, जनेऊ धारण करनेवाले शुद्ध चित्त, अपने को ब्रह्म माननेवाले, चित्तरूप की उपासना में लगे नियमशील आदि से युक्त होते हैं । चारों प्रकार के संन्यासी जीवनचर्या के कारण ही भिन्न हैं । चिह्नों का त्याग कोई नहीं करता । सभी पंचयज्ञ करते हैं, ब्रह्म विद्या के वेत्ता होते हैं, संसार ब्रह्म को त्याग कर उसके मूल (ब्रह्म) के सहारे रहते हैं । कर्मकांड को छोड़कर केवल रस-रूप विष्णु के साथ खेलते हैं, उन्हीं की अर्चना करते हैं । तीन प्रकार की शक्ति से स्नान, तर्पण, मार्जन आदि उन्हें अवश्य करने चाहिए । दस प्रणवों के साथ, चार पदवाली गायत्री का जाप सात व्याहृतियों से तीनों संधियों से करना चाहिए, भगवान को गुरु मानकर योग यज्ञ करना चाहिए । मन-वाणी-कर्म से अहिंसा तप यज्ञ है । नाना उपनिषदों का अभ्यास स्वाध्याय यज्ञ है । ब्रह्म रूप अग्नि में 'ओम' उच्चारण से आहुति देना श्रेष्ठ ज्ञान यज्ञ है । ज्ञान रूपी शिखा-दंड-उपवीत वाले का ब्रह्म ज्ञान ही सफल होता है, यह वेदों का मत है । काम, क्रोध, ममता, मान-अपमान आदि को त्यागकर वृक्ष की तरह अचल रहनेवाले संन्यासी इसी लोक में जीवन्मुक्त विदेह हो जाते हैं । ये पालन-पोषण के लिए पुत्रादि को नहीं देखते । सुख-दुःख को सहते हुए आत्मा की खोज में घूमते रहते हैं । दंड आदि युक्त जटाधारी अथवा मुंडित, जनेऊ सहित देह ही इनका परिवार है । केवल प्राणों के लिए ही ये मांगकर या बिना मांगे भिक्षा लेते हैं । (11-20)

मिट्टी, लकड़ी आदि का जैसा भी पात्र हो ग्रहण करें। तिनकों या छाल आदि की कंथा (गुदड़ी) धारण करें। दो ऋतुओं के मिलने पर केवल सिर का मुंडन कराएं। वर्षा के अलावा आठ महीनों में घूमते रहें। मंदिर, वृक्ष के तले या गुफा में रहें। अपने आवरण को प्रकट न होने दें, आग बुझी लकड़ी के समान शांत रहें। किसी को देखकर विचलित न हों। अपने को ब्रह्म रूप में देख लेने पर कोई भी इच्छा शेष नहीं रहती। धैर्यवान ब्रह्मवेत्ता इसी ब्रह्म में बुद्धि को लगाए। अधिक बात न करें। इस प्रकार ब्रह्म के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है, इस निश्चय से वैराग्य को समझकर रहे। इस प्रकार संन्यास लेने पर जो ऐसा नहीं करता उसे वीर-हत्या, ब्रह्म-हत्या आदि महापाप लगते हैं। इस निष्ठा को अपनाकर त्यागने से व्यक्ति चोरी, गुरुपत्नी गमन आदि पापों के समान पापी बनता है तथा सभी लोकों से च्युत होता है। संन्यास के चिह्नों को छोड़ने से भी अनेक विपत्तियां आती हैं तथा अनंत काल तक सद्‌गति नहीं होती। सभी आश्रयों का परित्याग कर धैर्यवान लंबे समय तक मोक्ष आश्रम में रहे। यदि यह आश्रम भ्रष्ट होता है, तो उसके लिए कहीं स्थान नहीं होता। (21-30)

संन्यासी बनकर जो उसके विपरीत आचरण करता है, वेद उसे पापी कहते हैं। जो सनातन धर्म वैष्णवी निष्ठा का पालन करता है, वह इंद्रियजयी, पुण्यवान, लोकों का ज्ञाता, वेदांत-ब्रह्म तथा सब कुछ जाननेवाला बनकर ब्रह्म को प्राप्त करता है। वह पितरों, भाइयों तथा संबंधियों का तारण करता है। जिस वंश में ऐसे संन्यासी जन्म लेते हैं, उस वंश की तीस पहले की, तीस बाद की तथा तीस इसके भी बाद की पीढ़ियां तर जाती हैं। प्राणों के कंठ में आते समय भी संन्यास स्वीकार करने से पितरों की मुक्ति होती है, यह वेदों का अनुशासन (आज्ञा) है। इस सनातन वैष्णवी निष्ठा का सही पालन किए बिना उपदेश न दे। जो वेदांत का ज्ञाता न हो, आत्मज्ञानी न हो, अविनीत हो, जिज्ञासु न हो तथा शुद्धचित्त न हो, उसे भी इसका उपदेश न दे। इस विषय में चार ऋचाएं हैं। ब्राह्मण के पास आकर विद्या ने कहा, 'मैं तुम्हारी निधि हूं। मुझे दूसरों के दोष देखनेवाले को, ईर्ष्यालु, धूर्त, मूर्ख आदि को न दो। मेरी रक्षा करो। जो शुद्ध निरभिमान मेधावी ब्रह्मचारी हो उसी को यह वैष्णवी विद्या देनी चाहिए। पढ़ाए जाने पर भी जो विप्र मन, वाणी एवं कर्म से गुरु का आदर नहीं करते तथा गुरु को भोजन नहीं कराते, उसके यहां योगी भी भोजन ग्रहण नहीं करते हैं। गुरु ही परम ब्रह्म तथा परम गति है। एकाक्षर ब्रह्म का उपदेश देनेवाले गुरु का जो अनादर करते हैं, उसका ज्ञान, तपस्या आदि कच्चे घड़े से जल के समान लुप्त हो जाते हैं। जिसकी देवताओं तथा गुरु में समान रूप से परम भक्ति होती है वही ब्रह्मवेत्ता परम पद को प्राप्त करता है। यह वेदों की शिक्षा है। (31-40)

□

62. याज्ञवल्क्योपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है। उस पूर्ण ब्रह्म से इस पूर्ण (जगत) की उत्पत्ति हुई, अतः उस पूर्ण ब्रह्म से यदि इस पूर्ण (जगत) को पृथक् भी कर दें तो पूर्ण ही शेष रहता है।

विदेह जनक ने याज्ञवल्क्य के पास जाकर उनसे संन्यास के विषयों में समझाने का निवेदन किया। तब याज्ञवल्क्य बताने लगे कि 'ब्रह्मचर्य के बाद गृहस्थ आश्रम है। इसकी समाप्ति पर वानप्रस्थ होता है। अंत में संन्यास में प्रवेश होता है, किंतु सीधे ब्रह्मचर्य या गृहस्थ के बाद भी संन्यास लिया जा सकता है। व्रती हो या न हो, स्नातक हो या न हो या अग्नि की सेवा कर चुका हो अथवा न कर चुका हो, जब वैराग्य हो, संन्यास ले सकता है। तब प्राजापत्य यज्ञ किया जाता है। इसे न करने पर आग्नेय यज्ञ किया जाता है। अग्नि ही प्राण है। इससे प्राण पुष्ट होते हैं। त्रैधातीय यज्ञ भी हो सकता है। सत्त्व, रजस एवं तमस ही तीन धातुएं हैं। 'हे अग्नि! तुम्हें प्रकाशित करनेवाला कारण यही है, इसे पहचानकर तेज चलते हुए हमारी संपत्तियां बढ़ाओ। इस मंत्र से अग्नि को सूंघे। अग्नि मूल कारण योनि है। अतः योनिरूप प्राण में प्रवेश करो। (1-2)

'गांव से आग लाकर उसे जलाएं। अग्नि न मिलने पर जल में हवन करें। जल ही समस्त देवता है। मैं इनको हवि देता हूं।' इस मंत्र को पढ़कर 'स्वाहा' कहें फिर होम निकालकर थोड़ा खा लें। घी युक्त हवि रोगनाशक है। मोक्ष मंत्र को इस प्रकार पढ़ें—'वह ब्रह्म ही उपासना योग्य है' फिर शिखा को उखाड़कर तीन बार 'मैंने संन्यास ले लिया है' कहे। संन्यास ग्रहण की यही विधि है।' याज्ञवल्क्य से जनक ने पुनः पूछा कि 'बिना जनेऊ के ब्राह्मण कैसे रह सकता है?' इसके समाधान में याज्ञवल्क्य पुनः बोले, 'इस विधि के बाद संन्यासी वर्णहीन हो जाता है (अतः वह ब्राह्मण आदि कुछ भी नहीं रहता)। वह मुंडित सिर, पवित्र, अपरिग्रही तथा भिक्षाजीवी, ब्रह्म को प्राप्त होता है। संन्यास का यही मार्ग है। उसके लिए अग्नि-प्रवेश, जल-प्रवेश, वीरगति अथवा मोक्ष के बाद मृत्यु मार्ग भी ब्रह्म द्वारा बनाया गया है। इस मार्ग को संन्यासी ही जानते हैं। यह ब्रह्म ज्ञान का मार्ग है। (3-5)

'संन्यासियों में श्रेष्ठ परमहंस हैं। इनका कोई लिंग (पहचान का चिह्न) नहीं होता, इनका आचरण भी गुप्त होता है। ये पागल न होकर भी पागलों जैसा व्यवहार करते हैं। संवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु दुर्वासा, ऋभु आदि परमहंस ही थे। ये स्त्रियों से विमुख, त्रिदंडी कमंडलु वाले जल के समान पवित्र होते हैं। 'भूः स्वाहा' कहकर शिखा एवं जनेऊ का त्याग कर देते हैं। ये सुख-दुःख से दूर, कुछ भी संचय न करनेवाले, ब्रह्म तत्त्व को जाननेवाले, शुद्ध मन होते हैं तथा केवल प्राणों को रखने के लिए भिक्षा लेते हैं। इनके लिए लाभ-हानि समान है और हाथ ही पात्र है। ये कमंडलु से

पानी पीते हैं, इसमें अन्न जमा नहीं करते। कमंडलु के अतिरिक्त सभी जल-भूमि इनके पात्र हैं, सारी भूमि इनका घर है। खंडहर, मंदिर, घास-फूस, दीमकों की बांबी, वृक्ष तल, कुम्हार का छप्पर, यज्ञशाला, नदी-तट, पर्वतों की गुफाएं आदि इनके घर हैं। ये प्रयत्नपूर्वक अपने शुभ-अशुभ कर्मों को नष्ट करते हुए देह त्याग करते हैं। (6-8)

'आशांबर (दिगंबर-वस्त्र रहित) संन्यासी किसी को नमस्कार नहीं करता। वह स्त्री, पुत्र आदि से मुक्त तथा लक्ष्य आदि से रहित होता है। वह परमेश्वर बन जाता है। संन्यासी अपने से पहले संन्यासी बने व्यक्ति को अपने धर्म के अनुसार नमस्कार करे, किसी अन्य को नहीं। आलसी, चंचल, चुगलखोर तथा झगड़ालू—ऐसे संन्यासी भी होते हैं, जिन्हें वेदों ने दूषित माना है। नाम, रूप आदि से ऊपर ब्रह्म को जाननेवाला संन्यासी सभी को अपना ही रूप समझता है, अतः वह किसे प्रणाम करे? या वह चांडाल, गाय, गधे आदि में भी ईश्वर को देखकर उन सबको दंडवत् प्रणाम करता है। मांस से बनी नसों-हड्डियों से युक्त स्त्री शरीर चंचल पिटारी ही है; इसमें क्या सुंदरता है? इस शरीर से त्वचा, मांस आदि को जरा अलग-अलग करके देखो, तब कौन-सी चीज सुंदर लगती है? फिर इससे लगाव क्यों? (9-15)

'स्त्री के स्तन की उपमा मेरु पर्वत की चोटी से गिरनेवाली गंगा से दी जाती है। श्मशान में कटकर गिरा हुआ तथा कुत्ते द्वारा खाया जाता हुआ वही स्तन लोथड़ा लगता है। कजरारे चंचल नयनोंवाली सुंदरियां बड़ी मनोहर लगती हैं, किंतु ये भयंकर अग्नि के समान पुरुष रूपी तिनकों को जला डालती हैं। दूर से ही चित्त चुरानेवाली नारियां बड़ी ही रसमय लगती हैं, वस्तुतः ये नरक के अग्नि की सुंदर लगनेवाली ईंधन हैं। बहेलिए कामदेव ने पुरुष रूपी पक्षियों को फंसाने के लिए स्त्रियों को जाल बनाया है। जन्म तलैया है, मनुष्य मछली है, उसका चित्त कीचड़ है, वासनाएं रस्सी हैं तथा स्त्रियां मछली पकड़ने का कांटा हैं। स्त्री सभी दोषों की पिटारी है तथा दुःखों की जंजीर है। स्त्री भोग है। स्त्री को छोड़ना जगत को छोड़ने के समान है, जगत (माया) को छोड़कर कौन सुखी नहीं होता। पुत्र भी दुःख देनेवाला है। न हो तो दुःख, गर्भपात हो तो दुःख, प्रसव में मां को कष्ट; बीमार हो जाए, तो दुःख, धूर्त हो तो दुःख; जनेऊ हो जाने पर भी मूर्ख रहे तो भी दुःख, क्योंकि विवाह होना भी कठिन हो जाता है। यही नहीं, पुत्र यदि युवक होने पर परस्त्री से भोग करे या दरिद्र हो और अधिक संतानवाला हो या धनी भी हो यदि मर जाए तो सब प्रकार से दुःख-ही-दुःख। पुत्र से मिलनेवाले दुःखों का अंत नहीं है। (16-26)

'संन्यासी के हाथ-पांव, नेत्र तथा वाणी चंचल नहीं होने चाहिएं। उसे इंद्रियों को जीतकर ब्रह्मचारी होना चाहिए। वह सांसारिक बंधन के कारण अपने शरीर को तथा शत्रु को भी समान समझता है, अतः अपने अंगों के समान वह किसी पर क्रोध नहीं करता। अपकार करनेवाले से क्रोध करने के स्थान पर क्रोध से ही क्रोध क्यों न किया जाए, क्योंकि क्रोध धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष, सबका शत्रु है। अपने आधार (व्यक्ति) को ही नष्ट करनेवाले हे क्रोध ! तुझे नमस्कार करता हूं। मुझे वैराग्य और ज्ञान देने वाले को भी नमस्कार। लोगों के सोने पर ज्ञानी जागता है, जब वे जागते हैं, तब यही योगी सो जाता है (लोगों के विषयों में डूबने पर भी यह सावधान रहता है)। 'मैं अखंड चिन्मय हूं, यह सृष्टि भी वही है;' योगी ऐसी ही भावना करे। यही परमपद का उपदेश है। (27-33)

□

63. जाबालोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है। उस पूर्ण ब्रह्म से इस पूर्ण (जगत) की उत्पत्ति हुई है, अतः उस पूर्ण ब्रह्म से इस पूर्ण (जगत) को पृथक् भी कर दें तो पूर्ण ही शेष रहता है।

प्रथम खंड

बृहस्पति ने याज्ञवल्क्य से पूछा, 'देवताओं का क्षेत्र कौन-सा है? देवयजन क्या है? सबका ब्रह्म सदन क्या है?' याज्ञवल्क्य बोले, 'अविमुक्त ही देवताओं (प्राणों) का क्षेत्र है। यही इंद्रियों का देवयजन है और प्राणियों का ब्रह्मसदन है। अतः कहीं भी जाने पर इसी को कुरुक्षेत्र (प्राणों का स्थान) समझना चाहिए। इसी को देवयजन और ब्रह्मसदन समझना चाहिए। प्राणों के निकलने पर रुद्र तारक ब्रह्म का उपदेश देता है, जिसमें अमरता एवं मुक्ति मिलती है। अतः प्राणों को अविमुक्त (बिना मुक्त किए) ही पूजना चाहिए, इन्हें त्यागना नहीं चाहिए।

द्वितीय खंड

अत्रि ने याज्ञवल्क्य से पूछा, 'इस अनंत एवं अव्यक्त आत्मा को कैसे जाना जाए?' याज्ञवल्क्य बोले, 'अविमुक्त की ही उपासना करनी चाहिए। यह आत्मा अविमुक्त में ही स्थित है।' वह अविमुक्त किसमें स्थित है, इसके उत्तर में उन्होंने बताया कि यह वरणा एवं नासी के बीच में स्थित है। वरणा और नासी क्या है? इसका उत्तर दिया कि इंद्रियों को दोषों से रोकनेवाली वरणा तथा नासी इनके द्वारा किए गए पापों को नष्ट करती है। भौंह एवं नाक के मिलने का स्थान लोक-परलोक के मिलन का स्थान भी है। ब्रह्मवेत्ता इसकी दोनों संध्याओं में उपासना करते हैं। अतः अविमुक्त ही उपासना करने योग्य है। इसकी उपासना से ज्ञानवान बना व्यक्ति ही दूसरों को आत्मा के संबंध में उपदेश दे सकता है।

तृतीय खंड

ब्रह्मचारियों ने गुरु याज्ञवल्क्य से पूछा, 'किसके ज्ञान से अमृतत्व प्राप्त होता है?' याज्ञवल्क्य बोले, 'शतरुद्रीय का जप करने से अमृतत्व की प्राप्ति होती है। इससे प्राणी मृत्यु को जीत लेता है।

(इस उपनिषद के शेष चार खंड इससे पूर्व याज्ञवल्क्य उपनिषद का प्रारंभिक अंश ही है। अर्थात याज्ञवल्क्य उपनिषद के प्रारंभ में 'जनक द्वारा याज्ञवल्क्य से प्रश्न पूछने से लेकर संन्यासी प्रयत्नपूर्वक अपने शुभ-अशुभ कर्मों को नष्ट करते हुए देह त्याग करते हैं।' तक का वृत्तांत ही इस उपनिषद का शेष भाग है, अतः उसे यहां देना निरर्थक विस्तार ही होगा)।

☐

64. परमहंस उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ।।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है । उस पूर्ण ब्रह्म से इस पूर्ण (जगत) की उत्पत्ति हुई है, अतः उस पूर्ण ब्रह्म से यदि इस पूर्ण (जगत) को पृथक् भी कर दें तो पूर्ण ही शेष रहता है ।

भगवान ब्रह्म के पास जाकर नारद ने पूछा कि परमहंस संन्यासियों की दीक्षा कैसे होती है ? और उनका मार्ग क्या है ? इस प्रश्न पर भगवान ने बताया कि परमहंस संन्यास का मार्ग अत्यंत कठिन है । इसीलिए ये अत्यंत दुर्लभ होते हैं । कभी-कभार एकाध परमहंस दिखाई पड़ जाता है। यह बड़ा पवित्र आत्मा होता है । विद्वान इसे वेद पुरुष मानते हैं । इसका चित्त सदा मुझमें ही लगा रहता है और मैं भी उसी में रहता हूं । संन्यासी अपने पुत्र, मित्र, पत्नी आदि तथा यज्ञोपवीत, अध्ययन आदि समस्त कर्मों सहित सब प्रकार से समस्त ब्रह्मांड का भी त्याग कर देता है । यह केवल कौपीन, दंड तथा आच्छादन वस्त्र (चादर) ही धारण करता है । शरीर के उपभोग के लिए (न कि भोगों के उपभोग के लिए) तथा लोक कल्याण के लिए ही इन चीजों को धारण करता है । ये दंड आदि भी इसके लिए विशेष महत्त्व के नहीं हैं । (1)

इन वस्तुओं के साथ ही यह शीत-उष्ण, सुख-दुःख तथा मान-अपमान को भी त्याग देता है। काम, क्रोध, लोभ, निंदा, गर्व, दर्प आदि से ऊपर उठकर अपने शरीर को मृतक जैसा समझता है। इसे भ्रम और माया से मुक्ति मिल जाती है । यह सत्य ज्ञान का साकार रूप होता है । इसे संसार की किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं रह जाती है । यह 'मैं अचल-अद्वैत-आनंद-चिद्धन ब्रह्म हूं । वही परम धाम मेरी शिखा और यज्ञोपवीत है ।' ऐसा अनुभव करता हुआ आत्मा एवं परमात्मा को समान मानता है, उनमें कोई भेद नहीं मानता और यही इसकी संध्या होती है । सभी इच्छाओं को त्यागकर ज्ञानरूपी दंड को धारण करके ब्रह्म में रहनेवाला ही दंडी कहलाता है । आशा-इच्छा रखनेवाला ज्ञान-वैराग्य आदि से रहित भिक्षा मांगकर जीनेवाला संन्यासी कलंक है । वह रौरव नरक में जाता है । इस अंतर को जाननेवाला ही परमहंस बनता है । (2-3)

आशांबर (दिगंबर) नमस्कार, स्वाहा, स्वधा, निंदा, प्रशंसा न करता है; न कराता है । भिक्षा मांगकर पेट भरता है । देवपूजा, आह्वान, विसर्जन, मंत्र, ध्यान, उपासना आदि कुछ नहीं करता। उसके लिए कोई भी प्राणी या वस्तु उससे अलग नहीं होती । उसे सोने या किसी भी वस्तु का संग्रह नहीं करना चाहिए । उसके लिए कोई भी वस्तु बाधा नहीं बनती, कोई वस्तु दर्शनीय नहीं रहती और संग्रह करनेवाले संन्यासी को ब्रह्म-हत्या का पाप लगता है । वह रूप, रस, सुख, दुःख, अनुराग, द्वेष आदि से बहुत दूर होता है । वह सब इंद्रियों से ऊपर होकर आत्मा में स्थित रहता है । उस पूर्ण आनंद के ज्ञान से 'मैं वही ब्रह्म हूं' ऐसा मानता हुआ संन्यासी अपने जीवन को धन्य करता है । (4)

□

65. निर्वाणोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविराविम एधि वेदस्य न आणिस्थः । श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रान्संदधाम्यृतं वदिष्यामि । सत्यं वदिष्यामि । तन्मामवतु तद्वक्तात्मवतु । अवतु मामवतु वक्तारम ।

ॐ शांतिः शंतिः शांतिः ।

हे परमात्मा, मेरी वाणी, मन में प्रतिष्ठित हो, मेरा मन वाणी में प्रतिष्ठित हो, तुम मेरे समक्ष प्रकट होओ । मुझे वेदों का ज्ञान दो । मैं सुने हुए ज्ञान को न भूलूं । इस अध्ययन से मैं रात-दिन एक कर दूं, मैं ऋत एवं सत्य बोलूं । मेरी रक्षा करो । मेरे गुरु की रक्षा करो । हम दोनों की रक्षा करो । दैहिक, दैविक तथा भौतिक, तीनों प्रकार के ताप (कष्ट) शांत हों ।

यहां निर्वाण ज्ञान की व्याख्या की जाती है । मैं परमहंस ही हूं, परिव्राजकों के कोई चिह्न नहीं होते । वे कामदेव को रोकने में क्षेत्रपाल के समान होते हैं । संदेहरहित आत्मा ही उनका ऋषि है, मोक्ष देवता है, उनका उद्देश्य आकाश के समान बिना कोई अपेक्षावाला होता है, अमृत तरंगों से कल्लोल करनेवाली नदी के समान आत्मा ही संन्यासी है, मोक्ष ही उसका स्वरूप है, उसकी प्रवृत्ति उपाधि (माया) रहित होती है, उच्च स्थिति के लिए अभ्यास करना ही उसकी पीठ (उपासना स्थल) है, ब्रह्म से मिलना ही दीक्षा है, संसार से मुक्ति ही उसके लिए उपदेश है, पवित्र संतोष उसकी आनंदमाला है । वे बारह सूर्यों को देखते हैं, विवेक उनकी रक्षा करता है, करुणा ही उनका खेल है, एकांत में मुक्तासन लगाना उनकी गोष्ठी (सभा) है, हंस ही उनका आचरण तथा सिद्धांत है, धीरज उनकी चादर है, संसार के प्रति उदासीनता कौपीन है, विचार ही दंड है, ब्रह्म को दिखानेवाला योग ही उनका पट्टा है, पादुका ही संपत्ति है, ईश्वर की इच्छा ही उनका आचरण है और कुंडलिनी ही उनका बंध है । वह दूसरों की निंदा न करने से ही जीवन्मुक्त बनता है । कल्याणमय योग निद्रा तथा खेचरी मुद्रा परम आनंददायक है ।

ब्रह्म तीनों गुणों से रहित है । मन एवं वाणी विवेक से ही उसे पा सकती हैं । अनित्य संसार में जन्म लेनेवाले प्राणी स्वप्न जगत या धोखा देने के लिए बनाए गए हाथी के समान हैं । ये शरीर आदि मोह के जाल तथा रस्सी में सांप के भ्रम के समान केवल कल्पना हैं । विष्णु, ब्रह्मा आदि सैकड़ों नामोंवाला ब्रह्म ही सबका लक्ष्य है । मन पर अंकुश लगाना ही इसे प्राप्त करने का मार्ग है । परमेश्वर की सत्ता शून्य नहीं है, इसके संकेत मिलते हैं । सत्य सिद्ध हुआ योग ही मठ है । अमर पद ब्रह्म का स्वरूप नहीं है । वह आदि ब्रह्म स्वयं ज्ञानमय है । अजपा गायत्री से विकारों को दंडित करना ध्येय है । मन को रोकना कंथा है । योग से सदा आनंदमय स्वरूप का दर्शन होता है । संन्यासी आनंदरूपी भिक्षा को खानेवाले हैं । महान श्मशान में रहना भी उन्हें आनंदवन में रहने के समान लगता है । एकांत स्थान उनके लिए मठ है, उन्मन अवस्था गति है, उनका निर्मल शरीर

निरालंब पीठ के समान है, अमृत आनंद में कल्लोल क्रीड़ा करते हुए वे मग्न रहते हैं। परमात्मारूप आकाश में शम-दम आदि से वे ब्रह्म से मिलते हैं। वे तारक ब्रह्म का उपदेश देते हैं। अद्वैत ब्रह्म ही उनका आराध्य है। इंद्रिय संयम उनका वेद है। भय, क्रोध, मोह आदि को छोड़ना त्याग है। ब्रह्म से एकता ही उनके लिए स्वाद है। किसी को वश में न करना तथा तिरस्कार न करना ही उनकी निर्मल शक्ति है। वे स्वयं प्रकाश ब्रह्म के संपुट से माया को काटते हैं। इसी से आसक्ति को जलाते हैं। आकाश के आधार ब्रह्म को धारण करना ही उनका यज्ञोपवीत एवं शिखा है। 'सत' ब्रह्म, उसका दर्शन एवं कर्मों को नष्ट करना ही क्रमशः उनका दंड कमंडलु तथा कंथा है। माया, ममता और अहंकार को जलाकर श्मशानवास ही उनकी जीवनचर्या है।

त्रिगुणहीन स्वरूप को खोजने के लिए माया को नष्ट करने में ही उनका समय बीतता है। काम आदि को वे जला डालते हैं। वे कठिन एवं दृढ़ कौपीन (लंगोट) वाले होते हैं। पुराने जीर्ण वस्त्र उनके वस्त्र होते हैं। वे अनाहत का बिना किसी क्रिया के सेवन करते हैं। मोक्ष मिलने पर कोई आचार-विचार नहीं होता, ऐसा स्मृतियों का कथन है। उनका आचार परम ब्रह्म रूप नाव के समान होता है। ब्रह्मचर्य आश्रम में शांतिपूर्वक ज्ञान प्राप्त करके पुनः वानप्रस्थ में अध्ययन करके सबसे भिन्न संन्यास आश्रम होता है। अंत में अखंड ब्रह्म के समान बनकर समस्त संदेहों को नष्ट करना, यही निर्वाण का दर्शन है। इस ज्ञान को शिष्य या पुत्र को छोड़कर अन्य किसी को नहीं देना चाहिए।

□

66. परमहंस परिव्राजकोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभ्यः श्रृणुयामः देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषाः विश्ववेदाः ।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

हम कानों से कल्याणमय वचन सुनें, नेत्रों से कल्याणमय चीजों को देखें और दृढ़ अंगोंवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करें। इंद्र हमारा कल्याण करें, पूषा हमारा कल्याण करें, अमंगल नाशक गरुड़ और बृहस्पति हमारा कल्याण करें। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दुःख शांत हों।

अपने पिता आदिनारायण के पास जाकर पितामह ब्रह्मा ने प्रणाम करने के बाद कहा, 'वर्णाश्रम धर्म को तो मैं आपके मुख से सुनकर जान चुका हूं। अब मैं परमहंस परिव्राजक के लक्षण जानन चाहता हूं। परिव्राजक (संन्यासी) बनने का अधिकारी कौन है? उसके क्या लक्षण होते हैं? परमहंस परिव्राजक कौन हैं? कृपया यह सब बताइए।' योग्य गुरु के पास सभी विद्याओं को परिश्रम से प्राप्त करके विद्वान व्यक्ति इस लोक के सुखों को भ्रम समझें। तब तीनों तरह की इच्छाओं, वासनाओं, ममता, अहंकार आदि वमन के समान समझकर मोक्ष मार्ग के एक अनिवार्य उपाय गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करे। इसके बाद क्रमशः वानप्रस्थी एवं संन्यासी बने। इससे पूर्व ब्रह्मचर्य या गृहस्थ के बाद भी संन्यासी बन सकता है। व्रती-अव्रती, स्नातक- अस्नातक, अग्नि सेवक हो या न हो, वैराग्य होने पर पुत्र, पत्नी आदि त्यागकर संन्यास ले। संन्यास लेने से पूर्व प्राजापत्य यज्ञ करे। आग्नेयी करे। अग्नि ही प्राण है। या त्रैधात्वीय ही करे। सत्त्व, रजस एवं तमसी तीन ही धातुएं हैं। फिर इस मंत्र से अग्नि को सूंघे—'हे अग्नि, यही तुम्हें प्रकाशित करनेवाला कारण है। तेज जलते हुए इसको पहचानकर हमारी संपत्तियों तथा ऐश्वर्यों की वृद्धि करो।' 'अग्नि मूल कारण योनि है, अतः इसमें प्रवेश करो,' इस मंत्र से आहुति दे, फिर ग्रास से आहुति देनेवाले के घर से अग्नि लाकर, जलाकर पूर्व विधि के अनुसार अग्नि को सूंघे। यदि अग्नि न मिले, तो जल में हवन करे। अग्नि देवताओं का रूप है। अतः मैं उनके लिए जल से हवन करता हूं, स्वाहा' इस प्रकार हवन करके घी सनी आहुति को खाए। यह वीर विधि का मार्ग है, जो अग्नि, जल प्रवेश या महाप्रस्थान का मार्ग है। यदि इसमें समर्थ न हो, तो मन या वाणी से ही संन्यास ले। (1-2)

'तब प्रसन्न मन से नियम सहित आत्मश्राद्ध और विरजा होम करे। अग्नि को अपनी आत्मा में स्थित समझकर लौकिक एवं वैदिक नियमों से अपनी सामर्थ्य के अनुसार चौदह वृत्तियों को अपने पुत्र में स्थापित कर दो। पुत्र न होने पर शिष्य में, वह भी न होने पर आत्मा में ऐसा करे। ब्रह्म

का ध्यान करते हुए 'तुम ब्रह्म हो, तुम यज्ञ हो' इस मंत्र के साथ सावित्री में प्रवेश करे। सभी वेदों की मां गायत्री को जल में व्याहृति से लय करे और उस जल को पिए। प्रणव का उच्चारण करके शिखा को उखाड़ दे और वस्त्रों को भी त्याग कर इसके साथ ही भूमि में या जल में विसर्जित कर दे। 'ओम भूः स्वाहा' 'ओम भुवः स्वाहा' मंत्र से वस्त्रहीन होकर अपने रूप का ध्यान करे। फिर प्रणव की व्याहृतियों से 'मैंने मन, वाणी और कर्म से संन्यास ले लिया है' ऐसा पहले धीरे, फिर मध्यम तथा फिर ऊंचे स्वर में तीन बार कहे। तब सभी प्राणियों को अभय दान देने के लिए हाथ ऊपर उठाकर प्रणव का ध्यान करता हुआ 'मैं ब्रह्म हूं', 'तुम वही ब्रह्म हो', इन महावाक्यों पर विचार करता हुआ उत्तर दिशा में चला जाए। यही संन्यास लेना है।

'यदि ऐसा न कर सके, तो गृहस्थ के बाद सभी प्राणियों को अभय दान देकर 'सखा मा··' मंत्र से निर्दोष बांस का दंड लेकर कमंडलु तथा गेरुआ वस्त्र पहनकर किसी योग्य गुरु से 'तत्त्वमसि' तथा प्रणव ज्ञान प्राप्त करे। फिर छाल या मृगचर्म धारण करे। जल में तैरना, सवारी करना तथा एक ही घर से भिक्षा लेना, ऐसा न करे। तीनों समय स्नान करे, वेदांत श्रवण और अध्ययन करे, प्रणव का अनुष्ठान, ब्रह्मज्ञान करके अपने विचारों को गुप्त रखे। काम, क्रोध आदि को त्यागकर ज्ञान-वैराग्य से युक्त, शुद्ध तथा स्त्रियों से दूर रहे। सभी उपनिषदों को जानकर ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह आदि का पालन करे। सभी प्रकार के अनुराग से दूर रहे। पतितों को छोड़कर शरीर-रक्षा के लिए चारों वर्णों से भिक्षा मांगे। लाभ-हानि को समान समझता हुआ हाथ को ही बर्तन समझे और इसी में भोजन करे। शरीर में चर्बी न बढ़ने दे। 'मैं ब्रह्म हूं' ऐसा मानकर वर्ष में गांवों में मांगता हुआ घूमता रहे।

'ज्ञान प्राप्त होने पर कुटीचक्र, बहूदक, हंस या परमहंस बनकर नग्न रहे। कौपीन आदि को भी जल में बहा दे। गांव में एक, तीर्थ में तीन, छोटे कस्बों में पांच तथा शहर में सात रात्रि रहे। बुद्धि को चंचल न करे, निर्विकार रहे, नियम-अनियम त्याग दे। गाय की तरह मांगे। जलाशय को ही कमंडलु समझे। शुभ-अशुभ कर्मों को नष्ट कर, भूमि में शयन करे। सात्त्विक रहे। स्त्री-पुत्र आदि का ध्यान न करे। ज्ञानी होने पर भी अज्ञानी की तरह गुप्त रहे। इस प्रकार रात-दिन अपने स्वरूप के अनुसंधान में तथा प्रणव के ध्यान में लगा हुआ देह त्याग करनेवाला परमहंस संन्यासी ही होता है।' (3)

'ब्रह्म प्रणव कैसा होता है?' ब्रह्मा के इस प्रश्न पर नारायण ने बताया—'यह सोलह प्रकार का होता है। चारों अवस्थाओं में चारों को मिलाने से ये भेद होते हैं। जागृत अवस्था में जागृत तथा जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय, इसी प्रकार स्वप्न में भी चारों सुषुप्ति में भी चारों तथा तुरीय में भी चारों अवस्थाएं रहती हैं। जागृत अवस्था में विश्व चार प्रकार का होता है—विश्व-विश्व, विश्व-तैजस, विश्व-प्राज्ञ एवं विश्व- तुरीय। स्वप्न अवस्था में तैजस चार प्रकार का होता है। तैजस-विश्व, तैजस-तैजस, तैजस-प्राज्ञ एवं तैजस-तुरीय। इसी प्रकार सुषुप्ति में प्राज्ञ तथा तुरीय में तुरीय भी चार प्रकार का होता है। (ओम् = अ + उ + म्) 'अ' में जागृत विश्व, 'उ' में जागृत तैजस, 'म' में जागृत प्राज्ञ तथा अर्द्धमात्रा में जागृत तुरीय होता है। बिंदु, नाद, कला, कलातीत, शांति, शांति-अतीत, उन्मनी तथा मनोन्मनी में क्रमशः स्वप्न विश्व, स्वप्न तैजस, स्वप्न प्राज्ञ, स्वप्न तुरीय, सुषुप्त विश्व, सुषुप्त तैजस, सुषुप्त प्राज्ञ तथा सुषुप्त तुरीय होता है। पूर्ण तुरीय (वैखरी) में विश्व,

मध्यमा में तुरीय तैजस, पश्यंती में तुरीय प्राज्ञ और परा में तुर्येतुरीय होता है। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय की चार मात्राएं क्रमशः 'अ' 'उ' 'म्' एवं अर्द्धमात्रा के अंश हैं। यही ब्रह्म प्रणव है, जिसकी परमहंस तुरीयातीत तथा अवधूत उपासना करते हैं। उसी से ब्रह्म प्रकाशित होता है, उसी से विदेह मुक्ति होती है।' (4)

ब्रह्मा ने पूछा कि 'बिना जनेऊ और चुटिया के ब्राह्मण ब्रह्मनिष्ठ कैसे होगा? यह तो धर्म त्याग है', इस पर विष्णु बोले, 'अरे-अरे बच्चे! उसका अद्वैत ज्ञान ही उसको चुटिया, जनेऊ तथा धर्मनिष्ठा होती है। वह सब कर्मों से पवित्र ब्राह्मण होता है। वह केवल ब्रह्मनिष्ठावाला ही नहीं, अपितु उसे देवता, ऋषि, तपस्वी, श्रेष्ठ तथा परमश्रेष्ठ समझना चाहिए। संसार में परमहंस परिव्राजक के दर्शन दुर्लभ हैं। विरला ही परमहंस होता है। वह पवित्र होता है, वेदस्वरूप होता है। उसका चित्त मुझमें ही लगा रहता है साथ ही मैं भी उसी में रहता हूं। वह सदा तृप्त रहता है। वह शीत-उष्ण, सुख-दुःख एवं मान-अपमान को समान समझता है। वह निंदा, क्रोध आदि से शून्य तथा श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठ होता है। उसमें छोटे-बड़े की भावना नहीं होती। वह सभी में अपने को ही देखता है तथा दिशाएं ही उसके वस्त्र होते हैं। वह नमस्कार, स्वाहा, स्वधा तथा देवपूजन-विसर्जन नहीं करता। निंदा-प्रशंसा, मंत्र आदि से दूर रहता है। वह केवल ब्रह्म का ज्ञाता तथा ध्यान करनेवाला होता है। 'मैं ब्रह्म हूं' ऐसे अनुभव वाला और प्रणव की खोज में लगा परमहंस परिव्राजक धन्य हो जाता है।' (5)

□

67. भिक्षुकोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है। उसी पूर्ण से इस पूर्ण की उत्पत्ति हुई है, अतः उस पूर्ण से इस पूर्ण को निकाल देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है।

मोक्ष के इच्छुक भिक्षु चार प्रकार के होते हैं—कुटीचक्र, बहूदक, हंस और परमहंस। गौतम, भारद्वाज, याज्ञवल्क्य, वशिष्ठ आदि कुटीचक्र ही थे। कुटीचक्र केवल आठ ग्रास भोजन करके योग के मार्ग से मोक्ष प्राप्त करते हैं। बहूदक, त्रिदंड, कमंडलु, शिखा, जनेऊ तथा काषाय (गेरुआ) वस्त्र धारण करते हैं। ये मधु-मांस का त्याग करके केवल महर्षि के घर से आठ कौर भोजन करते हैं तथा योगमार्ग से मोक्ष प्राप्त करते हैं। हंस संन्यासी गांव में एक रात्रि, नगर में पांच रात्रि तथा क्षेत्र में सात रात्रि से अधिक नहीं रुकते। ये गोबर एवं गोमूत्र का आहार करते हुए सदा चांद्रायण व्रत करते हैं और योग के मार्ग से मोक्ष प्राप्त करते हैं। परमहंस संन्यासी भी आठ कौर भोजन करते हैं। योग से मोक्ष प्राप्त करते हैं। संवर्तक, आरुणि, श्वेतकेतु, जड़भरत, दत्तात्रेय, शुकदेव, वामदेव, हारीत आदि परमहंस ही थे। ये वृक्ष के नीचे, उजड़े घर या श्मशान में कहीं भी दिगंबर या वस्त्रधारी दोनों रूपों में रहते हैं। इन्हें धर्म-अधर्म, लाभ-हानि, वर्ण-जाति से कोई सरोकार नहीं होता। सभी में एक ही आत्मा को देखते हुए सबसे भिक्षा लेते हैं। ये वस्त्रहीन, निर्द्वंद, अपरिग्रही, ब्रह्म के ध्यान में लगे हुए केवल प्राणों की ही रक्षा हेतु भिक्षा मांगते हैं। सूने घर, मंदिर, नदीतट, दीमक की बांबी, कुम्हार का छप्पर, यज्ञशाला, पहाड़ी गुफा, गड्ढा आदि किसी भी स्थान में रहते हुए ब्रह्म के मार्ग में लगे हुए शुद्ध मन से परमहंस संन्यासी के नियमों का पालन करते हुए देह त्याग करते हैं, वही परम हंस हैं। (1-5)

□

68. अवधूतोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

परमात्मा हम दोनों (गुरु एवं शिष्य) की एक साथ रक्षा करे, एक साथ हमें उपभोग प्रदान करे। हम साथ ही पराक्रम करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो, हम द्वेष न करें।

सांकृति ने दत्तात्रेय से पूछा, 'भगवन ! अवधूत कैसा होता है ? उसका क्या लक्ष्य होता है ? उसकी कैसी स्थिति होती है ? तथा उसकी पहचान क्या है ?' यह सुनकर परम दयावान दत्तात्रेय बोले, 'जो अक्षर (अविनाशी) बन जाए, सबके लिए पूज्य बन जाए, संसार के बंधनों से मुक्त हो जाए तथा 'तत्त्वमसि'— तुम वही ब्रह्म हो, इसे जान जाए, वही अवधूत कहलाता है। जो वर्ण आश्रम (जात-पांत) के बंधनों से ऊपर उठकर आत्मा में स्थित हो जाए, उस अति वर्णाश्रमी योगी को अवधूत कहते हैं। ब्रह्म, मोद एवं प्रमोद (प्रसन्नता आदि) क्रमशः जिसके सिर, बायां एवं दाहिना हाथ बन जाएं वह आनंदमय व्यक्ति गाय की तरह पवित्र बन जाता है। ग्वाला जैसे गाय के सिर में, मध्य में (पीठ में) या पांवों में नहीं रहता, अपितु उसकी पूंछ की ओर रहता है। भगवान भी उसकी पूंछ में रहता है। अतः उसे इस पूंछ की तरफ रहना चाहिए। इस प्रकार ये चार मार्ग परम गति देनेवाले हैं। (1-5)

'कर्म संतान या धन से उतनी जल्दी अमृत्व प्राप्त नहीं होता, जितना त्याग से होता है। अपनी इच्छा के अनुसार विहार करना ही उसका संसार होता है, वे वस्त्रवाले भी होते हैं तथा दिगंबर भी। उनके लिए धर्म-अधर्म या पवित्र-अपवित्र कुछ भी नहीं होता। वे आत्मा में ही अश्वमेध यज्ञ करते हैं। वे महान यज्ञकर्ता तथा महान योगी होते हैं। उनका हर कर्म विचित्र होता है। उनके मनमाने आचरण की निंदा नहीं करनी चाहिए। मूर्खों के समान वे पाप-पुण्य में लिप्त नहीं होते। जैसे सूर्य सभी रसों को भोगता है और अग्नि सब कुछ खा जाता है, वैसे ही योगी विषयों को भोगता है, किंतु शुद्ध होने से उसे पुण्य-पाप नहीं छूते। जैसे समुद्र में जल प्रवेश करते हैं, वैसे ही योगी में कामनाएं प्रवेश करती हैं, किंतु वह शांत रहता है कामनाएं नहीं करता। सत्य तो यह है कि किसी का विरोध, उत्पत्ति, बंधन नहीं है और न कोई साधक मुमुक्षु या मुक्त ही है। 'यहां और परलोक में कार्यों एवं मुक्ति के लिए मुझे बहुत कर्म करने थे। अब यह सब हो गया है।' इस तरह विचारता हुआ अवधूत सदा तृप्त रहता है। अज्ञानी पुत्र आदि की इच्छा से संसार में फंसकर दुःखी होते हैं। मैं परम आनंद पा चुका हूं। अतः मैं क्यों इसमें फंसूं ? परलोक जाने के इच्छुक सत कर्म करें। मैं सभी लोकों का आत्मा तथा साक्षात सभी लोक हूं। मुझे कोई कर्म की आवश्यकता नहीं है। (6-15)

'जिसे अधिकार है, 'वे व्याख्यान दें या वेद पढ़ें, किंतु मैं अधिकारहीन ही नहीं क्रियाहीन भी

हूं। मुझे निद्रा, स्नान आदि की इच्छा नहीं है और न मैं ऐसा करता ही हूं। लोग भले ही गुंजा को आग समझें, किंतु इससे वह जलता नहीं। मैं मायामय संसार को मानता ही नहीं, अतः भजन भी नहीं करता। जो तत्त्व को नहीं जानते या संशय में हैं, वे भले ही श्रवण-मनन के चक्कर में पड़ें। मेरे संशय नष्ट हो गए हैं और मुझे तत्त्वज्ञान हो गया है, अतः कुछ सुनने या मनन करने की आवश्यकता ही नहीं है। इसी प्रकार जिन्हें ध्यान आदि की आवश्यकता हो करें। पूर्व जन्म के कर्मों का नाश होने तक कितना ही ध्यान करें यह व्यवहार शांत नहीं होता। इसे कम करने के लिए लोग भले ही ध्यान करें, मैं तो कर्म को ही नहीं मानता। मुझसे श्रेष्ठ कोई नहीं है, अतः मुझे समाधि की भी आवश्यकता नहीं है। मुझे जो प्राप्त करना था, वह सदा के लिए प्राप्त हो गया है। अब मुझे वैदिक या लौकिक किसी कर्म की आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः मैं अकर्ता (कुछ भी नहीं करनेवाला) हूं। मैं सब कुछ पा चुका हूं, अतः यदि लोगों के आग्रह पर शास्त्रों के अनुसार चलूं भी, तो मेरी क्या हानि? शरीर भले ही पूजा, स्नान आदि करे, वाणी भले ही 'ओम' का जप या उपनिषदों का पाठ या ब्रह्मा, विष्णु आदि का नाम ले, किंतु 'मैं' तो ब्रह्म आ नंद में लीन हो गया हूं, मैं केवल साक्षी हूं, कोई भी काम नहीं करता। मैं सदा अपने मन में स्वयं को कृतकृत्य मानता हूं। मुझे जो पाना था, मैंने पा लिया है। (16-29)

'मैं धन्य-धन्य हो गया हूं, क्योंकि मैं अपनी आत्मा को सरलता से जानता हूं। मुझे ब्रह्मानंद स्पष्ट हो गया है। अब मैं सांसारिक दुःख नहीं देखता। मेरा अज्ञान कभी का नष्ट हो गया है। मुझे अब कुछ भी नहीं करना है। जो कुछ भी प्राप्त करना था, मैंने यहीं प्राप्त कर लिया है। मेरी तृप्ति की संसार में कोई उपमा ही नहीं है। मैं बार-बार धन्य हूं। अहो पुण्य! मुझे यह दृढ़ता से फलीभूत हुआ है। अहो संपत्तियां! अहो हम !अहो सुख! अहो ज्ञान! अहो शास्त्र! अहो गुरु!'

'इसका अध्ययन करनेवाला कृतकृत्य हो जाता है। उसके सुरापान, सोने की चोरी ब्रह्म-हत्या तथा भले-बुरे कार्यों के पाप-दोष छूट जाते हैं। इस ज्ञान को प्राप्त करके इच्छानुसार प्रवृत्ति होती है।'

□

69. योगचूड़ामणि उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ अप्यायंतु ममांगानि वाक्प्राणचक्षुषः श्रोत्रमथो बलमिंद्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मौपनिषद माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोदनिराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि संतु ते मयिसंतु।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

मेरे अंग वृद्धि को प्राप्त हों। वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र आदि इंद्रियां तथा बल समृद्ध हों। यह उपनिषद वेद्य ब्रह्म हैं। ब्रह्म मेरा परित्याग न करे। मैं ब्रह्म का परित्याग न करूं। हमारा परस्पर अनिराकरण हो। मैं उपनिषदों के अध्ययन में निरत रहूं, इनका ज्ञान मुझे प्राप्त हो। दैहिक, दैविक एवं भौतिक तीनों प्रकार के ताप नष्ट हों।

प्रथम अध्याय

योगियों के हित की कामना की दृष्टि रखते हुए योग चूड़ामणि उपनिषद का वर्णन करता हूं। यह ज्ञान कैवल्य की (मोक्ष की) सिद्धि देनेवाला है, गोपनीय है तथा योग तत्त्व के जानने वाले श्रेष्ठ योगियों ने सदा इसको अपनाया है। आसन, प्राणसंरोध (प्राणायाम), प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि, योग के ये छः अंग होते हैं। इसके पश्चात आसनों की गणना होती है। योग के इन आसनों में प्रथम आसन सिद्धासन, दूसरा कमलासन, अर्थात पद्मासन है। षटचक्र, षोडश आधार, तीन लक्ष्य तथा पांच आकाशों को जो योगी अपने शरीर में नहीं देखता, उसे सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती है? इनमें आधार (मूलाधार) चार दलोंवाला है। स्वाधिष्ठान छः दलोंवाला है। नाभि में दस दलोंवाला कमल है और हृदय में बारह दलोंवाला पद्म कमल स्थित है। हृदय में बारह दलों (पत्रों, अर्थात पंखुड़ियों)वाला, विशुद्ध चक्र में सोलह पंखुड़ियोंवाला तथा भ्रूमध्य दोनों भौंहों के मध्य में दो पंखुड़ियों से युक्त कमल सुशोभित है। (1-5)

ब्रह्मरंध्र के महापथ में हजार दलोंवाला कमल है। आधार चक्र प्रथम चक्र है। इसके पश्चात स्वाधिष्ठान नामक चक्र द्वितीय चक्र है। दोनों के मध्य में योनिस्थान अथवा कामरूप स्थित है। गुदा स्थान में कामाख्य, चार दलवाला कमल है। इसके बीच में कामाख्या नामक योनि है, जिसकी सिद्ध सदा से वंदना करते आए हैं। कामाख्या के बीच में पश्चिम की ओर मुंहवाला महालिंग स्थित है। नाभि में मणि के समान बिंब; अर्थात मणिपुर को जाननेवाला वस्तुतः योग का जाननेवाला होता है। तपाए गए सोने के समान प्रकाशमान बिजली की धार के समान चमचमाता हुआ त्रिकोण के आकारवाली वह्नि का स्थान मेद्र के नीचे है। समाधि में स्थित योगी को चारों ओर मुखोंवाली परम ज्योति अपने अंतः में दिखाई देती है। (6-10)

इस परम ज्योति के इस प्रकार अपने अंतः में दर्शन होने पर योगी पुनर्जन्म के बंधन से पूर्णतया

मुक्त हो जाता है। योग की शब्दावली में प्राण का एक दूसरा नाम 'स्व' भी है, इसका आश्रय स्थान पूर्व वर्णित स्वाधिष्ठान नामक द्वितीय चक्र है। स्वाधिष्ठान के आश्रय में रहने के कारण इसे मेंद्र भी कहा जाता है। यहां यह तंतु द्वारा पिरोई गई मणि के समान सुषुम्ना नाड़ी का केंद्र भी है। उस नाभि-मंडल में चक्र को मणिपूरक कहा जाता है। बारह पंखुड़ियोंवाले पाप एवं पुण्य से मुक्त महाचक्र में जीव का भ्रमण तभी तक होता है, जब तक वह परम तत्त्व ब्रह्म को नहीं देख लेता है। स्वाधिष्ठान के आश्रय में रहने वाले मेंद्र से ऊपर तथा नाभि के नीचे पक्षियों के अंडे जैसी आकृतिवाली कंद योनि स्थित रहती है। यहां से बहत्तर हजार की संख्या में नाड़ियां उत्पन्न होती हैं। इन बहत्तर हजार नाड़ियों में बहत्तर नाड़ियों की ही गणना मुख्य रूप में की जाती है। (11-15)

इन बहत्तर नाड़ियों में से भी दस नाड़ी अति महत्त्वपूर्ण है, जो प्राणों को धारण करती हैं। इनमें प्रथम इड़ा, दूसरी पिंगला, तीसरी सुषुम्ना, चौथी गांधारी, पांचवीं हस्तजिह्वा, छठी पूषा, सातवीं यशस्विनी, आठवीं अलंबुषा, नवीं कुहू तथा दसवीं शंखिनी है। इन नाड़ियों के महाचक्र का योगियों को सदा ही ज्ञान होना चाहिए। इन दसों नाड़ियों में प्रथम नाड़ी बायीं ओर है तथा पिंगला दाहिनी ओर स्थित है। तीसरी नाड़ी सुषुम्ना इड़ा एवं पिंगला के बीच में होती है। गांधारी नाड़ी वाम नेत्र में स्थित है तथा हस्तजिह्वा नाम की नाड़ी का स्थान दक्षिण नेत्र होता है। पूषा नाड़ी का निवास दक्षिण कान में और यशस्विनी नाड़ी बाएं कान में रहती है। मुख में अलंबुषा का निवास है। लिंग इंद्रिय में कुहू स्थित है और दसवीं शंखिनी नाड़ी मूल स्थान में प्रतिष्ठित है। (16-20)

इस प्रकार से शरीर के विभिन्न भागों में विभिन्न नाड़ियों ने आश्रय लिया हुआ है। कहीं कोई नाड़ी स्थित है, तो कहीं कोई। इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना ये तीनों ही नाड़ियां प्राण मार्ग में अर्थात श्वास मार्ग में रहती हैं। (स्वर विज्ञान में भी बाएं स्वर को इड़ा नाड़ी या चंद्र स्वर कहते हैं। दाहिना स्वर पिंगला या सूर्य स्वर कहलाता है। दोनों नासिकाओं से वायु; अर्थात सांस चलने पर इसे सुषुम्ना कहा जाता है।) सोम, सूर्य तथा अग्नि देवता सदा प्राण वायु में स्थित रहा करते हैं। मानव के शरीर में दस प्रकार के वायु माने जाते हैं। इनके नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनंजय। इनमें प्राण से लेकर उदान तक, प्रथम पांच वायु कहलाते हैं तथा शेष नाग से धनंजय तक, पांच उपवायु हैं। (प्राण, अपान, समान, व्यान तथा उदान इन पांचों को पांच प्राण भी कहा जाता है।) इनमें प्राण नामक प्रथम वायु का स्थान हृदय होता है और अपान वायु गुदा स्थित रहती है। समान वायु नाभि के स्थान में रहता है और उदान का निवास स्थान कंठ में होता है, किंतु व्यान नामक वायु व्यक्ति के समस्त देह में व्याप्त रहता है। ये पांचों प्राण वायु कहलाते हैं। उदगार, अर्थात डकार में नाग वायु को समझना चाहिए, छींकने में कृकर वायु होती है। पलकों को बंद करना (पलक झपकाना) कूर्म वायु का कार्य है। जम्हाई लेने में देवदत्त नामक उपवायु को समझना चाहिए। समस्त देह में व्याप्त रहने वाला उपवायु धनंजय कहलाता है, इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह व्यक्ति के मर जाने पर भी उसे नहीं छोड़ता है। (21-26)

इन सभी नाड़ियों में क्या जीव और क्या जंतु; सभी प्राणी भ्रमण करते हैं। जिस प्रकार गेंद एक हाथ से दूसरे हाथों में फेंकी जाती रहती है, उसी प्रकार प्राण (मुख्य प्राण) भी प्राण वायु के तथा

अपान वायु के वेग से कभी भी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहता है। यह जीव (प्राण) वस्तुतः अपने वश में न होकर प्राण एवं अपान इन दो वायुओं के वश में है और सदा ही इन दोनों के द्वारा ऊपर-नीचे दौड़ता रहता है। इस प्रकार यद्यपि यह दाएं-बाएं मार्गों से सदा संचार करता रहता है, किंतु यह इतना चंचल होता है कि दिखाई ही नहीं देता है। जैसे एक बाज जो रस्सी से बंधा रहता है, वह चाहे उड़ने का कितना ही प्रयत्न क्यों न करे, जब चाहे रस्सी के द्वारा पुनः खींच लिया जाता है, उसी प्रकार सांसारिक गुणों से बंधा हुआ जीव भी प्राण एवं अपान वायुओं द्वारा बार-बार खींचा जाता रहता है। प्राण अपान को ऊपर की ओर खींचता रहता है तथा अपान प्राण को नीचे की ओर खींचता रहता है। इस प्रकार इन दोनों ही वायुओं की शक्ति से यह जीव निरंतर ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर खिंचता रहता है। जो इस गति को समुचित रूप से जान लेता है, वह योग का वेत्ता बन जाता है। (26-30)

यह प्राण वायु जब उदर से बाहर निकलती है, तो उस समय 'हं' ध्वनि की जैसी प्रतीति होती है, अतः कहा जाता है कि यह 'हं'कार ध्वनि के साथ बाहर को आता हैऔर पुनः जब यह अंदर को जाती है, तब 'स' का उच्चारण करता हुआ जान पड़ती है, इसीलिए कहा जाता है कि वह सकार का उच्चारण करती हुई अंदर जाती है। इन दोनों वर्णों को मिलाकर 'हंस' शब्द बनता है, इस प्रकार यह जीव सदा-सर्वदा हंस मंत्र का जप करता रहता है। एक दिन एक रात्रि में कुल मिलाकर यह इक्कीस हजार छः सौ मंत्रों को जपता है, क्योंकि इतनी ही बार यह अन्दर से बाहर आता है तथा पुनः बाहर से उदरस्थ होता है। इसे अजपा नाम की गायत्री कहा जाता है, यह योगियों के लिए सदा मोक्ष देनेवाली कही जाती है। इसका केवल संकल्प ही कर लेने से भी साधक को उसके सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है। कहा गया है कि इस अजपा गायत्री के समान न तो कोई विद्या है, न इसके समान कोई जप है और न ही इसके समान कोई ज्ञान है। यहां तक कि न तो इसके समान विद्या, ज्ञान या जप अभी तक कोई हुआ है और न भविष्य में ही होगा। कुंडलिनी में उत्पन्न होनेवाली गायत्री प्राणों को धारण करने की शक्ति से युक्त है, अतः इसे प्राण-विद्यामय कुंडलिनी कहा जाता है। यह कुंडलिनी से उत्पन्न गायत्री अर्थात प्राण विद्या कुंडलिनी एक ज्ञान स्वरूप है, क्योंकि इसका ज्ञाता वेदों का जाननेवाला हो जाता है। (31-35)

कन्द के ऊर्ध्व भाग में कुंडली शक्ति होती है, जो आठ प्रकार की कही है। इसकी आकृति कुंडल की तरह होती है। यह सदा ही ब्रह्म द्वार का अपने मुख से आच्छादित करती हुई स्थित रहती है। निष्पाप हो जाने पर मनुष्य के प्राण इसी ब्रह्म द्वार से निकलते हैं; किंतु यह सदा इसे ढके रहती है तथा सदा सुप्तावस्था में रहती है। यह परमेश्वरी स्वरूपा है। वह्नि के, मन के तथा वायु के साथ संयुक्त होकर वह प्रबुद्ध बन जाती है और तब इसका आकार सुई के समान अत्यंत सूक्ष्म हो जाता है। इस प्रकार की बन जाने पर यह सुषुम्ना नाड़ी के साथ ऊपर को चली जाती है। जैसे घर के द्वार को कुंजी (चाबी) द्वारा खोला जाता है, ठीक उसी प्रकार योगी कुंडलिनी द्वारा मोक्ष द्वार का भेदन करता है। सर्वप्रथम हाथों को संपुटित कर ले। फिर पूर्ण दृढ़ता के साथ पद्मासन लगाकर बैठ जाए, चिबुक को (ठोड़ी) भी दृढ़ता से सामने गले के नीचे वक्षस्थल से संयुक्त करे। फिर ब्रह्म के प्रति ध्यान लगाने की चेष्टा करे। इसके पश्चात बार-बार अपान वायु को ऊपर की ओर खींचे और

उदरस्थ वायु को बाहर निकालता रहे। इस प्रकार वायु का त्याग करते हुए शक्ति का उदय होता है और इसके प्रभाव स्वरूप एक अपूर्व बोध का अनुभव होता है। (36-40)

इस अभ्यास को करने से स्वाभाविक है कि पसीना निकलेगा। योगी को चाहिए कि वह इस पसीने से अपने अंगों में मालिश कर ले। योगी के भोजन में कटु, अम्ल एवं लवण का अंश नहीं होना चाहिए अर्थात उसे कड़वे, खट्टे और लवणीय (नमकीन) भोजन का परित्याग कर देना चाहिए तथा दूध तथा दूध में बने भोजन का ही प्रयोग करना चाहिए। योगी में इन विशेषताओं का होना नितांत आवश्यक है—उसे ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए, अल्प आहार करनेवाला होना चाहिए तथा योग का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। इस प्रकार का योगी लगभग एक वर्ष से पूर्व ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है, इसमें कोई संदेह नहीं है। योगी का भोजन सुस्निग्ध एवं मधुरता के गुणों से युक्त हो, उसे भर पेट भोजन नहीं करना चाहिए, केवल तीन चौथाई पेट को ही भोजन एवं जल से भरना चाहिए, शेष एक चौथाई को वायु के लिए रिक्त छोड़ देना चाहिए। इस प्रकार कल्याणस्वरूप परमेश्वर का स्मरण करते हुए ही योगी भोजन करे। इस प्रकार भोजन करनेवाला योगी मिताहारी (कम भोजन करनेवाला) कहा जाता है। कंद के ऊपर (पूर्व वर्णित) आठ प्रकार की कुंडल की तरह आकृतिवाली कुंडली शक्ति है। यह मूर्खों के लिए बंधन स्वरूप है, किंतु योगी इसे जान लेता है तथा योगाभ्यास से मुक्ति प्राप्त करता है। अतः यह योगियों को मोक्ष देनेवाली होती है। जो महामुद्रा, नभोमुद्रा, उड्डयाण, जलंधर एवं मूलबंध, इन सबको सही रूप में जानता है, वह योगी मुक्ति का पात्र होता है। (41-45)

'एड़ी से दृढ़ता के साथ योनिस्थान को दबा लें, फिर इसे दृढ़ता के साथ ही संकुचित करें और अपान वायु को ऊपर की ओर आकर्षित करें। यही मूलबंध कहा जाता है। इस मूलबंध की प्रक्रिया के सतत अभ्यास से प्राण एवं अपान में एकता स्थापित होती है और मूत्र-पुरीष की मात्रा घट जाती है। इसके साथ ही यह अभ्यास बुढ़ापे को भी दूर करता है। इस अभ्यास से वृद्ध व्यक्ति भी युवा हो जाता है। जैसे महाखग गरुड़ अपनी विश्रांति (थकान) दूर करने के लिए उड्डियाण करता है, उसी प्रकार का उड्डियाण बंध का अभ्यास भृत्य हाथी को भगाने के लिए सिंह के समान है। उदर से नाभि के अधो भाग को तानना ही पश्चिमोत्तान कहलाता है। उड्डियाण भी उदर में ही किया जाता है। इसके ज्ञाता इसे इसी स्थान में करते हैं। जो योगी नीचे की ओर गमन की प्रवृत्तिवाले आकाश तत्त्व तथा जल तत्त्व को इनकी प्रवृत्ति के प्रतिकूल अपने सिर में इनको बांध देता है, तो उसकी इस प्रक्रिया को जालंधर बंध के नाम से जाना जाता है। इसके अभ्यास से समस्त कष्टों-दुःखों का नाश होता है। (46-50)

इस दुःख नाशक जालंधर बंध को करने में कंठ के संकुचित होने से अमृत अग्नि में नहीं पड़ता तथा यह संकोच वायु को भी स्थिर करता है। जिह्वा को मोड़कर कपाल कुहर में प्रविष्ट करके दृष्टि को भौंहों के बीच में स्थिर करने से खेचरी मुद्रा बनती है। खेचरी मुद्रा की साधना से रोग, मृत्यु, भूख, प्यास तथा मूर्छा दूर हो जाती है। इस मुद्रा के ज्ञान से रोगों से मुक्ति के साथ ही व्यक्ति कर्मों में लिप्त भी नहीं होता। इस मुद्रा के प्रभाव से चित्त तथा जिह्वा दोनों ही आकाश में (खे) विचरण करने लगते हैं। इसलिए इस खेचरी, अर्थात् आकाश में चलनेवाली कहा जाता है। पांवों से मस्तक तक

सभी अंगों में बिंदु स्थित रहता है। खेचरी मुद्रा से जो व्यक्ति जिह्वा के ऊपरी विवर को (कपाल कुहर को) बंद कर लेता है, उसका बिंदु अर्थात् वीर्य कभी क्षय नहीं होता। यहां तक कि रमणी का आलिंगन भी उसे प्रभावित नहीं कर सकता। जब तक बिंदु शरीर में रहता है, तब तक मृत्यु भय भी नहीं रहता। बिंदु तभी तक स्थिर रहता है, जब तक खेचरी मुद्रा रहती है। बिंदु यदि शरीर के अग्नि तत्व में भी चला जाए, तो योनि मुद्रा की शक्ति से उसकी गति ऊपर को की जा सकती है। बिंदु सफेद तथा लाल, दो प्रकार का होता है। सफेद रंग के बिंदु को शुक्ल तथा लाल रंग वाले को महारज कहा जाता है। (51-60)

रज सिंदूर के समान चमकीले सूर्य के स्थान में रहता है तथा शुक्ल चंद्रमा के स्थान में रहता है। इन दोनों का मिलन दुर्लभ होता है। बिंदु ब्रह्मा और रज शक्ति है, या बिंदु चंद्रमा और रज सूर्य है। इन दोनों के मिलन पर परम पद की प्राप्ति होती है। वायु की शक्ति के द्वारा जब रज विंदु से मिल जाता है और दोनों एक हो जाते हैं; तो शरीर दिव्य बन जाता है। शुक्ल चंद्र से तथा तेज सूर्य से मिला हुआ है। जो व्यक्ति इस एकता को समझता है, वह योग का ज्ञाता होता है। जिससे नाड़ियों का शोधन होता है तथा सूर्य एवं चंद्रमा को गति मिलती है और रस सूख जाते हैं, वह महामुद्रा कही जाती है। ठोड़ी को वक्षस्थल से लगाकर बाएं पांव से योनि को देर तक दबाएं। फैले हुए दाहिने पांव को दोनों हाथों से अच्छी तरह पकड़ें। फिर दोनों बगलों में सांस भरक धीरे से रेचक करें। इसे समस्त रोगों को नष्ट करनेवाली महामुद्रा कहते हैं। पहले चंद्र स्वर (बाएं) से प्रारंभ करें फिर दाहिने से। जब दोनों समान संख्या हो जाएं, तो अभ्यास बंद कर दें। इस मुद्रा के प्रभाव से पथ्य-अपथ्य सब पच जाते हैं और नीरस भोजन भी सरस लगता है। अधिक खाया हुआ या विष के समान प्रभावकारी चीजें भी अमृत समान बन जाती हैं। क्षय रोग, बवासीर, कुंठ, अजीर्ण आदि रोग सदा के लिए नष्ट हो जाते हैं। इस महामुद्रा के विषय में कहा जाता है कि यह महान सिद्धियों को देनेवाली है, अतः इसे गुप्त रखना चाहिए और जिस किसी को बताना नहीं चाहिए। (61-70)

पद्मास लगाकर सिर सहित सारे शरीर को सीधा रखकर दृष्टि को नाक के आगे स्थिर रखें और फिर अव्यय 'ओम' का जप करें। वह नित्य, शुद्ध, बुद्ध, निर्विकल्पक, अकथनीय, नागरहित, अनादि (जिसके प्रारंभ होने के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है), तुरीय, भूत-भविष्य, परिवर्तनमान, अविछिन्न तथा परम ब्रह्म है। उसी से स्वयं प्रकाशित होनेवाली पराशक्ति उत्पन्न हुई है। उसी आत्मा में आकाश उत्पन्न हुआ। आकाश से वायु, वायु से अग्नि, अग्नि से जल तथा जल से पृथ्वी पैदा हुई। फिर इन पांच भूतों से इनके देवता सदाशिव, ईश्वर, ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र की उत्पत्ति हुई, इनमें ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र क्रमशः सृष्टि को बनानेवाले, पालनेवाले तथा नष्ट करने वाले हैं। ब्रह्मा रजोगुण वाले, विष्णु सत्त्वगुणी तथा रुद्र तमोगुणवाले हैं। देवताओं में ब्रह्मा सबसे पहले पैदा हुए। ब्रह्मा सृष्टि बनाने के लिए, विष्णु उसे स्थित रखने के लिए रुद्र नाश के लिए तथा चंद्रमा सबसे पहले भोग के लिए पैदा हुए। इनमें ब्रह्मा से लोक, देवता, पशु-पक्षी, मनुष्य तथा स्थावर (जो चल नहीं सकते) उत्पन्न हुए। इनमें मनुष्य आदि का शरीर पांच भूतों का समूह है। ज्ञानेंद्रियां, कर्मेंद्रियां, प्राण-अपान आदि पांच वायु, मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार इन सबका स्थूल रूप है। अतः शरीर को भी स्थूल कहा जाता है। पांच कर्म की एवं पांच ज्ञान की इंद्रियां, शब्द आदि विषय, पांच प्राण, मन, बुद्धि तथा

चित्त लिंग कहे जाते हैं। कारण तीन गुणोंवाला है। इनमें प्रत्येक के तीन शरीर होते हैं। जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति एवं तुरीय, तीन अवस्थाएं होती हैं। विश्व, तेजस, प्राज्ञ एवं तुरीय ये चार पुरुष इन अवस्थाओं के स्वामी होते हैं, जो क्रमशः इन अवस्थाओं के भोग करने वाले होते हैं। 'पर' सबका साक्षी होता है। (71-72)

यह पर (प्रणव) सभी जीवों के भोग के समय अलग से रहता है। सभी अवस्थाओं में यह नीचे की ओर मुख करके आनंद के साथ रहता है। 'अ', 'उ', 'म' ये तीन वर्ण, तीन वेद, तीन लोक, तीन गुण तथा तीन अक्षर, इस सबको प्रणव प्रकाशमान करता है। सभी प्राणियों में जागृत अवस्था में अकार (अ) नेत्र में रहता है। उकार (उ) स्वप्नावस्था में कंठ में रहता है तथा मकार (म) सुषुप्ति अवस्था में हृदय में रहता है। अकार विराट विश्व तथा स्थूल है। उकार हिरंण्यगर्भ, तेजस तथा सूक्ष्म है। मकार कारण अव्यक्त तथा प्राज्ञ है। अकार राजस, लाल रंग का ब्रह्मा और चेतन कहा जाता है। उकार को सात्त्विक, सफेद रंग का तथा विष्णु कहा जाता है। मकार को तमोगुणवाला, काले रंग का तथा रुद्र कहा जाता है। प्रणव से ही ब्रह्मा, प्रणव से ही विष्णु तथा प्रणव से ही रुद्र का जन्म होता है। ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र का लय क्रमशः अकार, उकार एवं मकार में होता है। प्रणव ही परम ब्रह्म है तथा प्रणव ही प्रकाशित होता है। ज्ञानियों में प्रणव ऊर्ध्वमुख (ऊपर को मुखवाला) तथा अज्ञानियों में अधोमुख (नीचे को मुखवाला) होता है। जो इस तथ्य को जान जाता है, वह वास्तव में वेदों को जान जाता है। प्रणव ज्ञानियों में अनाहत रूप में ऊपर को मुख करके रहता है। प्रणव की ध्वनि लगातार गिरती हुई तेल की धार तथा जोर से घंटा बजने की आवाज जैसी होती है। इसका आगेवाला भाग ब्रह्मा कहा जाता है। (73-80)

यह ब्रह्मा कहे जानेवाले का आगे का भाग ज्योतियुक्त होता है। बुद्धि इसके विषय में पूर्ण रूप से कुछ नहीं कह सकती। महात्मा लोग ही इसे अपनी बुद्धि से देखते हैं। इसको जाननेवाला वेदों का वेत्ता (जाननेवाला) हो जाता है। जागृत अवस्था में दोनों नेत्रों के मध्य में 'हंस' प्रकाशित होता है। इस हंस का (ह + स में से) 'स' वस्तुतः खेचरी मुद्रा का स्वरूप है। साथ ही इसे 'त्वम' (तुम जीव) रूप भी समझना चाहिए। 'हंस' का 'ह' परमेश्वर का रूप है, जो उसके सदा विद्यमान रहने को प्रकट करता है। 'स' का ध्यान करनेवाला जीव अपने आप 'ह' भी बन जाता है (जीव आत्मा को जान लेने पर परमात्मा से मिल जाता है)। जीव को सांसारिकता में बंधन इंद्रियों के कारण ही होता है, किंतु आत्मा को कोई बंधन नहीं होता। ममता (अपनापन) से ही आत्मा जीव बना रहता है, किंतु इस ममता के समाप्त होने पर उसे मोक्ष मिल जाता है। 'ओम' की मात्राओं में 'भूः', 'भुवः' एवं 'स्वः' लोक तथा चंद्रमा, सूर्य और अग्नि देवता रहते हैं। यह 'ओम' ही परम ज्योति (परमात्मा) है। इच्छा शक्ति, ज्ञान शक्ति, क्रिया शक्ति, ब्राह्मी, रौद्री तथा वैष्णवी मात्राएं जहां रहती हैं, वही परम ज्योति 'ओम' है। अतः मन एवं वाणी से सदा 'ओम' का जप करना चाहिए और शरीर से सदा इसका अभ्यास करना चाहिए। जो पवित्र अवस्था में और अपवित्र अवस्था में सदा तत्पर होकर इसका जप करता है, वह संसार के पापों में वैसे ही लिप्त नहीं होता जैसे कमल का पत्ता पानी में रहने पर भी उससे भीगता नहीं है। वायु के चलने पर बिंदु भी चलता है तथा वायु के स्थिर होने पर यह भी स्थिर हो जाता है; अतः योगी को स्थाणु (खंभ के) समान स्थिर होकर (समाधि लगाकर) वायु

(सांस) को रोकना चाहिए। वायु के शरीर में रहते हुए जीव इसे छोड़ नहीं सकता, क्योंकि शरीर से इसके निकल जाने पर मृत्यु हो जाती है, अतः वायु को रोक देना चाहिए। (81-90)

वायु के शरीर में स्थित रहने तक जीव छूट नहीं सकता। यदि दृष्टि को दोनों भौंहों के बीच में स्थिर कर दिया जाए, तो मृत्यु का भय भी नहीं रहता। अकाल मृत्यु से बचने के लिए ब्रह्मा भी प्राणायाम की साधना करते हैं। अतः योगी और मुनि भी इस क्रिया से प्राणों को रोक लें। प्राणायाम करते समय हंस छब्बीस अंगुल बाहर आ जाता है। अतः बाएं और दाहिने दोनों ही स्वरों से प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। जब दूषित नाड़ियों का समूह प्राणायाम से शुद्ध हो जाता है, तो योगी अपने प्राणों की रक्षा करने में समर्थ हो जाता है। योगी पद्मासन लगाकर बैठ जाए और चंद्र स्वर (बाएं) से पूरक करे। तब जितनी देरी तक संभव हो, कुंभक करे। बाद में सूर्य स्वर से (दाहिने छिद्र से) रेचक करे। प्राणायाम करते समय अमृत के सागर के समान तथा गाय के दूध के समान सफेद चंद्रमा के बिंब की कल्पना करने से योगी को सुख मिलता है। इसी प्रकार प्राणायाम के समय लपलपाती ज्वालाओं वाले सूर्य मंडल का हृदय में ध्यान करने से भी योगी सुखी होता है। पहले इड़ा से (चंद्र या बाएं स्वर से) पूरक और पिंगला से (सूर्य या दाहिने स्वर से) रेचक करे। इसके बाद पिंगला से पूरक तथा इड़ा से रेचक करे। इस प्रकार सूर्य एवं चंद्र दोनों बिंदुओं के अभ्यास से दो मास के अंदर नाड़ियां शुद्ध हो जाती हैं। अधिक-से-अधिक समय तक कुंभक करने से जठराग्नि (भूख) तेज होती है। साथ ही नाड़ियों के शुद्ध होने पर नाद भी सुनाई देने लगता है और रोगों का नाश हो जाता है। प्राण वायु जब तक शरीर में स्थित रहती है, तब तक अपान वायु को भी रोक दे तब एक श्वासवाली मात्रा हृदय के आकाश में ऊपर और नीचे जाने लगती है। (91-100)

पूरक, कुंभक और रेचक, ये तीनों प्रणव के ही रूप हैं। इस प्रकार प्रणव बारह मात्राओं के समय में ही करना चाहिए। यह बारह मात्राओंवाला प्राणायाम सूर्य और चंद्रमा है, योगी इन दोनों को समस्त दोषों को नष्ट करनेवाला समझे। फिर पूरक को बारह मात्राओं के समय, कुंभक को सोलह मात्राओं तक और रेचक को दस मात्राओं में करने से जो प्राणायाम होता है उसे ओंकार प्राणायाम कहते हैं। बारह मात्राओंवाला प्राणायाम प्रथम प्राणायाम है, चौबीस मात्राओंवाला मध्यम प्राणायाम कहलाता है और छत्तीस मात्राओं के समय तक किया जानेवाला प्राणायाम उत्तम प्राणायाम कहा गया है। अधम (निम्न स्तरीय) प्राणायाम में पसीना आता है, मध्यम प्राणायाम में शरीर कांपने लगता है तथा उत्तम प्राणायाम में आसन उठने लगता है। इस प्रकार वायु को रोकना चाहिए। योगी को पद्मासन पर बैठ जाना चाहिए। इसके बाद गुरु भगवान शिव को प्रणाम करना चाहिए। तब दृष्टि को नाक के अगले भाग में टिकाकर एकांत में प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। दृढ़ता के साथ शरीर के सभी नौ द्वारों (नाक, कान आदि छिद्रों) को रोककर वायु को बांधना चाहिए। फिर शक्ति के साथ अपान, अग्नि एवं कुंडलिनी को ऊपर ले जाना चाहिए। आत्मा का ध्यान करते हुए इसे मस्तक में रोकना चाहिए। इसे जितनी देरी तक रोका जाए, उतना ही अच्छा है। इस प्रकार का प्राणायाम पाप कर्मों को जलानेवाले ईंधन के समान कहा जाता है। साथ ही योगी लोग इसे संसार सागर से पार करनेवाले सेतु (पुल) के समान मानते हैं। आसन से रोग नष्ट होते हैं, प्राणायाम से पापों

का विनाश होता है तथा योगी को मन की बुराइयों से मुक्ति केवल प्रत्याहार से मिलती है। धारणा से योगी का मन विचलित नहीं होता, वह धैर्यवान बनता है और समाधि से अदभुत चैतन्य ब्रह्म को प्राप्त करता है फिर इससे योगी के शुभ-अशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं और वह मोक्ष को प्राप्त करता है। (101-110)

बारह प्राणायामों को प्रत्याहार कहा जाता है और बारह प्रत्याहारों से एक शुभ धारणा होती है। योग के ज्ञाता बारह धारणाओं को ध्यान तथा बारह ध्यानों को समाधि कहते हैं। समाधि में परमात्मा से साक्षात्कार हो जाता है और इससे क्रिया-कर्म तथा पुनर्जन्म छूट जाता है। आसन में बैठकर दोनों पांवों को पायु में से लगाएं कान, आंख और नाक अंगुलियों से बंद कर लें। मुंह से वायु को खींचकर पेट में भरें। इसके साथ अपान को भी पहले पेट में, फिर मस्तष्क में रोक दें, मन को उससे जोड़ें। इससे योगी सबको समान समझने लगता है तथा उसे विशेष तत्त्व की प्राप्ति होती है। वायु के आकाश में पहुंचने पर घंटे आदि वाद्यों की ध्वनि सुनाई देती है। इसे नाद का सिद्ध होना कहा जाता है। प्राणायाम से सभी रोग नष्ट हो जाते है। हिचकी, खांसी, दमा, आंख, कान का दर्द आदि रोग शरीर में वायु के असंतुलन से ही होते हैं। सिंह, व्याघ्र, हाथी आदि पशुओं के समान ही वायु भी धीरे-धीरे वश में होता है। उल्टे-सीधे प्रकार से प्राणायाम साधक को नष्ट कर देता है। पूरक, कुंभक एवं रेचक सही ढंग से होने चाहिएं तभी सिद्धि मिलती है। नेत्रों आदि इंद्रियों को उनके विषयों से लौटाना प्रत्याहार कहा जाता है। जैसे तीसरे प्रहर में सूर्य का तेज कम हो जाता है, उसी प्रकार योगी को भी तीसरे अंग में स्थित होकर मन के विकारों को (बुराइयों को) दूर करना चाहिए। यही ज्ञान का सार है। (111-120)

□

शांतिपाठ :

ॐ अप्यायंतु ममांगानि वाक्प्राण चक्षुषः श्रोत्रमथो बलमिंद्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषदं माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोद् निराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु तदात्मनि निरते य उपनिषत्सुधर्मास्ते मयि संतु।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

मेरे समस्त अंग, वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र आदि इंद्रियां तथा बल पुष्ट हों। यह उपनिषद ब्रह्म-स्वरूप जानने योग्य हैं। मैं ब्रह्म का निराकरण न करूं, ब्रह्म मेरा निराकरण न करें; हमारा परस्पर अनिराकरण हो। उपनिषदों का धर्म आत्मज्ञान में निरत मुझमें व्याप्त हो। दैहिक (शारीरिक), दैवीय और भौतिक (प्राणियों द्वारा होनेवाला) तीनों प्रकार के ताप-कष्ट शांत हों।

प्रथम अध्याय

अब ब्रह्म-उपनिषद की व्याख्या की जा रही है। सृष्टि से पहले केवल नारायण ही थे। न ब्रह्म थे, न ईशान, न अग्नि, न जल, न सोम, न आकाश, न पृथ्वी, न नक्षत्र, न सूर्य और न चंद्रमा ही। उस नारायण को अकेलापन अच्छा नहीं लगा। तब उन्होंने मन-ही-मन में ध्यान किया। यह ध्यान यज्ञस्तोम कहा गया। इस ध्यान से चौदह पुरुष एवं एक कन्या की उत्पत्ति हुई। ये चौदह पुरुष वस्तुतः दस इंद्रियां, मन, तेज, अहंकार एवं प्राण थे और कन्या बुद्धि थी। फिर पांच तन्मात्राएं और पांच महाभूत उत्पन्न हुए। फिर एक पुरुष बना, जो पच्चीसवां था। इस पुरुष में विराट नारायण ने प्रवेश किया। संवत्सरों की उत्पत्ति कालरूपी संवत्सर से हुई, वे इस पुरुष से उत्पन्न नहीं हुएं। (1-6)

उस नारायण ने फिर मन से ध्यान किया और उसके ललाट से एक तीन आंखोंवाला व्यक्ति उत्पन्न हुआ, जो अपने हाथ में शूल लिया हुआ था। साथ ही उस व्यक्ति में श्री, यश, सत्य, ब्रह्मचर्य, तप, वैराग्य, मन, ऐश्वर्य, प्रणव सहित व्याहृतियां, ऋक्, यजुष, साम एवं अथर्ववेद तथा सभी छंद भी थे। इसलिए उस पुरुष को महादेव और ईशान नाम दिए गए। नारायण ने पुनः मन से ध्यान किया। उनके ललाट से पसीने की बूंदें गिर पड़ीं। यह पसीना जल के रूप में फैल पड़ा। इससे सुनहरे तेजवाला एक अंडा पैदा हुआ। इससे चार मुखोंवाले ब्रह्मा उत्पन्न हुए। ब्रह्मा ने पूर्व दिशा को मुख करके 'भूः' व्याहृतियां, गायत्री, छंद, ऋग्वेद तथा अग्नि देवता का ध्यान किया। पश्चिम को मुख करके 'भुवः' व्याहृति, त्रिष्टुप छंद, यजुर्वेद तथा वायु देवता का ध्यान किया। उत्तर को मुख करके 'स्वः' व्याहृति, जगतीछंद, सामवेद और सूर्य देवता का तथा दक्षिण को मुहं करके 'महः' व्याहृति, अनुष्टुप छंद, अथर्ववेद तथा सोम देवता का ध्यान किया। (7-9)

फिर उन्होंने हजारों सिरों और आंखोंवाले समस्त विश्व के ईश्वर भगवान नारायण हरि

(विष्णु) को देखा, जो समस्त विश्व के जीवन के आधार हैं, विश्व रूप हैं तथा सबके स्वामी हैं। पद्मकोश (बंद कमल) के समान लंबे और नीचे को मुखवाले हृदय में सीत्कार होता है, इसी हृदय के बीच में चारों ओर मुखोंवाली अग्नि है। इसी अग्नि की एक लौ कुछ ऊपर उठी हुई है, जो अत्यधिक पतली है। इसी के बीच में वह परमात्मा रहता है। वह ब्रह्मा है, वही ईशान है, वही इंद्र है, वही अक्षर (अविनाशी) परम विराट। (90-94)

द्वितीय अध्याय

स्वरूप के आनंद में लगे रहनेवाले मुनियों में श्रेष्ठ शुक अत्यंत तेजवाले थे। उन्हें सत्य-ज्ञान की प्राप्ति जन्म लेते समय ही हो गई थी। इसलिए इस महामुनि ने स्वयं ही लंबे समय तक विचार करने के बाद आत्मा के स्वरूप को जान लिया। वे इस विषय में एक निश्चय पर पहुंच गए कि आत्मा के विषय में कोई भी व्यक्ति अपनी वाणी से वर्णन नहीं कर सकता; आंखें उसे देख नहीं सकतीं, यह छठीं इंद्रिय में बसा हुआ है। यह चिन्मात्र, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म, यहां तक कि शून्य से भी छोटा है। इस प्रकार के इस सूक्ष्म अणु में करोड़ों ब्रह्मांड धूल के कणों की तरह उत्पन्न होते हैं, स्थित रहते हैं तथा लय हो जाते हैं। आत्मा चैतन्य है, अतः यह आकाश से भिन्न है, किंतु बाहरी रूप में इसे भी कह दिया जाता है। यह कैसा है ? इस विषय में कोई भी वर्णन नहीं कर सकता, अतः इस दृष्टि से इसे कोई वस्तु भी नहीं कहा जा सकता। 'जो वस्तु' नहीं है उसका अस्तित्व भी नहीं होता, किंतु आत्मा का अस्तित्व है, अतः इसे वस्तु भी कहा जा सकता है। प्रकाशमय होने से यह चेतन (जिसमें चेतना हो) है, किंतु इसके विषय में कुछ भी मालूम न होने के कारण यह पत्थर की शिला के समान है। अपनी आत्मा के आकाश में यह अनेक प्रकार के दृश्य दिखाता है। यह सब कुछ उसी का अंश होने के कारण वह इससे अलग नहीं है। उसमें दिखाई देनेवाली भिन्नता भी उससे अलग नहीं है। उसमें दिखाई देनेवाली भिन्नता भी इससे अलग नहीं है। सभी कुछ में चलने-फिरने के कारण उसका सभी से संबंध है, किंतु गतिहीन होने के कारण वह चलता भी नहीं, वह किसी पर आश्रित नहीं है, अतः वह 'नास्ति' (नहीं है) कहा जाता है, किंतु उसी के समान होने के कारण उसका अस्तित्व है। उस ब्रह्म का रूप विशुद्ध ज्ञान एवं आनंद है। मन की सभी इच्छाओं (संकल्पों) को त्यागने से ही वह मिल सकता है, जागृत अवस्था में उसकी प्रतीति (अनुभव) नहीं होती। उसके सिकुड़ने तथा खिलने पर ही प्रलय एवं सृष्टि होती है। (1-10)

'जो वेदांत के शब्दों की निष्ठा है और वाणी आदि इंद्रियां जिस तक पहुंच ही नहीं सकतीं, मैं वह सत्‌त (जिसका अस्तित्व है), चित्त (जो चेतन है अचेतन-निर्जीव नहीं है) और आनंद स्वरूप ब्रह्म ही हूं, कोई अन्य नहीं; अपनी अत्यंत पैनी बुद्धि से शुकदेव ने इस प्रकार के ब्रह्म को जान लिया। वे स्वयं प्राप्त की हुई इस परम वस्तु में ही अपने मन को लगाकर रहने लगे। उन्हें विश्वास हो गया कि इस वस्तु के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं। जैसे मूसलाधार वर्षा से संतुष्ट चातक की चंचलता दूर हो जाती है, उसी प्रकार उनका चित्त भी संसार के भोगों को देखकरर चंचलता रहित होकर केवल मोक्ष में ही लग गया। एक बार उस शुद्ध बुद्धि वाले शुकदेव ने मेरु पर्वत के एकांत में अपने पिता कृष्ण द्वैपायन (व्यास) से निवेदन किया कि इस संसार के प्रपंच की उत्पत्ति कैसे हुई ? किससे और

कब हुई ? तथा यह लय कब होती है ? अपने पुत्र की इच्छा को व्यास ने अच्छी तरह से समझ लिया और उन्हें सारी बातें समझायीं, किंतु शुकदेव ने अपने मन में विचार किया कि वह स्वयं इन सब बातों को पहले से ही जानते हैं। अतः उन्होंने अपने पिता की बातों पर विशेष ध्यान नहीं दिया। पिता भी पुत्र के मन की बातों को समझ गए। अतः उन्होंने कहा, 'अभी तुम इस विषय को सही रूप में नहीं जानते हो। यदि तुम वास्तव में इसे समझना चाहते हो, तो मिथिला में राजा जनक रहते हैं, जो इस विद्या को सही रूप में जानते हैं। उन्हीं से तुम भी इस ज्ञान को सही प्रकार प्राप्त कर सकते हो।' पिता की बातों को सुनकर शुकदेव सुमेरु पर्वत से नीचे उतर आए और महाराज जनक की राजधानी मिथिला पहुंचे। (11-20)

उन्हें आया हुआ देख राजा जनक के द्वारपालों ने राजा को सूचना दी, 'महाराज! भगवान व्यास के पुत्र शुकदेव आपसे मिलने हेतु द्वार पर खड़े हैं।' यह सुनकर बड़े ही अनादर से राजा जनक बोले, 'ठीक है, आया है, तो रहने दो', और सात दिनों तक उन्होंने शुकदेव से बात भी नहीं की। इसके बाद उन्होंने उन्हें आंगन में बुलवा लिया, किंतु अगले सात दिनों तक फिर कोई बात नहीं की। फिर उन्हें अंतःपुर के आंगन में बुलवा लिया, परंतु सात दिनों तक बात नहीं की; और न ही राजा उनके सामने आए। तब सुंदर चंद्रमुखी युवतियों द्वारा भोगादि द्वारा राजा ने उनका स्वागत कराया, परंतु ये सब भोग और पकवान शुकदेव को बिलकुल भी नहीं लुभा पाए, उनका मन उस दीपक के समान अविचलित रहा, जो सुरक्षित स्थान पर रखा होता है और हवा उसे हिला भी नहीं सकती। वे उसी प्रकार प्रसन्नमन, स्वच्छ, निर्विकार और मौन चंद्रमा के समान रहे। वास्तव में यह उनकी परीक्षा थी। राजा जनक शुकदेव के स्वभाव के विषय में जान गए। उन्होंने शुकदेव को बुलवा लिया। इतना अनादर होने पर भी शुक प्रसन्नमुख थे। राजा ने उन्हें प्रणाम किया। उनका समुचित सत्कार किया और बोले, 'आप संसार के सभी विषय-भोगों से ऊपर उठ गए हैं। वस्तुतः आपकी सभी इच्छाएं पूरी हो चुकी हैं। तब कृपया आप यह बताएं कि आप यहां मेरे पास किस उद्देश्य से आए हैं?' अत्यंत नम्रता के साथ शुकदेव ने कहना प्रारंभ किया, 'गुरुदेव, कृपा करके यह बताएं कि इस विश्व के प्रपंच अर्थात् माया से युक्त सृष्टि का जन्म कैसे होता है तथा अंत में इस सबका लय कैसे होता है ? इस विषय में जो भी सत्य बात है, उसे मुझे बताने की कृपा करो। यही मेरा यहां आने का कारण है। (21-30)

महात्मा जनक ने शुकदेव को विस्तार से इस विषय को समझाया, किंतु यह सब वर्णन, जो जनक ने बताया, शुकदेव पहले ही अपने पिता वेदव्यास से सुन चुके थे। अतः वह बोले, 'यह सब तो मैं अच्छी तरह से पहले से ही जानता हूं। मेरे द्वारा पूछे जाने पर मेरे पिताजी ने भी यही सब मुझे बताया था। अब हे विद्वानों में श्रेष्ठ महाराज जनक! आपने भी वही बात बताई है। सभी शास्त्रों में भी ऐसा ही वर्णन मिलता है कि मन के संकल्प से (इच्छा से) ही इस समस्त प्रपंच का जन्म होता है और उस विकल्प के नष्ट होने पर इस संसार के प्रपंच का भी नाश हो जाता है; अर्थात् यह बिलकुल व्यर्थ की और सारहीन है, ऐसा निश्चय हो जाता है। क्या यह जगत सचमुच सारहीन है ? मैं इस विषय में कुछ निश्चित नहीं कर पा रहा हूं। कृपया वास्तविकता क्या है ? मैं भ्रम में पड़ गया हूं। आप ही मुझे ज्ञान दीजिए, तभी मुझे शांति मिलेगी।' शुकदेव के इस निवेदन पर महाराज जनक

कहने लगे, 'मुनिवर शुकदेव ! सुनिए। मैंने इसी विषय में आपको जो कुछ भी बताया है, अब मैं उसी को विस्तार से समझाता हूं। यह ज्ञान विश्व के सभी ज्ञानों का रहस्य है। सभी विद्याओं का सार है। इस ज्ञान को इसके सही रूप में जान जाने पर व्यक्ति को विश्व के प्रपंच से मुक्ति मिल जाती है। वह जीवन्मुक्त हो जाता है। 'यह समस्त चराचर (चलनेवाले और स्थिर रहनेवालों से युक्त) जगत एक भ्रम है', इस ज्ञान के हो जाने पर इस सब दिखाई देनेवाले जगत से भ्रम का नाश होने पर मन शुद्ध हो जाता है। इस ज्ञान के पूर्ण होने पर निर्वाण के (मोक्ष के) समान शांति प्राप्त होती है। वही त्याग वास्तव में सबसे बड़ा त्याग है, जिसमें सभी इच्छाएं शांत हो जाती हैं। इस सर्वोच्च अवस्था को ही ज्ञानियों द्वारा मोक्ष कहा जाता है। जो लोग केवल इच्छाओं के साथ अपना जीवन जीते हैं, अर्थात् शुद्ध ज्ञान से उसी के लिए जीते हैं, उन्हीं का जीवन सच्चे अर्थों में सार्थक है। जो जानने योग्य वस्तु है, वे उसे जान जाते हैं, वे ही जीवन्मुक्त कहे जाते हैं । (31-40)

पदार्थ भावना में दृढ़ता (विश्व के समस्त पदार्थों को वास्तविक मानना) ही बंधन का कारण है और इन सबके प्रति इच्छाओं का समाप्त हो जाना ही मोक्ष है। जो बिना तपस्या किए ही, वास्तविकता को जानकर स्वाभाविक रूप से संसार के समस्त भोगों से विरक्त हो जाता है, समय-समय पर मिलनेवाले सुखों से या दुःखों से प्रभावहीन रहता है, जो सुखों से सुखी या दुःखों से दुःखी नहीं होता, वही जीवन्मुक्त है। ऐसा व्यक्ति काम, क्रोध, हर्ष, उद्वेग आदि विकारों से पूर्णतया शून्य होता है। अहंकार को तो वह जड़ से ही त्याग देता है। जिसके जीवन का लक्ष्य ही त्याग हो जाता है, जो सदा किसी भी पदार्थ की इच्छा ही नहीं करता, किसी की भी कामना या अपेक्षा नहीं करनेवाला अंतर्मुखी, सुषुप्ति के समान शून्य अवस्था में रहनेवाला, पूर्णतया शुद्ध, आत्मा में ही लीन रहनेवाला, अत्यंत शांत, इच्छाओं से उदासीन, किसी भी कार्य के अच्छे या बुरे फल की परवाह न करनेवाला, राग-द्वेष तथा धर्म-अधर्म से दूर रहनेवाला, मान-अपमान से शून्य और उद्वेग स शून्य होकर कार्य करते रहनेवाला जीवन्मुक्त है। (41-50)

जो मोहरहित बनकर साक्षी के समान तटस्थ रहता है, फल की इच्छा नहीं करता, धर्म-अधर्म के साथ ही समस्त चिंतन का भी परित्याग कर देता है, दिखाई देने वाले विश्व-प्रपंच से उदासीन होता है, जो कड़वा, खट्टा, नमकीन इत्यादि सभी स्वादों को त्यागकर भोजन करता है, जो बुढ़ापा, मृत्यु, विपत्ति, निर्धनता, ऐश्वर्य आदि में समान है, जो आनंद, शोक, हर्ष, आदि में एक-सा अनुभव करता है, जो उत्पत्ति, स्थिति एवं प्रलय को समान मानता है, जिसकी दृष्टि में उन्नति-अवनति समान है, जो केवल प्राप्त भोगों का उपभोग करता हुआ ईर्ष्या आदि से मुक्त रहता है, जो सकल होते भी कलारहित रहता है, जो चित्त के होने पर भी विश्व के किसी भी विषय का चिंतन नहीं करता, जो धनों की इच्छा नहीं करता तथा जो आत्मा में भी पूर्णता के दर्शन करता है, वही जीवन्मुक्त है। (51-62)

जीवन्मुक्त अवस्था को मनुष्य शरीर के नष्ट होने पर त्यागकर विदेहमुक्त हो जाता है। यह स्थिति निस्पंद पवन (रुकी हुई हवा) के समान है। इसमें आत्मा उन्नति-अवनति से दूर रहता है, उसका लय भी नहीं होता, यह स्थिति 'सत' (है), 'असत' (नहीं है), 'मैं' और 'वह' से भिन्न है। यह तेज एवं अंधकार से रहित अत्यंत गंभीर स्थिति है। इसमें केवल एक अनिर्वचनीय एवं अव्यक्त (जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता) 'सत' शेष रहता है। यह आकाररहित, भूत आदि से रहित

तथा अनंत में स्थिर रहता है, किंतु यह शून्य भी नहीं है। न दिखाई देने पर भी यह अदृश्य नहीं होता। यह 'सत' एवं 'असत' से अलग भावना है, चिन्मात्र होते हुए भी चैतन्यरहित, आदि-मध्य-अंतहीन, अनामय (दुःखरहित), कल्याणमय, जरा (बुढ़ापा) रहित अवस्था है। इसमें द्रष्टा, दृश्य एवं दर्शन कुछ भी शेष नहीं रहता। अतः हे शुकदेव ! तुम इस विषय के स्वयं जाननेवाले हो और अपने पिता से भी इसे जान चुके हो कि इच्छा एवं त्याग ही क्रमशः बंधन एवं मोक्ष के कारण हैं। तुम भोगों से विरक्त हो चुके हो, प्राप्त करने योग्य सब कुछ पा चुके हो, भ्रम को त्यागकर तुम अपने तपोमय स्वरूप में स्थित हो चुके हो तथा बाहरी, भीतरी तथा इसके भी भीतरी ज्ञान को प्राप्त करके तुम कैवल्य की स्थिति प्राप्त कर चुके हो।' यह सुनकर शुकदेव शोक, भय आदि से रहित होकर परम तत्त्व में स्थिर हो गए। तब उन्होंने मेरु पर्वत में जाकर हजारों वर्षों तक निर्विकल्प समाधि ली और वह समुद्र में जल की बूंदों के समान परमात्मा में लीन हो गए। (63-76)

तृतीय अध्याय

अध्ययन समाप्त करने के पश्चात निदाघ नाम के श्रेष्ठ मुनि अपने पिता से आज्ञा लेकर बचपन में ही तीर्थयात्रा के लिए निकल पड़े। उन्होंने साढ़े तीन करोड़ तीर्थों में स्नान किया। तब वह घर पहुंचे और अपने महान यशस्वी पिता ऋभु से बोले, 'साढ़े तीन करोड़ तीर्थों में स्नान करने के बाद मेरे मन में यह विचार आया है कि यह लोक मृत्यु के लिए ही उत्पन्न होता है तथा उत्पन्न होने के लिए ही मरता है। अतः यह सब चराचर अस्थिर है। ये संपूर्ण ऐश्वर्य दुःखद हैं। सभी भाव लोहे की कील के समान पृथक् हैं, किंतु मनरूपी चुंबक इन्हें खींचकर इकट्ठा करता है। मैं रेगिस्तान में चलनेवाले यात्री के समान इस विश्व से विरक्त हो चुका हूं। ये सब दुःख देनेवाले हैं। इनसे मैं कैसे मुक्त होऊं? मुझे यही विचार बार-बार दुःखी कर रहा है। जिन संपत्तियों के लिए लोग अनेकों विचार करते हैं, ये सब मुझे कोई आनंद नहीं देते। स्त्री, पुत्र आदि भयंकर विपत्तियों के घर हैं। अत्यंत उदार मानी जानेवाली लक्ष्मी जी केवल मोह उत्पन्न करनेवाली हैं। इससे व्यक्ति सुखी नहीं हो सकता। पत्ते के सिरे से टपकने वाली जल की बूंदों के समान ही मनुष्य की आयु भी पल-भर में नष्ट हो जानेवाली है। अतः मैं उन्मत्त के समान ही इस शरीर का त्याग करूंगा। जिसके मन को विषयों रूपी सर्प ने डस लिया हो तथा जिसे ज्ञान न हुआ हो, वह सदा दुःखी ही रहता है। (1-10)

'वायु को लपेटना, आकाश को टुकड़े कर देना अथवा लहरों को गूंथना भले ही संभव हो जाए, किंतु मुझे अब जीवन के प्रति कोई आस्था नहीं रह गई है। जो सब कुछ पा ले, फिर दुःखी न होना पड़े और जिसे परम शक्ति प्राप्त हो गई हो, उसी का जीवन सार्थक है। यों तो वृक्ष, पशु, पक्षी आदि सभी जीवित रहते हैं, किंतु उसी का जीवन धन्य है, जो आत्मा के विषय में विचरते हुए लीन हो जाता है। जो इस पुनर्जन्म के चक्र से मुक्त हो जाते हैं, उन्हीं का जीवन धन्य है। अन्य व्यर्थ में ही गधे के समान बुढ़ापे का बोझ ढोते रहते हैं, जबकि ज्ञानी लोग राग-द्वेष से मुक्त होकर ज्ञान का बोझ ढोते हैं। जिन्हें परम शांति नहीं प्राप्त हुई है, उनके लिए मन भी बोझ है और जिन्हें आत्मज्ञान नहीं है, उनके लिए उनका शरीर भी बोझ ही होता है। अहंकार सभी दुःखों का कारण है। इसी के कारण

विपत्तियां आती हैं, मन में बुरे विकार आते हैं तथा अनेकों इच्छाएं उत्पन्न होती हैं। यह मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु है। इसके वश में होकर मैंने जिन विषयों का उपभोग किया, वे सब मिथ्या थे। अहंकार का न होना ही जीवन को सार्थकता देता है। इसी के कारण हमारा यह मन एक आवारा कुत्ते के समान दूर-दूर तक घूमता है। मैं भी इच्छा रूपी इस कुतिया के पीछे कुत्ते के समान जड़ होकर घूम रहा था। अब मैं उसके प्रभाव से छूट गया हूं। चित्त को वश में करना अत्यंत महत्त्व का कार्य है। यह कार्य सुमेरु पर्वत को उसकी जड़ से हिलाने से या समुद्र को पी जाने अथवा अग्नि को खाने से भी कठिन है। इस चित्त के नष्ट होने पर समस्त जगत प्रपंच का भी अंत हो जाता है, अतः हर संभव प्रयत्न से इसे वश में करना चाहिए, तभी वास्तविक ज्ञान प्राप्त होता है। (11-21)

'हे मुनियों में श्रेष्ठ ! मैंने जो-जो भी श्रेष्ठ गुण प्राप्त किए हैं, उन्हें तृष्णा रूपी यह चुहिया तार के समान काट डालना चाहती है। यह तृष्णा चंचल बंदरिया के समान है, जो अत्यंत कठिन स्थानों पर भी पांव रखने को तैयार है, तृप्त हो जाने पर भी और अधिक-से-अधिक फलों को प्राप्त करना चाहती है तथा यह एक ही स्थान पर नहीं रह सकती। यह एक क्षण में आकाश में घूमने लगती है, तो दूसरे ही क्षण पाताल पहुंच जाती है और उसी समय चारों दिशाओं में भी चक्कर लगा आती है। यह तृष्णा विश्व के सभी दुःखों से बड़ी है। यह बड़े-बड़े भवनों में रहनेवाले को भी सुख से नहीं रहने देती है। यह एक महामारी के समान है। चिंताओं को छोड़ देने पर ही इससे मुक्त हुआ जा सकता है। यदि पल भर के लिए भी चिंता को त्याग दिया जाए, तो अत्यंत सुख मिलता है और यदि थोड़ी-सी भी चिंता हो, तो मन को दुःखी कर देती है। शरीर के समान मामूली, गुणरहित अन्य कोई भी चीज नहीं है। यह शोक करने योग्य है। इसी में गृहस्थ के समान यह अहंकार रहता है। यह शरीर चाहे सदा ही जीवित रहे या अभी समाप्त हो जाए, मुझे इसकी तनिक भी चिंता नहीं है। यह शरीर एक घर के समान है, जिसमें सभी इंद्रियां पशु के समान पंक्ति लगाकरर खड़ी रहती हैं, जिसके आंगन में यह चित्त चंचल बंदरिया के समान है। मैं इस घर से तंग आ गया हूं। जिह्वा भी बंदरिया के समान है, जिससे मुख इतना डरा हुआ है कि उसकी हड्डियां (दांत) दिखाई देने लगी हैं। (22-30)

'यह शरीर रूपी घर बाहर एवं भीतर से मांस एवं रक्त से बना हुआ है। इसके लिए हमें शोक करना चाहिए। आखिर इसमें क्या सुंदरता है ? यदि कोई इस बात को मान ले कि बिजली में या गंधर्वों के नगरों में चंचलता नहीं होती है, तो तब भले ही वह इस शरीर को स्थिर (नाश न होनेवाला) मान ले और इस पर विश्वास करे। इस शरीर को भय-ही-भय है। बचपन में गुरु, माता तथा पिता का भय होता है। युवावस्था में अनेक विकार आते हैं, अतः उनका भय होता है तथा वृद्धावस्था में तो भय-ही-भय है। मनुष्य का शरीर कांपने लगता है, वह ठीक से चल-फिर भी नहीं सकता, अतः स्त्रियां, पुत्र, बंधु, सेवक आदि सभी उन पर हंसते हैं। शरीर की सामर्थ्य कम हो जाने के कारण इस अवस्था में इच्छाएं और भी अधिक बढ़ जाती हैं। यह अवस्था विपत्तियों की मित्र है। सांसारिक प्राणी जिस सुख को चाहता है, वह सुख वस्तुतः है ही कहां ! समय तो हर पल कटता जाता है। यह समय छोटे से छोट तिनकों, धूल के कणों आदि से लेकर इंद्र या सुमेरु पर्वत तक को सरसों के दानों के समान कर देता है। यह सभी को समाप्त कर देता है, सभी को निगल जाता है, अतः तीनों लोक

इससे आतंकित रहते हैं। यंत्र के समान चंचल स्नायु, अस्थि आदि से बने पुतली जैसे स्त्री की इस देह में कौन-सी चीज सुंदर है ? इस शरीर के त्वचा, रक्त, मांस आदि अंगों को पृथक्-पृथक् करके देखें तब क्या ये सुंदर लगते हैं ? यदि नहीं, तो फिर इनसे यह लगाव क्यों। (31-40)

'जो नारी सुमेरु पर्वत से गिरनेवाली गंगा के समान कही जाती है; और जिसके स्तनों के ऊपर सुंदर मोतियों के हार सुशोभित रहते हैं, काल उसे भी कवलित कर जाता है। फिर कभी उसके उस श्मशान में गिरे हुए स्तन के छोट से मांस पिंड को कुत्ते खाते हैं। सुंदर केशसज्जावाली, आंखों को सुंदर लगनेवाली ये नारियां छूने पर भी दुःख ही देनेवाली हैं। ये साक्षात भयंकर अग्नि की ज्वाला के समान हैं, जो पुरुष को तिनके के समान जला डालती हैं। ये नरक की आग की लकड़ियों के समान सुंदर दिखाई देती हैं; जो दूर से सुंदर दिखाई देने पर भी वस्तुतः नीरस होती हैं। कामदेव शिकारी के समान है, जो मूर्ख पुरुषों रूपी पक्षियों को फंसाने के लिए स्त्रियों को जाल बनाता है। स्त्री वासना की डोर में बंधी हुई चोर के समान है, जो चित्त रूपी कीचड़ के भ्रम में फंसे हुए पुरुष रूपी मछलियों को मार डालती है। इस दोषमय सागर में स्त्री रूपी रत्नों की शृंखला है, जो पुरुषों को नष्ट करने पर तुली है। स्त्री का होना भोगों का होना है। अतः स्त्री के न होने पर मनुष्य इस बुराई से मुक्त हो जाता है। स्त्री को त्याग देना वस्तुतः सारे जगत के प्रपंच को त्याग देने के समान है। अतः इसका त्याग ही सुखों को प्राप्त करना है। (41-48)

'समय आने पर दिशाएं भी समाप्त हो जाती हैं, देश, तारे, पर्वत आदि नष्ट हो जाते हैं। समुद्र सूख जाते हैं, ध्रुव, सिद्ध, दानव, ब्रह्मा, विष्णु आदि कोई नहीं रहते। ये सब नाश की ओर वैसे ही दौड़ते हैं, जैसे बड़वानल जल की ओर दौड़ता है। क्षण में संपत्ति आती है और क्षण में विपत्ति भी। इसी प्रकार जन्म-मृत्यु होते हैं। सभी नश्वर हैं। कभी कायर भी वीरों को मार डालता है, कभी एक ही अनेकों को समाप्त कर देता है। विषय विष से भी भयंकर हैं। विष तो एक ही जन्म को समाप्त करता है, किंतु विषय अनेकों जन्मों को नष्ट कर देते हैं। मेरे चित्त के दोष समाप्त हो गए हैं। अब मैं इस मरीचिका में रहता हुआ भी भोगों से दूर हूं। हे पिता ! मुझे ज्ञान दो, अन्यथा मैं मान, मत्सर आदि से दूर होकर मौन लेकर भगवान का स्मरण करूंगा। (49-57)

चतुर्थ अध्याय

'हे निदाघ ! अब तुम्हारे लिए कुछ भी अज्ञात नहीं है। भगवान की कृपा से तुम स्वयं सब कुछ जान गए हो फिर भी बची हुई तुम्हारे चित्त की मलिनता को मैं दूर कर दूंगा। मोक्ष के शम, विचार, संतोष तथा सत्संग, ये चार द्वार हैं। इनमें एक को भी वश में कर लेने पर शेष स्वयं ही अधीन हो जाते हैं। पहले शास्त्र, सत्संग आदि से अपनी प्रज्ञा (बुद्धि) को बढ़ाना चाहिए तभी मुक्ति होती है। फिर इन सबसे आत्मचिंतन का अभ्यास करना चाहिए—यदि तुमने इच्छाओं एवं आशाओं को त्याग दिया है, तुमने स्वतः ही इसे प्राप्त कर लिया है। चित्त के प्रति तटस्थता ही कैवल्य तथा परम शांति की अवस्था है, जो सभी पदार्थों के प्रति आत्मभाव (मेरा-परायापन) को त्यागकर गूंगे-बहरे के समान रहने पर ही प्राप्त होती है। शब्द-स्पर्श आदि से युक्त दृष्टि बिलकुल व्यर्थ है। यह समस्त दिखाई देनेवाला प्रपंच वास्तव में प्रणव का ही रूप है। यह दिखाई देनेवाला विश्व उसी 'चित्त' (चैतन्य) का अंश ही है। अतः इसे उससे भिन्न न समझो। (1-10)

'संसार के समस्त कार्यों को करते हुए भी सदा चित्त को प्रबुद्ध रखते हुए आत्मा को एक ही मानो। इस ज्ञान को पाकर समुद्र के समान रहो। यह ज्ञान अज्ञान को तिनकों के समान जला डालता है। इसी को समाधि कहा गया है। केवल मौन रहना ही समाधि नहीं है। यों ही पड़ा रहना भी, जैसे रत्न प्रत्येक देखनेवाले को आकर्षित करता है, वैसे ही वह परम सत्ता भी समस्त विश्व को आकर्षित करती है। इसी आत्मा में कर्तव्य (कार्य करने का स्वभाव) एवं अकर्तृत्व दोनों हैं। कामनाओं से हीन होने के कारण यह अकर्ता है, किंतु एकमात्र कारण होने से यह कर्ता कहलाता है। अत: जिसमें यह कर्तृत्व एवं अकर्तृत्व दोनों हैं, उसी ब्रह्म को ग्रहण करो। मैं सदा अकर्ता हूं। ऐसी भावना हो जाने पर समता दृष्टि ही शेष रहती है, जो परम अमृत कही जाती है। इस सत्त्व में विद्यमान रहनेवाले ही सच्चे गुणवान व्यक्ति हैं। वे सदा चंद्रमा के समान बढ़ते जाते हैं। वे सुनहरे कमल के समान विपत्ति रूपी रात्रि में भी धैर्य नहीं खोते, जो उन्हें सहजता से प्राप्त हो जाता है, उसके अतिरिक्त वे अन्य वस्तु की इच्छा नहीं करते तथा सदा शास्त्रों के अनुकूल आचरण करते हैं। उनमें मैत्री आदि गुण स्वाभाविक रूप में रहते हैं। वे हर स्थिति में समान रहनेवाले साधु स्वभाव के व्यक्ति होते हैं। ऐसे महान आशयवाले समुद्र के समान मर्यादावाले तथा सूर्य के समान एक निश्चित मार्ग पर चलनेवाले होते हैं। (11-20)

'मैं कौन हूं?' 'विश्व कैसे उत्पन्न हुआ?' इस पर विचार करते हुए साधना करे। कोई भी व्यर्थ कार्य न करे। अस्थि, मांस आदि से बने इस शरीर की उपेक्षा करे। मोती की माला में पिरोए गए तागे के समान सभी जीवों में व्याप्त परमात्मा को देखें। अनुपयोगी वस्तु को त्याग दे, उपयोगी को ग्रहण करे। गुरु, शास्त्र आदि के ज्ञान तथा अपने अनुभवों में ब्रह्म हूं, इसे जानकर शोक को त्याग दे। तब साधक कठोर तलवारों के समान वारों को भी सह लेता है। अग्नि का प्रभाव भी उसके लिए शीतल जल में स्नान के समान हो जाता है। अंगारों पर लेटना ही उसे चंदन के लेप जैसा लगता है। शरीर में घातक बाणों की वर्षा भी शीतल जल की वर्षा जैसी लगती है। सिर का कटना भी आरामदायक नींद जैसा लगता है। गूंगा हो जाना मौन के समान तथा बहरापन उन्नति के समान सुखद प्रतीत होता है। यह अवस्था आसानी से नहीं प्राप्त होती, यह केवल वैराग्य तथा आत्मज्ञान से ही प्राप्त होती है। गुरु आदि के उपदेशों तथा स्वयं के अनुभव से प्राप्त मानसिक पवित्रता से हुए आत्म साक्षात्कार का निरंतर अभ्यास करते रहे। तब दिशा भ्रम के अज्ञान का नाश होने पर समस्त विश्व प्रपंच समाप्त हो जाता है। धन, मित्र, पिता, पुत्र आदि व्यक्ति का उपकार नहीं कर सकते। देह के क्लेशों का नाश या तीर्थों में जाने से भी कोई लाभ नहीं होता, केवल चिन्मात्र में लय से ही परमपद की प्राप्ति होती है। संसार के सभी दु:ख, तृष्णा आदि शांत मनवाले मनुष्य में सूर्य के समाने अंधकार के समान नष्ट हो जाती है। शमवाले व्यक्ति का सभी मधुर या कठोर स्वभाववाले प्राणी विश्वास करते हैं। (21-30)

रसायनों के पीने से या अपार लक्ष्मी से वह सुख प्राप्त नहीं होता, जो शम (शांति) से प्राप्त होता है। जो सुनकर या भोगकर भी शुभ या अशुभ से हर्षित या दु:खी नहीं होता वही शांत कहा जाता है। जिसका मन चंद्र के समान निर्मल होता है, जो उत्सव, युद्ध, मृत्यु आदि से किसी प्रकार प्रसन्न या अधीर नहीं होता, वही व्यक्ति शांत कहा जाता है। उसी व्यक्ति का यज्ञ करनेवालों, तपस्वियों,

राजाओं, विद्वानों आदि में भी सम्मान होता है। संतोष के अमृत को पीकर शांत और तृप्त बने महात्मा आत्मा में रमण करते हैं। उन्हें ही परमपद मिलता है। जो प्राप्त वस्तु के प्रति भी संतुष्ट रहे तथा मिली वस्तु की चिंता न करे, सदा समान रहे, वही व्यक्ति संतुष्ट कहा जाता है। जैसे पतिव्रता स्त्री अपने आंगन में ही संतुष्ट रहती है, जो मिल जाए उसी में संतुष्ट रहती है, इसी प्रकार की अनंत आनंददायक अवस्था जीवन्मुक्त अवस्था कही जाती है। जब तक आत्मविश्रांति प्राप्त न हो जाए तब तक समय, देश एवं शास्त्र के अनुसार कार्य करते हुए तथा सत्संग करते हुए मोक्ष के मार्ग पर विचार करते रहना चाहिए। तुरीयावस्था में गृहस्थ हो या संन्यासी हो, वह संसार चक्र से छूट जाता है, उसे इस भ्रमजाल में पड़ने की आवश्यकता ही नहीं रहती तथा उसके लिए वेदों, स्मृतियों आदि का पालन भी व्यर्थ हो जाता है। वह आत्मा में स्थित होकर समुद्र के समान स्वयं ही सब कुछ प्राप्त कर लेता है। (31-41)

सर्वात्ममय वेदन (ज्ञान) के प्राप्त होने पर समय एवं दूरी से बंधा समस्त विश्व केवल 'चित्त' रूप ही लगता है। तब आत्मा जहां और जिस रूप में भी हो, वहां वैसे ही अत्यंत उल्लास के साथ स्थित हो जाता है। सुषुप्ति में लीन होने पर स्वप्न की तरह यह समस्त चराचर जगत-प्रलय में नष्ट हो जाता है। ज्ञानी लोगों ने इस आत्मा को परमब्रह्म, सत्य तथा यज्ञ का स्वरूप कहा है। जैसे कंकण केवल सोना ही होता है, उससे भिन्न नहीं, उसी प्रकार ब्रह्म ने इस जगत को भी बनाया है, यह उससे भिन्न नहीं है। इस दृश्य जगत में डूब जाने से द्रष्टा को बंधन हो जाता है। दृश्य के समाप्त हो जाने पर ही मोक्ष होता है। यह 'तेरा' और 'मेरापन' वाली सृष्टि ही दृश्य जगत है। इस समस्त माया का प्रपंच मन के कारण ही होता है। अतः मुक्ति के लिए मन की इच्छा का समाप्त होना आवश्यक है। स्वयं उत्पन्न हुए ब्रह्मा ने भी इस विश्व को मन से ही उत्पन्न किया है। (42-50)

वास्तव में मन का 'सत' रूप में बाहर या भीतर, कहीं भी अस्तित्व नहीं है। विषयों का बोध होना ही मन कहलाता है। इच्छाएं करना ही इसका रूप है। अतः मन संकल्प (इच्छा) के अतिरिक्त कोई और वस्तु नहीं है। आज तक कोई भी मन एवं संकल्प को एक-दूसरे से अलग नहीं कर पाया है। संकल्पों के नष्ट हो जाने पर केवल आत्मा ही शेष रहता है। 'मैं' और 'तुम' इस भाव के समाप्त होने पर ही कैवल्य (मोक्ष) प्राप्त होता है। प्रलय के समय समस्त दिखाई देनेवाले प्रपंच का नाश हो जाने पर केवल शांत आत्मा ही रह जाता है। जो आत्मा सूर्य के समान कभी अस्त नहीं होता, वह निरामय देव ही परमब्रह्म है। वाणी आदि उसे बिना प्राप्त किए ही लौट आती हैं। उसी की आत्मा तथा रूपों की कल्पना की जाती है। वही रूप आदि से रहित परमात्मा है। चित्त आकाश, चिद आकाश तथा यह दिखाई देनेवाला आकाश, ये तीन आकाश हैं। चिदाकाश अत्यंत सूक्ष्म है। एक देश से दूसरे देश में जाने के बीच चित्त की सूक्ष्म उपस्थिति ही चिदाकाश है। इसमें समस्त संकल्पों के अस्तित्व को नष्ट कर देने पर उस सभी के आत्मा स्वरूप पद की प्राप्ति हो जाती है। (51-60)

इस चिदाकाश में स्थित होने पर उदार और वैराग्यमय आनंद देनेवाली अवस्था ही समाधि है। उस समय—समस्त दृश्य जगत एक शून्य प्रतीत होता है और राग, द्वेष आदि समाप्त हो जाते हैं। इसके अभ्यास से चित्त को एकाग्र करके प्रसन्न रहने की शक्ति पैदा हो जाती है। दृश्य की सत्ता की सारहीनता ज्ञात होना ही ज्ञान है। यही आत्म कैवल्य है। उसके अलावा यह समस्त प्रपंच झूठ

है। जैसे धूल के कण के बराबर छिद्र में मच्छरों एवं सिंहों का युद्ध मदोन्मत्त ऐरावत को सरसों के बराबर छिद्र में बांधना या कमल की पंखुड़ी में रखे हुए सुमेरु पर्वत को भंवरे के बच्चे द्वारा निगला जाना, ये सब मिथ्या कथन हैं, वैसे ही यह विश्व भी झूठ है। इसका अस्तित्त्व है ही नहीं। राग-द्वेष आदि से युक्त चित्त ही विश्व है। इन दोषों से मुक्त हो जाना ही मोक्ष है। मन द्वारा शरीर की इच्छा होने पर ही आत्मा देहमय बनता है। देह का भ्रम दूर होने पर वह फिर निर्लिप्त हो जाता है। मन ही कल्प को क्षण तथा एक क्षण को कल्प बना देता है, अतः यह सब विश्व केवल मन की कल्पना ही है। जो एकाग्र चित्त तथा शांत मन नहीं होता और इसके विपरीत होता है, उसे कभी आत्मज्ञान प्राप्त नहीं होता। अपने को उस अद्वैत आनंदस्वरूप सत-चित्त धन निर्गुण ब्रह्म के समान समझ लेनेवाला कभी भयभीत नहीं होता। (61-70)

'मैं परम से परम, महान से महान, कवि, पुराणपुरुष, तेजोमय स्वरूप शिव, सर्वेश्वर, सभी देवताओं द्वारा पूजित ब्रह्म हूं' ऐसा ज्ञान ही मोक्ष का श्रेष्ठ उपाय है। ममता के कारण ही प्राणी बंधन में पड़ता है तथा ममता से रहित होना मोक्ष के मार्ग पर चलना है। ब्रह्म की इच्छा से लेकर इच्छा के त्याग तक यह समस्त ईश्वर की कल्पना है। जागृत अवस्था से मोक्ष प्राप्ति तक यह सब प्राणी की कल्पना है। कठोपनिषद् की त्रिनाचिकेत अग्नि से श्वेताश्वतर के योग तक सब ईश्वरीय भ्रांति है तथा चार्वाक के मत से कपिल मुनि के सांख्य सिद्धांत तक दर्शन का आधार जीव की भ्रांति है। मुक्ति प्राप्ति का इच्छुक जीव एवं ईश्वर के वाद-विवाद से भ्रमित न हो। उसे दृढ़ता से ब्रह्म तत्त्व का मनन करना चाहिए। ज्ञानी व्यक्ति दृश्य जगत को भी चित्त रूप ही माने। वही शिव, ब्रह्म तथा विष्णु है। विषयों के त्याग के समान ही ज्ञान प्राप्त करना भी अत्यंत कठिन है। सच्चे गुरु की कृपा के बिना सहज अवस्था दुर्लभ है। सब कर्मों को त्यागकर बोध-शक्ति को जगाने से सहज अवस्था स्वतः ही प्राप्त हो जाती है। इसमें थोड़ी-सी भिन्नता रहने तक भय-ही-भय है। सर्वमय सच्चिदानंद के दर्शन केवल ज्ञान की आंखों से ही हो सकते हैं। इनके अभाव में उसे अंधे द्वारा सूर्य-दर्शन के समान ही परम ब्रह्म के दर्शन कदापि नहीं हो सकते। (71-80)

ब्रह्म प्रज्ञान रूप है तथा सत्य का भी लक्षण ज्ञान ही है। मरणशील व्यक्ति ब्रह्म के ज्ञान से ही अमरता प्राप्त करता है। ब्रह्म कार्य भी है और कारण भी। उसके साक्षात्कार से सारे संशय नष्ट हो जाते हैं। कर्मों के क्षय से हृदय की ग्रंथियां खुल जाती हैं। सब कुछ आत्मा ही है, ऐसा मानते हुए संसार में निर्विकार और त्याग भाव से रहो। मरुस्थल में प्रतीत होनेवाला जल भी जैसे भूमि ही होता है, उसी प्रकार तीन अवस्थाओं (स्वप्न आदि)वाले इस विश्व को 'चित्त' ही समझना चाहिए। लक्ष्य-अलक्ष्य को त्यागकर आत्मा में निष्ठावाला प्राणी शिव रूप ही है, जो मन-वाणी द्वारा अगम्य एवं नित्य, सर्वगत, सूक्ष्म, अविनाशी है—यह विश्व सर्वशक्तिमान परमात्मा का मनोविलास ही है। संयम-असंयम से अंत में सांसारिक प्रपंच शांत हो जाता है। मैं मन के विकारों को शांत करने का उपाय तुम्हें बताता हूं। मन जिस वस्तु की इच्छा करे, उसके त्याग से मोक्ष प्राप्त होता है। जो इच्छा को नहीं त्याग सकता, एकांतप्रिय नहीं है तथा आत्मा के अनुसार नहीं चलता उस मनुष्य रूपी कीड़ों को इच्छित वस्तु का स्वयं ही प्रयत्न करके त्याग करने से मन की शांति प्राप्त होती है। (81-90)

संकल्प-शून्यता रूपी शस्त्र चित्त को काट देता है। तभी सर्वगत शांत ब्रह्म प्राप्त होता है।

अतः प्रपंच भाव को त्यागकर श्रेष्ठ बुद्धि से मन को नियंत्रित करते हुए 'चित्त' मात्र में स्थित होओ। वैराग्य का आश्रय और उसकी सहायता से चित्त को अचित्त बनाकर हृदयाकाश में ध्यान करें। चित्त के चक्र की धार से मन को मारकर निःशंक हो जाओ। 'अपने-पराए' की भावना का नाश करने से मन का स्वयं ही नाश हो जाता है। शरद ऋतु में वायु से टकराकर छिन्न-भिन्न बादल आकाश में ही लय हो जाते हैं, वैसे ही सद विचारों से मन भी लय हो जाता है। चाहे सारे समुद्र एक होकर वर्षा करें, चाहे प्रलयकालीन उनचासों वायु पूरे वेग से बहने लगें या चाहे बारहों आदित्य एक साथ चमकने लगें, जिसका मन लय हो जाता है, उसे कोई हानि नहीं होती। संकल्पहीनता सभी सिद्धियों का उपाय है। अतः इस अवस्था में रम जाओ। मन का धर्म चंचलता होने से सभी जगह चंचल मन ही दिखाई देता है। चंचल शक्तियुक्त स्पंदन शक्ति चित्त का कार्य है। यह शक्ति विश्व प्रपंच का ही रूप है। चंचलता से रहित मन ही अमरता है। उसी को शास्त्र मोक्ष कहते हैं।(91-100)

यह मन की चंचलता ही वासनात्मक अविद्या है। अतः इसका विचारों से नाश करें। जिस लक्ष्य में मन को लगाते हो, उसे प्राप्त करने के लिए निर्विकल्पक समाधि लगाओ। चित्त को चित्त से ही प्रयत्नपूर्वक वश में करके शोक एवं आतंक से मुक्त होकर स्थिर होओ। विषयहीन मन ही मन को रोक सकता है क्योंकि सत्ताधारी राजा ही किसी राजा को हरा सकता है। तृष्णारूपी ग्राह द्वारा पकड़े गए, संसार सागर में फंसकर किनारा पाने में असमर्थ तथा भंवर जाल में पड़े लोगों को विकारहीन नौका रूपी मन ही पार लगा सकता है। अतः इस शक्तिशाली मन के द्वारा प्रपंच को नष्ट करके संसार सागर से पार हो जाओ, दूसरा कोई इससे पार नहीं करा सकता। अंतःकरण को ढकनेवाली मनरूप वासना को त्यागना ही बुद्धिमान का परम कर्तव्य है। इससे अविद्या का अंधकार नष्ट हो जाता है। पहले भोग रूप वासना का फिर भेद रूप का तथा इसके बाद भाव-अभाव रूप का त्याग करना ही उचित है। इससे निर्विकल्पक समाधि से सुख प्राप्त करो। मन के अनुभवों में चित्त को मत लगाओ। आस्था का त्याग मोक्ष तथा इसका सहारा बंधन है। प्रज्ञावान से अविद्या दूर रहती है। (101-110)

सांसारिक भ्रमजाल कांटों से ओत-प्रोत है। जब तक इसे नष्ट करनेवाली आत्म साक्षात्कार की भावना दृढ़ नहीं होती, तब तक यह भ्रम में डालता रहता है। इस भावना के दृढ़ होने पर यह नष्ट हो जाता है। अविद्या रूपी इच्छा का नष्ट होना मोक्ष है। संकल्पों के नाश पर ही इच्छाओं का भी नाश होता है। कलि रूपी अंधकार को नष्ट करने के लिए चित्त के आकाश में वासनां रात्रि को नष्ट करने हेतु चेतना सूर्य का उदय आवश्यक है। विषयहीन और सब ओर जानेवाली मन की अवस्था वर्णन से बाहर होती है। यह निश्चय ही अव्यय, नित्य एवं चित्त रूप ब्रह्म है, इसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं है। वह केवल भ्रम नहीं है, वह दृश्य का विकार अस्तित्व से रहित है। इस जगत में न तो कोई जन्म लेता है और न मरता है, सब मिथ्या प्रपंच है। केवल सर्वव्यापक अव्यय आभास रूप एवं चित्त के विकारों से परे रहनेवाला आत्मा ही सत्य है। यह आत्मा नित्य व्यापक, निरुपद्रव, शुद्ध, निर्विकार तथा शमरूप में स्थित है। (111-120)

इसमें चित्त संकल्प रहित हो जाता है, चित्त की यही अवस्था मन कहलाती है, जो स्वयं निर्दोष होता है। अतः मन संकल्प द्वारा ही नष्ट हो जाता है। अपने को ब्रह्म से भिन्न मानना ही बंधन में

डालना है। ब्रह्म को सब कुछ मानने से मन मुक्त हो जाता है। शरीर की तथा सांसारिकता की चिंता ही व्यक्ति को बंधन में डालती है, इससे दूर रहने वाला सदा मुक्त रहता है। जो स्वयं को केवल हड्डी एवं मांस का पुतला न मानकर कुछ अन्य (ब्रह्म का अंश) मानता है, उसकी अविद्या नष्ट हो जाती है। अभ्यास एवं वैराग्य से भोगों की इच्छा को दबाकर निर्विकल्पक बन जानेवाला ही सच्चा सुखी हो जाता है। मेरा पुत्र, मेरा धन इत्यादि सब माया का भ्रम है। अतः समस्त मोह का त्याग कर देना चाहिए। अज्ञानी मत बनो, अनात्म (मिथ्या भ्रम) में आत्मभाव मत रखो। यह मूर्खता है। इस जड़ शरीर से तुम्हारा कोई संबंध नहीं है। यह घोर अपवित्र, गूंगा, मांस का पिंड है। व्यर्थ में इसके लिए दुःखी न होओ। आश्चर्य की बात है कि प्राणी परम सत्य ब्रह्म को भूलकर इस देह के जाल में पड़ जाता है। ज्ञानवान बनो। सांसारिक कर्तव्यों को पूरा करते हुए भी इसमें लिप्त न होओ। अस्तित्त्वहीन अविद्या ने संसार को मूर्ख बनाया हुआ है। तिनके के समान तुच्छ जागृत एवं सुषुप्त अवस्थावाला विश्व इसी के कारण वज्र के समान कठोर प्रतीत होता है। (121-131)

पंचम अध्याय

ऋभु ने अपने पुत्र से कहा, 'ज्ञान एवं अज्ञान, दोनों के सात-सात पद हैं। इन दोनों के बीच में असंख्य भूमिकाएं उत्पन्न होती हैं। अहं स्वरूप को गिरा देनेवाला है। स्वरूप में स्थित रहने से ही मुक्ति मिलती है। जो शुद्ध आत्मा को जानकर उससे विचलित नहीं होते, उन्हें राग-द्वेष आदि विकार प्रभावित नहीं कर सकते। इसे छोड़कर वासनाओं में चित्त को डुबा देना सबसे बड़ा मोह है, जिससे बड़ा न कभी हुआ और न कभी होगा ही। मन के एक विषय से दूसरे विषय में जाने के मध्य की स्थिति में स्थित रहकर ही ध्वस्त मन को समझा जा सकता है। सभी संकल्पों के शांत हो जाने पर पत्थर के समान चेष्टा रहित स्थिति परास्वरूप स्थिति कही जाती है। इस स्थिति में चित्त शांत, चेतन एक भेदभाव से शून्य हो जाता है। बीज जागृत, जागृत, महाजागृत, जागृतस्वप्न, स्वप्न, स्वप्न जागृत तथा सुषुप्ति, मोह की यही छः अवस्थाएं होती हैं। इनके परस्पर मिलने से अनेक भेद हो जाते हैं। इन सातों के लक्षण इस प्रकार हैं—प्रथम बीज जागृत अवस्था में चित्त नाम आदि से रहित निर्मित होता है। यह चेतन अवस्था है। ज्ञाता की यह एक नई अवस्था है। (1-10)

'मोह की दूसरी अवस्था जागृत है। इसमें 'मेरा-तेरा' भाव विद्यमान रहते हैं। महाजागृत अवस्था में 'यह मैं हूं', 'वह मेरा है' इत्यादि पूर्वजन्मों के संस्कारों से युक्त भावनाएं होती हैं। चौथी जागृत स्वप्नावस्था होती है। इसका परंपरा से या मनोमय दृष्टि से अपना एक निश्चित रूप है। इसमें एक के स्थान पर दो चंद्रमा का, सीप के स्थान पर चांदी का आभास होता है अर्थात मरीचिकावाली अवस्था है। इस आभास के कारण इसके अनेक भेद हो जाते हैं। स्वप्नावस्था में देखा हुआ दृश्य जागने पर नहीं दिखाई देता केवल उसकी स्मृति शेष रहती है। इसके बाद स्वप्न जागृत अवस्था है। इसमें जागृत अवस्था में भी स्वप्न दिखाई देते हैं। विभिन्न कार्यों के साथ ये देर तक टिके रहते हैं। इस अवस्था के बाद सुषुप्ति अवस्था होती है। यह अतीत के दुःखों का बोध करानेवाली जड़ात्मक अवस्था है। इसमें विश्व आंतरिक अज्ञान में लय हो जाता है। ये मोह की संक्षिप्त सात अवस्थाएं हैं। सूक्ष्म भेद करने पर प्रत्येक के सैकड़ों भेद हो जाते हैं। (11-20)

'ज्ञान की भी सात भूमिकाएं हैं। इनका ज्ञान न होने पर प्राणी मोह के कीचड़ में डूब जाता है। यद्यपि इन योग भूमिकाओं के अनेकों भेद बताए गए हैं,तथापि यही सात महत्त्वपूर्ण भेद हैं,जो परम कल्याणमय हैं। इनसे प्राप्त बोध ही ज्ञान कहा जाता है। इनके बाद मिलनेवाली मुक्ति ही ज्ञेय (जानने योग्य) कहलाती है। इन सातों ज्ञान भूमिकाओं के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं : शुभेच्छा, विचारणा, तनुमानसी, सत्त्वापत्ति, संसक्ति, पदार्थ, भावना तथा तुर्यगा। इनसे मुक्ति प्राप्त होने पर शोक सदा के लिए छूट जाते हैं। वैराग्य से पूर्व शास्त्राध्ययन एवं सत्संग से सांसारिकता के प्रति ग्लानि होना शुभेच्छा है। इसके पश्चात इस प्रकार के अध्ययन से वैराग्य की प्रवृत्ति उत्पन्न होना विचारणा है। इस अवस्था के प्राप्त होने पर विषयों के प्रति आसक्ति नष्ट हो जाती है। यही अवस्था तनुमानसी कहलाती है। इन तीनों भूमिकाओं का अभ्यास पूर्ण होने पर वैराग्य प्रबल हो जाता है, जिससे चित्त 'सत्त्व' स्वरूप में स्थित हो जाता है। इसी अवस्था को सत्त्वापत्ति कहते हैं। (21-30)

'चारों अवस्थाओं के अभ्यास से जो असंसर्ग कला सत्त्व में स्थित होती है, उसे आसक्ति कहते हैं। अब पांचों अवस्थाओं के अभ्यास से साधक अपने ही आत्मा में रमण करने लगता है। उसके लिए बाह्य एवं अभ्यंतरिक (भीतरी) सभी प्रकार की पदार्थ भावना नष्ट हो जाती है। यही पदार्थ भावना है। छः भूमिकाओं के अभ्यास से उसकी सभी प्रकार की भेद बुद्धि (अन्य वस्तुओं को परमात्मा से पृथक् मानने की बुद्धि) नष्ट हो जाती है और वह अभेदात्मक आत्मभाव में ही पूर्णतया एकनिष्ठ हो जाता है। इसी अवस्था को सातवीं तुर्यगा अवस्था कहा जाता है। यह केवल जीवन्मुक्त साधकों को ही प्राप्त होती है। इसके बाद विदेहमुक्ति तुर्यातीत अवस्था होती है। जो परम भाग्यशाली तुर्यगा अवस्था में पहुंच जाते हैं, वे अपने आत्मा में ही रम जाते हैं। वे महान पद को प्राप्त करके सुख-दुःख से दूर होकर जीवन्मुक्त बन जाते हैं। वे सांसारिक कार्यों को करते हुए भी उनमें लिप्त नहीं होते। वे साथियों द्वारा जगाए गए मनुष्य के समान श्रेष्ठ सांसारिक एवं सनातन कार्यों को करते रहते हैं। इन सातों भूमिकाओं को कोई मेधावी ही प्राप्त करता है। इन्हें यदि नीच, म्लेच्छ या पशु भी प्राप्त कर लें, तो वे भी देह त्यागने पर मुक्त हो जाते हैं। हृदयग्रंथि के खुलने पर ही यह अवस्था मिलती है। तभी मुक्ति भी मिलती है।(31-40)

'जो सांसारिक पदार्थ आत्मा से भिन्न हैं, उन्हें वास्तविक रूप में देखने पर ही मृग-मरीचिका के नष्ट होने पर आत्मबुद्धि का उदय होता है। (ऐसा न होना ही अविद्या है) इस प्रकार अविद्या के नाश पर ही मुक्ति होती है। आत्म साक्षात्कार में लगे रहने पर ही व्यक्ति इन भूमिकाओं को प्राप्त करता है। मन ही पूर्ण शांति का उपाय कहा गया है। इन सब भूमिकाओं का लक्ष्य ब्रह्मपद को प्राप्त करना है। 'तेरा', 'मेरा' आदि भेदभाव का नष्ट होना ही ब्रह्मपद है। सांसारिक पदार्थों का अस्तित्व आत्मा की संवेदना ही है, अतः इस अवस्था में भावनात्मक बुद्धि भी शेष नहीं रहती है और ईश्वर का चिंतन भी नहीं होता। ब्रह्म, आशास्वरूप, शिव, शाश्वत, दोष, आलंबन-कारण-वर्णन रहित है, उसका आदि, मध्य या अंत नहीं है, वह 'सत', 'असत' से परे है। मन, वाणी आदि इंद्रियां उसे ग्रहण नहीं कर सकतीं, वह परम सुख रूप तथा आत्म-साक्षात्कार रूप है, अतः वह आत्मसंवेदन में भी नहीं आता। द्रष्टा (देखनेवाला) और दृश्य के बीच में दृष्टि का स्वरूप, द्रष्टा, दृश्य एवं दर्शन से भिन्न

साक्षात्कार रूप में स्थित होता है। चित्त की एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने के बीच की स्थिति में सदा तन्मय रहना चाहिए। अपने जागृत, स्वप्न एवं सुषुप्ति से भिन्न जड़-चेतन से शून्य सनातन रूप में स्थित रहो और उसी में लीन रहो। (41-50)

'जड़ता शिला के समान अवस्था है, अतः इसे त्यागकर अमनस्क स्थिति में स्थित रहो। चित्त को त्यागकर जो अवस्था होती है, उसी में स्थित रहो। परम आत्मा से सर्वप्रथम मन ही उत्पन्न हुआ है। संसार उसी मन का विकल्परूप है, शून्य से शून्य उत्पन्न होता है। शून्य आकाश से सुंदर नीलापन प्रकट होता है। संकल्प नाश होने पर चित्त की वृत्तियां भी गल जाती हैं। फलस्वरूप सांसारिक मोह भी गल जाता है। तब शरद ऋतु के स्वच्छ आकाश के समान वह सभी प्राणियों-पदार्थों का जन्म-स्थल, अजन्मा 'चित्त' मात्र रूप ही आभासित होता है। तब विना रंगों और कलाकार के आकाश चित्रित जैसा लगता है। द्रष्टा न होने पर भी निद्रा रहित स्वप्न जैसा दिखाई देता है। यह 'चित्त' आत्मा के समान निर्विकल्पक साक्षी रूप तथा निर्मल दर्पण के समान है। इच्छा न होने पर भी उसमें तीनों लोक प्रतिबिंबित होते हैं। वह सभी के स्वरूपवाला, चिदाकाश रूप, अखंड तथा एक है। इस प्रकार की भावना करने से चित्त चपलता त्याग देता है। शिला पर खिंची रेखा एवं उपरेखा के समान तीनों लोकों युक्त ब्रह्म के दर्शन करने चाहिएं। 'चित्त' मात्र के अतिरिक्त किसी कारण से इस विश्व की उत्पत्ति नहीं हुई। इस अनुभूति के बाद माया से दूर तथा संशयों से रहित होकर केवल चिन्मात्र के दर्शन करो। 'जो जानना था जान लिया; जो देखना था देख लिया, लंबे समय से थकने के बाद अब मुझे आराम मिला है'। इस प्रकार परम पद की प्राप्ति पर संकल्पों एवं काल को अर्थहीन कर देनेवाले साधक दोषों से मुक्त होकर ब्रह्म पद को प्राप्त करते हैं। (51-60)

'जिसका चित्त शांत हो तथा जो अमनस्क हो गया हो उसकी मेधा (बुद्धि) वृद्धि को प्राप्त होती है। मन की वृत्तियों के नष्ट होने पर मानसिक संकल्पों के त्याग के अभ्यास से परिपक्व मनवाले वेदांत के मनन में लगे रहते हैं। तब वे हेय (अनुपयोगी) तथा उपादेय दोनों ही पदार्थों का त्याग कर देते हैं। जो प्रपंच को नहीं देखते, जानने योग्य परमतत्त्व में लीन रहते हैं, संसार के नीरस तथा सरस सभी का त्याग करके विरक्त हो गए हैं, इस मोहमय जगत के प्रति सोए जैसे हो गए हैं, जिन्होंने प्रबल वैराग्य से सांसारिक जाल को चूहे के समान काट डाला है और जिनकी हृदय ग्रंथि खुल गई है, वे सुंदर परिणामवाले जल के समान शुद्ध हो जाते हैं। पिंजड़े से मुक्त पक्षी के समान जब मन मोहपाश से मुक्त हो जाता है तब वह द्वंद, आलंब, राग आदि से रहित हो जाता है। देह के दुरात्म भाव के शांत तथा प्रपंच से मुक्त व्यक्ति का चित्त पूर्ण चंद्रमा के समान सुशोभित होता है। जो यह सोचता है कि 'न तो मैं हूं न कोई अन्य वस्तु ही है केवल एक ब्रह्म ही सर्वत्र है,' वही वास्तव में, 'सत' एवं 'असत' को पहचाननेवाला है। जैसे मन अनुराग न होने पर भी दर्शन, द्रष्टा एवं दृश्य की ओर खिंच जाता है, ज्ञानी लोग वैसे ही अनासक्त भाव से सांसारिक कर्तव्य पूर्ण करते हैं। (61-70)

'जैसे उपकार किए जाने पर चोर मित्रता का निर्वाह करता है, उसी प्रकार भली प्रकार से भोगे हुए भोग भी संतुष्टि प्रदान करते हैं। जहां की आशा न हो उस गांव में आ जाने पर जैसे पथिक उसे आश्चर्य से देखता है, वैसे ही ज्ञानी भोगमय ऐश्वर्यों को देखते हैं। वश में हुआ मन थोड़े भोगों को

भी अत्यधिक क्लेशकारक मानता है। अन्य राज्यों द्वारा आक्रमण न होने पर राजा अपने राज्य को भी तुच्छ-सा मानने लगता है, वही राजा बंदी बनाए जाने पर मुक्ति प्राप्त करके एक ग्रास को भी मूल्यवान समझता है। दांतों से दांतों को दबाकर हाथों से हाथों को मलकर तथा अंगों को भींचकर मन को जीतें। विश्वरूपी सागर में इसे जीतने से बढ़कर अन्य उपाय नहीं है। घोर नरक में दुष्कर्म गजराज जैसे घूमते हैं। आशा शस्त्रों से सजी हुई शत्रु रूपी इंद्रियों को जीतना अति दुष्कर है। अहंकार का दमन करके इन इंद्रियों को जीत लेने पर भोगों के प्रति रुचि हेमंत ऋतु में कमल के समान सूख जाती है। मन की एकाग्रता के अभ्यास से हृदय की वासना दूर हो जाती है। विवेकी लोग अपने मन को सेवक के समान अपने अधीन कर लेते हैं, संपूर्ण इंद्रियों को वश में कर लेनेवाला सामंत के समान है। मननशील व्यक्ति का मन लालन करनेवाली ललना के समान स्निग्ध तथा पालन करनेवाले पिता के समान होता है। (71-80)

'शास्त्रों के अनुकूल आचरण तथा स्वयं के अनुभव से प्राप्त बुद्धि के प्रकाश से मनरूपी पिता परम सिद्धि प्रदान करता है। आत्मगुणों से तेजोमय मनरूपी मणि हृदय में शोभा पाता है। इस वासना के कीचड़ से कलंकित मनोमणि को विवेक रूपी जल से शुद्ध करना चाहिए। विवेकपूर्ण बुद्धि से सत्य का दर्शन करो। इसी से इंद्रिय शत्रु नष्ट होंगे तथा संसार से पार हो जाओगे। संसार में आशा ही दुःखों की जननी है। विश्व के प्रति अनास्था ही सुख का कारण है। वासना में बंधे रहने से विश्व पुनः-पुनः प्रकट होता है। यह वासना अत्यधिक दुःख देनेवाली तथा सुखों का समूल नष्ट करनेवाली है। इसके पाश में धीर, कुलीन, महात्मा आदि जंजीरों से सिंह के समान बंध जाते हैं। शास्त्रों के अनुकूल श्रेष्ठ आचरण करनेवाला कौन व्यक्ति सिद्धि नहीं प्राप्त करता? 'मैं ही यह संपूर्ण विश्व हूं, अच्युत परमात्मा हूं मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है;' ऐसी भावना ही श्रेष्ठ है। 'मैं इस सबसे अभिन्न हूं और मेरा साकार बाल की नोक से भी सूक्ष्म है;' ऐसी अनुभूति मुक्ति देनेवाली है; न कि बंधन देनेवाली। जीवन्मुक्त पुरुष को ऐसा ही अनुभव होता है। (81-91)

'मैं हाथ-पांव सहित देहवाला हूं', यह एक तुच्छ सांसारिक अनुभव है। अहंकारयुक्त दुरात्म भाव ही सांसारिक दुःखों के वृक्ष की जड़ है। इसकी मार से जीव का पतन होता है। इस दुःख देनेवाले अहंकार को छोड़कर श्रेष्ठ अहं (मैं ब्रह्म हूं) को प्राप्त करने से परम शांति के साथ ही कल्याण की प्राप्ति होती है। प्रथम दो अहंकारों में लगते हुए तीसरे अहंकार का त्याग करें और साधना-शक्ति बढ़ने पर उन दोनों को भी त्याग दें फिर अहंकार रहित रहें। इसी से उच्च पद की प्राप्ति हो सकती है। किसी भी प्रकार के भोगों की इच्छा बंधन ही है और इसे त्यागना ही मुक्ति है। मन के नाश से ही मन की उन्नति होती है। महान ज्ञानियों का ही मन नष्ट होता है। ज्ञानी लोग मन को न तो आनंदमय मानते हैं न आनंदहीन, न चल मानते हैं न अचल, न 'सत' न 'असत' और न ही इनके बीच की अवस्था ही। सभी संकल्पों एवं नामों से रहित इस अविनाशी चिदात्मा को स्व आत्मा कहा जाता है। (92-100)

'यह अद्वैत चेतन सत्ता सबमें व्याप्त होते हुए भी 'चित्त' में स्थित सूक्ष्म आकाश के समान दिखाई नहीं देती। ज्ञानी लोग इसे आकाश से भी सौ गुने स्वच्छ रूप में अवयवरहित देखते हैं, वे स्वयं के ही रूप संपूर्ण जगत को देखते हैं। इस सत्ता का कभी उदय या अंस्त नहीं होता। वह

गमन-आगमन, उठने-बैठने से रहित है, वह आधार एवं विकल्प से रहित निर्मल प्रकाश रूप है। शांति, दमन आदि से चित्त के अंतःकरणों को निर्मल बनाना गुरु का प्रथम कर्तव्य है। इसके बाद शिष्य को ब्रह्म का स्वरूप-बोध कराना चाहिए कि यह सब तथा तुम ब्रह्म ही हो। अज्ञानी या अर्धज्ञानी को ऐसा उपदेश देना उसे नरक में धक्का देने के समान है। प्रबुद्ध, समाप्त भोगेच्छा वाले तथा आशा रहित को ही यह ज्ञान देना चाहिए। उसे समझाना चाहिए कि अविद्या या मन कुछ भी नहीं है। जैसे दीपक होने पर ही प्रकाश होता है, सूर्य उदय पर ही दिन होता है तथा पुष्प के होने पर सुगंध होती है, वैसे ही चित्त के होने पर ही संसार है। वस्तुतः संसार है ही नहीं। जब चित्त का नाश हो जाएगा, तो संसार का भ्रम भी दूर हो जाएगा। यह केवल आभास है। ज्ञान होने पर जब आवरण (माया का) हट जाएगा, तब तुम स्वयं ही अपने स्वरूप को जानकर उसमें स्थित हो जाओगे और तुम्हें मेरे उपदेश की सार्थकता मालूम हो जाएगी। (101-109)

'उत्कृष्ट अविद्या स्वार्थ को नष्ट करने के लिए तैयार है, इसी से सभी दोषों को नष्ट करनेवाली विद्या प्राप्त होगी। शस्त्र ही शस्त्र को काटता है, मल से मल ही घुलता है, विष ही विष को नष्ट करता है तथा शत्रु ही शत्रु को मारता है। इसी तरह यह भूतों की माया स्वयं को ही नष्ट करके प्रसन्न होती है। इसका स्वभाव दिखाई नहीं देता, दिखाई पड़ते ही यह नष्ट हो जाती है। इसके अस्तित्व को न मानकर सब कुछ ब्रह्म ही है, ऐसा मानना मोक्ष प्राप्त कराता है। ऐसा न मानना ही अविद्या है, अतः इस भेद को त्याग देना ही उचित है। जो नष्ट नहीं होता उसे अक्षय पद कहते हैं। माया की उत्पत्ति किसके द्वारा हुई इस पर तथा इसे कैसे नष्ट किया जाए इस पर विचार करो। जब यह नष्ट हो जाएगी, तभी अक्षय पद प्राप्त होगा। इस सबके लिए इसके कारण मन को ही वश में करना होगा, जिससे यह तुम्हें बार-बार जन्म-मृत्यु के चक्र में न डाल सके और चित्त रूपी समुद्र स्वयं मार्ग दे। दृढ़ भावना के साथ 'चित्त' सत्ता की अखंडता को मानो। वह चित्त-शक्ति चिन्मय सागर से कुछ क्षुभित हो रही है। इस सागर से निर्मल चिन्मय की लहरें उठ रही हैं। वायु स्वयं ही जैसे आकाश में उद्वेलित होता है, वैसे ही स्वात्मा में आत्मा तरंगें लेता है। आत्मा सर्वशक्तिमान होने से इस प्रकार का स्फुरण क्षणमात्र के लिए होता है। (110-120)

'जिस आत्मशक्ति को देशकाल (समय एवं दूरी) चलायमान नहीं कर सकते हैं, वह एक अनंत एवं उच्च पद में स्थित है। वह परिमित होने के कारण रूपभावना-वाली होती है। रूप की भावना के कारण नाम संख्या आदि से जोड़ दिया जाता है। चित्त शक्ति का यही रूप देश, काल एवं आधार है। यह विकल्पों को धारण करनेवाला है और क्षेत्रज्ञ कहा जाता है। यही वासना की कल्पना से अहंकार को धारण करता है। निर्दोष एवं निश्चय करानेवाला अहंकार ही बुद्धि है। संकल्प रूप धारण करने पर बुद्धि ही मन बन जाती है। घोर विकल्पों में पड़ जाने से शनैः-शनैः मन ही इंद्रिय भी बन जाता है। ज्ञानी हाथ-पांव युक्त देह को ही इंद्रियां कहते हैं। इस प्रकार संकल्प एवं वासना की डोर में लिपटा जीव दुःखों के जाल से नीच गति को प्राप्त होता है। शक्तिमान चित्त भयंकर अहंकार के कारण रेशम के कीड़े की तरह स्वयं बंधन में पड़ता है। जंजीरों में बंधे सिंह के समान 'चित' शक्ति अपनी ही कल्पना के पाश में बंध जाता है और विवश हो जाता है। इस आत्मा को ही कहीं मन, कहीं बुद्धि, कहीं ज्ञान, कहीं क्रिया, कहीं अहंकार, कहीं चित्त, कहीं प्रकृति, कहीं माया, कहीं मल,

कहीं कर्म, कहीं बंधन, कहीं पुर्यष्टक, कहीं विद्या तथा कहीं इच्छा कहा गया है। यही समस्त आशामय संसार पाश का निर्माता है, जैसे बिना फल का वट का बीज विशाल वृक्ष को अपने में धारण करता है, वैसे ही यह भी जगत को धारण करता है। (121-133)

'यह मन चिंता की अग्नि में जला हुआ, क्रोध के अजगर द्वारा चबाया हुआ एवं कामरूपी समुद्र के भंवर में फंसा हुआ अपने पितामह आत्मा को भी भूल गया है। अतः सर्वप्रथम दलदल में फंसे हुए इस हाथी का उद्धार करो। ब्रह्म की कल्पना से असंख्य जीव, अनेक भेदों से उत्पन्न हो रहे हैं। जैसे झरने में जल के छींटे उत्पन्न होते हैं, वैसे ही ये भविष्य में भी उत्पन्न होते रहेंगे। कुछ भाव सैकड़ों बार उत्पन्न हो चुके हैं, कुछ दो-तीन बार तथा कुछ प्रथम बार ही जन्म ले रहे हैं। इन्होंने अनेकों नाम एवं रूप धारण किए हैं। कुछ किन्नर, गंधर्व. यक्ष, नाग के रूप में, कुछ चंद्रमा, सूर्य, वरुण आदि रूपों में, कुछ ब्राह्मण, राजा, वैश्य आदि में, कुछ औषधि, मूल, फल आदि में, कुछ पर्वत, समुद्र, दिशा आदि-आदि रूपों में उत्पन्न हुए हैं। इधर-उधर उछाली जाती हुई गेंद के समान, कुछ बार-बार मृत्यु द्वारा प्रताड़ित हो रहे हैं। अनेकों ऊपर उठकर पुनः गिर रहे हैं। कुछ विवेकी होकर भी अच्छे कर्म न करने से हजारों जन्म लेने पर भी इससे नहीं छूट रहे हैं। दिशा एवं काल के प्रभाव से तथा आत्मशक्ति से जब यह आत्मतत्त्व शरीर धारण करता है, तब यही वासना से प्रभावित संकल्पों की ओर जानेवाला चपल मन हो जाता है। तब मन शक्ति संकल्पों से तुरंत आकाश के समान स्वच्छ भावनावाला तथा शब्द रूपी अंकुरित बीजयुक्त हो जाता है। (134-145)

'फिर इसमें सघनता आने से स्पंदन होता है और स्पर्श का अंकुर फूट पड़ता है। दृढ़ अभ्यास से अब शब्द एवं स्पर्श रूप आकाश की उत्पत्ति होती है। इसके वायु के साथ टकराने से अग्नि पैदा होती है। इस तन्मात्र के सहयोग से यह त्रिगुण युक्त हो जाता है। तीनों गुणों के साथ मन पुनः तन्मात्रा की इच्छा करता है और शीतल गुण को विचारता हुआ जल का अनुभव करने लगता है। फिर चारों से संयुक्त होकर गंध तन्मात्रा युक्त तथा पृथ्वी तत्त्व का अनुभव करता है। पांचों तन्मात्राओं से युक्त होकर सूक्ष्मता को त्याग देता है तथा आकाश में चिंगारियों के समान चमकते हुए शरीर को देखता है। वह शरीर अहंकार एवं बुद्धि युक्त पुर्यष्टक कहलाता है, जो प्राणियों के हृदय कमल में घूमनेवाले भंवरे के समान है। पकने पर मोटे बने बेलफल के समान सूक्ष्म शरीर तेजस्वी भावना से स्थूल हो जाता है। फिर स्वभाव के अनुसार इसमें ऊपर सिर, नीचे पांव, बगलों में भुजाएं तथा बीच में उदर के समान हो जाता है अर्थात पूर्ण शरीर प्राप्त हो जाता है। वही यह शरीर बुद्धि, बल, उत्साह, ज्ञान एवं ऐश्वर्य से युक्त होकर लोक पितामह ब्रह्मा बन जाता है। (146-157)

'ब्रह्मा त्रिकालदर्शी हैं। उन्होंने अपने सुंदर शरीर को देखकर चिन्मात्र परमाकाश के विषय में सोचा कि अब इसमें सर्वप्रथम क्या किया जाए? उन्हें आत्मदृष्टि से अतीत की अनेकों सृष्टियां दिखाई दीं। उन्होंने मानसिक संकल्प से अनायास ही अनेक रूप-रंगोंवाले प्राणियों को पैदा किया। उनके धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष (पुरुषार्थ चतुष्टय) के लिए उन्होंने विभिन्न प्रकार के आचार-विचार, शास्त्र, स्वर्ग, नरक आदि बनाए। यह मन ब्रह्म रूप ही है, क्योंकि यह कल्पना से ही संसार में स्थित है, अतः ब्रह्मा के जीवन पर ही इसका जीवन भी है। ब्रह्मा की आयु समाप्त होने पर

यह भी समाप्त हो जाता है। वस्तुतः किसी का भी जन्म या मरण नहीं होता। सभी दृश्य जगत मिथ्या है। यह आशामय सर्पों की पिटारी त्यागने योग्य है। इसे असत मानकर रहना चाहिए। अनेक प्रकार से सजाए हुए या न सजाए हुए इस मायायुक्त जगत को त्यागना ही उचित है। धन, पत्नी आदि सब माया एवं दुःख देनेवाले हैं। इनकी वृद्धि से किसे सुख मिला ? (158-168)

'अज्ञानियों को जिनसे अनुराग होता है, उनसे ज्ञानी विरक्त रहते हैं। अतः जिस वस्तु का अभाव है उसकी इच्छा न करो। जो वस्तु सरलता से प्राप्त हो जाए, उसी को ग्रहण करो। अप्राप्त भोगों को न चाहना तथा प्राप्त का उपभोग करना ही विद्वान का लक्षण है। 'सत' एवं 'असत' के बीच शुद्ध पद का ज्ञान एवं उसका आश्रय लेकर सभी दृश्यों को त्याग देना ही कर्म है। इच्छा-अनिच्छा को समान माननेवाले ज्ञानी इसमें वैसे ही लिप्त नहीं होते, जैसे कीचड़ में उगने पर भी कमल का पत्ता उससे दूर रहता है। यदि तुम्हारे हृदय को इंद्रिय विषय विचलित नहीं करते, तो तुम निःसंदेह जानने योग्य (ज्ञेय) को जानकर भवसागर से पार हो जाओगे। वासनायुक्त पुरुषों के संपर्क में रहकर भी यदि चित्तवृत्ति को उनसे शीघ्र हटा लिया जाए, तो उच्च पद प्राप्त हो सकता है। संसार सागर वासना-जल से भरा है। ज्ञानी प्रज्ञा की नाव से इससे पार हो गए। माया को जाननेवाले इस जगतव्यवहार को न तो त्यागते हैं और न अपनाते ही हैं। विद्वान संकल्प के अंकुरित होने को भी चेतन का विषयों की ओर उन्मुख होना ही मानते हैं। (169-178)

'शनैः-शनैः संकल्पों के दृढ़ होने पर चित्त आकाश को ढंककर जड़ बना देते हैं। तब वह चेतन विषयों से स्वयं को पृथक मानता हुआ संकल्प रूप में स्थित हो जाता है। इससे उसकी क्रिया स्वयं प्रकट होकर शीघ्र बढ़ने लगती है, किंतु यह क्रिया दुःखद होती है। अतः चित्त में संकल्प-क्रिया को रोको। यदि यह हो भी जाए, तो इसमें पदार्थ-भावना न आने दो। संकल्पों को नष्ट करने के लिए तत्पर लोग उसे क्रियात्मक होने ही नहीं देते। भावना के नष्ट होने पर संकल्प स्वयमेव नष्ट हो जाते हैं। मन से मन को तथा संकल्प से संकल्प को नष्ट करके आत्मरूप में स्थित होकर कुछ भी दुष्कर नहीं है। आकाश के समान ही यह जगत भी शून्य है। जैसे चावल प्राप्त करने एवं तांबे की कालिमा दूर करने के लिए कर्म किया जाता है, वैसे ही साथ ही उत्पन्न हुए मन को भी शुद्ध किया जाता है; अतः उद्योग करो। (179-186)

षष्ठ अध्याय

'आंतरिक आस्था तथा भावों-रूपी संपत्ति को त्यागकर यथार्थरूप में जगत में रहो। स्वयं को कर्ता न मानते हुए अमृत नामक परम समता ही शेष रहती है। खेद एवं उल्लास दोनों को ही स्वकल्पित मानने से समता को धारण करने पर पुनर्जन्म चक्र छूट जाता है। या कर्तव्य को त्यागकर मन को पीकर स्थिर बनो, फिर सर्वस्व का त्यागकर दो। तब चेतन प्रकाश और अंधकार दोनों बन जाता है; क्योंकि यही मानसिक संकल्पों का रूप धारण करता है। अतः वासनाओं के मूल कारण को त्यागकर व्याकुलता को पास भी न फटकने देनेवाला ही मुक्त है। वह भ्रांति से दसों दिशाओं में सब कुछ देखता है। इसके लिए संसार गाय के पद के समान है। आत्मा देह में अंदर-बाहर, ऊपर-नीचे सर्वत्र है, सभी दिशाओं में है तथा विश्व कहीं भी आत्मा से रहित नहीं है। (1-10)

जहां मैं नहीं हूं,वह स्थान ही नहीं है,ऐसी कोई वस्तु नहीं है,जिसमें आत्मा न हो,सब कुछ उसी से युक्त है। अतः मैं किस अन्य वस्तु की इच्छा करूं ? सब कुछ ब्रह्म ही है,मैं इससे भिन्न नहीं हूं, ऐसी धारणा बनाकर भ्रांति को त्याग दो। ब्रह्म में कल्पनात्मक भाव नहीं है, इसमें शोक, मोह, वृद्धावस्था,जन्म आदि कुछ भी नहीं है। सहजता से प्राप्त वस्तु को भोगो,त्याग एवं ग्रहण के भाव से रहित बनो। विरक्त चित्तवाला अपने अनुभवों से बताता है कि द्रष्टा की दृष्टि से मिलनेवाले सुखों की अनुभूति आत्मतत्त्व का स्पंदन ही है, अतः यही उपासना करने योग्य है। हम 'हैं' और 'नहीं हैं' के बीच में स्थित प्रकाश के भी प्रकाशक हैं। हृदय में स्थित परमात्मा को छोड़कर अन्य ईश्वर की उपासना के लिए जाना हाथ में रखी हुई कौस्तुभ मणि को छोड़कर अन्य रत्न की इच्छा करने के समान है। (11-20)

शत्रु रूपी इन इंद्रियों के विषयों की ओर दौड़ने पर विवेक रूपी दंड से इन्हें वैसे ही मारें जैसे इंद्र ने वज्र से पर्वतों को नष्ट किया। शरीर भ्रम है,संसार रात्रि का दुःस्वप्न है, अतः इसका फैलना पवित्रता से परे है। बाल्यकाल में अज्ञान दुःख देता है,यौवन में वनिताएं (स्त्रियों) दुःखी करती हैं तथा आगे स्त्री, पुत्र आदि की चिंता रहती है,ऐसा अधम अपना क्या भला करेगा? 'सत' पर 'असत' चढ़ा हुआ है,रमणीयता को कुरूपता ने दबाया हुआ है तथा सुखों पर दुःख सवार है,अतः किसका आश्रय लूं। जिनकी पलक के उठने तथा गिरने मात्र से संसार की उत्पत्ति और प्रलय होता है,ऐसे लोग भी यदि नष्ट हो जाते हैं,तो मेरे जैसों की गिनती ही क्या है? संसार दुःखों की चरम सीमा है,अतः इसमें जन्म लेकर सुख कैसे मिलेगा ? मैं अच्छी तरह जान गया हूं कि मेरी आत्मा को चुरानेवाला यह दुष्ट मन ही है। अतः मैं इसे मार डालूंगा। हेय पदार्थों के लिए खेद तथा उपादेय के लिए आतुरता न दिखाकर तटस्थ रहो,क्योंकि ज्ञानियों में निराशयता,निर्भयता,नित्यता,समता,ज्ञान आदि गुण विद्यमान रहते हैं। वे वासनारहित होते हैं। (21-30)

'तुम तृष्णा भीलनी के वासना-जाल में फंस गए हो,यह जाल चिंता से चारों ओर फैल गया है। अतः इसे ज्ञान अस्त्र की धार से काट डालो। वायु द्वारा बादलों के जाल को तहस-नहस करने के समान इसे नष्ट कर दो। वृक्ष के कुल्हाड़ी के समान मन को मन से काटकर पवित्र पद को प्राप्त करो। उठना,बैठना,चलना आदि सभी स्थितियों को असत मानते हुए इन्हें त्याग दो। दृश्य के आश्रय से चित्त बंधन में पड़ता है। इसके त्याग से चित्त मोक्ष का अधिकारी बनता है। तब 'न मैं हूं', और 'न संसार है',इस भावना से स्थिर हो जाओ। आत्मा एवं जगत के बीच तथा स्वयं एवं दृश्य के बीच स्वयं आत्मा को दर्शन रूप मानो। स्वाद्य पदार्थ तथा स्वाद लेनेवाले से इन दोनों के मध्य में स्वाद का ध्यान करते हुए परम आत्मा से युक्त होकर स्थिर रहो। अवलंबन एवं निरालंब के मध्य में स्थिर रहो। रस्सी से बंधा मुक्त हो जाता है,किंतु तृष्णा से बंधा नहीं। अतः संकल्पों को छोड़कर तृष्णा को त्याग दो। इसे अहं भाव की शून्यता रूपी छुरी से काट डालो और जन्म-मृत्यु के इसी भवसागर से मुक्त होकर परम लोक में विचरण करो। (31-40)

'मैं इन पदार्थों का हूं,ये मेरे जीवन हैं' तथा 'मैं इनके बिना और ये मेरे बिना नहीं रह सकते', इस भावना को त्यागकर 'मन के साथ मैं पदार्थों का या पदार्थ मेरे नहीं हैं' ऐसी भावनावाले बनो। वासना को त्याग दो। यही ध्येय है। सर्व समतामयी बुद्धि से वासना का क्षय करके ममतारहित हो

जाने पर देह की वासना (बंधन) भी त्यागी जा सकती है। अहंकार वासना को छोड़कर सरलता से ध्येय का भी त्याग कर देने वाला जीवन्मुक्त कहा होता है। संकल्पों को मूल सहित त्याग करने पर वासनाएं शांत हो जाती हैं। ऐसा त्याग करनेवाला ब्रह्म ज्ञाताओं में श्रेष्ठ जीवन्मुक्त ही जाता है। योगी शम (शांति) एवं दम (इंद्रिय दमन) से युक्त होता है। अतः वह सुख एवं दुःख में रत नहीं होता। इच्छा-अनिच्छा से रहित सुषुप्त के समान आचरण करनेवाला जीवन्मुक्त होता है। वासनारहित पुरुष काम, क्रोध आदि के वश में नहीं होता तथा सुख-दुःख को नहीं मानता। बाह्य विषयों से उत्पन्न तृष्णा बंधन देनेवाली होती है और सब प्रकार के विषय एवं वासनाओं से मुक्त तृष्णा मुक्ति प्रदान करती है। (41-51)

'किसी भी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा दुःखप्रद होती है। उसे भयंकर शृंखला के समान भय एवं दुःख प्रदान करानेवाली समझें। महात्मा अतः 'सत' 'असत' सभी भावों का त्याग करके परम उदार पद को प्राप्त करते हैं। तब वे शांत सागर के समान निश्चल हो जाते हैं। सज्जनों का निश्चय चार प्रकार का होता है, जो क्रमशः इस प्रकार है—'मेरे शरीर की रचना माता-पिता द्वारा हुई', 'मैं जगत के भावों से रहित बाल की नोक के समान सूक्ष्म आकारवाला आत्मा हूं', 'मैं समस्त विश्व के पदार्थों का आत्मा, सर्वरूप एवं अनश्वर हूं' तथा 'मेरे सहित यह समस्त विश्व आकाश के समान शून्य है।' इनमें प्रथम निश्चय में 'बंधनकारक तृष्णा तथा अन्य तीनों में पवित्र तृष्णा है। इन तीन प्रकार के निश्चयों में लगे लोग आत्मतत्त्व में लीन रहनेवाले जीवन्मुक्त होते हैं। इस धारणा से ये पुनः-पुनः विषादों में नहीं पड़ते। (52-60)

'आत्मा के नाम से जाना जानेवाला यह शून्य ही प्रकृति, माया, ब्रह्म, विज्ञान, शिव, ईशान, नित्य तथा आत्मा कहा जाता है। परमात्ममयी अद्वैत (एक) शक्ति ही द्वैत (दो) दिखाई देती है। माया अद्वैत से प्रकट पदार्थों से विश्व का निर्माण करती हुई बढ़ती है। इस प्रपंच से दूर रहनेवाले सांसारिकता में पड़कर दुःखी नहीं होते। मुक्त अपने प्राप्त कर्मों को करता हुआ शत्रु-मित्र को समान समझता है। वह इच्छा-अनिच्छा के विषय में न दुःखी होता है, न उनका चिंतन ही करता है। सभी प्राणियों के आशय को समझकर सबका अभिमत बोलनेवाला विश्व में दुःखी नहीं होता। आंतरिक दृष्टि के होते हुए भी बाह्य पदार्थों को देखते रहो। प्रपंच रहित अवस्था में स्थित पुरुष सभी आंतरिक आशाओं के नष्ट होने पर भी बाहरी रूप में सभी आचरण करे। हृदय में कोई आकुलता न होने पर भी आकुलता जैसी दिखाए। ऐसा व्यक्ति कभी दुःखी नहीं होता। अतः अहंकार को त्यागकर कलंकों से दूर रहो। आकाश के समान निर्मल मन से स्वच्छंद विचरण करो। (61-69)

'उदार, शुद्ध आचरणवाला आसक्ति रहित वैराग्य धारण करके बाहर से श्रेष्ठ आचरण करे। 'यह मेरा अपना है' इस प्रकार का विचार कम बुद्धि लोग करते हैं, उदार लोग संपूर्ण विश्व को ही अपना परिवार मानते हैं। भाव-अभाव, जन्म-मरण की इच्छा से रहित जिनमें सभी संकल्प आश्रय लेते हैं, ऐसे ही परमपद में स्थित होना चाहिए। इसी को निर्मल ब्राह्मी स्थिति कहा गया है। इसमें स्थित साधक संकटों में विचलित नहीं होता। वैराग्य, शास्त्र आदि द्वारा संकल्प के नष्ट होने पर मन नष्ट और वशवर्ती हो जाता है। निराशा के वश में पड़ा मन बिना वैराग्य पूर्णता नहीं प्राप्त करता। आशा युक्त होने पर यह शरदकाल के स्वच्छ तालाब के समान रागमय हो जाता है। विरक्त मन

को पुनः पुनः रागयुक्त करने पर प्राज्ञ लज्जित क्यों नहीं होता ? चित्त एवं विषयों का योग बंधन है, इनसे छुटकारा ही मुक्ति है। वेदांत का सार यही है कि विषयों से युक्त चित्त ही आत्मा है। इसे सत्य समझकर स्वच्छ अंतःकरण से स्वयं का अवलोकन करो। इससे आनंद स्वरूप पद मिलेगा। ये लोक दिशाएं, आकाश सब 'चित्त' ही हैं। दृश्य एवं दर्शन से मुक्त होकर निर्मल रूपी साक्षी चिदात्मा आभासरहित होकर प्रकट हुआ है और यही द्रष्टा बन गया है। (70-81)

'मैं महान संवित मात्र पूर्णज्योतिस्वरूप संवेदनमुक्त तथा 'चित्त' रूप हूं।' समस्त संकल्पों को शांत और कामनाओं को त्यागकर निर्विकल्प पद में इसी प्रकार स्थित होओ। जो ब्रह्मवेत्ता इस उपनिषद का नित्य अध्ययन करता है, वह अश्रोत्रिय हो, तो श्रोत्रिय हो जाता है तथा अनुपनीत उपनीत हो जाता है। वह अग्नि, वायु, सूर्य, चंद्रमा, सत्य तथा सभी अन्य देवताओं के समान पवित्र हो जाता है। वह सभी देवताओं का ज्ञाता, सभी तीर्थों में नहाए के समान, सभी देवताओं का कृपापात्र तथा सभी यज्ञों को करनेवाले के समान हो जाता है। उसे हजारों गायत्री जप का फल मिलता है, इतिहास, पुराण तथा रुद्रीय के हजार पाठ जप के तथा प्रणव के दस हजार जप के फल की प्राप्ति होती है। उसकी दृष्टि जहां तक देखती है, वहां तक सब पवित्र हो जाते हैं। वह अपनी सात-सात पिछली और आनेवाली पीढ़ियों को पवित्र कर देता है। इसके जप से अमरता प्राप्त होती है। ऐसा भगवान हिरण्यगर्भ ने कहा है।'

□

71. त्रिशिख ब्राह्मणोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है, उस पूर्ण से ही इस पूर्ण की उत्पत्ति हुई है, अतः पूर्ण से पूर्ण को ले लेने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के ताप शांत हों।

त्रिशिखी ब्राह्मण आदित्य लोक पहुंचा और उसने भगवान आदित्य से पूछा 'भगवान ! देह, प्राण, कारण तथा आत्मा क्या है ?' इसके उत्तर में आदित्य बोले, 'इस सबको शिव ही समझना चाहिए। वही नित्य, शुद्ध, निरंजन, विभु, अद्वय, शिव अपने एक प्रकाश से तपाए गए लोहे के पिंड के समान सबको अनेक रूपों में बनानेवाला है। यदि यह कहा जाए कि वह प्रकाश करनेवाला कौन है ? तो इसका उत्तर होगा कि अविद्या से संयुक्त ब्रह्म ही 'सत' कहा जाता है। ब्रह्म से अव्यक्त, अव्यक्त से महत, महत् से अहंकार, अहंकार से पांच तन्मात्राएं, तन्मात्राओं से पांच महाभूत तथा इन पांच महाभूतों से यह जगत उत्पन्न होता है, वह संपूर्ण भूतों के विकार से उत्पन्न विभाग ही है। यदि प्रश्न किया जाए कि भूतों के विकार से एक ही पिंड अनेक रूपों में किस प्रकार विभक्त होता है ? तो समाधान यह है कि इनके कार्य-कारण भेद रूप से कार्य-कारण, वाच्यस्थान तथा देवता कोश विभाग होते हैं। अंतःकरण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, ये पांच आकाश हैं; समान, उदान, व्यान, अपान एवं प्राण, ये पांच वायु हैं; श्रोत (कान), त्वचा, चक्षु (आंख), जिह्वा एवं घ्राण, ये पांच अग्नि हैं; शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गंध, ये जल हैं; वाणी, पांव, हाथ, पायु (गुदा) एवं उपस्थ (जननेंद्रिय), ये पांच पृथ्वी हैं। (1-5)

'ज्ञान, संकल्प, निश्चय, अनुसंधान और अभिमान आकाश के कार्य तथा अंतःकरण के विषय हैं। समीकरण, आंख खोलना, पकड़ना, सुनना एवं सांस लेना, ये वायु के कार्य तथा प्राण आदि के विषय हैं। शब्द, स्पर्श आदि अग्नि के कार्य और ज्ञानेंद्रियों के विषय हैं। बोलना, लेना आदि पृथ्वी के कार्य तथा कर्मेंद्रियों के विषय हैं। मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार, ये अंतर्भूत हैं। अवकाश, हटाना, दर्शन आदि सूक्ष्म तन्मात्राओं के विषय हैं। आध्यात्मिक, आधिभौतिक तथा आधिदैविक बारह प्रकार के अंग हैं। यहां चंद्रमा, ब्रह्मा, दिशा, वायु, सूर्य, वरुण, अश्विनी कुमार, इंद्र, विष्णु, प्रजापति और यम इंद्रियों के देवता हैं। प्राण बारह नाड़ियों में स्थित रहते हैं। इन अंगों का ज्ञान ही ज्ञाता है। आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं अन्न इनका पंचीकरण इस प्रकार है—समान के योग से कानों द्वारा शब्दों के गुण वाणी में, आकाश में स्थित हैं। बुद्धि उदान के योग से है। चक्षु द्वारा रूप पांव के आश्रय से अग्नि में स्थित है। चित्त अपान के योग से है। रस गुण जिह्वा द्वारा उपस्थ के आश्रय से

मूल में स्थित है। प्राण के योग से अहंकार है। घ्राण द्वारा गंध गुण गुदा में आश्रित तथा पृथ्वी में स्थित है।' (6-9)

'प्रत्येक तत्त्व के आधे भाग और दूसरे तत्त्व की सोलह कलाओं के क्रम से अंतःकरण, व्यान, आंख, रस एवं वायु अर्थात् आकाश आदि पांच तत्त्वों की स्थिति है। आकाश आदि प्रत्येक के मुख्य भाग में शेष भूतों के चार-चार भाग रहते हैं। मुख्य भाग के ऊपर और नीचे के भाग को क्रमशः सूक्ष्म एवं स्थूल समझना चाहिए। ये इसी प्रकार एक-दूसरे के अंश में सम्मिलित होते हैं और एक-दूसरे का आश्रय लेकर परस्पर मिले रहते हैं। इन्हीं के योग से पृथ्वी चेतन तत्त्व से युक्त है। तब इस पृथ्वी से औषधि, अन्न, चारों प्रकार के पिंड, रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, वीर्य, मज्जा आदि धातुओं की उत्पत्ति हुई।'

'इनके योग से पिंडों की उत्पत्ति भी होती है। नाभि-मंडल में अन्नमय पिंड स्थित है। इसके बीच में नाल सहित पदमकोश के समान हृदय है। इसमें कर्तृत्व अहंकार युक्त देवता है। मोहरूपी तमोगुण पिंड कंठ में आश्रित है, जो समस्त मिथ्या भूतमय जगत में व्याप्त रहता है। प्रत्येक आनंदमयी आत्मा परमपद मूर्छा में स्थित है, यह अनंत शक्ति से युक्त होकर जगत को प्रकाशित करता है। यह जागृत, स्वप्न एवं जागृत अवस्था में सर्वत्र विद्यमान रहता है, किंतु सुषुप्ति एवं तुरीय अन्य अवस्थाओं में नहीं रहता। उत्तम फलों में रस के समान सर्वत्र शिव स्वरूप चार रूपों में वर्तमान रहता है। अन्नमय कोश के अंदर अन्य कोश स्थित हैं, जैसे कोश हैं, वैसा ही जीव तथा जैसा जीव है, वैसा ही शिव है। इन दोनों में अंतर यह है कि जीव विकारोंवाला है, किंतु शिव निर्विकार है। कोश ही जीव के विकार तथा उसकी विभिन्न अवस्थाओं को बनानेवाले हैं। जैसे दूध को मथने से झाग पैदा होता है, वैसे ही मन के मंथन से बहुत से विकल्प पैदा होते हैं। कर्म में लगे रहने से ही कर्मों की उत्पत्ति होती है। इसके त्याग से शांति मिलती है। दक्षिण अयन को प्राप्त होने से प्रपंच में लिप्त होना पड़ता है।' (10-15)

'अहंकार युक्त होने पर परमात्मा शिव ही जीव बन जाता है। अविवेक एवं प्रकृति का संयोग इसे मोहग्रस्त कर देता है। वासनाओं के वश में पड़कर यह अनेकों योनियों में जाता है और मछली के समान सर्वत्र भटकता रहता है। काल के कारण तब इसे आत्मज्ञान एवं विवेक होता है और एक के बाद दूसरे स्तर को प्राप्त करता है। तब यह प्राणों को मूर्धा में धारण करता हुआ योग का अभ्यास करता है। योग से ज्ञान उत्पन्न होता है तथा ज्ञान से योग में प्रवृत्ति होती है। ज्ञान-योग में सदा संलग्न रहनेवाला योगी नष्ट नहीं होता। वह विकारों में सदा ही शिव को देखता है और निर्विकार शिव के ध्यान में लगा रहता है। ऐसे ज्ञान से रहित योगी को सिद्धि प्राप्त नहीं होती। अतः इसके अभ्यास से मन से प्राणों को निरुद्ध करे। आठ अंगोंवाले योग की साधना से प्राणमयी शिखा उत्पन्न होती है। ज्ञान एवं कर्म के भेद से योग दो प्रकार का है। कर्म योग के अनुसार जिसका चित्त व्याकुल नहीं होता, वह विषयों के बंधन से मुक्त रहता है। शास्त्रों के बताए कर्मों में मन का निग्रह कर्म योग है, तथा चित्त को सदा आत्मकल्याण में लगाए रखना ज्ञान योग है, जो सभी सिद्धियों को देनेवाला है। दोनों प्रकार के योगों में निर्विकार मन से रहने पर श्रेष्ठ मोक्ष प्राप्त होता है। शरीर तथा इंद्रियों के प्रति विरक्ति तथा परम तत्त्व में सतत अनुरक्ति क्रमशः यम एवं नियम हैं। सभी वस्तुओं

के प्रति उदासीनता आसन है, जगत के मिथ्यापन का ज्ञान प्राणायाम है तथा चित्त का अंतर्मुखी होना प्रत्याहार हैं।' (16-30)

चित्त की निश्चलता धारणा है। 'मैं वही चिन्मात्र हूं' यह भावना ध्यान है। ध्यान को भी भूल जाना समाधि है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, दया, आर्जव, क्षमा, धृति, अल्प भोजन तथा शुद्धता, ये दस नियम हैं। तप, संतोष, दान आस्तिकता, आराधना, वेदांत श्रवण, लज्जा, मति एवं जप ये व्रत हैं। स्वस्तिक आदि आसनों का वर्णन इस प्रकार है। दोनों पैरों के तलुओं को दोनों जांघों के बीच में रखकर बैठना स्वस्तिकासन है। पीठ में बायीं ओर दाहिनी तथा दाहिनी ओर बायीं एड़ी को टिकाकर गाय के मुख जैसा गोमुख आसन होता है। एक पांव को दाहिने तथा दूसरे को बाएं जांघ पर रखने में वीरासन बनता है। दाहिनी एवं बायीं एड़ियों को क्रमशः गुदा के बायीं और दाहिनी तरफ लगाकर बैठने से योगासन बनता है। दोनों जांघों में दोनों पैरों के तलुओं को लगाकर बैठना पद्मासन है, जो समस्त रोगों एवं विषों का नाशक है। पद्मासन में अच्छी तरह बैठकर दाहिने हाथ से बाएं पैर के तथा बाएं हाथ से दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़कर बैठना बद्ध पद्मासन कहा जाता है। (31-40)

'पद्मासन में बैठकर दोनों हाथों को घुटनों और जांघों के बीच से भूमि में टिकाकर शरीर को ऊपर उठाना कुक्कुटासन है। कुक्कुटासन में दोनों भुजाओं से कंधों को बांधकर कछुए के समान सीधा बन जाना उत्तान कूर्मासन है। पैरों के अंगूठों को पकड़कर पीछे से कानों तक खींचना धनुरासन है। सी नी को विपरीत ओर से दोनों एड़ियों से दबाकर दोनों घुटनों तथा हाथों को फैला लेना सिंहासन है। अंडकोश के नीचे सीवनी के दोनों ओर एड़ियों को लगाकर हाथों को बांधने पर भद्रासन कहा जाता है। सीवनी के दोनों ओर विपरीत एड़ियों से दबाकर बैठना मुक्तासन है। हथेलियों को भूमि से लगाकर कुहनियों को नाभि के दोनों ओर टिकाएं फिर शरीर को सीधा इसके सहारे शून्य में उठा लेने पर मयूरासन होता है। बायीं जांघ के मूल में बाएं हाथ से दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़ने से मत्स्यासन होता है। बायीं एड़ी को सीवन पर तथा दाहिने पैर को उपस्थ के ऊपर लगाएं। इस स्थिति में सीधा बैठने से सिद्धासन बनता है। पैरों को भूमि में फैलाकर उनके अंगूठों को पकड़ें तथा सिर को घुटनों में रखें, यह पश्चिमोत्तान आसन कहा जाता है।' (41-50)

'जिस स्थिति में बैठने से सुख और धैर्य मिलता है, उसे सुखासन कहते हैं। निर्बल लोग इसी का अभ्यास करें। आसनों में प्रवीणता तीनों लोकों को जीतने के समान है। यम, नियम तथा आसनों से नाड़ी शुद्धि के बाद प्राणायाम करें। मानव देह उसकी छियानबे अंगुलियों के बराबर होता है। प्राण इससे बारह अंगुल अधिक होता है। शरीर की वायु को इसी की अग्नि से कम या समान करने से ब्रह्म ज्ञान प्राप्त होता है। देह के मध्य में तपे सोने के समान त्रिकोण अग्नि है। पशुओं एवं पक्षियों में यह अग्नि क्रमशः चतुष्कोण तथा गोल होता है। सर्पादि में छः कोणवाला तथा स्वेदजों में (जूओं आदि में) आठ कोणवाला अग्नि होता है। मानव शरीर में वहीं पर नौ अंगुलियों के बराबर दीपक समान प्रकाशवाला एक कंद होता है, जो चार अंगुल चौड़ा होता है। पशु-पक्षियों में यह अंडाकार होता है। इसके मध्य में नाभि है। वहां बारह अरोंवाले चक्र में विष्णु आदि की मूर्तियां हैं। ब्रह्म इस चक्र की अपनी माया से घुमाता है। इन अरों में जीव जाले में मकड़ी

के समान घूमता रहता है।' (51-60)

'जीव प्राण पर चढ़कर ही घूमता है। इसके ऊपर नाभि के बगल में कुंडली का स्थान है। यह आठ कुंडलियों की प्रकृति वाली है और वायु तथा अन्न-जल आदि के संचार को रोकती है। यह ब्रह्म रंध्र के मुख को अपने मुख से ढके रखती है। योग काल में यह वायु एवं अग्नि से प्रबुद्ध होकर नाग के समान उज्ज्वल होकर हृदयाकाश में चमकने लगती है। अपान से दो अंगुल ऊपर तथा मेढ्र से नीचे मानव शरीर का मध्य भाग होता है। चौपायों में तथा अन्य प्राणियों में यह स्थान क्रमशः हृदय तथा नाभि में होता है। अनेक नाड़ियों से ढकी हुई सुषुम्ना देह में चार प्रकार से सुशोभित है। कंद मध्य में यह कमल नाल के समान ऊपर को जाती है। ब्रह्म विवर में वैष्णवी ब्रह्मनाड़ी विद्युत के समान प्रकाशित होकर निर्वाण प्राप्त कराती है। इसके दोनों ओर इड़ा एवं पिंगला हैं। इड़ा कंद से बायीं नासिका तक तथा पिंगला दक्षिण नासिका तक है। गांधारी तथा हस्तजिह्वा ये दो नाड़ियां इनके सामने तथा पीछे से वाम एवं दक्षिण आंख तक पहुंचती हैं।' (61-70)

'पूषा एवं यशस्विनी नाड़ियां वहीं से बढ़कर बाएं एवं दाहिने कान तक पहुंचती हैं। अलंबुषा नाड़ी नीचे मेढ्र के अंत तक गई है। कौशिकी नाड़ी कंद से पैर के अंगूठे तक है। ये दस मुख्य नाड़ियां कंद से निकली हैं। इनसे बहत्तर हजार स्थूल एवं सूक्ष्म नाड़ियां उत्पन्न होती हैं। इनके अतिरिक्त भी पीपल के पत्ते की शिराओं के समान देह में असंख्य नाड़ियां हैं, जिनकी गणना संभव नहीं है। नाड़ियों में प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान, नाग, कूर्म, कृकर, देवदत्त तथा धनंजय, ये दस वायु चलते हैं। इनमें प्रथम प्राण आदि मुख्य हैं। प्राण एवं अपान सर्वाधिक महत्त्व के हैं, जो जीव को धारण करते हैं। मुख, नासिका मध्य, हृदय, नाभिमंडल एवं पांव का अंगूठा प्राण के मुख्य स्थान हैं। अपान, पायु, उपस्थ, जांघ तथा घुटनों में, समान सब अंगों में तथा उदान हाथों, पैरों एवं जोड़ों में रहता है।' (71-80)

'व्यान, कान, जांघ, कमर, एड़ी, कंधे तथा गले में रहता है। नाग, कृकर आदि पांच उपवायु अस्थि, त्वचा इत्यादि में रहते हैं। आमाशय में अन्न, जल, रस आदि को प्राण वायु अलग-अलग करता है और स्वयं पृथक् रहता है। मल-मूत्र त्याग कार्य अपान वायु करता है। प्राण, अपान आदि की चेष्टाएं व्यान के संयोग से होती हैं। उदान इन्हें ऊर्ध्वगामी करता है। समान वायु शरीर का पोषण करता है। डकार आदि नाग के, आंखें खोलना, बंद करना कूर्म के, भूख लगना कृकर का, निद्रा आदि देवदत्त के तथा मृत देह की शोभा आदि धनंजय के कार्य हैं। नाड़ियों एवं वायुओं के स्थानों और चेष्टाओं को सही रूप में जानना चाहिए। इस प्रकार से नाड़ियों के शुद्ध हो जाने पर सब प्रकार की आसक्ति को छोड़कर एकांत स्थान में योग के साधन जुटाने चाहिए, जब तक दोनों ओर से समानता न हो तब तक लकड़ी, कुश या कृष्ण मृग के चर्म आदि के आसन में बैठकर रुचि के अनुसार स्वस्तिक आदि आसन लगाकर आसन साधना करनी चाहिए।' (81-90)

'आसन में शरीर को सीधा रखें। दृष्टि नाक के आगे हो, दांत मिले हुए न हों। जिह्वा तालु से लगाकर प्रसन्नचित्त बनें। सिर को थोड़ा संकुचित योग मुद्रा में हाथों को बांधकर प्राणायाम करें। रेचक, पूरक तथा वायु की शुद्धि करें। वायु को चार प्रकार चलाना प्राणायाम है। दाहिने हाथ से एक छिद्र को दबाकर पिंगला से रेचक करें। फिर सोलह मात्राओं में इड़ा से पूरक तथा चौंसठ मात्राओं तक कुंभक के बाद बत्तीस मात्राओं में पिंगला से रेचक करें। इस प्रकार बार-बार विपरीत स्वरों से

अभ्यास करें। कुंभक में देह को घड़े के समान भरें। इससे नाड़ियों में भरकर वायु अच्छी तरह चलने लगते हैं। हृदय कमल खिल जाता है और उसे परम शुद्ध भगवान के दर्शन होते हैं। प्रातः, दोपहर, सायं तथा मध्य रात्रि में इसी प्रकार अस्सी मात्राओं तक कुंभक का अभ्यास करना चाहिए।' (91-100)

'इस विधि से एक दिन भी प्राणायाम करने से सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है, तीन वर्ष तक इसका अभ्यास योगसिद्धि देता है। ऐसा योगी वायु और इंद्रियों को जीत लेता है। वह कम भोजन करनेवाला, कम सोनेवाला तथा तेजस्वी एवं बलवान होता है। उसकी अपमृत्यु नष्ट हो जाती है तथा दीर्घ आयु प्राप्त होती है। प्राणायाम में अधम, तथा उत्तम स्तरों में क्रमशः पसीना, कंपन तथा भूमि से ऊपर उठ जाना इनके लक्षण हैं। अधम प्राणायाम व्याधि एवं पापों का तथा मध्यम प्राणायाम महाव्याधि, पाप एवं रोगों का नाश करता है। उत्तम प्राणायाम में मल-मूत्र घट जाते है, शरीर हल्का हो जाता है, भोजन कम हो जाता है, इंद्रियां एवं बुद्धि तेज हो जाती हैं तथा तीनों कालों का ज्ञान हो जाता है। पूरक एवं रेचक को त्यागकर जो केवल कुंभक ही करने लगता है, उसके लिए तीनों कालों में कुछ भी दुर्लभ नहीं रह जाता। प्रयत्नशील साधक नाभिकंद में, नासाग्र में तथा पांव के अंगूठे में मन से प्राण को धारण करें। इससे योगी सभी रोगों एवं दुःखों से मुक्त होता है। नाभिकंद में प्राण को धारण करने से कुक्षि रोग नष्ट होते हैं, नासाग्र में धारण करने से शरीर हलका तथा दीर्घायु प्राप्त होता है। ब्राह्म मुहूर्त में जीभ से खींचकर वायु पीने से तीन मास में वाक्‌सिद्धि प्राप्त होती है। छः मास तक ऐसा करने से महारोगों से छुटकारा मिलता है।' (101-111)

'जो भी अंग रोगवाला हो, उसी में वायु को धारण करने से रोग नष्ट हो जाता है। मन को धारण करने से वायु भी धारण होता है। मन के स्थापन में प्राण साधन हैं। इंद्रियों को विषयों से हटाकर अपान वायु को ऊपर खींचकर धारण करें और कानों को हाथों से बंद रखें इससे मन वश में होता है। मन के वश में होने पर प्राण वायु भी वश में होकर नासिका में क्रम से आने लगता है। योगियों के नासिका स्वर समान रूप से चलते हैं। इस प्रकार प्राण वायु के चलने पर वह प्राणों को जीत लेता है। तब वह दिन, रात्रि, पक्ष, मास, अयन आदि को अंतर्मुखी होकर जानने लगता है। शरीर के अंगूठे आदि अंगों में स्फुरण बंद हो जाने पर अपने जीवन का अंत समय समझना चाहिए।' (112-120)

'इन अशुभ सूचक संकेतों को समझकर योगी मोक्ष साधना में लग जाए। जैसे हाथ-पांवों के अंगूठे में स्फुरण समाप्त हो जाए, उसका जीवन एक वर्ष के भीतर समाप्त हो जाता है। कलाई तथा गुल्फ (टखने) में स्फुरण बंद हो जाने पर छः मास में, कोहनी बंद हो जाने पर तीन मास में, कुक्षि एवं उपस्थ में बंद हो जाने पर एक मास में, नेत्रों में बंद हो जाने पर पंद्रह दिन में, जठराग्नि (भूख) के द्वार बंद होने पर दस दिन में तथा ज्योति जुगनू के समान मंद पड़ जाए, तो पांच दिन में शरीर का अंत हो जाता है। जीभ की नोक न दिखाई दे, तो तीन दिन में तथा ज्वाला का दर्शन न हो, तो दो ही दिन में शरीर का अंत समझना चाहिए। इन सबको समझकर अपने कल्याण हेतु जप एवं ध्यान में जुट जाना चाहिए। परमात्मा का ध्यान करते हुए उससे एकरूपता प्राप्त करने का प्रयत्न करना चाहिए। शरीर के अठारह भागों में धारणा की जाती है। एक स्थान से दूसरे स्थान को खींचना प्रत्याहार कहा जाता है। पैर का अंगूठा, जांघ का मध्य भाग, उरु मध्य, गुदा मूल, हृदय, उपस्थ, देहमध्य, नाभि, कंठ, कोहनी, तालु मूल, नासिका मूल, नेत्र मंडल, भ्रू मध्य, ललाट, मस्तक मूल, घुटने का मूल तथा हाथों का मूल, ये इस पंच भौतिक शरीर के मर्मस्थल कहे जाते हैं।' (121-132)

'यम, नियम आदि के द्वारा मन को धारण करना ही धारणा है। इससे मनुष्य भवसागर को पार करने में समर्थ हो जाता है। घुटनों से पैरों तक पृथ्वी का स्थान है, यह पीतवर्ण, चतुष्कोण तथा वज्र के चिह्न से युक्त कही जाती है। वायु को पांच घड़ी तक धारण करके पृथ्वी का ध्यान करें। घुटनों से कमर तक जल का स्थान है। जल अर्धचंद्राकार सफेद तथा रजत चिह्न युक्त है। दस घड़ी तक सांस रोककर जल का ध्यान करें। देह मध्य से कमर तक अग्नि स्थान है, यह जलता हुआ और सिंदूरी रंग का है। पंद्रह घड़ी तक वायु को रोककर इसका ध्यान करना चाहिए। नाभि से नासिका तक वायु का स्थान है। यह वेदी के आकारवाला तथा धुएं के रंग का है। इसका ध्यान बीस घड़ी तक कुंभक की अवस्था में करना चाहिए। नासिका से ब्रह्मरंध्र तक आकाश का स्थान है। यह नीले रंग की प्रभाववाला है। प्रयत्नवान साधक कुंभक से आकाश में वायु को रोककर देह के आकाश अंश में मुकुटधारी चतुर्भुज हरि का ध्यान करके संसार से मुक्ति पाते हैं। जल के अंश में नारायण का, अग्नि के अंश में प्रद्युम्न का, वायु के अंश में संकर्षण का तथा आकाश के अंश में परमात्मा वासुदेव का स्मरण करना चाहिए। इस अभ्यास से शीघ्र ही परमात्मा का साक्षात्कार होता है। योगासन में बैठकर हृदय स्थान में हृदय को स्थिर करके नासाग्र (नाक के आगे) दृष्टि जमाएं, जिह्वा को तालु से सटाएं, दोनों ओर के दांतों को सटाएं नहीं, शरीर को सीधा रखें और शुद्ध आत्मबुद्धि से परमात्मा वासुदेव का चिंतन करें।' (133-146)

'अपने भीतर इस प्रकार के ध्यान से कैवल्य सिद्धि होती है। कुंभक करते हुए एक प्रहर तक वासुदेव का ध्यान करने से सात जन्मों के पाप नष्ट होते हैं। नाभि से हृदय तक जागृत अवस्था का स्थान है, स्वप्न का कंठ में, सुषुप्ति का तालु मध्य में, तुरीय का भ्रू मध्य में तथा तुरीयातीत का स्थान, ब्रह्मरंध्र में परमब्रह्म की ओर होता है। जागृत वृत्ति से ब्रह्मरंध्र तक तुरीय रहता है तथा इसके बाद वह विष्णु कहा जाता है। तब साधक को करोड़ों सूर्यों के समान आभावाले सदा उदय ही रहनेवाले विश्वरूप विष्णु का ध्यान करना चाहिए। उस अनेक रूपों, मुखों, भुजाओं, आयुधों एवं वर्णोंवाले देव रूप शांत विष्णु के ध्यान से योगी की सभी मनोवृत्तियां नष्ट हो जाती हैं। हृदय कमल के बीच में चैतन्य ज्योतिरूप, अनश्वर, कदंब के समान गोल, तुर्यातीत परस्पर आदिब्रह्म का ध्यान करने से मुक्ति योगी के हाथ में आ जाती है। विश्वरूप देव के स्थूल, सूक्ष्म अथवा जो भी अन्य रूप हैं, उसका हृदय कमल में ध्यान करने से योगी उन्हीं के समान बनकर अणिमा आदि सिद्धियां सहजता से पा जाता है।' (147-159)

जीवात्मा एवं परमात्मा दोनों के ज्ञान के बाद 'मैं ब्रह्म ही हूं' इस अवस्था की प्राप्ति ही समाधि है। उसमें समस्त वृत्तियां नष्ट हो जाती हैं। इसे प्राप्त करनेवाला योगी पुनः इस संसार में नहीं आता। योग-तत्त्व के शोधन से इस प्रकार योगी इच्छाहीन चित्त से ईंधनरहित अग्नि के समान स्वतः शांत हो जाता है। मन-प्राणों के परमात्मा में लीन हो जाने पर उसके लिए कुछ भी ग्रहण करने योग्य नहीं रह जाता। उसका जीव शुद्ध आत्मा तत्त्व में जल में नमक के समान लय हो जाता है। वह मोहग्रस्त इस संसार को स्वप्न के समान देखता है और निश्चल होकर सुषुप्ति की अवस्था में रहने लगता है। वह निर्वाण पद को प्राप्त करके कैवल्य को प्राप्त होता है। यही ज्ञान का सार है। (160-165)

□

72. अद्वयतारक उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

वह ब्रह्म पूर्ण है और यह जगत भी पूर्ण है । उसी पूर्ण सें इस पूर्ण की उत्पत्ति हुई है, अतः पूर्ण से पूर्ण को पृथक् कर देने पर भी पूर्ण ही शेष रहता है ।

संन्यासियों, जितेंद्रियों तथा शम, दम आदि गुणों से युक्त साधकों के लिए अद्वयतारक उपनिषद कहा जा रहा है । आंखों को बंद या आधी खुली रखकर अंतर्दृष्टि से भौंहों के ऊपर 'मैं चित्त स्वरूप हूं' इस भावना से सच्चिदानंद तेज के रूप में ब्रह्म का ध्यान करने से साधक ब्रह्मरूप हो जाता है । जो गर्भ, जन्म, वृद्धावस्था, मृत्यु आदि सांसारिक भयों से तारण करता है, उसे तारक ब्रह्म कहते हैं । जीव और ईश्वर को मायायुक्त समझकर अन्य सबको 'ऐसा नहीं ऐसा नहीं' (नेति-नेति) कहने पर जो शेष रहता है, वही अद्वय ब्रह्म है । उसकी सिद्धि के लिए तीन लक्ष्यों का अनुसंधान करना चाहिए । देह मध्य में पूर्ण चंद्रमा के समान आभावाली ब्रह्मनाड़ी सुषुम्ना है । वह मूलाधार से ब्रह्मरंध्र को जाती है । उसके बीच में करोड़ों बिजलियों के समान आभावाली कमल नालों के समान सूक्ष्म प्रसिद्ध कुंडलिनी है । उसको मन से ही देखकर व्यक्ति सभी पापों के नष्ट होने से मुक्त हो जाता है । ललाट के विशेष मंडल में स्फुरित तेज को तारक ब्रह्म से युक्त होकर देखनेवाला सिद्ध बन जाता है । तर्जनियों से दोनों कानों को बंद करके सुनाई देनेवाले शब्द में मन को स्थिर करने पर चक्षुओं के बीच में अंतर्दृष्टि से नीली ज्योति के दर्शन असीम् सुख देते हैं । ऐसा ही दर्शन हृदय में भी होता है । मुमुक्षु इन अंतर्लक्षणों का अभ्यास करें । (1-5)

अंतर्लक्षणों के बाद बाह्य लक्षणों का वर्णन है । नासिका के चार, छः, आठ, दस एवं बारह अंगुल पर क्रमशः नीला, कालिमायुक्त, लाल भृंगवर्ण एवं पीला-सफेदपन लिए आकाश का रंग देखनेवाला योगी होता है । चलती दृष्टि से आकाश में ज्योति किरण को देखनेवाला भी योगी होता है । आंखों के कोनों में ज्योति किरणों के दर्शन होने पर दृष्टि स्थिर हो जाती है । मस्तक से ऊपर बारह अंगुल की दूरी पर ज्योति देखनेवाला अमरता प्राप्त करता है । सिर के ऊपर कहीं भी आकाश ज्योति के दर्शन करनेवाला योगी होता है । मध्य लक्षण इस प्रकार हैं कि प्रातः विचित्र वर्ण युक्त अखंड सूर्यचक्र के समान, अग्नि की ज्वाला के समान तथा इनसे विहीन अंतरिक्ष के समान देखता है, फिर उसी के आकार का बन जाता है । पुनः इसके दर्शन करने पर निर्गुण आकाश हो जाता है । चमकते तारे तथा गहन अंधकार से युक्त परमाकाश होता है । महाकाश कालाग्नि के समान प्रकाशमान होता है । सबसे उत्कृष्ट परम प्रकाशमय तत्त्वाकाश होता है । सूर्याकाश करोड़ों सूर्यों के समान प्रकाशित होता है । इस प्रकार बाहर और भीतर ये पांच तारक आकाश होते हैं । इन्हें

देखनेवाला मुक्त तथा इन्हीं के समान हो जाता है। इस तारक का लक्ष्य ही अमनस्कता रूपी फल को देता है। पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध, यह दो प्रकार का तारक योग होता है। इनमें पूर्व को तारक तथा उत्तर को अमनस्क कहते हैं। (6-8)

आंखों के भीतर सूर्य और चंद्रमा का प्रतिफलन होता है। आंख के तारों से सूर्य-चंद्रमंडल एवं ब्रह्मांड के समान अपने सिर रूपी ब्रह्मांड में इनका निश्चय कर दर्शन करना चाहिए। दोनों को एक मानकर इनका मन से ध्यान करना चाहिए। यदि मन को इस भाव से नहीं जोड़ा जाएगा, तो इंद्रियां अपने विषयों में प्रवृत्त होने लगेंगी अतः अंतर्दृष्टि से तारक का ही अनुसंधान करना चाहिए। तारक मूर्त और अमूर्त दो प्रकार का होता है। इंद्रियों के अंतवाला मूर्त और भौंहों से बाहरवाला अमूर्त तारक है। सर्वत्र अंतः पदार्थों के विवेचन में मन को जोड़ने का अभ्यास करना चाहिए। सत्त्व दर्शनयुक्त मन से अंतः में देखने से सच्चिदानंद स्वरूप ब्रह्म ही दिखाई देता है। अतः उसे मन के साथ चक्षुओं की अंतर्दृष्टि से देखो। इसी प्रकार अमूर्त तारक का ज्ञान भी होता है। यदि रूपों को ग्रहण करने में मन आंखों के अधीन रहता है तो दोनों मिलकर बाहर के समान ही अंदर के रूपों को भी ग्रहण कर लेते हैं। अतः मन के साथ ही आंखों द्वारा तारक ब्रह्म का भी प्रकाशन होता है। (9-10)

तारक योगी का उद्देश्य भ्रूमध्य के ऊपर तेज का दर्शन करना है। उसके साथ मुक्त मन से तारक को जोड़कर प्रयत्न करके दोनों भौंहों को कुछ ऊपर करें। यह तारक योग का पहला भाग है। दूसरे भाग में अमूर्त को अमनस्क कहा जाता है। तालु के ऊपरी भाग में महाज्योति की किरणें हैं। इसका ध्यान करने से योगी अणिमा आदि सिद्धियों को प्राप्त करता है। अंतः तथा बाह्य लक्ष्यों को देखनेवाली दृष्टि के स्थिर होने पर शांभवी मुद्रा बनती है। इस मुद्रा से योगी अपने निवास की भूमि को पवित्र करता है और उसकी दृष्टि से सारे लोक पवित्र हो जाते हैं। इस प्रकार योगी की जो भी पूजा करता है, वह मुक्त हो जाता है। यह अंतर्लक्ष्य ज्योति जलती हुई स्वरूपवाली है। परम गुरु के उपदेश से सहस्रदल कमल में यह ज्योति या बुद्धि गुहा स्थित ज्योति अथवा सोलह कला के अंत में स्थित तुरीय चैतन्य अंतर्लक्ष्य होता है। यह सदाचार मूल दर्शन है। (11-13)

आचार्य वेदसंपन्न, विष्णुभक्त, मात्सर्यहीन, योगज्ञाता, योगनिष्ठ, योगात्मक पवित्र, गुरु का भक्त तथा परमात्मा को विशेष रूप से जाननेवाला, इस प्रकार के लक्षणों से संपन्न व्यक्ति ही गुरु कहा जाता है। 'गु' का अर्थ अंधकार तथा 'रु' का अर्थ अंधकार का नाशक है। अतः अज्ञान के अंधकार का नाश करनेवाला ही गुरु है। गुरु ही परमब्रह्म, परमगति, परमविद्या, सबसे बड़ा घर, परमस्थिति तथा परमधन है। उपदेशक होने से वह महान से भी महान है। इसका एक बार उच्चारण करने से भी संसार से मुक्ति मिलती है, सभी जन्मों के पाप तत्क्षण नष्ट हो जाते हैं, वह सभी कामनाओं को प्राप्त करता है तथा सभी पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) की सिद्धि होती है। इसे जाननेवाला भी ऐसा ही हो जाता है। (14-19)

□

73. पाशुपत ब्रह्मोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभ्यः श्रणुयामः देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

हम कानों से कल्याणमय शब्द सुनें और नेत्रों से कल्याणमय दृश्य देखें । स्वस्थ अंगों से तुम्हारी स्तुति करें । देवताओं द्वारा दी हुई आयु का उपभोग करें । यशस्वी इंद्र, सर्वस्व ज्ञाता पूषा, अमंगल नाशक गरुड़ तथा बृहस्पति हमारा कल्याण करें । तीनों तापों की शांति हो ।

पूर्वकांड

ब्रह्मा जी के मन में सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा हुई । तब कामेश्वर (रुद्र) और वैश्रवण (कुबेर) की उत्पत्ति हुई । एक बार कुबेर एवं बालखिल्य ने ब्रह्मा से पूछा, 'जगत विद्या क्या है ? जागृत एवं तुरीय अवस्था के देवता कौन हैं ? ये किसके वश में हैं ? काल का क्या कारण है ? सूर्य, चंद्र आदि ग्रह किसकी आज्ञा से प्रकाशित होते हैं ? आकाश का स्वरूप किसकी महिमा है ? हम इन बातों को जानना चाहते हैं । आपके अतिरिक्त इसका उत्तर कौन दे सकता है ? कृपया इसे बताइए ।' इस पर ब्रह्मा बोले, 'समस्त जगतों की विद्या मातृका विद्या है । यह दो वर्ण (हंस)वाली भी है, तीन वर्ण (ओम = अ + उ + म) वाली भी है तथा दोनों वस्तुतः एक ही हैं । चार मात्राओंवाला 'ओम' मेरा ही रूप है । तीनों लोकों का मैं ही स्वामी हूं । सारे युग भी मेरे ही अधीन हैं । दिन, रात आदि काल मुझसे ही जन्मे हैं । रवि, चंद्र आदि ग्रहों का तेज मेरा ही रूप है । आकाश मेरी ही तीन शक्तियोंवाली माया का रूप है; मुझसे भिन्न नहीं । रुद्र, विष्णु एवं ब्रह्मा क्रमशः तमोगुण रूप माया, सत्त्व गुण रूप माया एवं रजोगुण रूप माया हैं । इंद्र आदि सभी तमोगुण एवं रजोगुण दोनों से युक्त हैं, कोई भी सात्त्विक नहीं है । एक अघोर शिव ही साधारण स्वरूप हैं । (110)

'रुद्र ही समस्त यज्ञों के कर्ता और देवता हैं, विष्णु अध्वर्यु हैं, इंद्र 'होता' (हवन कर्ता) हैं । महेश्वर का मानस रूप ब्रह्मा ही यज्ञ का भोग करनेवाला है । मनुष्य ब्रह्मा का ही रूप है । 'हंस सोऽहम' इसका तन्मयता से प्राप्त करने के लिए अनुसंधान करनेवाला विकारमय जीव है । हंस परमात्मा का स्वरूप है । वह अंदर-बाहर विचरण करता रहता है । अंदर जाने में अनवकाश में वह हंस सुपर्ण; अर्थात् ईश्वर होता है । छियानवे तंतुओं के रूप में व्यक्त चित्त के तीन रूपों से व्यक्त 'चिन्मय', नौ तत्त्वों से तिगुना हो जाता है । ब्रह्मा, विष्णु, महेश रूपी तीन अग्नियों से संयुक्त और चित्त ग्रंथियों से बंधा, अद्वैत ग्रंथियुक्त है । यह यज्ञ के बाह्य और भीतर को प्रकाशित करनेवाला

जनेऊ हंस ही है। इस प्रकार जनेऊ के तागे ब्रह्म-यज्ञ ही हैं। यज्ञोपवीत एवं ब्रह्म एक-दूसरे के पूरक हैं। मात्राएं इसके अंग हैं। मनो यज्ञ का हंस यही सूत्र है। यह ब्रह्म यज्ञमय सूत्र (जनेऊ) प्रणव ही है। प्रणव के भीतर रहनेवाला हंस ही ब्रह्मसूत्र (जनेऊ) है। अतः यह ब्रह्मयज्ञ मोक्ष का साधन है। मानसिक यज्ञ क्रिया ब्रह्म संध्या है। संध्या क्रिया मनोयज्ञ का लक्षण है। जो यज्ञ-सूत्र प्रणव और ब्रह्म यज्ञ की क्रिया में लगा है, वही ब्राह्मण है। ब्रह्मचर्य द्वारा ही देवता विचरण करते हैं। हंस और प्रणव एक ही हैं।' (11-19)

'हंस की प्रार्थना तीनों कालों में होती है। तीन काल तीन वर्ष होते हैं। यह तीन अग्नियों से होता है। त्रि-अग्नि आत्मा स्वरूप ओंकार हंस के अनुसंधान का यज्ञ है। 'चित्त' से तन्मय होना तुरीय स्वरूप है। आंतरिक सूर्य में हंस की ज्योति रूप है। यज्ञ का अंग ब्रह्म-संपत्ति है। अतः ब्रह्म-प्राप्ति हेतु प्रणव हंस की साधना मुख्य है।' बालखिल्य ने पुनः पूछा, 'हंस सूत्र (जनेऊ) की संख्या कितनी है? और प्रमाण (लंबाई) क्या है?' उत्तर मिला—'हृदय सूर्य की छियानवे किरणें हैं। चित्त सूत्र नाक से निकलनेवाले प्रणव की धारा भी इतनी ही है। बाएं हाथ के पास कमर में दाहिने ओर से बीच में परमात्मा हंस की रहने की जगह है। यह गोपनीय विषय है। इसका ज्ञाता केवल अमृतत्व प्राप्त व्यक्ति ही होता है, वे ही इस सर्वकाल प्रकाशक हंस को जानते हैं। प्रणव हंस के ध्यान के बिना मुक्ति नहीं होती (20-26)।

'जो रंगा हुआ नौ सूत्रीय जनेऊ पहनता है, उसको सब ब्रह्म समझकर उपासना करते हैं। मनुष्यों को भीतरी सूर्य का ज्ञान नहीं है। सूर्य को प्रकाश देनेवाला समझकर ही शुद्ध ज्ञान हेतु विद्वान उसकी पूजा करते हैं। वाजपेय यज्ञ पशुपति का रूप है। उसके देवता इंद्र हैं, अहिंसा परम धर्म है। परम हंस अध्वर्यु है, परमात्मा पशुपति देवता है। ब्रह्मवेत्ता उपनिषदों के ब्रह्म के उपासक हैं। इस महायज्ञ का ज्ञान ही अश्वमेध है। इसकी आज्ञा से ही वे ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं। यहां कहे गए सभी यज्ञ मुक्ति देनेवाले हैं।' बालखिल्य बोले, 'ब्रह्म का ज्ञान हो गया है।' इतना कहते ही ब्रह्मा अंतर्ध्यान हो गए। उपनिषदों में वर्णित हंसज्योति रुद्र है। वही प्राणियों का स्वामी और तारक ब्रह्म है। (27-32)

उत्तरकांड

'हंस का जप ही वर्ण ब्रह्म है। यही ब्रह्म को प्राप्त करनेवाला है। परमात्मा और पुरुष भी यही है। जो आत्मज्ञान से ब्रह्ममय हो जाता है उसके विषय में कुछ भी कहने को नहीं रह जाता। उनका समय ब्रह्मज्ञान की चर्चा में व्यतीत होता है। हंस और आत्मा के एक हो जाने पर उनके लिए आत्मतत्त्व सब कुछ हो जाता है। भीतर होनेवाले नाद से ज्ञात प्रणव रूपी हंस ही सब ज्ञान करानेवाला है। भीतरी अनुभव से बाह्य ज्ञान की प्राप्ति होती है। शति आत्मक शिव चिन्मय आनंद से ज्ञात होता है। नाद, बिंदु एवं कला, इन तीन नेत्रों से ही विश्व चेष्टावान है। तीन अंगों, तीन शिखाओं और दो या तीन आकृतियों से उसका ज्ञान होता है। इस प्रकार अंतर्गूढ़ (अंतर्धान) हो जाने पर आत्मा का ज्ञान बाह्य रूप में भी होने लगता है। सूत्ररूप ब्रह्म को जानना चाहिए। हंस रूप प्रणव (सूर्य) का ध्यान करना चाहिए। इसी ज्ञान से ज्ञान की चरम सीमा प्राप्त होती है। स्वतः शिव

प्राणियों का स्वामी और साक्षी है। उसी की प्रेरणा से प्राण, वाणी, मन आदि अपने कार्य करते हैं। ये सब कार्य माया के कारण हैं; न कि वास्तविक रूप में। (1-10)

'कान, आंख, मन आदि सभी आत्मा पर आश्रित हैं। शिव ही इनमें प्रविष्ट होकर इनको सुनने, देखने, मनन करने आदि की शक्ति देते हैं। इसी प्रकार शिव सभी इंद्रियों को चेष्टासहित बनाते हैं। वह शिव, लोग उन्हें जैसा बताते हैं या इंद्रियां जिस रूप में उनकी कल्पना करती हैं, उससे सर्वथा भिन्न हैं। वही समस्त इंद्रियों को बनानेवाले हैं, अतः ये सब उनके ज्योति रूप को प्राप्त नहीं कर सकतीं। परमात्मा को अंतःकरण के विषयों से भिन्न मानकर उसे बिना तर्क या प्रमाण के अपने आत्मा में खोजनेवाला ही उसका ज्ञान प्राप्त कर सकता है। प्रत्येक आत्मा ही परम ज्योति है। माया महान अंधकार है। अतः इन दोनों की एकता संभव नहीं है। तर्कों, प्रमाणों या अपने अनुभव से ज्ञान होता स्वयं प्रकाश परमात्मा माया से मुक्त है। व्यावहारिक दृष्टि से ही विद्या एवं अविद्या का अस्तित्व है, परमात्मा से इनका कोई संबंध नहीं है। तत्त्वतः तो विद्या एवं अविद्या दोनों ही झूठ हैं, केवल परमात्मा ही सत्य है। व्यावहारिक दृष्टि से भी ऐसा ही आभास होता है। अतः परमात्मा अद्वैत (केवल एक) है। (11-20)

'अतः सब एक प्रकाश ही है। उसके विषय में कुछ भी नहीं कहा जा सकता, मौन ही उचित है। यह महाज्ञान जिसे प्राप्त हो जाता है, वह न तो जीव रहता है, न ब्रह्म ही और न कुछ अन्य ही। इसके लिए वर्ण-आश्रम, धर्म-अधर्म, नियम-निषेध कुछ भी नहीं रह जाता, सर्वत्र ब्रह्म ही प्रकाशमान रहता है। उसे दुःख आदि का आभास बिल्कुल भी नहीं होता। इस जीवमय संसार को देखते हुए भी उसे ब्रह्म ही दिखाई पड़ता है। भेद-अभेद आदि भी परमात्मा से ही व्याप्त हैं, क्योंकि वही सदा से विद्यमान है तथा वस्तु-अवस्तु सब ब्रह्म ही है। ऐसे ज्ञानवाला किसी का भी ग्रहण या त्याग नहीं कर सकता। वह ब्रह्म उपमारहित है, मन, वाणी या दृष्टि उस तक नहीं पहुंच सकते, वह गोत्र, रूप, नेत्र, हाथ, पांव आदि से रहित है, वह नित्य, विभु, सर्वगत, सूक्ष्म, अव्यय और अमर है तथा वही सबका स्थान एवं आश्रय है। उसके आगे-पीछे, दाएं-बाएं सर्वत्र केवल ब्रह्मानंद ही है। (21-30)

इस प्रकार के ज्ञान से युक्त पुरुष निर्भय होकर अपने अंदर ही सबको देखता है और मुक्त हो जाता है। इस ज्ञान से अज्ञानी भी मुक्ति प्राप्त करते हैं। यह परा विद्या सत्य, तप, ब्रह्मचर्य, धर्म आदि के साथ वेदांत के ज्ञान से प्राप्त होती है। अपने शरीर में हीं दोषों के नष्ट होने पर परमात्मा के दर्शन होते हैं, माया से घिरे लोग इसे नहीं देख सकते। जिस योगी को इस स्वरूप का ज्ञान हो जाता है, वह पूर्ण हो जाता है और पुनर्जन्म से मुक्त हो जाता है। आकाश की तरह सर्वव्यापक हो जाने पर अपने स्वरूप का ज्ञाता कहीं भी नहीं जाता। न खाने योग्य पदार्थों को त्यागने से हृदय की शुद्धि के बाद चित्त स्वयं विशुद्ध हो जाता है। तब क्रमशः ज्ञान के बाद अज्ञान नष्ट हो जाता है और आत्मज्ञानी हो जाने पर अभक्ष्य (न खाने योग्य) का भी कोई बंधन नहीं रहता, क्योंकि उसके लिए भेद-भाव नष्ट हो जाता है। अतः वह खाद्य को भी अपना ही स्वरूप समझता है। वह सभी को ब्रह्ममय और स्वयं में ही देखता है। अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि (जात-पांत) की भावना को भी वह खा जाता है। वह ब्रह्म का ही रूप हो जाता है। अतः उसके लिए समस्त विश्व भोज्य बन जाता है। (31-40)

जगत को अपना रूप अनुभव करने पर वह उसका तथा ब्रह्म सदा उस साधक का भक्षण करता

है। जिसके आभास से यह जगत भोज्य रूप बन जाता है, उस आत्म रूप का ज्ञान होने पर वह निःसंदेह ब्रह्म द्वारा खाया जाता है । अतः सब उसी का स्वरूप होने से ब्रह्म अपना ही भक्षण करता है। अस्तित्व ही सत्ता है । ब्रह्म के सिवा किसी की सत्ता नहीं है । माया वस्तुतः है ही नहीं । योगी इसकी कल्पना अपनी आत्मा में करते हैं । उनके ब्रह्मज्ञान से विवश हो जाने पर वह उन्हें साक्षी रूप में देखती है । ब्रह्मज्ञान से संपन्न ज्ञानी जगत को देखता हुआ भी, नहीं देखता; अर्थात् वह उसे अपने से अभिन्न देखता है । (41-46)

□

74. प्राण अग्निहोत्रोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

परमात्मा हमारी—गुरु-शिष्य की—एक साथ रक्षा एवं पालन करे। हम साथ ही वीरता दिखाएं और परस्पर द्वेष न करें। तीनों ताप शांत हों।

सभी उपनिषदों के निष्कर्ष के समान यह शरीर यज्ञ है। इसको जान लेने पर बिना अग्निहोत्र और बिना सांख्य ज्ञान ही संसार से निवृत्ति हो जाती है। सर्वप्रथम अपनी परंपरा के अनुसार पृथ्वी में बनी वेदी में अन्न रखकर 'या ओषधयः' तीन मंत्रों तथा 'अन्न पते' इन दो मंत्रों से उसे अभिमंत्रित करे। (1-2)

प्रथम तीन ऋचाएं (मंत्र) इस प्रकार हैं—जो सोम देवता प्रधान है, सैकड़ों प्रकार से विचक्षण है, जो अनेक शाखाओंवाली बृहस्पति से उत्पन्न औषधियां हैं, ये सब हमें निष्पाप करें। जो फलनेवाली हैं या न फलनेवाली हैं, पुष्पोंवाली हैं या बिना पुष्पवाली हैं, वे हमारी रक्षा करें। जीवन देनेवाली, जिसकी आयु नष्ट हो गई है उसकी भी रक्षा करनेवाली औषधियां हमारी रक्षा करें। इनके बाद अन्य दो मंत्र इस प्रकार हैं—हे ब्रह्म, तुम अन्नपति हो, मनुष्यों एवं पशुओं को अन्न देते हो। यह अन्न पिशाच आदि द्वारा प्रभावित भी हो, तो तुम इससे हमें अभय करना। मैं ईशान शिव को आहुति देता हूं। वह चारों ओर को मुखोंवाला ब्रह्म प्राणियों की गुहा में रहता है। हे ब्रह्म, तुम्हीं यज्ञ, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, वषट्, जल, ज्योति, रस, अमृत, भूः भुवः स्वः हो, तुम्हें मेरा नमस्कार हो। जल, पृथ्वी, बृहस्पति एवं ब्रह्म मुझे पवित्र करें। यह भोजन जूठन आदि से दूषित हो या मैं दुश्चरित्र हूं, तो इसे ग्रहण करनेवाले मुझे पवित्र करें। मैं यह आहुति देता हूं। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान एवं ब्रह्म को आहुति देता हूं। मेरा आत्मा ब्रह्म में अमृतत्व प्राप्त करे (यह सब पूजा-पाठ आदि के मंत्र हैं, जो योगी के भोजन के प्रसंग में यहां आए हैं)। (6-10)

कनिष्ठिका एवं अंगूठे से प्राण को, अनामिका से अपान को, मध्यमा से व्यान को, सभी अंगुलियों से उदान को तथा तर्जनी से समान को आहुति दे। मौन होकर एक आहुति प्राण को तथा दो आहुतियां अपान को (आह्वनीय अग्नि में) दे, दो आहुतियां दक्षिणाग्नि में, एक गार्हपत्य अग्नि में तथा एक प्रायश्चित्त रूप अग्नि में दे। अपिधान स्वरूप को अमाता के लिए छूकर ग्रहण करके पुनः स्पर्श करे। बाएं हाथ में जल लेकर हृदय के पास इस प्रकार जप करे—प्राण ही अग्नि है, परमात्मा है तथा पांच वायु से ढका हुआ है। यह सभी प्राणियों से मुझे अभय करे। मुझे कोई भय न हो। हे प्राण ! तुम विश्व हो, वैश्वानर हो तथा इस उत्पन्न जगत को धारण करनेवाले हो। तुम्हारे लिए यह विश्व आहुति रूप है। तुरीयावस्था में यह विलीन हो जाता है। (7-15)

तुम पांव के अंगुष्ठ के आगे प्रतिष्ठित हो और प्रतिपल नए-नए रूप धारण करते हो। इस भोजन के अंत में अमृतत्व प्राप्ति के लिए मैं तेरा अभिषेक करता हूं। ये सब चेष्टाएं हैं। अतः बाहरी आत्मा का ध्यान करे। यह प्रतिदिन प्राणरूप अग्निहोत्र करता है। इसका सभी पुत्र के समान पालन करते हैं। तू ही मेरी आहुतियों का होम करता है। शरीर में ही यज्ञ की कल्पना की जाती है। इसमें चार अग्नियां हैं। ये अत्यंत सूक्ष्म हैं। अर्धमात्रावाली हैं। इनमें सूर्याग्नि सूर्यमंडल की आकृति का तेज किरणोंवाला है, जो सिर में रहता है। दर्शनाग्नि चार मुखवाले आह्वनीय रूप में होकर मुख में स्थित है। शरीराग्नि शरीर को क्षीण करता है और स्थूल प्रपंच हवि ग्रहण करता है। यह अर्धचंद्र समान दक्षिणाग्नि बनकर हृदय में निवास करता है। कोष्ठाग्नि खाए-पिए को पचाकर गार्हपत्य के रूप में नाभि में स्थित है। चित्त उपाधि स्वरूप के नीचे जागृत आदि तीन अवस्थाओं को प्रकाशित करनेवाला चंद्रमारूप प्रभु सबकी उत्पत्ति का कारण है। (16-20)

यह शरीर यज्ञ यूप (खंभा) के समान शोभावाला है। इस यज्ञ का यजमान कौन है? पत्नी कौन है? सदस्य, यज्ञपात्र, हवि, वेदी, कलश, रथ, पशु, अध्वर्यु, ब्रह्मा, प्रतिस्थापक, प्रस्तोता, मित्रावरुण, उद्‌गाता, पवन करनेवाला, कुश, स्रुवा, थाली आधार, इत्यादि (यज्ञ के उपकरण या भाग लेनेवाले) कौन या क्या हैं? इसका यजमान साधक का आत्मा है, पत्नी बुद्धि है, वेद ऋत्विज हैं, अहंकार अध्वर्यु है, चित्त 'होता' है, प्राण ब्रह्मा है, अपान, व्यान, उदान एवं समान क्रमशः प्रतिष्ठाता, प्रस्तोता, उद्‌गाता एवं मित्रवरुण हैं। शरीर, नाक, सिर, पैर, दाहिना हाथ, बायां हाथ, कान, आंख, गर्दन, तन्मात्राएं, पंचभूत, जीभ, दांत तथा तालु क्रमशः वेदी, अंतर्वेदी, दोना-कलश, रथ, स्रुवा, घी का पात्र, आधार, प्रोक्षणपात्र, घी, धारा, पवन करनेवाला, सदस्य, प्रयाज-अनुयाज, इड़ा, सूक्त वाक तथा शयोर्वाक हैं। स्मृति-दया-अहिंसा, ओम, आशा, मन, कामः काल, ज्ञानेंद्रियां, कर्मेंद्रियां, अहिंसा, त्याग और मृत्यु क्रमशः पत्नी संयाज, यज्ञस्तंभ, रशना, रथ, पशु कुशाएं, यज्ञपत्र, हवि, इष्टिकाएं, दक्षिणा और अवभृथ स्नान हैं। सभी देवता इस प्रकार शरीर यज्ञ करनेवाले के शरीर में रहते हैं और मृत्यु पर वह स्वर्ग जाता है। किसी का देहांत काशी में हो या इसके पढ़ने से ही ब्रह्म को जाननेवाला इसी जन्म से मोक्ष पाता है। (21-22)

□

75. योग कुंडलिनी उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सहनौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

परमात्मा हम दोनों गुरु-शिष्य की एक साथ रक्षा करे, एक साथ हमें उपभोग प्रदान करे। हम दोनों एक साथ पराक्रम के कार्य करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो। हम विद्वेष न करें। तीनों ताप शांत हों।

प्रथम अध्याय

चित्त की चंचलता के दो कारण हैं—वासना तथा वायु (मांस)। इनमें एक के नष्ट होने पर (वश में होने पर) दूसरा स्वतः नष्ट (वश में) हो जाता है। अतः पहले वायु (प्राण) को वश में करना चाहिए। इसके लिए मिताहार (कम भोजन), आसन और शक्तिचालन करना चाहिए। यहां इनके लक्षण बताए जा रहे हैं। मधुर एवं स्निग्ध भोजन करते हुए एक चौथाई पेट को खाली रखना चाहिए। ईश्वर के उद्देश्य से किया गया भोजन ही कल्याणकारक है। पद्मासन एवं वज्र आसन, दो मुख्य आसन हैं। दोनों तलुओं को एक-दूसरे पैर में रखने से पद्मासन बनता है, जो सभी पापों को नष्ट करनेवाला है। बायीं एड़ी को कंद के नीचे और दाहिनी को ऊपर रखने पर सिर सहित शरीर को तना रखने से वज्रासन होता है। कुंडलिनी मुख्य शक्ति है। इसे साधक द्वारा भ्रूमध्य में ले जाना ही शक्ति-चालन है। इसे चलाने के दो उपाय हैं, सरस्वती-चालन तथा प्राणायाम। अभ्यास से लिपटी हुई कुंडली सीधी हो जाती है। सरस्वती को अरुंधती भी कहते हैं। सरस्वती के चालन से कुंडलिनी स्वयं चलने लगती है। इसके लिए इड़ा स्वर (बायां) चलने पर पद्मासन लगाकर बैठें। (1-10)

तब बारह अंगुल लंबे और चार अंगुल चौड़े आकाश के (कल्पित) टुकड़े कुंडलिनी को लपेटें। फिर एक-एक नाक को बंद करके दूसरे से पूरक और पहले से रेचक पुनः-पुनः करें। इस प्रकार मुहूर्त भर तक सरस्वती का चालन करते रहें। तब कुंडलिनी के समीप रहनेवाली सुषुम्ना को कुछ ऊपर खींचें। इस प्रकार कुंडलिनी सुषुम्ना के मुख में चढ़ने लगती है तथा प्राण भी इस स्थान को छोड़कर स्वयं सुषुम्ना में चलने लगता है। पेट को ऊपर खींचकर कंठ को सिकोड़ने से सरस्वती को चलाने के कारण वायु वक्षस्थल के ऊपर चला जाता है। सरस्वती-चालन में सूर्य (दाहिने) से रेचक करें और कंठ को सिकोड़ें। इससे वायु वक्षस्थल के ऊपर चला जाता है। ऐसे ही शब्दगर्भा सरस्वती को नित्य चलाना चाहिए। इससे योगी समस्त रोगों से मुक्त हो जाता है। गुल्म, जलोदर, प्लीहा तथा उदर-रोग शक्ति-चालन से निश्चित ही नष्ट हो जाते हैं। शरीर में चलनेवाला वायु प्राण कहलाता है। इसे रोकना कुंभक है। यह दो प्रकार का है—सहित कुंभक तथा केवल कुंभक। केवल कुंभक की सिद्धि तक सहित कुंभक का अभ्यास करना चाहिए। (11-20)

सूर्यभेद, उज्जायी, शीतली तथा भस्त्री, इन चार प्रकार के प्राणायामों के साथ कुंभक किया जाता है। पवित्र, निर्जन, कंकड़ आदि रहित समतल भूमि में किसी सुखदायक आसन में पद्मासन लगाकर बैठें और सरस्वती चालन करें। दाहिने ओर से पर्याप्त पूरक करें और इड़ा से रेचक करें। कपाल-शोधन क्रिया में भी धीरे से रेचक करें। इससे चारों प्रकार के वात एवं कृमिदोष नष्ट होते हैं। यह सूर्यभेदन है, जिसका बार-बार अभ्यास करना चाहिए। अब मुख बंद करके दोनों नाकों से धीरे-धीरे पूरक करें, जिससे शब्द करता हुआ वायु कंठ से हृदय तक भर जाए। तब इससे पहले के समान सूर्य से पूरक तथा इड़ा से रेचक करें। इससे माथे की गर्मी, गले का कफ नष्ट होकर शरीर की उष्णता बढ़ती है। साथ ही नाड़ी रोग, जलोदर एवं धातुरोग भी ठीक हो जाते हैं। इस उज्जायी कुंभक को चलते-फिरते या रुककर सदा करते रहना चाहिए। शीतली, प्राणायाम में वायु को जीभ से खींचकर पहले के समान कुंभक करें, फिर नासिका से रेचक करें। (21-30)

इससे गुल्म, प्लीहा, क्षय, पित्त, ज्वर, तृषा, विष आदि रोग-दोष नष्ट होते हैं। भस्त्री प्राणायाम में पद्मासन में गर्दन एवं उदर को सीधे रखें। मुख को बंद करके सावधानी से नाक से रेचक करें। फिर वेग से इस प्रकार वायु खींचें कि कंठ, तालु, कपाल एवं हृदय को उसका स्पर्श लगे। रेचक करके फिर वेग से लोहार की धौंकनी की तरह पूरक करें। शरीर में स्थित वायु को सावधानी से चलाएं। थकान होने पर सूर्य नाड़ी से पूरक करके तर्जनी के अतिरिक्त अंगुलियों से नासिका को बीच में जोर से पकड़कर कुंभक करें तथा बायीं नाक से रेचक करें। यह अभ्यास गले की जलन एवं शरीर की शीतलता को दूर करता है। कुंडलिनी को जगाता है, पाप-दुःख नष्ट करके सुख और आनंद देता है। यह सुषुम्ना के मुख के कफ को नष्ट करके तीनों गुणों की ग्रंथियों को काटता है। अतः इस भस्त्री का विशेष अभ्यास करना चाहिए। इन चारों प्राणायामों के साथ योगी को तीन बंधों को भी करना चाहिए। (31-40)

मूलबंध, उड्डीयाण बंध एवं जालंधर बंध, ये तीन बंध हैं। नीचे को गतिवाले अपान को गुदा को संकुचित करते हुए ऊपर ले जाना मूलबंध है। ऊपर जाने पर यह अग्नि-मंडल से मिलता है और अग्नि को तीव्र कर देता है। इससे सुप्त कुंडलिनी जागृत हो जाती है तथा डंडे से आहत सांपिन के समान फुफकारती हुई सीधी हो जाती है। तब यह सुषुम्ना रूपी बिल में घुस जाती है। अतः योगी सदा मूलबंध का अभ्यास करें। कुंभक के तथा रेचक के बीच में उड्डीयाण बंध किया जाता है। इसमें वज्रासन लगाकर हाथों से दृढ़ता से पैरों को पकड़ें। टखने से कंद को दबाएं। हृदय एवं गले को तना हुआ रखकर पेट को ऊपर को खींचें। इससे प्राण वायु पेट के जोड़ों में जाता है, जो समस्त उदर-दोषों को दूर करता है। अतः इसका सदा अभ्यास करना चाहिए। (41-50)

जालंधर बंध में वायु को रोकने के लिए कंठ को संकुचित किया जाता है, अतः इसे पूरक के अंत में करें। नीचे के भाग में मूलबंध से गुदा को संकुचित करें। मध्य में उड्डीयाण से प्राण को खींचें। इस प्रकार सभी ओर से रोका हुआ प्राण सुषुम्ना में चढ़ता है। पूर्वोक्त प्रकार से आसन में बैठकर सरस्वती को चलाकर प्राणों को रोकना चाहिए। प्रथम दिन चारों कुंभक दस-दस बार करें, दूसरे दिन पंद्रह-पंद्रह बार, तीसरे दिन बीस-बीस बार करें; अर्थात पांच-पांच कुंभक प्रतिदिन बढ़ाते जाएं। इनका अभ्यास तीनों बंधों के साथ करें। दिन की नींद, रात्रि जागरण, अधिक मैथुन, अधिक

चलना, मल-मूत्र रोकना, आसन की विषमता आदि दोषों से युक्त अभ्यास करने पर शीघ्र रोग होते हैं। यदि कोई कहे कि उसे इस अभ्यास से ही रोग हुआ, तो समझें कि अभ्यास को रोकना ही प्रथम विघ्न है। संशय, लापरवाही, आलस्य, अधिक सोना, प्रसन्न न रहना, भ्रांति, विषमता, बिना कहा तथा योग तत्त्व का न मिलना क्रमशः दूसरा, तीसरा आदि विघ्न हैं। बुद्धिमान इन सबको समझकर इनका अभ्यास से पूर्व ही त्याग कर दे। (51-61)

प्राणायाम का अभ्यास सदा सात्त्विक बुद्धि से करना चाहिए। इससे चित्त सुषुम्ना में दौड़ता है तथा वायु नहीं दौड़ता। मल शोधन के बाद जब प्राण चलने लगे, तो सावधानी से अपान की गति ऊपर को करनी चाहिए। गुदा का संकुचन मूलबंध है। इसमें अपान ऊपर अग्नि से मिलकर सुप्त कुंडलिनी को जागृत करता है। तब वह सीधी होकर सुषुम्ना के मुख में प्रविष्ट हो जाती है। रजोगुण से उत्पन्न ब्रह्मग्रंथि को भेदकर यह सुषुम्ना के भीतर विद्युत रेखा समान बढ़ती है। शीघ्र ही हृदय स्थित विष्णु ग्रंथि को प्राप्त कर पुनः ऊपर जाकर रुद्र ग्रंथि में पहुंचती है। यहां से भ्रूमध्य को भेदकर चंद्र स्थान में पहुंचती है। वहां सोलह दलोंवाला अनाहत चक्र है। यहां यह चंद्रमा से उत्पन्न द्रव को सोख लेती है तथा सूर्य प्राण के वेग से रक्त एवं पित्त को ग्रहण कर लेता है। (62-70)

चंद्र-मंडल में द्रव का शोषण करने के बाद यह उसे उष्ण कर देती है और चंद्रमा के सफेद रंग को भी तपा देती है। स्वयं क्षुब्ध होकर ऊपर चढ़ती है। इसके प्रभाव से अभी तक बाहरी पदार्थों में लगा चित्त परमार्थ में लगकर आनंदित होता है। तब आठ प्रकार की प्रकृति को प्राप्त कर यह कुंडलिनी शिव से मिलकर उसमें लीन हो जाती है। इसके नीचे का भाग रज तथा ऊपरी भाग शुक्ल मिलकर शिव में लीन हो जाते हैं और प्राण-अपान भी उसी में लीन हो जाते हैं, क्योंकि ये दोनों एक साथ उत्पन्न होते हैं। यह भौतिक शरीर चाहे बड़ा हो या छोटा, उष्णता बढ़ने पर वह इसमें वैसे ही सब जगह फैल जाती है, जैसे गर्म किए जाने पर सोने में फैलाव आ जाता है। इसके प्रभाव से भौतिक देह दैविक बनकर निर्मल सूक्ष्म शरीर समान बन जाता है, जड़ता त्यागकर चैतन्य स्वरूप बन जाता है, जबकि अन्य शरीर जड़ ही रह जाते हैं। ऐसे साधक का जन्म-चक्र छूट जाता है, काल भी उससे विवश हो जाता है तथा उसे स्वरूप का सच्चा ज्ञान हो जाता है। रस्सी में सर्पभ्रम, सीप में चांदी का भ्रम तथा स्त्री में पुरुष के भ्रम के समान वह अपने शरीर के भ्रम को भी समझ जाता है कि यह मिथ्या है। (71-80)

वह इस पिंड और ब्रह्म की तथा लिंगदेह और सूत्र आत्मा की एकता होने पर अपने आत्मा तथा स्वयं प्रकाश चिदात्मा में भी एकता समझने लगता है। कुंडलिनी कमल की नाल के समान होती है, यह कमल के कंद के समान ही मूलकंद को फन के अगले भाग के समान देखकर अपनी पूंछ को मुंह में लिए सोती है। यह ब्रह्मरंध्र के मुंह को ढक देती है। पद्मासन में गुदा को संकुचित करते हुए कुंभक में वायु को ऊपर चढ़ाएं। वायु की शक्ति से स्वाधिष्ठान चक्र की अग्नि को तीव्र करें। इस पर अग्नि एवं वायु दोनों के आघातों से सोई हुई कुंडलिनी जागती है। तब यह ब्रह्म, विष्णु एवं रुद्रग्रंथियों को तथा षटचक्र को भेदती हुई सहस्त्र दलोंवाले कमल में जा पहुंचती है। वहां शक्तिरूप में शिव से मिलकर आनंद प्राप्त करती है। यही अवस्था परम अवस्था है, जो मोक्ष देनेवाली है। (8-87)

द्वितीय अध्याय

खेचरी विद्या के ज्ञाता वृद्धावस्था एवं मृत्यु से मुक्त हो जाते हैं। मृत्यु जरा (वृद्धावस्था) एवं व्याधिग्रस्त लोग विश्वास के साथ इसका अभ्यास करें। इसके लिए किसी ऐसे व्यक्ति को गुरु बनाना चाहिए, जो ग्रंथों से, भावों से और अभ्यास से इसका ज्ञाता हो। यह खेचरी विद्या अत्यंत कठिन है तथा इसका अभ्यास भी कठिन है। इसका अभ्यास तथा योग (मेलन) दोनों एक साथ सिद्ध नहीं होते। अभ्यास में ही लगे रहने पर मेलन भी सिद्ध नहीं होता। अभ्यास तो किसी भी जन्म में हो सकता है, किंतु मेलन सौ जन्म में भी प्राप्त नहीं होता। अनेक जन्मों के अभ्यास से ही मेलन सिद्ध होता है। गुरु के मुख से मेलन-मंत्र मिलने पर शास्त्रों के अनुकूल सिद्धि मिलती है। शास्त्राध्ययन से अर्थ को समझकर मेलन प्राप्त करके साधक संसार से मुक्त होकर शिवत्व प्राप्त करता है। शास्त्र के बिना गुरु भी इसका बोध नहीं करा सकते। अतः यह शास्त्र प्राप्त होना अत्यंत दुर्लभ है। (1-10)

शास्त्र की प्राप्ति तक इसके लिए घूमते रहें। शास्त्र प्राप्त हो जाने पर सिद्धि हाथ में ही समझें। शास्त्र के अभाव में तीनों लोकों में कहीं सिद्धि नहीं मिलती, अतः मेलन का देनेवाला, शास्त्र का अभ्यास करानेवाला तथा शास्त्र देनेवाला गुरु भगवान का रूप है। इस भावना से उससे प्राप्त शास्त्र को किसी से प्रकट नहीं करें, हर प्रकार से गुप्त रखें और जहां भी इस दिव्य योग का देनेवाला गुरु मिले, वहीं जाकर खेचरी विद्या प्राप्त करें, इसका सही रूप में अभ्यास करें। इस विद्या से योगी खेचरी शक्ति प्राप्त करता है। खेचरी में खेचरी को संयुक्त करके खेचरी बीज के योग से साधक देवता बनकर उनके बीच रहता है। खेचर का प्रतीक 'ह', अग्नि का 'र', धारणा का 'ई' तथा जल का 'म' है। इनसे 'ह्रीम' बनता है, जो खेचरी का बीज मंत्र है। इसी से खेचरी योग सिद्ध होता है। सोम 'चंद्रमा' का अंश 'स' है। इससे उलटे क्रम में (पूर्व वर्ण) नवां 'भ', बाद में इसी क्रम में आठवां 'म' वर्ण होता है। फिर 'म' से उलटा पांचवां (प) तथा पुनः चंद्र का अंश (स) के बाद अनेक अक्षरवाला (क्ष) वर्ण रखने से यह मंत्र बनता है (ह्रीं, भं, सं मं, पं सं, क्षं)। यहां इसे कूट (सांकेतिक) रूप में बताया गया है। (11-20)

गुरु के उपदेश से ही सिद्ध होनेवाला यह खचेरी मंत्र सभी सिद्धियों को देनेवाला है। जो नित्य इसका बारह जप करता है, उसके अंतःकरण में शरीर विषयक माया का प्रभाव नहीं होता। श्रद्धा सहित इसके पांच लाख जप से खेचरी की सिद्धि होती है। उसके सभी विघ्न दूर होकर देवताओं को प्रसन्नता प्राप्त होती हैं। इससे शरीर की झुर्रियां निश्चय ही मिट जाती हैं। इसको अच्छी तरह समझकर ही इसका अभ्यास करें, अन्यथा सिद्धि के स्थान पर हानि ही होती है। नियम सहित जप से भी सिद्धि न मिले तो गुरु के निर्देश के अनुसार नित्य जप करते रहें। योग्य गुरु के बिना इसकी सिद्धि कदापि नहीं होती। उचित शास्त्र ज्ञान होने पर सिद्धि मिलने में देरी नहीं लगती। सर्वप्रथम सात दिनों तक गुरु के आदेश से तालु के मूल को घिसकर साफ करें फिर थूहर के पत्ते के समान तेज धारवाले चिकने एवं साफ चाकू से इस स्थान को बिलकुल ही थोड़ा-सा (बाल के बराबर) काटें। कटे स्थान पर सेंधा नमक और हर्र का चूर्ण डालते रहें। सात दिन बाद फिर इसी प्रकार काटें। (21-30)

निरंतर इस अभ्यास से छः मास में इससे जीभ का संबंध कट जाएगा। फिर जीभ के अगले भाग को कपड़ों से लपेटकर धीरे-धीरे खींचें। पुनः छः मास के इस अभ्यास से जीभ भौंहों के बीच तक ठोड़ी के नीचे तक तथा कान के छेद तक पहुंचने लगती है। तीन वर्ष तक अभ्यास करने से जीभ बालों तक कंधे तक तथा गले तक पहुंचने लगती है। अगले तीन वर्ष तक अभ्यास करने से जीभ ब्रह्मरंध्र को ढक लेती है, गले के नीचे तक तथा गर्दन के पीछे तक पहुंच जाती है। शनैः-शनैः यह ब्रह्मरंध्र को भेद लेती है। बीजाक्षर सहित यह विद्या अत्यंत कठनि है। पूर्वकथित छः बीजाक्षरों से षडंगन्यास एवं करन्यास करने से ही सिद्धि मिलती है। अभ्यास अत्यंत सावधानी से तथा धीरे-धीरे करना चाहिए। जल्दी कदापि न करें, इससे शरीर को हानि होती है। जब जीभ बाहर से ब्रह्म बिल तक जाने लगे, तो अंगुली से इसे उसके भीतर कर दें।(31-41)

तीन वर्ष तक इसी प्रकार करने से जीभ ब्रह्म द्वार में चली जाएगी। प्रवेश कर लेने पर इसका अच्छी तरह मंथन करें। मंत्र सिद्धि होने पर मंथन अनिवार्य नहीं है। फिर भी जप एवं मंथन दोनों करने से शीघ्र फल मिलता है। मंथन के लिए सोने, चांदी या लोहे की सींक के सिरे पर दूध में भिगोया तंतु लगाकर उसे नाक के अंदर डालें। फिर प्राण को हृदय में रोककर सुखासन में बैठें। आंखों को भौंहों में लगाकर धीरे-धीरे मंथन करें। यह अभ्यास छः मास तक करने से अपना प्रभाव दिखाता है। तब साधक की स्थिति सोए हुए बालक के समान होती है। मंथन नित्य न करके मास में एक बार करना चाहिए, ऐसे ही जीभ को भी बार-बार ब्रह्मरंध्र में प्रविष्ट न करें। बारह वर्ष तक इस अभ्यास को करने से अवश्य सिद्धि होती है। तब योगी समस्त विश्व को अपने अंदर देखने लगता है, क्योंकि जीभ के ब्रह्मरंध्र में जाने के मार्ग में ही ब्रह्मांड भी स्थित है। (42-49)

तृतीय अध्याय

ब्रह्मा बोले, 'मंत्र इस प्रकार है—'ह्रीं भं सं मं पं क्षमः। अमावस्या, प्रतिपदा तथा पूर्णिमा का वास्तविक रूप में क्या अर्थ है ? प्रतिपदा का अर्थ सूर्य, पूर्णिमा का अर्थ चंद्रमा तथा अमावस्या का अर्थ सूर्य-चंद्र दोनों का अभाव है। कामनाओं से विषयों की इच्छा तथा विषयों की इच्छा से कामनाएं बढ़ती हैं, अतः परमात्मा का सहारा लेकर दोनों का त्याग दें। स्वयं के कल्याण हेतु अन्य वस्तुओं का भी त्याग कर देना चाहिए और मन को शक्ति के मध्य में स्थिर कर देना चाहिए। मन से मन को देखना ही परम पद की प्राप्ति है। मन ही उत्पत्ति एवं स्थिति का बिंदु (कारण) है। दूध से घी के समान यह बिंदु मन से ही पैदा होता है। इस बिंदु में कोई बंधन नहीं है, जो कुछ भी बंधन है, वह मन का ही है। चंद्र और सूर्य के बीच में स्थित शक्ति ही बंधन रूप है। अतः सुषुम्ना को जानकर भीतर प्राण वायु को चलाना चाहिए। बिंदु स्थान में प्राण वायु को रोककर स्थिर करना चाहिए। यही प्राण वायु, बिंदु, सत्त्व एवं प्रकृति का स्थान है। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध तथा आज्ञाचक्र इन छः चक्रों को जानकर सुखी बनें। गुदा आधार चक्र है, लिंग स्वाधिष्ठान चक्र, मणिपूर नाभि में है, अनाहत हृदय में तथा आज्ञाचक्र मस्तक में है। (1-11)

इन छः चक्रों को जानकर वायु को ऊपर खींचकर रोकते हुए सुख मंडल में प्रवेश करें। इस प्रकार अभ्यास से वायु ब्रह्मांड में स्थित हो जाता है। वायु, बिंदु चक्र एवं चित्त के अभ्यास से योगी

समाधि में पहुंचकर अमृत प्राप्त करते हैं। जैसे लकड़ियों को घिसने पर ही उनमें छिपी अग्नि प्रकट होती है, वैसे ही सतत अभ्यास से ही ज्ञान का दीपक प्रकाशित होता है। जैसे घड़े में रखा हुआ दीपक घड़े को तोड़ देने पर ही बाहर प्रकाश कर सकता है वैसे ही शरीर रूपी घड़े को गुरु के वाक्यों से भेदकर ब्रह्म-ज्ञान का प्रकाश प्रकट होता है। भवसागर से पार करनेवाला गुरु ही है। अभ्यास तथा श्रेष्ठ वासना शक्ति से ही भवसागर पार होते हैं। वाणी परा में अंकुरित, पश्यंती में दो पत्तोंवाली, मध्यमा में कली के समान तथा वैखरी में खिल जाती है। इस क्रम से विपरीत प्रकार से इसका लय होता है। (12-20)

जो व्यक्ति स्वयं को वाणी का बोध करानेवाला हो तथा परमदेव मानकर व्यवहार करनेवाले व्यक्ति से कोई चाहे अच्छे या नीच शब्द भी कहे, तो उसे इससे कोई प्रभाव नहीं होता। विश्व तैजस एवं प्राज्ञ, ये पिंड के भेद हैं। विराट, हिरण्यागर्भ एवं ईश्वर, ब्रह्मांड के तथा भूः, भुवः एवं स्वः ये तीन लोकों के भेद हैं। ये अपनी उपाधि के लय होने पर प्रत्यगात्मा में मिल जाते हैं। ज्ञान की अग्नि से तपने पर ब्रह्मांड भी अपने कारण में मिल जाता है। परमात्मा में मिलकर यह ब्रह्मरूप ही हो जाता है और इसमें इतनी गंभीरता आ जाती है कि तब न तो इसे प्रकाश कहा जा सकता है, न अंधकार। तब 'सत' रूप अव्यक्त ही शेष रह जाता है। घड़े के अंदर दीपक के समान ही अंतःकरण में भी एक धुएं से रहित ज्योति है। इसी में कूटस्थ अव्यय का ध्यान करें। आत्मा मूलरूप में विशुद्ध ज्ञानवान होता है, किंतु शरीर में आने पर माया के कारण यह जागृत, स्वप्न एवं सुषुप्ति अवस्था पाकर मोहित हो जाता है। कई जन्मों के सत्कर्म से इसे विकारों को जानने की इच्छा होती है। तब वह सोचता है 'मैं कौन हूं ? यहां यह संसार कैसे आया ? जागृत-स्वप्न अवस्थाओं में मैं स्वयं को कर्ता समझता हूं, किंतु सुषुप्ति में मेरी क्या गति होगी ?' इस प्रकार चिंतन करता हुआ वह अपने स्वरूप पर विचार करता है। (21-29)

चिदाभास से अज्ञान अग्नि में रूई के ढेर की तरह जलने लगता है। सांसारिक ज्ञान के मिटने पर प्रत्यगात्मा इस प्रकार विज्ञान को ही नष्ट कर देता है। मनोमय एवं विज्ञानमय के सही मिलन से आत्मा अंतः में प्रकाशित होता है। ऐसे आत्मा का मृत्यु तक ध्यान करनेवाला ज्ञानी जीवन मुक्त होता है और धन्य हो जाता है। अंत में वह विदेह मुक्त बन जाता है। हवा का चलना बंद होने के समान ही उसका अंत होता है। अंत में शेष रहनेवाला ब्रह्म शब्द रूप आदि से रहित पंचभूतों से परे, नित्य, अव्यय, आदि-अंतहीन, अटल, शुद्ध तथा विकार रहित है। (30-35)

□

76. ध्यानविंदु उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

परमात्मा हम दोनों की रक्षा करे तथा एक साथ ही हमें भोग प्रदान करे। हम दोनों एक साथ वीरता के कार्य करें, और परस्पर द्वेष न करें। तीनों ताप शांत हो जाएं।

पर्वतों के समान योजनों तक फैले पापों को भी ध्यान योग ही नष्ट कर सकता है; दूसरा कोई नहीं है। बीजाक्षर परम विंदु के ऊपर नाद है, जिसके अक्षर में लय होने पर शब्दहीन परम पद ही रहता है। अनाहत से भी भिन्न शब्द की प्राप्ति से योगी मोक्ष पाता है। बाल के दो लाखवें भाग का भी क्षय हो जाने पर वह परमात्मा बन जाता है। जैसे फूलों, दूध, तिल और पाषाणों में क्रमशः सुगंध, घी, तेल और सोना होता है तथा जैसे माला में मोती पिरोए होते हैं, वैसे ही प्राणी अविचल परमात्मा में व्याप्त है। अतः अविचल ज्ञानी ब्रह्म को जानकर उसी में स्थित होता है। परमात्मा भी तिलों में तेल इत्यादि के समान शरीर में सर्वत्र स्थित है। जैसे सारे वृक्ष को जान लेने पर छाया का अस्तित्व मालूम हो जाता है, उसी प्रकार कलारहित स्थान में परमात्मा रहता है। मुमुक्षु ओंकार एकाक्षर ब्रह्म का ध्यान करते हैं। ओम के प्रथम अक्षर 'अ' में पृथ्वी, अग्नि, ऋग्वेद, भूः तथा ब्रह्मा लय होते हैं। 'उ' में अंतरिक्ष, यजुर्वेद, वायु, भुवः एवं विष्णु का लय होता है। (1-10)

'म' में द्युलोक, सूर्य, सामवेद, 'स्वः' तथा महेश का लय होता है। 'अ' रजोगुणी पीले रंग का, 'उ' सात्त्विक एवं सफेद तथा 'म' काले रंगवाला तमोगुणी है। यह ओंकार चार पांवोंवाला, आठ अंगोंवाला, तीन नेत्रों तथा पांच देवताओंवाला है। ओंकार को न जाननेवाला ब्राह्मण नहीं माना जाता। प्रणव (ओम्) धनुष, आत्मा तीर और ब्रह्म लक्ष्य है। सावधानी से लक्ष्य को वेधने पर ब्रह्म-ज्ञान से सभी कर्मों से मुक्ति मिल जाती है। देवता, स्वर तथा तीनों लोकों के सभी चराचर प्राणी ओंकार से ही उत्पन्न हुए। इसकी ह्रस्व मात्रा पापों को हरती है और दीर्घ मात्रा संपत्तियां देती है। अर्धमात्रा से युक्त ओंकार मोक्ष देता है। प्रणव के अगले भाग में लगातार गिरती तेल की धारा और घंटे के शब्द समान नाद को जाननेवाला ही वेदों को जानता है। हृदय कमल की कणिका में दीपक के समान अंगूठे के बराबर अचल ओंकार का ध्यान करें और वायु को पेट में भरकर शरीर के बीच में लपटोंवाले ओंकार का चिंतन करे। पूरक, कुंभक और रेचक क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र हैं, अतः ये तीनों प्राणायाम के देवता हैं। (11-21)

आत्मा एवं ओंकार को क्रमशः नीचे एवं ऊपर की अरणी (यज्ञ की लकड़ी जिससे आग जलाई जाती है) मानकर मंथन करके ब्रह्म का दर्शन करें। ओंकार के ध्यान के बाद रेचक से नाद का लय होता है, इसे अपनी सामर्थ्य के अनुसार करें। सांसों में स्थित तथा स्वयं सांसों से शून्य करोड़ों सूर्यों

के समान तेजस्वी सबके हृदय में रहनेवाले हंस ओंकार के दर्शनों से साधक पापमुक्त होता है। सृष्टि, स्थिति एवं प्रलय के कारण मन का जहां लय होता है, वहीं विष्णु का परमपद है। बत्तीस केसरोंवाले अष्टदल कमल के बीच में सूर्य, चंद्र और अग्नि हैं। चंद्रमा के बीच में अग्नि तथा अग्नि में प्रभा है। प्रभा में अनेक रत्नों का पीठ है, जिसमें विष्णु हैं, जो श्रीवत्स, कौस्तुभ आदि मणियों से सुशोभित हैं। शुद्ध स्फटिक एवं करोड़ों चंद्रों के समान महाविष्णु का विनम्रता से ध्यान करें। नाभि में अलसी फूल के समान विष्णु का पूरक करते हुए ध्यान करें। (22-30)

कुंभक में हृदय स्थान में कमल पर बैठे लालिमायुक्त गोरे चार मुंहवाले ब्रह्मा का ध्यान करें और रेचक में ललाट पर शुद्ध स्फटिक समान निष्कल पाप-नाशक तीन नेत्रोंवाले शिव का ध्यान करें। नीचे फूल तथा ऊपर नालवाले नीचे मुंह किए हुए केले के फूल के समान शिव सभी वेदों से युक्त हैं। सौ अरों, सौ पत्तों और फैली हुई पंखुड़ियोंवाले हृदयकमल में एक के ऊपर एक सूर्य, चंद्र और अग्नि के दर्शन करें। कमल के विकसित होने पर सूर्य, चंद्र और अग्नि के बोध से इनके बीज को ग्रहण करने से स्थिर आत्मशक्ति की प्राप्ति होती है। तीन-तीन स्थान-मार्ग, ब्रह्मा, अक्षर, मात्रा, अर्धमात्रा एवं वायु को जाननेवाला वेदों को जानता है। तेल की धार एवं घंटे के शब्द जैसे प्रवण के अग्रभाग के नाद को जाननेवाला वेदों को जानता है। कमल की नाल से जल खींचने के समान वायु को खींचकर योगी स्थिर बने। अर्धमात्रावाले कमलकोश को नाल से खींचकर भ्रूमध्य में लय करें। भ्रूमध्य (भौंहों के बीच) ललाट और नासिका मूल को अमृत एवं ब्रह्म का घर समझना चाहिए। (31-40)

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि, योग के छः अंग हैं। जितनी योनियां हैं, उतने ही आसन भी हैं। इतने अधिक आसनों को केवल महेश्वर ही जानते हैं। सिद्ध, भद्र, सिंह एवं पद्म, ये चार मुख्य आसन हैं। आधार पहला तथा स्वाधिष्ठान दूसरा चक्र है। इन दोनों के बीच में कामरूप योनि स्थान है। गुदा में आधार चक्र में चार दलोंवाला कमल है। इसके मध्य में कामाख्या योनि है, जिसकी सिद्ध वंदना करते हैं। योनि के बीच में पश्चिम को मुंह वाला लिंग है। इसके माथे की मणि को वेदवेत्ता जानते हैं। तपे सोने और विद्युत लेखा जैसे चमकते अग्नि स्थान से चार अंगुल ऊपर तथा मेढ्र के नीचे शब्द युक्त प्राण है, स्वाधिष्ठान इसके आश्रय में है। अतः मेढ्र को ही स्वाधिष्ठान चक्र कहते हैं। यह मणि के समान तंतुओं (रेशों) और वायु से बने आकार का है। उस नाभिमंडल को मणिपूरक कहा जाता है। बारह अरोंवाले महाचक्र में पाप-पुण्य से नियंत्रित जीव तब तक घूमता रहता है, जब तक उसे ज्ञान नहीं होता। मेढ्र से ऊपर और नाभि से नीचे पक्षी के अंडे के समान कंद से बहत्तर हजार नाड़ियां निकलती हैं। इनमें बहत्तर नाड़ियां मुख्य हैं। (41-51)

बहत्तर नाड़ियों में भी प्राणों को धारण करनेवाली दस नाड़ियां हैं। इनके नाम क्रमशः इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, गांधारी, हस्तजिह्वा, पूषा, यशस्विनी, अलंबुषा, कुहू और शंखिनी हैं। इस नाड़ी-चक्र से योनियों को जानना चाहिए। इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना बायीं, दाहिनी तथा मध्य में (दोनों स्वरों के चलने पर) हैं। चंद्रमा, सूर्य और अग्नि क्रमशः इनके देवता हैं। प्राण सदा इन्हीं में चलता है। प्राण, अपान, उदान, समान एवं व्यान, ये पांच प्राण कहलाते हैं तथा नाग, कूर्म, कृकर,

देवदत्त एवं धनंजय, ये पांच वायु हैं। जीव के समान ये हजारों नाड़ियां हैं। जीव, प्राण और अपान से सदा ऊपर-नीचे जाता रहता है। एक हाथ से दूसरे में फेंकी जाती हुई गेंद के समान दाहिने-बाएं मार्ग से चलनेवाला जीव चंचलता से दिखाई नहीं देता। प्राण अपान को खींचता है तथा अपान प्राण को, इस तरह खींचा जाता हुआ जीव आराम नहीं पाता। (52-60)

इस प्रकार डोर से बंधे पक्षी के समान ऊपर-नीचे खींचे जाते हुए इस प्राण को जाननेवाला ही योग ज्ञाता है। 'ह' अक्षर से यह बाहर आता है तथा 'स' से अंदर जाता है, अत: जीव सदा 'हंस-हंस' मंत्र जपता है। एक दिन रात्रि में यह जपसंख्या इक्कीस हजार छ: सौ होती है, जिसे मोक्षदायिनी अजपा गायत्री कहते हैं। इसके संकल्प से ही मनुष्य पापहीन हो जाता है। इसके समान कोई विद्या, जप या पुण्य नहीं है। इससे बिना कठिनाई के ब्रह्म स्थान मिलता है। परमेश्वरी उस स्थान को मुंह से ढककर सोती है। वह वह्नियोग से जागृत होती है, तब सुषुम्ना में प्राण और मन सहित ऊपर जाती है, जैसे सुई तागे को ऊपर ले जाती है। जैसे चाबी से ताला खुलता है, वैसे ही कुंडलिनी से मोक्ष द्वार खुलता है। पद्मासन में हाथों को संपुटित करके ठोड़ी से वक्षस्थल को दृढ़ता से दबाएं, ब्रह्म का ध्यान करते हुए अपान को ऊपर तथा प्राण को नीचे खींचे। इस प्रक्रिया से साधक कुंडलिनी का प्रभाव अनुभव करता है। पद्मासन में वायु को नाड़ियों में भरकर कुंभक करनेवाला योगी अवश्य मुक्ति प्राप्त करता है। (61-70)

इस अभ्यास में निकले पसीने का मालिश कर लें। कड़वा, खट्टा तथा नमकीन त्यागकर दूध ही पिएं। ऐसा योगी वर्ष-भर में ही सिद्धि प्राप्त कर लेता है। कुंडलिनी के कंद से ऊपर रहने पर सिद्धि मिलती है। प्राण-अपान की एकता से मूलबंध पर योगी का मल-मूत्र घट जाता है तथा वृद्ध भी युवक हो जाता है। एड़ी से गुदा को दबाकर सिकोड़कर अपान को ऊपर खींचना ही मूलबंध है। जैसे गरुड़ बिना थके लंबी उड़ान भरता है उसी प्रकार उदर को पश्चिम की ओर (नाभि की ओर) ऊपर को तानने पर उड्डीयाण बंध होता है। यह मृत्युरूप हाथी के लिए पिंह जैसा है। इसमें सिर के जल को ऊपर ही रोक देने से गले के कष्ट दूर हो जाते हैं। अमृत अग्नि में नहीं गिरता। जीभ को लौटाकर कपाल कुहर में ले जाएं, दृष्टि भ्रूमध्य में रखें। इसे खेचरी मुद्रा कहते हैं। यह रोग, मृत्यु, नींद, भूख एवं प्यास को जीत लेती है। (71-80)

खेचरी का ज्ञाता मूर्च्छा तथा रोगों से मुक्त होकर कर्मों में लिप्त नहीं होता और उसे मृत्यु नहीं बांध सकती। जिसका चित्त इसमें लगा रहता है, जिह्वा आकाश की ओर जाती है, उसे सिद्ध नमस्कार करते हैं। इस मुद्रा से जिह्वा ऊपर से विवर को ढक लेती है, अत: कामिनी के आलिंगन से भी उसका वीर्य क्षय नहीं होता है, जब तक वीर्य शरीर में रहता है तब तक मृत्यु भय नहीं होता तथा जब तक यह मुद्रा रहती है, तब तक वीर्य शरीर में ही रहता है। वीर्य क्षरित होकर योनि मंडल में भी चला जाए, तो योनि-मुद्रा से उसे बलात् ऊपर लाया जाता है। वीर्य सफेद एवं लाल दो प्रकार के कणोंवाला होता है, जो क्रमश: शुक्ल एवं महारज कहे जाते हैं। गूंगे के समान रज योनि स्थान में तथा शुक्रल चंद्र स्थान में रहता है। इन दोनों का मिलन अत्यंत कठिन है। शुक्रल शिव और चंद्रमा तथा रज शक्ति और सूर्य रूप है। इन दोनों के मिलन से ही परम शरीर मिलता है। वायु से शक्ति चालन द्वारा रज आकाश में सूर्य से मिलकर शरीर को दिव्य बनाता है। शुक्रल चंद्रमा से और रज सूर्य से मिला हुआ (संयुक्त) है। (81-90)

इनकी एकरूपता को जाननेवाला योगवेत्ता है। मलों की शुद्धि के लिए सूर्य एवं चंद्रमा का संयोग कराया जाता है। रसों को सुखाने के लिए महामुद्रा है। ठोड़ी से वक्ष को तथा बायीं एड़ी से योनि स्थान को दबाएं, फैले हुए दाहिने पैर को पकड़कर दोनों बगलों को दबाएं और सांस भरकर धीरे-धीरे रेचक करें। यह पापनाशक महामुद्रा कही जाती है। (91-93)

आत्मा की व्याख्या की जाती है। हृदय स्थान के अष्ट दल कमल में गोल रेखा के रूप में ज्योतिरूपी अणु जैसा जीवात्मा रहता है। उसी में सब प्रतिष्ठित है, वही सब कुछ जानता या करता है। वही सोचता है, 'मैं कर्ता, भोक्ता, सुखी, दुःखी, काना, गंजा आदि हूं।' इस कमल की पूर्वी पंखुड़ी सफेद है, जिसमें रहने से मति भक्ति-धर्म में होती है। अग्निकोण के लाल दल में रहने से निद्रा-आलस्य में मति जाती है, दक्षिणी काले दल से द्वेष-कोप आदि में, नीले रंग के नैऋत दल से पाप-हिंसा आदि में, स्फटिक समान पश्चिमी दल से क्रीड़ा-विनोद आदि में, वायव्य दल मणि जैसा है, इसमें जाने से वैराग्य में, पीले रंग के उत्तरी दल से मुख, शृंगार आदि में, वैदूर्य के समान ईशान दल से दान-दया आदि में मति होती है। संधियों में जाने से वात, पित्त आदि रोग, मध्य में जाने से ज्ञान होता है, गाता है, नाचता है आदि-आदि, नेत्रों में थकान होने पर यहां प्रथम रेखा में डुबकी लगाकर निद्रा हो जाती है। यह रेखा बंधूक फूल के समान है। निद्रा में स्वप्नावस्था होती है। स्वप्न में देखी, सुनी कल्पनाओं से थक जाने पर यह (जीव) दूसरी रेखा में डुबकी लगाता है, जिसका रंग वीर बहूटी जैसा है तब सुषुप्ति अवस्था में बुद्धि ईश्वर से संबंध रखकर ज्ञानरूप होती है। इसी से बाद में परमात्मा की प्राप्ति होती है। कमल पराग के समान अन्य रेखा में डुबकी लगाने पर तुरीय अवस्था होती है। इसमें बुद्धि परमात्मा से संबंध रखकर बोधरूप होती है। यहां पर साधक सबसे अलग होकर धैर्य से मन को आत्मा में स्थिर करे। अन्य चिंतन छोड़ दे। इस पर प्राण-अपान को एक करके समस्त विश्व को अपना ही रूप समझे और उसी का लक्ष्य रखे। बाद में तुरीयातीत अवस्था में समस्त द्वंद्व-भाव मिट जाता है और पूर्वजन्म के फलों को भोगने तक ही जीव शरीर में रहता है। यही मोक्ष का तथा आत्मदर्शन का मार्ग है। वह परमात्मा से मिल जाता है। तब चारों भागों से युक्त महाद्वार में जानेवाले वायु के साथ स्थित होकर अर्ध त्रिकोण में अच्युत परमात्मा दिखाई देता है। (94)

पूर्वोक्त त्रिकोण स्थान के ऊपर पांच रंगों के पृथ्वी आदि पांच तत्त्व ध्यान करने योग्य हैं। बीज, वर्ण एवं स्थान सहित पांच वायुओं का ध्यान करें। वायु रूप प्राण का बीज 'य' नीले बादल जैसा है। 'र' अग्निरूपी अपान का बीज सूर्य जैसा, 'ल' व्यान का पृथ्वी रूप बीज बंधूक पुष्प जैसा, 'व' उदान का जीव रूप बीज शंख जैसा तथा 'ह' 'समान' का आकाशरूप बीज स्फटिक जैसे रंग का है। हृदय, नाभि, नाक, कान और पैर का अंगूठा 'समान' वायु के स्थान हैं। यह बहत्तर हजार नाड़ियों तथा शरीर के रोयों (रोमों) में भरा हुआ है। समान प्राण एक जीव ही है। चित्त को आस्वस्त करके पूरक, कुंभक एवं रेचक तीनों करें। धीरे-धीरे वायु को खींचकर हृदय कमल के कोटर में (भीतर) प्राण एवं अपान को रोककर 'ओम' का उच्चारण करें। कंठ एवं लिंग को सिकोड़कर मूलाधार से कमल नाल के समान निकलनेवाली सुषुम्ना को सिकोड़ें। वीणा के समान नाद प्रतीत होता है, जिसके बीच में शंख ध्वनि जैसी होती है। कपाल कुहर के बीच में चारों द्वारों का केंद्र है।

वहां आकाश रंध्र से जाता हुआ नाद मोर की आवाज जैसा होता है। आकाश के समान ही यहां भी सूर्य है! ब्रह्मरंध्र में दो धनुषों के बीच शक्ति विराजमान है। योगी यहीं अपने मन को लय करके अपने आत्मा को देखते हैं। यही रत्नों की ज्योति जैसे नाद, बिंदु और महेश्वर का स्थान है। इसे जाननेवाला पुरुष कैवल्य प्राप्त करता है।

□

17. अक्षमालिका उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठतमाविराम ऐधि, वेदस्य न आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रात्संदधाम्यमृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मायवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु माम। अवतु वक्तारमवतु वक्तारम्।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

'मेरी वाणी मन में और मन वाणी में स्थित हो। हे प्रकाशस्वरूप, मेरे समक्ष प्रकट होओ। हे वाणी और मन ! तुम हमारे वेदज्ञान के आधार हो, अतः हमारे वेद ज्ञान पर प्रहार न करो। मैं इन्हीं के अध्ययन में रात-दिन लगा रहता हूं। मैं सत्य और ऋत वचन बोलूंगा। मेरी रक्षा करो। वक्ता की रक्षा करो। हम दोनों की रक्षा करो। तीनों पाप शांत हों।'

प्रजापति ने गुह से पूछा, 'अक्षमाला के भेद एवं विधि बताइए। इसके क्या लक्षण हैं ? कितने भेद हैं ? कितने सूत्र हैं ? कैसे पिरोया जाता है ? कितने वर्ण हैं ? क्या महत्त्व है ? अधिदेवता कौन है ? तथा इसका क्या फल है ?' गुह ने बताया 'प्रवाल (मूंगा), मोती, स्फटिक, शंख, चांदी, सोना, चंदन, पुत्रजीवा, कमल एवं रुद्राक्ष दस प्रकार की माला होती हैं। ये 'अ' से लेकर 'क्ष' तक अक्षरों की भावना से ग्रहण की जाती हैं। इसके लिए सोने, चांदी एवं तांबे के सूत्र (तार) हैं। इसके विवर में सोना, बायीं ओर चांदी, मुख में मुख एवं पूंछ में पूंछ भीतरी सूत्र हैं। ब्रह्म ही उसका अंतः सूत्र है। इसका दाहिना भाग, बायां भाग, मुख, पूंछ, सिर एवं गांठ क्रमशः शैव, वैष्णव, सरस्वती, गायत्री, विद्या एवं प्रकृति हैं। इनमें (दाने) सफेद हैं, वे स्वर हैं, जो पीले हैं, वे स्पर्श हैं तथा जो लाल हैं, वे 'पर' हैं। (1-3)

धारण करने से पूर्व इन्हें पंचगव्य एवं पांच गायों के (नंदा आदि विशेष लक्षणोंवाली) दूध से शोधकर फिर इसी दूध एवं सुगंधित जल से स्नान कराएं, पत्तों के कूर्च से (इस समय ओम् का उच्चारण करें) स्नान कराएं। अष्टगंध पोतें। फिर मणिशिला पर रखकर पुष्प चढ़ाएं। अब एक-एक दाने को 'अ' से 'क्ष' तक अक्षरों से इस प्रकार मंत्र पढ़ते हुए अभिमंत्रित करें—हे ओम् 'अ', तुम मृत्युंजय एवं सर्वव्यापक हो। इस पहले अक्ष (मोती) में आओ। 'आ', तुम आकर्षणात्मक एवं सर्वगत हो। दूसरे अक्ष में आओ। ओम् 'इ', तुम पुष्टि देनेवाले तथा क्षोभरहित हो। इस तीसरे अक्ष में आओ इत्यादि, इस प्रकार ऋ, ॠ, लृ, लॄ, अं, अः सहित सोलह स्वरों, चौंतीस व्यंजनों द्वारा उनचास अक्षों तथा पचासवें सुमेरु में आह्वान किया जाता है। (प्रत्येक मोती में आह्वान के लिए मंत्र पढ़े जाते हैं।) यह समस्त अनुष्ठान विस्तृत कर्मकांड संबंधी है। इसका अर्थ देना यहां युक्तिसंगत नहीं है, क्योंकि पूजा-अर्चना में वैसे भी मूल मंत्र का ही पाठ किया जाता है। अतः जिज्ञासु पाठकों से निवेदन है कि वे मूल पाठ ही देखें। (4-5)

इसके बाद इस तरह प्रार्थना करे, 'पृथ्वी में विचरण करनेवाले देवताओं को नमस्कार है। आप

इस माला में स्थित हों । इसे अपना अनुमोदन दें । इसकी शोभा के लिए पितृगण भी इसे अनुमोदित करें (अपनी स्वीकृति दें) । इस ज्ञान से युक्त अक्षमाला को अनिष्वात आदि पितर अपना अनुमोदन दें । आकाश में रहनेवाले देवताओं को नमस्कार,वे इस ज्ञानमयी माला की शोभा के लिए इस माला का अनुमोदन करें। पितर इसका अनुमोदन करें। स्वर्ग में रहनेवाले देवो ! तुम्हें नमस्कार, इस ज्ञानमयी माला के लिए अनुमोदन करो । पितर इसकी शोभा के लिए अनुमोदन करें । जितने भी मंत्र और विद्याएं हैं,उन्हें नमस्कार । उन सबकी शक्तियां इस माला में स्थित हों । सगुण ब्रह्मा,विष्णु एवं रुद्र को नमस्कार,उनके तेज को नमस्कार । वह तेज इस अक्ष माला में प्रतिष्ठित हो । (6-10)

'सांख्य आदि दर्शनों के तत्त्वों को नमस्कार,आप इस माला में स्थित हों । सैकड़ों-हजारों की संख्या में विद्यमान वैष्णवों और शाक्तों को बार-बार नमस्कार आप अनुमोदन से इस माला पर अनुग्रह करें । मृत्यु की प्राणरक्षक शक्तियों को पुनः-पुनः नमस्कार । वे प्रसन्न हों,प्रसन्न हों ।' फिर इस माला को सब गुणों से संपन्न मानते हुए दानों को पिरोएं । इसी प्रकार पूरे विधान से पुनः पचास दानों पर आह्वान करते हुए उन्हें भी पिरोया जाता है । शेष आठ दानों में अ,क,च,ट,त,प,य तथा श,इन अक्षरों से पहले की तरह अभिमंत्रित करें और इस पकार एक सौ आठ दानों की माला बनाएं । (11-14)

माला वन जाने पर उठकर उसकी प्रदक्षिणा करके प्रार्थना करें—मां भगवती अक्षमाला ! तुम सबको वश में करती हो,तुम्हें नमस्कार हो । मंत्रों की मां माला ! तुम सबको स्तंभित करती हो,तुम्हें नमस्कार । मंत्रों की मां अक्षमाला ! तुम उच्चाटन (मन को व्यग्र कर देना) करनेवाली हो,तुम सबकी मृत्यु हो,मृत्युंजय स्वरूप (मृत्यु को जीतने वाला शिव) हो,सबको उद्दीप्त करनेवाली हो,सारे लोक की रक्षक हो,प्राण देनेवाली हो,सब कुछ उत्पन्न करनेवाली हो,दिन तथा रात्रि करनेवाली हो,एक नदी से दूसरी नदी में,एक देश से दूसरे देश में,एक द्वीप से दूसरे द्वीप में तथा एक लोक से दूसरे लोक में जानेवाली हो । तुम सदा प्रकाश देती हो और हृदय में रहती हो । परारूपवाली तुझे नमस्कार । हे पश्यंती रूप,तुझे नमस्कार । हे मध्यमा रूप,तुझे नमस्कार (परा,पश्यंती,मध्यमा एवं वैखरी वाणी के रूप हैं ।) तथा हे वैखरी रूप,तुझे नमस्कार । हे सबकी आत्मा रूप,सभी विद्यारूप, सभी शक्तिरूप,सभी देवरूपवाली माला,तुझे नमस्कार । मुनि वसिष्ठ द्वारा तेरी आराधना की गई है तथा विश्वामित्र द्वारा तेरी सेवा की गई है,अतः तुझे मैं नमस्कार करता हूं (15) ।

इसका प्रातःकाल अध्ययन करने से रात्रि के पाप नष्ट हो जाते हैं । सायंकाल अध्ययन करने से दिन में किए हुए पाप नष्ट हो जाते हैं । सायं-प्रातः दोनों समय पढ़ने वाला पापी भी पापों से रहित हो जाता है । भगवान गुह ने बताया कि इस प्रकार पूरे विधान से बनी माला से जपा हुआ मंत्र शीघ्र ही सिद्धि देता है । (16)

□

78. रुद्राक्ष जाबालोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ अप्यायंतु ममांगानि वाक्प्राणचक्षुषः श्रोत्रमथो बलमिंद्रियाणिच सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषद् माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रहा निराकरोवनिराकरण-मस्त्वनिराकरणं मेस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि संतु। ते मयि संतु।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

'मेरे अंग, वाणी, प्राण आदि पुष्ट हों। सभी उपनिषद् ब्रह्म हैं। मैं इस ब्रह्म का तथा ब्रह्म मेरा निराकरण (परित्याग) न करे। हमारा परस्पर अनिराकरण हो। उपनिषदों के धर्म में रत रहते हुए यह धर्म मुझमें प्रतिष्ठित हो। तीनों प्रकार के (दैहिक, दैविक तथा भौतिक) ताप शांत हों।'

कालाग्नि रुद्र से भुसुंड ने पूछा, 'रुद्राक्ष की उत्पत्ति कैसे हुई ? तथा इसके धारण करने से क्या फल मिलता है ?' इस पर कालाग्नि रुद्र ने बताया, 'त्रिपुर असुर के वध के लिए विचार करते समय मैंने आंखें बंद कर ली थीं। उनसे आंसू टपककर भूमि पर गिर पड़े, यही रुद्राक्ष बन गए। सभी पर कृपा करने के लिए मैं इतना ही बताता हूं कि इसका केवल नाम ही लेने से दस गायों के दान का फल तथा दर्शन और स्पर्श करने से इसका दुगुना फल मिलता है, इससे आगे मैं कुछ नहीं बता सकता। केवल संक्षेप में यही है कि वह कहां स्थित है ? क्या नाम है ? मनुष्य इसे कैसे धारण करता है ? इसके मुख्य भेद कितने हैं और किन मंत्रों से यह कैसे धारण किया जाता है ? इसका उत्तर यही है कि देवताओं के हजार वर्षों में मेरे द्वारा आंखें खोले जाने पर भूमि में आंखों से जल की बूंदें गिर पड़ीं। वे आंसू की बूंदें ही महारुद्राक्ष के वृक्ष बन गईं तथा भक्तों पर कृपा करने के लिए स्थावर (अचल) हो गईं। यही वर्णन है। (1-5)

'इसको धारण करने से यह भक्तों के रात-दिन दोनों समय किए गए पापों को हर लेता है। इसके दर्शन से लाख गुना पुण्य तथा धारण करने से अरबों गुना फल मिलता है। रुद्राक्ष को धारण करके इससे जप करने पर मनुष्य को जप के लाख-करोड़ गुना अधिक फल मिलता है। धात्री फल (आंवले) के बराबर रुद्राक्ष श्रेष्ठ होता है। बेर के बराबर आकारवाला मध्यम माना जाता है तथा चने के समान आकारवाला रुद्राक्ष अधम (घटिया) माना जाता है। शिव की आज्ञा से इसके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र, चार वर्णों के वृक्ष उत्पन्न हुए। सफेद रंग का रुद्राक्ष ब्राह्मण, लाल रंग का क्षत्रिय, पीले रंग का वैश्य तथा काले रंग का रुद्राक्ष शूद्र होता है। अतः ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र को क्रमशः सफेद, लाल, पीला एवं काला रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। समान आकारवाले, चिकने, कठोर तथा कांटेदार रुद्राक्ष शुभ होते हैं। कीड़ों के खाए हुए, टूटे-फूटे, बिना कांटोंवाले, घाववाले एवं भुद्दे, ये छः दोषोंवाले रुद्राक्ष ग्रहण नहीं करने चाहिए। जिस रुद्राक्ष में स्वयं ही छेद हो, ऐसा रुद्राक्ष उत्तम माना जाता है। जिसमें ताकत लगाकर छेद करना पड़े, ऐसा रुद्राक्ष मध्य माना जाता है। एक समान आकारवाले, चिकने, मजबूत तथा मोटे रुद्राक्षों को ही तागे में पिरोकर धारण करना चाहिए। (10-15)

'ये सौम्य (सुंदर) आकार के एवं एक जैसे होने चाहिए। सोना परखनेवाली कसौटी में सोने की रेखा के समान रेखावाला रुद्राक्ष उत्तम होता है। शिव की पूजा करनेवाले को इसे धारण करना चाहिए। सिर में, चोटी में, एक तथा सिर में ही माला में तीन रुद्राक्ष धारण करें। गले में छत्तीस, बाजुओं में सोलह-सोलह, मणिबंध (कलाई) में बारह, कंधे में पंद्रह तथा गले में जनेऊ की तरह एक सौ आठ दानों की माला पहननी चाहिए। दो, तीन, पांच या सात लड़ियों की माला भी गले में पहनी जाती है। मुकुट, कुंडल, कान की बाली या गले के हार के रूप में भी रुद्राक्ष धारण किया जाता है। बाजूबंध या बगलबंध में भी विशेष प्रकार से बंधे रुद्राक्ष को सोते-जागते प्रत्येक समय धारण करना चाहिए। तीन सौ रुद्राक्षों को धारण करना अधम, पांच सौ धारण करना मध्यम तथा एक हजार धारण करना उत्तम माना गया है। इस रीति से रुद्राक्ष धारण करें। 'ईशान०' मंत्र से सिर में, 'तत्पुरुषेण०' मंत्र से कंठ में तथा 'अघोरेण०' मंत्र से गले में एवं हृदय में रुद्राक्ष धारण किया जाता है। बुद्धिमान व्यक्ति अघोर बीज मंत्र से हाथों में रुद्राक्ष धारण करे। वर्णमाला के पचासों अक्षरों को इनके छिद्र में लिखकर (इससे पूर्व अक्षमाला उपनिषद के अनुसार एक-एक अक्षर को) शिव के पांच अक्षरों वाले मंत्र से (नमः शिवाय से) अभिमंत्रित करें। फिर मूल मंत्र से इनकी माला बना लें और तीन, पांच या सात मालाएं धारण करें। (16-25)

भगवान कालाग्नि रुद्र से भुसुंड ने पुनः पूछा, 'रुद्राक्षों के भेद से किस रुद्राक्ष का क्या फल होता है? इनके फल क्या हैं? इनसे अमंगलनाश कैसे होता है? तथा इच्छित फल कैसे प्राप्त होता है? कृपया इस विषय में बताएं।' भगवान कालाग्नि रुद्र ने बताया कि एक मुख वाला रुद्राक्ष पमतत्त्व (ब्रह्म) का ही रूप है। इसको धारण करने से मनुष्य की इंद्रियां वश मे हो जाती हैं तथा उसी परम तत्त्व में वह पुरुष लय हो जाता है। दो मुखों वाला रुद्राक्ष अर्धनारीश्वर (आधा शरीर शक्ति तथा आधे शिव के शरीरवाला भगवान का रूप) का स्वरूप होता है, इसे धारण करने से भगवान अर्धनारीश्वर धारण करनेवाले पर सदा प्रसन्न रहते हैं। तीन मुखोंवाला रुद्राक्ष गार्हपत्य, आह्वनीय एवं दक्षिणाग्नि, इन तीनों अग्नियों का स्वरूप है। इसे धारण करनेवाले पर अग्निदेव सदा प्रसन्न रहते हैं। चतुर्मुख (चार मुखोंवाला) रुद्राक्ष ब्रह्मा का रूप है, इसके धारण करने वाले पर सदा ब्रह्मा की कृपा होती है। पांच मुखोंवाला रुद्राक्ष पंचमुख शिव का रूप है। इसे धारण करने से भगवान की कृपा से धारण करनेवाले के हाथों कभी किसी व्यक्ति की हत्या नहीं होती। छः मुखी रुद्राक्ष भगवान कार्तिकेय का रूप है। इसे धारण करने से अत्यधिक धन-संपत्ति तथा रोगों के नाश होने पर सुंदर स्वास्थ्य प्राप्त होता है। विद्वान इस छः मुखोंवाले रुद्राक्ष को भगवान गणेश का रूप भी मानते हैं, अतः इसको धारण करने से सुंदर मति, संपत्ति तथा पवित्रता प्राप्त होती है। सात मुखी रुद्राक्ष ब्राह्मी आदि सात लोक माताओं का स्वरूप माना जाता है। इसके धारण करने से भी महान संपत्ति तथा आरोग्य (स्वास्थ्य) प्राप्त होता है। यदि इसे पवित्र भावना से किया जाए, तो महान ज्ञान की संपत्ति प्राप्त होती है। आठ मुखोंवाला रुद्राक्ष आठ भगवतियों का अथवा आठ वसुओं का रूप माना जाता है तथा इसे धारण करने से गंगा भी प्रसन्न होती हैं। (26-36)

नौ मुखोंवाले रुद्राक्ष के देवता नौ शक्तियां मानी जाती हैं। अतः इसे धारण करने से ही ये शक्तियां प्रसन्न होती हैं। दशमुखी रुद्राक्ष यमदेव का रूप कहा गया है। इसे केवल देखने से ही

शांति प्राप्त होती है, धारण करने से मिलनेवाली शांति के विषय में तो कोई संशय करना ही नहीं चाहिए। ग्यारह मुखी रुद्राक्ष के देवता ग्यारहों रुद्र माने जाते हैं। अत: इसे धारण करने से ये देवता उसे सौभाग्य प्रदान करते हैं। बारह मुखोंवाला रुद्राक्ष भगवान विष्णु या बारहों आदित्यों का स्वरूप माना जाता है। अत: इनके उपासक इसे धारण करते हैं। तेरह मुखोंवाला रुद्राक्ष सभी इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला तथा शुभ माना गाया है। इसको धारण करने मात्र से भगवान कामदेव धारण करनेवाले पर प्रसन्न होते हैं। रुद्र के नेत्रों से उत्पन्न चौदह मुखों का रुद्राक्ष सभी रोगों को दूर करनेवाला तथा नीरोगता देनेवाला है। इस चौदह मुखी रुद्राक्ष को धारण करनेवाले को शराब, मांस, लहसुन, प्याज, सहजन, लसौड़ा एवं विडवराह (एक सब्जी) आदि खाद्य पदार्थों को त्याग देना चाहिए। ग्रहण लगने पर, विषुवत संक्रांति में, अयन बदलने पर, अमावस्या में, पूर्णिमा में तथा जब रात और दिन बराबर होते हैं (मेष एवं तुला संक्रांति), ऐसे समय में रुद्राक्ष धारण करने से व्यक्ति उसी समय पापों से छूट जाता है। रुद्राक्ष का मूल भाग ब्रह्मा, अंदर का छिद्र विष्णु, इसके मुख रुद्र तथा बिंदु सभी देवताओं से युक्त माने जाते हैं। (37-45)

सनत्कुमार ने भगवान कालाग्नि रुद्र से निवेदन किया कि वह इसे धारण करने की विधि भी बताएं। तभी उनके चारों ओर से निदाध, जड़ भरत, दत्तात्रेय, कात्यायन, भरद्वाज, कपिल, वसिष्ठ, पिप्पलादि ऋषि भी बैठ गए। कालाग्नि रुद्र द्वारा उनसे उनके आने का कारण पूछे जाने पर उन्होंने भी यही कहा कि वे सभी रुद्राक्ष को धारण करने की विधि जानने के लिए ही वहां आए हैं। तब कालाग्नि रुद्र ने कहना प्रारंभ किया कि रुद्र के नेत्रों से उत्पन्न होने के कारण संसार में यह रुद्राक्ष (रुद्र की आंख) कहा जाता है। भगवान सदाशिव प्रलय के समय सृष्टि का नाश करके नाश करनेवाले अपने नेत्रों को मुकुलित (झुकी हुई) कर लेते हैं। इन्हीं आंखों से रुद्राक्ष पैदा होते हैं। यही रुद्राक्ष का स्वरूप है। इस रुद्राक्ष का मुख से उच्चारण करने पर ही दस गायों को दान करने का फल मिलता है। इसी को (रुद्राक्ष को) भस्म ज्योति रुद्राक्ष भी कहा जाता है। इसे हाथ से छूकर ही धारण कर लेने से दो हजार गाएं दान करने का फल मिलता है। इसे दोनों कानों में धारण करने से ग्यारह हजार गोदान का फल तथा एकादश (ग्यारह) रुद्रों की प्राप्ति होती है। इन्हें सिर में धारण करने से करोड़ गोदान का फल प्राप्त होता है। इन्हें किन-किन स्थानों पर धारण किया जाए, यह सब मैं बता ही नहीं सकता। (46-48)

जो नित्य इस रुद्राक्ष जाबाल उपनिषद का पाठ करता है, बालक हो या युवक हो, वह ज्ञानी और महान हो जाता है। वह सबका गुरु तथा सभी मंत्रों का उपदेश देनेवाला हो जाता है। इन्हीं से होम करना चाहिए और इन्हीं से पूजा। राक्षसों का नाश करनेवाले तथा मृत्यु को दूर करनेवाले इन रुद्राक्षों को गुरु से प्राप्त करके कंठ, बाजू या चोटी में धारण करना चाहिए। इसे प्राप्त करने पर गुरु को यदि दक्षिणा में सातों द्वीपोंवाली पृथ्वी को भी दे दिया जाए, तो यह भी कम ही है। अत: श्रद्धा से जो भी गाय दे दी जाए, वही दक्षिणा पर्याप्त है। जो ब्रह्म का ज्ञाता इस उपनिषद का प्रातःकाल पाठ करता है, वह रात्रि में किए हुए पापों को नष्ट करता है। सायंकाल इसका पाठ करने पर दिन में किए हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। मध्य दिन में (दोपहर में) पढ़ने से छः जन्मों के पाप नष्ट होते हैं। सायं एवं प्रात: दोनों समय पढ़ने से अनेक जन्मों के पाप नष्ट होते हैं, साठ करोड़ गायत्री जप का फल प्राप्त

होता है तथा ब्रह्महत्या, सुरापान, सोने की चोरी, गुरुपत्नी गमन आदि सभी पापों से छूटकर पवित्रता मिलती है। उसे सभी तीर्थों का फल मिलता है, वह पतित भाषण से मिले पापों से छूटकर पवित्र हो जाता है, वह हजारों लोगों को पवित्र करनेवाला बन जाता है तथा भगवान शिव के पास जाता है। उसका इस संसार में पुनर्जन्म नहीं होता। (49)

□

19. राम पूर्वतापिनी उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमातक्षिभिर्यजत्रा
वासंस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

'हम कानों से शुभ सुनें और आंखों से शुभ देखें । हे ईश्वर ! स्वस्थ शरीर से तेरी स्तुति करें और देवों द्वारा दी हुई आयु का भोग करें । बलशाली इंद्र सर्वज्ञाता पूषा, अबाध गतिवाला गरुड़ एवं बृहस्पति हमारा कल्याण करें । तीनों प्रकार के ताप शांत हों ।'

प्रथम खंड

भगवान विष्णु ने पृथ्वी लोक में श्रेष्ठ रघुवंशीय राजा दशरथ के यहां जन्म लिया, तब वह राम बने । विद्वानों ने राम शब्द की व्याख्या करते हुए कहा है कि पृथ्वी पर रहकर संतों की सभी कामनाएं पूर्ण करनेवाले राजा के रूप में शोभा पानेवाले ही राम हैं । कुछ विद्वान अभिराम (सुंदर) होने के कारण उन्हें राम कहते हैं । दूसरे विद्वान राम का अर्थ अपने पराक्रम से पृथ्वी में प्रसिद्ध होनेवाला करते हैं । राहु जैसे चंद्रमा को शोभा से रहित कर देता है, वैसे ही राक्षसों को प्रभावहीन कर देनेवाले राम हैं । कुछ लोग राम शब्द की व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि जो राज्य के योग्य राजाओं के लिए अपने धार्मिक चरित्र से धर्म का मार्ग दिखाता है, ध्यान करनेवाले को वैराग्य एवं नाम जपनेवाले को ज्ञान तथा उनकी पूजा करनेवाले को ऐश्वर्य देता है, इन गुणों से पृथ्वी में वह राम कहा जाता है । वह राम अद्वितीय, चिन्मय, निष्कल देहरहित ब्रह्म है । अपने उपासकों की इच्छाओं के लिए ही वह मनुष्य शरीर धारण करते हैं । वास्तव में जिस नित्य आनंदस्वरूप चिदात्मा में योगी रमण करते हैं, वही परम ब्रह्म राम हैं । देवताओं के रूपों में स्त्री-पुरुष, अंग, अस्त्र आदि की कल्पना की गई है । भगवान के विभिन्न अवतारों में दो, चार, छः, आठ, दस, बारह और सोलह हाथों तक उनमें शंख, चक्र आदि का वर्णन किया गया है । उनके लिए हजारों वर्णों, वाहनों, शक्तियों तथा सेना आदि की कल्पना की गई है । दुर्गा आदि देवताओं के रूप में उनके लिए पांच महाभूतों के शरीर और सेना आदि की भी कल्पना इसी प्रकार की है । (1-10)

यह राम शब्द ब्रह्मा आदि सभी देवताओं का वाचक है, अर्थात यह निराकार एवं साकार ईश्वर के दोनों रूपों को बताता है । यह मंत्र है । इसके जप से भगवान प्रसन्न होते हैं । यह मंत्र सभी प्रकार के अर्थों से पूर्ण है । मंत्र का अर्थ है—'जिसके मनन करने से त्राण मिलता है' मंत्र सभी अर्थों को देता है । स्त्री या पुरुष किसी भी रूप में देवता की पूजा के लिए उसके शरीर के रूप में मंत्र की

कल्पना की जाती है। बिना मंत्र के पूजा किए जाने पर देवता प्रसन्न नहीं होता। अतः साकार पूजा में मंत्र अवश्य हो। (11)

द्वितीय खंड

साकार ईश्वर स्वयं अपनी इच्छा से रूप धारण करता है, इसका अन्य कोई कारण नहीं होता। अतः वह स्वयंभू कहा जाता है। वह अपने ही प्रकाश से ज्योतिवाला है। शरीरवाले होते हुए भी वह अनंत होता है। उसकी उत्पत्ति, स्थिति या लय नहीं होती। वही अपनी 'चित्त' शक्ति से सत्त्व, रजस एवं तमोगुण द्वारा विश्व का कारण है। जैसे छोटे से बीज में वट का महान वृक्ष छिपा हुआ होता है, वैसे ही राम रूपी बीज में यह समस्त चराचर जगत व्याप्त है। राम शब्द के 'र' में आठ मूर्तियां एवं तीनों शक्तियां हैं। इस 'राम' मंत्र में सीता प्रकृति तथा राम पुरुष हैं। इन्हीं से चौदह भुवन उत्पन्न हुए थे, इन्हीं में स्थित हैं तथा इन्हीं में लय भी होते हैं। अपनी माया के कारण ही राम ने मानव रूप में जन्म लिया है। जगत के प्राणों रूपी इस आत्मा को नमस्कार। इस प्रकार स्वयं को राम से एकतावाला कहना चाहिए। (1-4)

तृतीय खंड

'रामाय नमः' (राम के लिए नमस्कार), इस मंत्र में राम शब्द परमात्मा को बताता है, 'नमस्कार' जीव को तथा 'के लिए' इन दोनों की एकता सूचित करता है। इस मंत्र में राम का ही कथन है। इससे उपासकों को उनका मनचाहा फल मिलता है। जैसे किसी व्यक्ति का नाम लेने पर वह सामने आ जाता है, वैसे ही इस बीज मंत्र से पुकारे जाने पर भगवान राम साधक के सामने आ जाते हैं। मनोकामना सिद्धि के लिए इस मंत्र के बीज का दाहिने स्तन में, शक्ति का बाएं स्तन में तथा कीलक का इनके मध्य में संकल्प करके न्यास करें। सभी मंत्रों का साधारणतया यही क्रम है। यहां राम का ध्यान इस प्रकार करना चाहिए—राम अनंत रूप एवं तेज से अग्नि के समान हैं तथा सत्त्वगुणयुक्त हैं। सीता के साथ होने पर वह अग्नि एवं ईषात्मक तथा चंद्रिका (चांदनी) के साथ चंद्रमा के समान हैं। अपनी प्रकृति के साथ वह श्यामवर्णवाले हैं, इनके वस्त्र पीले रंग के हैं, सिर में जटाएं, कानों में कुंडल, गले में रत्नों की माला तथा हाथों में धनुष है। वे अत्यंत धैर्यवान तथा दो भुजाओंवाले हैं। वे प्रसन्नमुख, अणिमा आदि आठों ऐश्वर्यों से संपन्न तथा जगत की योनि (कारण) परमेश्वरी प्रकृति (सीता) से सुशोभित हैं। वह दो भुजाओं , सोने जैसी आभा, अलंकारों तथा हाथों में कमलों से सुशोभित हैं। पुनः उनके हाथों में धनुष है और दाहिनी ओर गोरे रंग के लक्ष्मण हैं, ये तीनों एक त्रिकोणात्मक सौंदर्य को उत्पन्न कर रहे हैं। (1-10)

इस बीज के बाद इसका शेष मंत्र इस प्रकार है कि एक बार ऐसे त्रिकोण रूप वाले भगवान राम के पास सभी देवता उनके दर्शनों के लिए आए। उन्होंने कल्प वृक्ष के नीचे बैठे भगवान राम की स्तुति की कि 'हे भगवान राम, आप कामरूप हैं, मायामय हैं, वेदों आदि के रूप हैं, ओंकार हैं, रमा को धारण करनेवाले हैं, आत्मा मूर्ति हैं, सीता से सुशोभित हैं, राक्षसों को नष्ट करनेवाले तथा शुभ अंगोंवाले हैं। आपके सभी रूपों को नमस्कार! हे कल्याणकारक रघुवीर! रावण के मृत्युरूप!

शुभ शरीरवाले ! महान धनुर्धर ! राजाओं में श्रेष्ठ ! आप हमारी रक्षा करो, हमें ऐश्वर्य दो ।' देवता यह स्तुति कर ही रहे थे कि भगवान राम खर नामक राक्षस को मारने में लग गए । तब देवताओं तथा ऋषियों ने उनकी स्तुति की । भगवान ने सेना सहित खर को मार डाला । तब बाद में अपनी निवृत्ति (मुक्ति) के लिए रावण वन से उनकी पत्नी को हर ले गया । वन से राम की पत्नी का हरण करने के कारण (राम का रा और वन) रावण कहा जाता है, अथवा संसार को रुलाने के कारण भी उसे रावण कहा जाता है । एक बार रावण ने कैलाश पर्वत को उठा लिया था, तब भगवान शंकर ने पर्वत को इतना भारी कर दिया कि वह रव करने लगा (चिल्लाने लगा) अतः रव करने के कारण भी उसे रावण कहा जाता है । इसके बाद राम एवं लक्ष्मण सीता की खोज में निकल पड़े । इसी बीच उन्हें कबंध नामक राक्षस का सामना करना पड़ा । उन्होंने उस राक्षस को मार डाला । तब वे शबरी के आग्रह पर उसके आश्रम में गए । इसके बाद वायु पुत्र हनुमान से मिले । भक्त हनुमान ने उनकी पूजा की तथा वानरों के राजा सुग्रीव को बुलाकर उससे उनकी मित्रता कराई । राम-लक्ष्मण ने अपना सारा वृत्तांत उसे बताया । (11-20)

सुग्रीव को राम की वीरता पर संदेह हुआ । तब उसने बाली द्वारा मारे गए दुंदुभि नामक राक्षस का शरीर दिखाया । राम ने बातों-ही-बातों में उसे दूर फेंक दिया तथा एक ही बाण से सात वृक्षों को भेद डाला । इस पर सुग्रीव का संदेह दूर हो गया और उसे बड़ी प्रसन्नता हुई । तब वह सुग्रीव के साथ बाली की राजधानी पहुंचे । सुग्रीव ने भयंकर गर्जना के साथ बाली को युद्ध के लिए ललकारा । बाली भी इसी प्रकार गरजता हुआ युद्ध के लिए आ गया । दोनों के युद्ध में बाली राम द्वारा मारा गया । राम ने सुग्रीव का राज्याभिषेक कराया । सुग्रीव ने वानरों को बुलाकर आज्ञा दी कि तुम सभी दिशाओं से भली-भांति परिचित हो, अतः तुम सीता की खोज करो और आज ही उनका समाचार लाकर राम को बताओ ।' इस पर हनुमान समुद्र को लांघकर लंका पहुंच गए । वहां उन्होंने सीता को देखा । अनेक राक्षसों को मारकर तथा लंका को जला राम के पास आकर सारा विवरण राम को बताया । तब भगवान राम अत्यंत क्रोधित हुए और वानरों को साथ लेकर लंका की ओर चल पड़े । आक्रमण के लिए पहले लंका को अच्छी तरह देखा गया और रावण पर आक्रमण कर दिया गया । इस युद्ध में कुंभकर्ण, इंद्रजीत मेघनाद, रावण आदि मारे गए । विभीषण को लंका का राज्य सौंपकर सीता को अपनी बायीं ओर सुशोभित कर वानरों के साथ राम अयोध्या को चल पड़े । वहां वह सिंहासन पर बैठे । वह रघुनंदन राम प्रसन्न आत्मावाले धनुर्धर तथा सभी आभूषणों से सुशोभित हैं । (21-30)

उनके दाहिने हाथ में ज्ञानमयी मुद्रा तथा बाएं हाथ में तेज प्रकाशित करनेवाली मुद्रा है । इस प्रकार व्याख्यान में लगे हुए भगवान राम चिन्मय परमेश्वर हैं । शत्रुघ्न एवं भरत उनके उत्तर-दक्षिण में तथा हनुमान हाथ जोड़े सामने खड़े हैं । यह एक त्रिकोण बनता है । भरत एवं शत्रुघ्न के क्रमशः नीचे की ओर सुग्रीव एवं विभीषण खड़े हैं । उनके (राम के) पीछे हाथों में छत्र एवं चंवर लिए लक्ष्मण खड़े हैं । भरत एवं शत्रुघ्न के हाथों में ताड़पत्र के चंवर हैं । इस प्रकार लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न भी एक त्रिकोण के आकार में खड़े हैं । यह सब मिलाकर भगवान श्री राम अपने इन दो त्रिकोणों अर्थात छः कोणों के दीर्घ अंगों से बैठे हैं (यह छः कोणों का पहला आवरण है) । इस पहले घेरे के बाद पूर्व

अग्निकोण, दक्षिण, नैर्ऋत्य आदि आठों दिशाओं में (भगवान राम के) वासुदेव आदि बैठे हैं। यह उनका दूसरा आवरण (घेरा) है। जब उनके साथ हनुमान, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अंगद, शत्रुघ्न, जाम्बवंत, धृष्टि, ज़यंत, विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अशोक, धर्मपाल और सुमंत्र होते हैं, तो यह तीसरा आवरण बनता है। इंद्र, अग्नि, धर्म, वरुण, वायु, चंद्रमा, ईशान, निर्ऋति, ब्रह्मा एवं अनंत इन दसों दिक्पालों से घिरे रहने पर यह चौथा आवरण बनता है। इन दिक्पालों के बाहरी भाग में आयुध (अस्त्र-शस्त्र) रहते हैं तथा उन्हीं के साथ नल, नील आदि वानर रहते हैं। इस प्रकार वसिष्ठ एवं मामदेव आदि मुनि (यंत्र बनकर) उनकी उपासना करते हैं। (31-39)

कामना सिद्धि हेतु राम-यंत्र का प्रयोग

ऊपर श्रीराम यंत्र का संक्षिप्त वर्णन है। अब कामना पूर्ति के लिए इसका उपयोग कैसे हो सकता है, यहां इसी का वर्णन है। पहले दो समकोण त्रिभुज बनाएं (जिनकी तीनों भुजाएं बराबर हों)। इन दोनों के बीच में ॐ लिखे हों। दोनों त्रिभुजों के केंद्र में बीज (र) को लिखें। बीज के नीचे कार्य (जो कर रहे हों) तथा ऊपर साधक का नाम लिखें। कार्य कर्मकारक में तथा साधक संबंध कारक में लिखा जाए (जैसे राजा नामक व्यक्ति परीक्षा उत्तीर्ण करने के लिए यह अनुष्ठान करे, तो कार्य के स्थान पर 'परीक्षा को' और साधक के स्थान पर राजा को लिखा जाएगा)। बीज के दोनों बगलों में 'करो' शब्द लिखें। यह जो कुछ भी लिखा गया हो, उसके आगे एवं पीछे से ॐ लिखा जाए। फिर दोनों त्रिभुजों के छहों कोणों में दीर्घ बीज (राम) लिखें। फिर प्रत्येक के साथ 'हृदयाय नमः' आदि हृदयन्यास लिखें। कोणों के अगल-बगल में 'श्री' 'ह्रीं' तथा 'क्लीं' लिखें। कोण की नोक में 'हुं' तथा इसके दोनों ओर 'ऐं' (ऐं हुं ऐं) लिखें। अब तीन वृत्तों से अष्टदल कमल बनाएं। फिर इसमें (अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, लृ, ए, ऐ, ओ, औ) चौदह स्वरों एवं 'क' से 'क्ष' तक तैंतीस व्यंजनों सहित कुल सैंतालीस अक्षरों को कमल के आठों दलों में लिखें। इन्हें प्रत्येक दल में छः-छः अक्षर लिखने पर आठवें दल में पांच ही अक्षर रह जाएंगे। बाद में इसी प्रकार का एक कमल और बनाएं। इसके आठों दलों में क्रमशः 'ऊँ नमो नारायणाय' इस मंत्र के एक-एक अक्षर को लिखें और इसके केसर में 'श्री' लिखें। इसके बाहर बारह दलोंवाला कमल बनाएं तथा इसके प्रत्येक दल में 'ऊँ नमो भगवते वासुदेवाय' इस मंत्र के एक-एक अक्षर को लिखें। (40-47)

इस बारह दलवाले कमल के केसर में 'अ' से 'क्ष' तक सभी अक्षरों को लिखें। इसके बाहर सोलह दलों का कमल बनाएं। इसके केसर में 'ह्रीं' लिखें। इसके सोलहों दलों में 'हुं फट् नमः' तथा इससे पूर्व बारह अक्षरोंवाले मंत्र के एक-एक अक्षर को लिखें (फट् एक ही माना जाएगा)। इसके दल के जोड़ों में हनुमान आदि वीरों के बीज मंत्र (ह्रं सं भ्रं इत्यादि सही-सही लिखें)। इसके बाहर नाद एवं बिंदु से युक्त बत्तीस दलोंवाला कमल बनाएं। इनमें मंत्रराज (नृसिंह मंत्र) के बत्तीस अक्षरों को क्रमशः लिखें और इन्हीं में आठ वसुओं, ग्यारह रुद्रों, बारह आदित्यों एवं ब्रह्मा को तथा वषटकार को लिखें और इनके बाहर से भूपुर यंत्र बनाएं। इस यंत्र के चारों ओर वज्र और कोणों में शूल बनाएं। भूपुर यंत्र तीन रेखाओं से मिला हुआ हो। ये तीन रेखाएं सत्त्व, रजस एवं तमस तीनों गुणों की प्रतीक हैं। इसमें द्वार भी होना चाहिए, इसे राशि आदि से सुशोभित करना चाहिए तथा

इसमें फणी (शेषनाग) अनंत, वासुकि, तक्षक वर्क पद्मक, महापद्म शंख एवं गुलिक इन आठ सर्पों को बनाना चाहिए। फिर इस यंत्र की दिशाओं एवं उपदिशाओं में नरसिंह बीज मंत्र एवं कोणों में वराह बीज मंत्र लिखें। नृसिंह मंत्र अनुग्रह चंद्र नाद शक्ति आदि से युक्त है। यही ग्रहों को शांत करता है। अन्त्य वर्ण आङ आदि से संपन्न 'हुम' वराह बीज मंत्र है। (48-57)

राम के माला मंत्र में सर्वप्रथम प्रणव (ऊँ), फिर नमः फिर क्रमशः निद्रा (भ), स्मृति भेद (ग), रुद्रयुक्त कामिका (व), अमर से अलंकृत (ते), अग्नि (र), मेधा (धु), अक्रूर युक्त दीर्घ कला (नं), ह्लादिनी (द), दीर्घ युक्त काल (ना) तथा क्षुधा (य) है। इस प्रकार 'ऊँ नमो भगवते रघुनंदनाय' बनता है। (यह तंत्रों की गोपनीय कूटाक्षर शैली है, इसका उद्देश्य सर्वसाधारण से तंत्र को दूर करता रहा है। इसमें मंत्र को न लिखकर कूट संकेत लिख दिए जाते हैं। जैसे 'नमः' के लिए नति, 'ऊँ' के लिए तारक 'भ' के लिए निद्रा आदि लिख दिया जाता है। यह मंत्र इस उपनिषद में इसी शैली में है।) पूरा मंत्र इस प्रकार है—'ऊँ नमो भगवते रघुनंदनाय, रक्षोघ्नविशदाय, मधुर प्रसन्नवदनायामिततेजसे बलाय रामाय विष्णवे नमःॐ।' यह श्री राम का सैंतालीस अक्षरों का राज्याभिषिक्त माला मंत्र है। इसे इसी क्रम में लिखना चाहिए। सगुण मंत्र होने पर भी यह दैविक, दैविक, भौतिक तीनों कष्टों को नष्ट करता है। यही सर्वात्मक है। इसे प्राचीन काल के विद्वानों ने कहा है। ऋषियों ने इससे अपनी साधना की है। इसकी उपासना करने वालों को नीरोगता, दीर्घायु तथा मोक्ष प्राप्त होता है। इसकी साधना से पुत्रहीनों को पुत्र प्राप्त होते हैं। धर्म, ज्ञान, वैराग्य, समिति आदि सभी इच्छाएं इससे पूरी होती हैं। इसकी साधना से शीघ्र मनोकामना पूर्ण होती है। यह अत्यंत गोपनीय रहस्य है। अयोग्य पात्रों को इस मंत्र की दीक्षा नहीं देनी चाहिए। (58-67)

चतुर्थ खंड

प्रसन्नता के साथ द्वारपूजा करके पद्मासन-पंचभूत आदि की शुद्धि करें। श्री राम की पूजा में सिंहासन का पीठ, नीचे का भाग, ऊपर का भाग तथा अगल-बगल का भी पूजन किया जाता है। पीठ के ऊपर मध्य में अष्टदल कमल की भी पूजा करें। रत्नजटित सिंहासन पर मधुर कोमल बिस्तर की कल्पना करके उस पर ईश्वर रूपी आचार्य का पूजन करें। पीठ के नीचे के भाग में भगवान के आसन के नीचे आश्रय शक्ति, कूर्म, नाग और पृथ्वीवाले दो कमलों की कल्पना करें। इन सबकी पूजा करें। विघ्न, दुर्गा, क्षेत्रपाल एवं वाणी, इनके पहले बीज लगाकर इनके आगे के लिए (विघ्न के लिए आदि) लगाएं। तब इनकी पूजा पीठ के चारों पायों में क्रमशः धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष की आग्नेय आदि कोणों में तथा क्रमशः अधर्म, अनर्थ, अकाम एवं अमोक्ष की पूर्व आदि दिशाओं में पूजा करें। पीठ के ऊपर बीच में सूर्य, चंद्र एवं अग्नि की पूजा एवं यंत्र में स्थित तीनों गुणों के प्रतीक बीज सहित तीन वृत्तों का ध्यान एवं पूजन करें। इसके बाद कमल के आठ दलों की पूजा करें। मध्य दल के अग्निकोण में आत्मा-अंतरात्मा, परमात्मा तथा ज्ञानात्मा की और पूर्व आदि दिशाओं में विद्या, अविद्या, कला एवं परतत्त्व की, फिर विमला आदि शक्तियों की, फिर मुख्य देवकी आह्वान सहित, अंगव्यूह, धृष्टि, लोकपाल आदि की उनके अस्त्र-शस्त्र सहित, वसिष्ठ आदि आठ मुनियों की तथा फिर नील आदि, इन सबकी पूजा करें। बाद में चंदन आदि सुगंधित लेपनों के साथ तथा अलंकार आदि द्वारा श्री राम की पूजा करें। इसके बाद जप आदि तथा निम्नलिखित ध्यान करें। (1-7)

शंख, चक्र, गदा एवं कमल धारण करनेवाले सच्चिदानंद स्वरूप भगवान श्रीराम अत्यंत महिमावाले तथा संसार के आश्रय हैं। वे सांसारिक बंधनों को नष्ट करनेवाले हैं। 'उन परमेश्वर भगवान को मैं नमस्कार करता हूं।' इस प्रकार स्तुति करनेवाले उपासक निःसंदेह मोक्ष पाते हैं। अपनी लीला को समेटकर भगवान राम शंख, चक्र, गदा एवं पद्म के साथ अंतर्धान हो गए। अपने वास्तविक रूप को धारण करके सीता एवं लक्ष्मण के साथ वे अपने लोकों में चले गए। उनके साथ ही उनका परिवार, उनकी प्रजा, विभीषण आदि भी उसी परम धाम में पहुंच गए। उनके भक्त मनचाहे भोगों को प्राप्त करते हैं। अंत में उन्हें परमपद मिलता है। ये ऋचाएं समस्त कामनाओं तथा अर्थों को देनेवाली हैं। इनके पढ़नेवाले पवित्र होकर मोक्ष प्राप्त करते हैं।

□

80. गोपाल पूर्वतापिनी उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः
वासंस्तुभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

'सच्चिदानंदस्वरूप, सरलता से सारे कार्य करनेवाले वेदांत द्वारा जानने योग्य बुद्धि के साक्षी एवं गुरुरूपी भगवान श्री कृष्ण को मैं नमस्कार करता हूं।' एक बार मुनियों ने ब्रह्मा से पूछा, 'कौन परम देव है ? मृत्यु किससे डरती है ? किसे जान लेने पर संपूर्ण ज्ञान हो जाता है ? और यह विश्व किसकी आज्ञा से घूमता है ?' इस पर ब्रह्माजी ने उत्तर दिया, 'कृष्ण ही परम देवता हैं। मृत्यु उन्हीं से डरती है। गोपियों के प्रिय कृष्ण को जान लेने पर समस्त ज्ञान हो जाता है। स्वाहा (माया) विश्व को घुमाती है।' ऋषियों ने फिर पूछा, 'गोविंद, गोपी वल्लभ और स्वाहा, ये कौन हैं ?' ब्रह्मा बोले—'पापों को नष्ट करनेवाले तथा गाय, भूमि एवं वेदों को जाननेवाले गोविंद श्री हरि ही हैं। वही माया और सकल परम ब्रह्म हैं। जो उन्हें जानता है और उन्हें भजता है, वह अमर हो जाता है।' ऋषियों ने पूछा, 'भगवान कृष्ण के किस रूप का ध्यान करना चाहिए ? उनके नाम का अमृत रस कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? और उनका भोजन कैसे करें ?' ब्रह्मा बोले, 'उनके ग्वाले के रूप का ध्यान करना चाहिए। उनका रंग नए नीले बादल के समान है, किशोर अवस्थावाला है और वह दिव्य कल्पवृक्ष के नीचे बैठे हुए हैं। वे गोपियों एवं ग्वालों से घिरे हुए और अत्यंत सुंदर हैं। यमुना की लहरों से शीतल बनी वायु उनकी सेवा कर रही है। ऐसे रूप का ध्यान करनेवाला संसार के बंधनों से छूट जाता है। (1-3)

'उनके मंत्र के आरंभ में काम (क्लीं) है, पहला पद कृष्णाय, दूसरा गोविंदाय तथा तीसरा पद गोपीजनवल्लभाय है। (पूरा मंत्र 'क्लींकृष्णाय गोविंदाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा') इसके अंत में स्वाहा का उच्चारण करने से शीघ्र ही भगवान कृष्ण से मिलन एवं मुक्ति होती है। इसके अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं है। इसी का भजन करना भक्ति है। अपनी समस्त कामनाओं को त्यागकर मन आदि को उन्हीं में समर्पित कर देना भजन है। यही वास्तविक संन्यास भी है। वेदज्ञ उनका अनेक प्रकार से भजन करते हैं। भक्त गोविंद नाम से उपासना करते हैं, वे ही गोपीजनवल्लभ संसार के पालक हैं, जो अपनी स्वाहा से जगत का निर्माण करते हैं। जैसे एक ही वायु शरीरों में पांच रूपों में रहता है, वैसे ही समस्त जगत में एक कृष्ण ही व्याप्त है। इस मंत्र में उनके पांचों नाम एक ही कृष्ण को बताते हैं।' मुनियों ने पूछा, 'जगत के आश्रय कृष्ण की उपासना कैसे की जाती है ?' ब्रह्माजी ने बताया, 'सोने का एक आठ दलोंवाला कमल बनाएं। इसके बीच में परस्पर संपुटित दो त्रिकोण

बनाएं। कोणों की कर्णिका में 'क्लीं' लिखें तथा प्रत्येक कोण में 'क्लीं कृष्णाय नमः' इस मंत्र के एक-एक अक्षर को लिखें। फिर ब्रह्मा मंत्र तथा काम गायत्री विधि सहित लिखकर इसके आठों ओर शूल बनाकर पृथ्वी मंडल बनाएं। इसे अंग, वासुदेव, रुक्मिणी, इंद्र आदि के आठ घेरों से युक्त करें और पूजा करें। तीनों संध्याओं में सोलह उपचारों से इसकी पूजा करने से साधक को सब कुछ प्राप्त हो जाता है। भगवान कृष्ण एकमात्र ईश्वर, वशी, सबमें व्याप्त, प्रशंसनीय और अनेक रूपोंवाले हैं। इस पीठ की नित्य पूजा करने से सदा रहनेवाला सुख मिलता है। भगवान कृष्ण सभी साधकों की कामनाएं पूर्ण करते हैं। वे नित्यों में नित्य एवं चेतनों में चेतन हैं। जो इस गोप रूपवाले कृष्ण को जान लेता है, वह विष्णु के परम पद को प्राप्त करता है। (4-8)

'कृष्ण ही सर्वप्रथम ब्रह्मा को पैदा करके उन्हें वेदों का ज्ञान देते हैं। वही समस्त प्राणियों को बुद्धि का प्रकाश देते हैं। मोक्ष के इच्छुक उन्हीं की शरण में जाएं। भगवान कृष्ण के पांच पदोंवाले मंत्र में 'ओम' का संपुट लगाकर जप करनेवाला शीघ्र उनके दर्शन करता है। अतः मोक्ष प्राप्ति के लिए तथा शांति के लिए इसका नित्य जप करें। इसी पंचपदी मंत्र से अन्य मंत्र भी पैदा हुए हैं, जो मनुष्य का हित करनेवाले हैं। इंद्र आदि देवता इन्हीं मंत्रों की साधना से ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। (9)

ब्रह्माजी ने आगे बताया, 'जब मेरी तीन चौथाई अवस्था परमेश्वर का ध्यान और स्मरण करते हुए बीत गई, तब मुझे दर्शन देकर उन्होंने ज्ञान दिया। यह ज्ञान अठारह अक्षरों के मंत्र का था। फिर उन्होंने मुझे सृष्टि रचना की प्रेरणा दी। (क्लीं कृष्णाय गोविंदाय गोपीजनवल्लभाय स्वाहा) इस मंत्र के 'क्लीम्' के 'क्, ल्, ई, म्' से मैंने क्रमशः जल, पृथ्वी, अग्नि, चंद्रमा की तथा 'क्लीम्' से सूर्य की रचना की। 'कृष्णाय' से आकाश एवं वायु की, 'गोपीजनवल्लभाय' से स्त्री-पुरुष की तथा 'स्वाहा' से चराचर विश्व की रचना की। इसी मंत्र से प्राचीनकाल में राजा चंद्रध्वज को आत्मज्ञान हुआ था। इसी मंत्र से भगवान के गो-लोक की प्राप्ति होती है। (10)

'हे मुनियो ! जैसे मैं भगवान की स्तुति करता हूं, वैसे ही आप लोग भी इस मंत्र से भगवान कृष्ण की आराधना करें। इसी से केवल परमपद की प्राप्ति होगी। वाणी, मन आदि उन तक कभी नहीं पहुंच सकते। अतः परमेश्वर कृष्ण का ही ध्यान करना चाहिए। उनके ही नाम का रस पीना चाहिए। नित्य उन्हीं का भजन करना चाहिए।

□

81. कृष्ण उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नः बृहस्पतिर्दधातु।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

'हम कानों से कल्याणमय वचन सुनें, नेत्रों से कल्याणमय चीजों को देखें और दृढ़ अंगोंवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करें। इंद्र हमारा कल्याण करें, पूषा हमारा कल्याण करें। अमंगल नाशक गरुड़ और बृहस्पति हमारा कल्याण करें। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दुःख शांत हों।'

सच्चिदानंद स्वरूप महाविष्णु के सभी अंगों से सुंदर रामचंद्र भगवान को देखकर वनवासी मुनियों को अत्यंत विस्मय एवं आनंद हुआ। उन्होंने भगवान के शरीर के स्पर्श की इच्छा की। तब भगवान ने उनसे कहा, कि जब इसके बाद मैं कृष्ण का अवतार लूंगा, तो आप सब गोपियां बनकर मेरा स्पर्श करेंगे। अतः सभी ने गोपियों एवं ग्वालों के रूपों में पैदा होने की इच्छा की। एक बार विष्णु ने देवताओं को मनुष्य के रूप में पृथ्वी पर जन्म लेने की आज्ञा दी, किंतु देवता उनके साथ को छोड़कर जन्म लेने को तैयार नहीं हुए। तब भगवान ने उनसे कहा कि मैं कृष्ण के रूप में तुम्हारे साथ ही रहूंगा, अतः वे सब भी गोपियां एवं ग्वाले बन गए। देवता अत्यंत प्रसन्न एवं कृतकृत्य हुए। नंद एवं यशोदा के रूप में क्रमशः भगवान का आनंदवाला अंश एवं मुक्तिदेवी ने अवतार लिया। माया तीन प्रकार की कही जाती है—सात्त्विकी, राजसी एवं तामसी। राक्षसों में तामसी माया प्रविष्ट हुई। इस विचित्र माया से, जो वैष्णवी माया भी कही जाती है, जीत पाना अत्यंत कठिन है। इसे प्राचीनकाल में ब्रह्मा भी नहीं जीत सके। देवता इसकी सदा स्तुति करते हैं। यही वैष्णवी माया देवकी के रूप में प्रसन्न हुई। जो वेद भगवान की सदा स्तुति करते हैं, वे ही वसुदेव बने। वेदों के अर्थ अर्थात भगवान विष्णु ही कृष्ण एवं बलराम का अवतार बने। यही वेदों का अर्थ पृथ्वी में अवतरित हुआ और इसने गोपों एवं गोपियों के साथ क्रीड़ाएं कीं। उन भगवान कृष्ण की ये गोपियां एवं गाएं वेदों की ऋचाएं हैं। उनकी लाठी एवं वंशी के रूप में क्रमशः ब्रह्मा एवं रुद्र ने अवतार लिए। इंद्र सींगा के रूप में पैदा हुए। सारे गोकुल में बैकुंठवासियों ने ही जन्म लिया। तपस्वी लोग वहां वृक्षों के रूप में उत्पन्न हुए तथा लोभ, क्रोध, मोह आदि विकार असुरों के रूप में पैदा हुए। काम, क्रोध आदि विकार कलियुग में भगवान कृष्ण का नाम लेने से ही नष्ट हो जाते हैं। (1-9)

साक्षात भगवान विष्णु ने गोप के रूप में मायामय शरीर धारण किया। यह जगत माया द्वारा

मोहित किया हुआ है। फलतः भगवान की माया को समझ पाना बड़ा ही कठिन है। भगवान की इस माया को देवता भी नहीं जान पाते। इसी माया में पड़कर ब्रह्मा को लाठी एवं रुद्र को वंशी बनना पड़ा, तब भगवान श्री हरि की उस माया का ज्ञान मनुष्यों को कैसे हो सकता है ? देवताओं के बल एवं ज्ञान का माया क्षण-भर में हरण कर लेती है। शेषनाग बलराम के रूप में तथा स्वयं साक्षात शाश्वत ब्रह्म कृष्ण के रूप में पैदा हुए। भगवान की सोलह हजार एक सौ स्त्रियां वेदों की ऋचाएं तथा उपनिषद् हैं। इसके अलावा ब्रह्मरूप वेद की ऋचाएं गोकुल की अन्य स्त्रियां हैं। चाणूर वस्तुतः द्वेष, मुष्टिक मत्सर, कुवलयापीड़ दर्प, तथा आकाश में उड़नेवाला राक्षस वकासुर गर्व है। माता रोहिणी दया है। पृथ्वी ने सत्यभामा के रूप में अवतार लिया है। अघासुर महाव्याधि के रूप में तथा कलियुग कंस के रूप में पैदा हुआ है। शम ने सुदामा के रूप में, सत्य ने अक्रूर के रूप में और दम ने उद्धव का रूप धारण किया है। शंख स्वयं विष्णु का रूप है। यह शंख मेघ के समान शब्द करनेवाला क्षीर सागर से पैदा हुआ है। भगवान कृष्ण ने जो दही-दूध के मटके फोड़कर दही-दूध की नदियां बहाई थीं, वह इसी क्षीर सागर का प्रवाह था। दूध-दही के क्षीर सागर में भगवान पहले के समान क्रीड़ा कर रहे हैं। दुष्टों के संहार एवं संतों की रक्षा में वह सदा लगे रहते हैं। धर्म एवं प्राणियों की रक्षा के लिए ही भगवान ने मानव के रूप में अवतार लिया था। उनका वह ब्रह्म के समान चक्र उनके हाथों में शोभा दे रहा है। (10-19)

वायु भगवान कृष्ण की वैजयंती माला एवं धर्म चंवर बना महेश्वर ने चमकते हुए खड्ग का, कश्यप ने नंद के घर में ओखल का तथा माता अदिति ने रस्सी का रूप बनाया। सब वर्णों के ऊपर अनुस्वार के समान सुशोभित सब प्राणियों के ऊपर रहनेवाला आकाश ही भगवान कृष्ण का छत्र है। आदिकवि वाल्मीकि एवं व्यास ने जितने देवताओं के जिन-जिन रूपों का वर्णन किया और देवताओं के जिन भी रूपों को प्राणी नमस्कार करते हैं, वे सभी रूप भगवान कृष्ण में ही रहते हैं। शत्रुओं का नाश करनेवाली काली ही साक्षात उनकी गदा है। वैष्णवी माया ने उनके शार्ङ्ग धनुष का तथा प्राणनाशक काल ने बाण का रूप बनाया है। विश्व के संहार का बीज उनके हाथ में कमल बनकर शोभा पाता है। गरुड़ वटभांडीर हैं और नारद सुदामा हैं। साक्षात भक्ति वृंदा के रूप में प्रकट हुई। समस्त प्राणियों को कर्म का ज्ञान करानेवाली बुद्धि भगवान की क्रिया शक्ति है। अतः ये सब गोप, गोपी आदि भगवान से अलग नहीं हैं। सभी स्वर्ग एवं बैकुंठ के देवताओं को भगवान ने ही पृथ्वी पर अवतरित किया है। इस रहस्य को जाननेवाला सभी तीर्थों के फल को प्राप्त करता है तथा देह के बंधन से मुक्त हो जाता है। (20-25)

□

82. गणपति उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः॥
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषाः विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्ताक्ष्र्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नः बृहस्पतिर्दधातु॥
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

'हम कानों से कल्याणमय वचन सुनें, नेत्रों से कल्याणमय चीजों को देखें और दृढ़ अंगोंवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करें। इंद्र हमारा कल्याण करें, पूषा हमारा कल्याण करें, अमंगलनाशक गरुड़ और बृहस्पति हमारा कल्याण करें। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दुःख शांत हों।'

भगवान गणेश को नमस्कार। हे भगवान गणेश ! तुम प्रत्यक्ष तत्त्व हो। समस्त सृष्टि के केवल तुम्हीं बनानेवाले, पालन करने वाले तथा प्रलय करनेवाले हो। यह समस्त जगत ब्रह्म भी तुम ही हो। तुम साक्षात आत्मा हो। मैं न्यायपूर्वक सत्य कहता हूं। मुझ शिष्य की तथा गुरु की रक्षा करो। श्रोता, दाता एवं धारण करनेवाले की रक्षा करो। सामने से, दाहिनी ओर से, पीछे से, बायीं ओर से, ऊपर से तथा नीचे की ओर से मेरी रक्षा करो। मेरी चारों ओर से रक्षा करो। तुम वाणी रूप, चिन्मय, आनंदमय, ब्रह्ममय, सच्चिदानंद, अद्वितीय, प्रत्यक्ष ब्रह्म, ज्ञानमय तथा विज्ञानमय हो। (1-5)

यह समस्त जगत तुमसे ही उत्पन्न होता है, तुममें ही स्थिर है तथा तुम्हीं में लय हो जाता है। यह समस्त जगत तुम्हारे कारण ही प्रतीत होता है। तुम्हीं पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश हो। तुम्हीं वाणी के परा, पश्यंती, मध्यमा एवं वैखरी, ये चारों रूप हो। तुम सत्त्व, रजस एवं तमस, इन तीनों गुणों से, स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण, इन तीनों शरीरों से तथा भूत, भविष्य एवं वर्तमान, इन तीनों कालों से परे हो। तुम सदा मूलाधार चक्र में स्थित रहते हो। ज्ञान, क्रिया एवं इच्छा, ये तीनों शक्तियां तुम्हारा ही स्वरूप हैं। योगी नित्य तुम्हारा ही ध्यान करते हैं। तुम्हीं ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, यम, इंद्र, अग्नि, वायु, सूर्य, चंद्रमा, ब्रह्म, भूः, भुवः, स्वः तथा 'ओम' हो। (6)

गणेश का बीज मंत्र—इसका प्रथम अक्षर 'ग', दूसरा 'अ', तीसरा 'अनुस्वार'(ं) है। इस प्रकार 'गं' गणेश का बीज मंत्र है। 'ग' इसका पूर्व रूप, 'अ' मध्य रूप तथा अनुस्वार अंत रूप है। उत्तर रूप नाद, बिंदु, अनुसंधान, संहिता एवं संधि हैं। यही गणेश विद्या है। इसके ऋषि, छंद एवं देवता क्रमशः गणक, नृचद गायत्री एवं महा गणपति हैं। 'एकदंत को हम जानते हैं, वक्रतुंड का चिंतन करते हैं तथा एकदंत हमें प्रेरणा दे', यह गणेश गायत्री है। उनका ध्यान इस प्रकार किया जाता है—'एकदंत, चतुर्भुज, पाश एवं अंकुश धारण करनेवाले, अभय वरदान देनेवाले, हाथ में चूहे के

चिह्नवाले, ध्वज को धारण करनेवाला, लाल रंगवाले, बड़े पेटवाले, सूप जैसे कानोंवाले, लाल वस्त्रोंवाले, लाल चंदन लगाए हुए, लाल फूलों से पूजे गए, भक्तों पर कृपा करनेवाले, अच्युत, जगत के कारण, सृष्टि से पहले उत्पन्न, प्रकृति से तथा पुरुष से महान, इस प्रकार के गणपति का ध्यान श्रेष्ठ योगी ही करते हैं। (7-9)

व्रातपति को, गणेश को, प्रथम पति को, लंबोदार को, एकदंत को, विघ्ननाशक को, शिव के पुत्र को तथा वरदान देनेवाली मूर्ति को बार-बार नमस्कार हो—इस अथर्वशिर को अध्ययन करनेवाला ब्रह्म को प्राप्त करता है। वह चारों ओर से सुख प्राप्त करता है। कोई भी विघ्न उसे हानि नहीं पहुंचाता। वह पांच महापापों से मुक्त हो जाता है। इसे सायंकाल पढ़ने से दिन के पाप नष्ट होते हैं। प्रातः पढ़ने से रात्रि के पाप नष्ट होते हैं। सायं-प्रातः दोनों कालों में पढ़ने से पाठक निष्पाप हो जाता है और धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष चारों पुरुषार्थों को प्राप्त करता है। इसका ज्ञान अशिष्य (जो शिष्य न हो) को नहीं देना चाहिए। भूल से भी ऐसा करने पर पापी बनता है। इसके एक हजार पाठ करने से हर इच्छा पूर्ण होती है। इससे गणपति का अभिषेक करनेवाला अच्छा वक्ता बनता है। चतुर्थी में निराहार रहकर जप करने से साधक विद्वान बनता है। ऐसा महर्षि अथर्वण ने कहा है। इस मंत्र से तप करनेवाले को कोई भय नहीं रहता। दूब के अंकुरों से इसके साथ गणेश का पूजन करने पर मनुष्य कुबेर के समान हो जाता है। एक हजार लड्डुओं से पूजन करने पर वांच्छित फल मिलता है। घी एवं समिधा से हवन करने पर सब कुछ प्राप्त हो जाता है। आठ ब्राह्मणों को सही रूप में इसकी दीक्षा देनेवाला सूर्य के समान तेजस्वी हो जाता है। सूर्य-ग्रहण में किसी महान नदी में बैठकर या देव प्रतिमा के सामने इसे पढ़ने से मंत्र सिद्ध होकर महान विघ्नों से भी मुक्ति मिल जाती है और महादोष भी छूट जाते हैं। वह व्यक्ति सर्वज्ञाता हो जाता है।

□

83. नृसिंहपूर्वतापिनी उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्रा
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्ताक्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

प्रथम खंड

यह सब जल-ही-जल था। उस जल से कमल के पत्ते में ब्रह्माजी उत्पन्न हुए। उनके मन में इच्छा हुई कि मैं सृष्टि करूं। व्यक्ति पहले मन से सोचता है, फिर बोलता है तथा अंत में उस कार्य को करता है। कहा जाता है कि सृष्टि के आरंभ में काम की उत्पत्ति हुई। ज्ञानी लोग सदा मन में रहनेवाले आत्मा को खोजते रहते हैं। वे काम को आत्मा के लिए बंधन मानते हैं। उनके मत के अनुसार मन में काम की उत्पत्ति होती है। सृष्टि के पूर्व केवल जल ही था, अतः वही विश्व का कारण है, यह जाननेवाला विद्वान जो भी इच्छा करता है, उसे उसकी चाही गई वस्तु मिल जाती है। प्रजापति ने तपस्या प्रारंभ की तब उन्हें अनुष्टुप छंद में उत्पन्न मंत्रराज नरसिंह मंत्र प्राप्त हुआ। इसी मंत्र के प्रभाव से उन्होंने उस दिखाई देनेवाले विश्व की रचना की। इसीलिए इस विश्व को मंत्रराज अनुष्टुपमय कहा जाता है। इसी से समस्त भूत पैदा हुए। इसी के कारण प्राणी जीवित रहते हैं तथा इस लोक को त्यगाने पर इसी में लीन हो जाते हैं। यह अनुष्टुप वाणी ही लोकों को बनानेवाली है। वाणी से मनुष्य जन्म मृत्यु को प्राप्त होते हैं और वाणी अनुष्टुप ही है। यह अनुष्टुप छंद अन्य छंदों में श्रेष्ठ है। (1)

इस मंत्र का प्रथम चरण का रूप सागर, पर्वत, सातों द्वीपोंवाली पृथ्वीवाला है। दूसरा चरण यक्ष-गंधर्व-अप्सराओं से युक्त है। तृतीय चरण में वसु, रुद्र और आदित्य देवता सेवित द्युलोक और चतुर्थ चरण के रूप-माया रहित, पवित्र, परम व्योम युक्त ब्रह्म रूप है। इन सभी को जाननेवाला अमरता पद पाता है। इस मंत्र के चार चरण हैं, जो अपने अंगों सहित चारों वेद ही हैं। इसके ध्यान का क्या रूप है ? इसका देवता, अग, गण, छंद और ऋषि यह सब क्या और कौन हैं ? इसके समाधान में ब्रह्मा बताते हैं कि 'बीज से युक्त इस आठ अक्षरों के प्रत्येक चरणवाले मंत्र को जो साम का ही अंग मानता है, वह संपत्ति से युक्त होता है। सभी वेदों के आरंभ में प्रणव है, अतः जो इसे प्रणव का और सोम का अंग मानता है, वह तीनों लोकों में विजय प्राप्त कर लेता है। चौबीस अक्षरों वाले महालक्ष्मी मंत्र को यजुर्वेद एवं साम का अंग माननेवाला आयु यश, कीर्ति, ज्ञान एवं ऐश्वर्य प्राप्त करता है। अंगों सहित साम को जाननेवाला अमृतत्व प्राप्त करता है। अतः इसे अंगों सहित

जानना चाहिए। ज्ञानी प्रणव, गायत्री एवं यजुष के रूप महालक्ष्मी मंत्र को कुपात्रों को नहीं बताते, क्योंकि इसे जान लेने पर भी इन्हें अच्छी गति नहीं मिलती। अतः इस विषय में सावधान रहना चाहिए। ऐसे लोगों को मंत्र देनेवाला गुरु नीच गति को प्राप्त करता। (2-3)

संपूर्ण विश्व, प्राणी, इंद्रियां, पशु, अन्न, अमृत, सम्राट, स्वराट एवं विराट् इस मंत्रराज साम का प्रथम चरण मानें। चारों वेद, सूर्य एवं इसके मंडल में स्थित पुरुष को इसका द्वितीय चरण समझें। तृतीय चरण समस्त औषधियों, तारों तथा चंद्रमा को समझना चाहिए। ब्रह्मा, शिव, विष्णु, इंद्र, अग्नि और अक्षर ब्रह्म इसका चौथा चरण समझा जाए। इसे जाननेवाला अमृतत्व प्राप्त करता है। इसके प्रथम चरण का प्रथम अंश 'उग्र', द्वितीय चरण का प्रथम अंश 'ज्वल', तृतीय चरण का 'नृसिंह' तथा चौथे चरण का प्रथम अंश 'मृत्यु' है। इन्हें साम समझना चाहिए। इसका ज्ञाता अमृतत्व पाता है। अतः यह मंत्र जिसे देना हो, उसकी अच्छी तरह परीक्षा लेनी चाहिए। इसका उपदेश केवल सदाचारी शिष्य या पुत्र को देना चाहिए। (4)

क्षीर सागर में सोया हुआ भगवान का रूप परम पद है। इसे योगियों के लिए समझना चाहिए। इसका ज्ञाता अमृतत्व पाता है। इसे अनुष्टुप मंत्र के प्रथम चरण के पूर्वार्ध (पहले आधे) भाग का अंतिम अंश 'वीरं' दूसरे चरण के पूर्वार्ध का अंतिम 'तं', तीसरे के पूर्वार्ध का अंतिम 'भी' तथा चतुर्थ चरण के पूर्वार्ध का अंतिम अंश 'मृत्युम्' है। इस जानने योग्य साम का ज्ञाता अमृतत्व पाता है। आचार्य के मुख से इसका ज्ञान पानेवाला इसी शरीर से भवसागर से पार हो जाता है और उसके संपर्क में आनेवाले लोगों को भी वह इस बंधन से मुक्त करता है। संसार की माया में पड़ा हुआ प्राणी भी इसे सुनकर मुक्ति की इच्छा करता है। इस मंत्र के जप से इसी शरीर से भगवान नृसिंह के दर्शन होते हैं। कलियुग में मुक्ति का इससे सरल उपाय नहीं है। अतः इसे उचित रीति से जाननेवाला अमृतत्व पाता है। (5)

भगवान नृसिंह ऋत एवं सत्य ब्रह्म हैं। वे काले-पीले रंग के सिंह एवं पुरुष की मिली-जुली आकृतिवाले हैं। वे भयंकर आंखोंवाले नीले लोहित शंकर हैं, उमापति, पशुपति, पिनाकी तथा अनंत तेजवाले हैं। वे सभी विद्याओं और प्राणियों के स्वामी हैं। वे देवताओं एवं ब्रह्मा के भी पति हैं। यजुर्वेद का अर्थ उन्हीं का रूप है। उन्हें साम ही समझना चाहिए। ऐसा ज्ञाता अमृतत्व पाता है। मंत्रराज अनुष्टुप के प्रथम चरण के उत्तरार्ध (बादवाला आधा भाग) का पहला अंश 'महा', दूसरे चरण के उत्तरार्ध का पहला अंश 'सर्वतो', तृतीय के उत्तरार्ध का प्रथम अंश 'षणं' तथा चतुर्थ का 'नमा' है। इसका ज्ञाता अमरता पाता है। अतः इसे साम समझें। यह साम सच्चिदानंद रूप है इसे जाननेवाला इसी शरीर से अमृतत्व पाता है। इसे अंगों सहित जानना चाहिए। इस ज्ञान से बंधनों से मुक्ति एवं अमरता प्राप्त होती है। (6)

विश्व की रचना करनेवाले प्रजापति ने इसी मंत्र से जगत की रचना की। अतः वे विश्व के रचयिता बने। यह विश्व साम से ही प्रकट हुआ। इस रहस्य को जाननेवाला ब्रह्मलोक तथा उसके पद को प्राप्त करता है। इसे अंगों सहित जाननेवाला संसार चक्र से मुक्त होकर अमृतत्व प्राप्त करता है। इस मंत्र के प्रथम चरण का अंतिम शबद 'विष्णुं', द्वितीय चरण का अंतिम शब्द 'मुखं', तृतीय का 'भद्रं' तथा चतुर्थ का अंतिम शब्द 'म्यहम्' है। इसका ज्ञाता अमृतत्व पाता है। प्रजापति

ने इन तत्त्वों को जाना। इस अनुष्टुप की स्थिति ब्रह्म में ही है। इसे इसी प्रकार जाननेवाला ज्ञानी अमृतत्व पाता है। स्त्री हो या पुरुष जो भी इस लोक में सदाचार से आनंद में स्थित होना चाहते हैं, उन्हें भगवान नृसिंह समस्त ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। परमात्मा को प्राप्त करने का इच्छुक चाहे कहीं भी मृत्यु को प्राप्त हो, उसे इस तारक मंत्र का जप करना चाहिए। प्रजापति साम के अंग हैं। अतः वही तारक मंत्र हैं। उन्होंने ही इसके प्रथम बार दर्शन किए। इस सबको सच्चा साधक जानता है। इसे जानकर पुरश्चरण करनेवाला साक्षात महाविष्णु ही बन जाता है। (7)

द्वितीय खंड

मृत्यु, पाप एवं संसार से डरे हुए देवता ब्रह्मा के पास पहुंचे। ब्रह्माजी ने उन्हें मंत्रराज अनुष्टुप दिया। इस मंत्र से उन्होंने मृत्यु को जीत लिया, वे पापों से मुक्त हो गए तथा उन्होंने संसार पर भी विजय प्राप्त कर ली अतः मृत्यु, पाप एवं संसार से डरा हुआ व्यक्ति इस मंत्रराज अनुष्टुप को ग्रहण करे। इससे वह मृत्यु, पाप एवं संसार-चक्र से पार हो जाता है। प्रणव भी इसी मंत्र का अंग है। प्रणव की प्रथम मात्रा का लोक पृथ्वी, वेद ऋग्वेद, देवता, ब्रह्मा तथा छंद गायत्री है। यह वस्तु देवों का गण है तथा गार्हपत्य अग्नि का रूप है। ये सभी प्रणव की प्रथम मात्रा 'अ' में स्थित हैं तथा ये ही साम का प्रथम चरण भी हैं। प्रणव की दूसरी मात्रा 'उ' में अंतरिक्ष, यजुर्वेद, विष्णु एवं रुद्र देवताओं का गण, दक्षिणाग्नि तथा त्रिष्टुप छंद है। यही साम का दूसरा चरण है। प्रणव की तृतीय मात्रा 'म' है। इसमें द्युलोक, सामवेद, रुद्र-आदित्य गण जगती छंद तथा आह्वनीय अग्नि है। यही साम का तीसरा चरण है। प्रणव की चौथी मात्रा नाद रूप अर्धमात्रा है इसमें चंद्र लोक, ओंकार ब्रह्म, अथर्ववेद, संवर्तक अग्नि, मरुत गण, विराट् छंद एवं ब्रह्मा ऋषि हैं। यह ब्रह्म रूप अत्यंत प्रकाशमान मात्रा है। यही साम की चौथी मात्रा है। (1)

इसके प्रथम चरण में आठ अक्षर हैं। शेष तीन चरणों में भी आठ-आठ अक्षर हैं। इस प्रकार इसमें बत्तीस अक्षर होते हैं। इस समस्त जगत की उत्पत्ति अनुष्टुप से ही हुई तथा इसी में इसका संहार भी होता है। चार चरण इसके चार अंग हैं। प्रणव इसका पांचवां अंग है, जो क्रमशः हृदय, सिर, शिखा, कवच (कंधे) एवं अस्त्र रूप है। अतः मनुष्य शरीर के समान ही इनका अंगों से संयोग करें। संपूर्ण लोकों के समान प्रणव एवं अनुष्टुप मंत्र के अंग आपस में मिले हुए हैं। प्रणव विश्व रूप है, अतः अनुष्टुप के प्रत्येक अक्षर में प्रणव (ॐ) का संपुट देना चाहिए; अर्थात इस मंत्र के प्रत्येक अक्षर के आगे और पीछे ॐ लगाना चाहिए। ब्रह्म को जाननेवाले इसके प्रत्येक अक्षर के न्यास के विषय में कहते हैं। (2)

इस मंत्र का प्रथम शब्द 'उग्रम' है, इसका ज्ञाता अमृतत्व प्राप्त करता है। द्वितीय स्थान 'वीरम', तृतीय 'महाविष्णुम' चतुर्थ 'ज्वलंतम', पंचम 'सर्वतोमुखम', छठा 'नृसिंहम' सातवां 'भीषणम', आठवां 'भद्रम' नवां 'मृत्युमृत्युम', दसवां 'नमामि' तथा ग्यारहवां 'अहम' है। पूरा मंत्र इस प्रकार बनता है :

उग्रं वीरं महाविष्णुम्

ज्वलंतं सर्वतोमुखम्।

नृसिंह भीषणं भद्रम्
मृत्युमृत्युं नमाम्यहम् ॥

इसे जाननेवाला अमरता पाता है। यह अनुष्टुप ग्यारह शब्दोंवाला है। इसी प्रकार समस्त जगत की रचना हुई। इसी के द्वारा सबका उपसंहार भी होता है। अतः यह सब इसी की महिमा है। इसका ज्ञाता अमरता प्राप्त करता है। (3)

इसमें 'उग्र' शब्द का देवताओं द्वारा कारण पूछे जाने पर ब्रह्मा बोले, 'नृसिंह अपनी महिमा से सभी लोकों, देवों, आत्माओं, प्राणियों एवं भूतों को ऊपर उठाते हैं। वे ही सृष्टि, पालन, संहार तथा लय करते हैं। स्वयं भी तथा दूसरों से भी अनुग्रह करते और कराते हैं। अतः उन्हें उग्र कहा जाता है। ऋग्वेद में कहा है कि वेद जिनको स्तुति करते हैं, उनकी स्तुति करो। वे हृदय में रहनेवाले, युवा, सुंदर, सिंहरूप होने पर भी अभयंकर, कृपालु एवं दुःख हरनेवाले हैं, अतः उग्र कहे जाते हैं।' 'वीर' शब्द का कारण पूछे जाने पर ब्रह्मा ने बताया 'वे ही सभी लोक, देव, प्राणी आदि की सृष्टि, पालन तथा संहार के साथ ही अनेक प्रकार कर्म करते हैं। ऋग्वेद में उन्हें वीर, भक्तों पर कृपा करनेवाला, सोमरस निकालनेवाला तथा देवताओं को बनाने की इच्छा करनेवाला कहा गया है। अतः वे वीर हैं। उन्हें महाविष्णु क्यों कहा जाता है? इसके विषय में ब्रह्मा ने बताया, 'वे सभी लोकों, देवों आदि में व्याप्त हैं। मांस में चिकनाई के समान वह सारे शरीर में व्याप्त हैं।' प्रलय में संसार भी लय हो जाता है। इस महिमा के विषय में ऋग्वेद में कहा गया है कि वह सर्वव्यापक संसार में फैले हैं, प्रजापालक, उपास्य, अद्वितीय एवं सोलह कलाओं के तेज वाले हैं। अतः वह महाविष्णु कहे जाते हैं। (विष्णु का अर्थ व्यापक है)। 'ज्वलंतम' शब्द का कारण इस प्रकार बताया गया है—'वे अपने तेज से समस्त लोकों, देवों आदि को प्रकाशित करते हुए स्वयं भी तेजयुक्त हैं। सूर्य आदि सब उन्हीं के तेजवाले हैं। ऋग्वेद में कहा है कि वे सविता (सूर्य) हैं, प्रसविता भी हैं। वे अपने प्रकाश से अन्यों को प्रकाशित करते हैं तथा स्वयं भी प्रकाशित रहते हैं। स्वयं भी तपते हैं, अन्यों को भी तपाते हैं। सब प्रदार्थ उन्हीं की शोभा से शोभावाले हैं। अतः उनके लिए यहां ज्वलंत शब्द आया है। (4)

देवताओं ने फिर सर्वतोमुख शब्द का कारण पूछा तब ब्रह्मा बोले—'वह सभी लोकों, देवों आदि को इंद्रियां न होने पर भी सब ओर से देखता है, सुनता है, प्राप्त करता है तथा सभी ओर को चलता है।' ऋग्वेद में कहा गया है कि वह सृष्टि से पूर्व अकेला था। स्वयं ही इतने रूपों में हो गया। वही उत्पन्न, पालन तथा संहार करता है। वह सर्वतोमुख (सब ओर मुखोंवाला) है। हम उसे नमस्कार करते हैं। ऐसा वेदों में भी कहा गया है (वेदों को सबसे बड़ा प्रमाण माना गया है) अतः वह सर्वतोमुख है, 'नृसिंह' का कारण इस प्रकार बताया है—मनुष्य श्रेष्ठ प्राणी है, पराक्रम में सिंह श्रेष्ठ है। उनमें ये दोनों श्रेष्ठताएं हैं। उन्होंने इसीलिए ऐसा रूप धारण किया। वेदों में कहा गया है कि विष्णु सिंह का रूप धारण करके स्तुतिकर्ताओं के सामने प्रस्तुत होते हैं। सिंह रूप रखने पर भी वह भक्तों के लिए भयंकर नहीं होते इत्यादि कारणों से उन्हें नृसिंह कहा जाता है। भीषण की सार्थकता ब्रह्माजी ने इस प्रकार बतायी है—इनकी भीषणता से सभी लोक आदि भयभीत हो जाते हैं, पर यह किसी से नहीं डरते। वेदों में आया है कि इन्हीं के भय से सूर्य समय पर उगता है। वायु, अग्नि, इंद्र, मृत्यु आदि इन्हीं के भय से उचित कार्य करते हैं, इसीलिए यहां भीषण कहा गया है। 'भद्र' का

कारण यह है कि भद्र का अर्थ कल्याण है । भगवान कल्याणस्वरूप हैं तथा दूसरों का कल्याण करते हैं । स्वयं शोभा एवं कांतियुक्त हैं, दूसरों को भी शोभा एवं कांति देते हैं । वेदों में आया है कि देवताओं, हम कानों से कल्याणमय शब्द सुनें और आंखों से कल्याणकारी दृश्य देखें । इत्यादि कारणों से भगवान को भद्र कहा गया है । मृत्युमृत्यु क्यों कहा गया है ? इस पर ब्रह्मा बोले, 'वे अपने भक्तों के स्मरण पर उनकी मृत्यु एवं अकाल मृत्यु को दूर करते हैं ।' वेदों ने कहा है कि जिनकी आज्ञा को देवता मस्तक झुकाकर स्वीकार करते हैं, जिनकी छाया अमृत रूपी है, जो आत्मा को शक्ति देते हैं और जो मृत्यु की भी मृत्यु हैं, हम ऐसे भगवान की आराधना करते हैं । इसीलिए उन्हें मृत्युमृत्यु (मृत्यु की मृत्यु) कहा गया है । 'नमामि' शब्द के विषय में उन्होंने बताया कि भगवान को सभी देवता, मुमुक्षु, ब्रह्मवेत्ता आदि नमस्कार करते हैं । वेद कहते हैं कि जिसे लक्ष्य करके ब्रह्मा स्तुति करते हुए नमस्कार करते हैं वह ब्रह्मा एवं वेदों का रक्षक है । अत: यहां नमामि शब्द आया है । मंत्र के अंत में आए 'अहम' शब्द के विषय में ब्रह्मा बोले कि वेदों में कहा गया है—'मैं अमृत का स्रोत हूं । देवताओं से पहले प्रकट हुआ हूं । इस व्यक्त एवं अव्यक्त संसार में सर्वप्रथम हूं । अत: यहां अहम (मैं) शब्द आया है ।'

तृतीय खंड

देवताओं ने प्रजापति से कहा, 'हमें मंत्रराज अनुष्टुप की शक्ति एवं बीज का उपदेश दीजिए ।' ब्रह्माजी बोले, 'इस विश्व की रचना, रक्षा एवं विनाश करनेवाली माया ही इस मंत्र की शक्ति है । अत: यह माया ही शक्ति है । माया की इस शक्ति को जाननेवाला पाप, मृत्यु और संसार से मुक्त होकर अमृतत्व प्राप्त करता है तथा उसे महान संपत्तियां प्राप्त होती हैं । ब्रह्म को जाननेवाले जानते हैं कि यह माया ह्रस्व है, दीर्घ है अथवा प्लुत है । अत: इसे ह्रस्व रूप में मानने वाला इसके द्वारा अपने समस्त पापों को भस्म करके अमृतत्व पाता है । इसके दीर्घ रूप को जाननेवाला महान ऐश्वर्य पाकर अमर होता है तथा इसके प्लुत रूप को जाननेवाला महान ज्ञाता बनकर अमृतत्व प्राप्त करता है । ऋषियों ने कहा है कि हे बिंदुमय स्वर ! माया में, संसार सागर से पार होने के लिए साधना के लिए दीर्घायु चाहता हूं । अत: मैं विष्णु आदि की लक्ष्मी, अंबिका, सरस्वती आदि शक्तियों का आश्रय लेता हूं । तुम सभी शक्तियों से मेरी रक्षा करो । सभी प्राणी आकाश से ही जन्म लेते हैं, इसी के आश्रय में रहते हैं और अपनी देह त्यागते हैं, अत: आकाश ही बीज है । कहा गया है कि भगवान अपने परम धाम में स्वयं प्रकाशित हैं, वे अंतरिक्ष में रहते हैं, वे अतिथि, यज्ञवेदी की अग्नि, होता तथा आकाश में रहनेवाले हैं । इसे जाननेवाला अमरता प्राप्त करता है ।

चतुर्थ खंड

प्रजापति से देवताओं ने निवेदन किया कि उन्हें मंत्रराज अनुष्टुप के सहायक मंत्रों को बताएं । इस पर प्रजापति ने बताया, 'प्रणव, यजुर्लक्ष्मी, सावित्री तथा नृसिंह गायत्री इस मंत्र के अंग (सहायक) मंत्र हैं । 'ओंकार' अक्षर की महिमा ही यह सब जगत है । भूत, भविष्य और वर्तमान तथा इन तीनों से परे भी सब यही ओंकार है । जागृत अवस्था एवं स्थूल विश्वरूप, सातों लोकों के अंगोंवाले,

उन्नीस मुखोंवाले वैश्वानर ही नृसिंह के प्रथम चरण हैं। स्वप्नावस्था और इससे प्रभावित विश्व इन्हीं का स्थान है। आंतरिक संसार में इनका ज्ञान फैला हुआ है। वह सातों लोक रूपी अंगों, उन्नीस मुखोंवाले सूक्ष्म विश्व के कर्ता, भर्ता एवं हर्ता हैं। ऐसा तैजस पुरुष उनका द्वितीय चरण है। सुषुप्ति में जब सोया हुआ पुरुष कोई स्वप्न नहीं देखता यह स्थान एकीभूत, प्रज्ञानधनं आनंदमय चैतन्य प्राप्त उनका तृतीय चरण है। यही सर्वेश्वर सभी प्राणियों में व्याप्त उनकी योनि उत्पत्ति का स्थान न होते हुए भी यह न तो अंतःप्राज्ञ है, न बाहर प्राज्ञ है एवं दोनों ओर से भी प्राज्ञ नहीं है और न अप्राज्ञ ही है। यह रूप, रस आदि का विषय भी नहीं है। ऐसा अव्यक्त, चिन्मय, निराकार अद्वितीय ही उनका चतुर्थ चरण है। उसी को आत्मा समझना चाहिए। (1-2)

सावित्री मंत्र गायत्री छंद में यजुर्वेद ही है। यह सर्व विश्व व्याप्त है। इसमें घृणि एवं सूर्य दो-दो, आदित्य; तीन तथा श्रीबीज है। इस प्रकार इसमें आठ अक्षर हैं। ऋचाओं के अक्षर परम व्योम में स्थित देव में व्याप्त हैं। इस ब्रह्म के ज्ञान के बिना कोई लाभ नहीं होता। इसके ज्ञाता परम धाम में आनंद पाते हैं। 'जो लक्ष्मी भूः भुवः स्वः और कालकर्णी नाम की हैं वह हमें प्रेरणा दें। यह यजुर्वेद की महालक्ष्मी गायत्री चौबीस अक्षरों की है। यह जगत गायत्री का ही रूप है। इसके ज्ञान से महान ऐश्वर्य प्राप्त होता है। 'हम नृसिंह को जानते हैं, उस वज्र समान नखोंवाले का ध्यान करते हैं। यह हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे। यह नृसिंह गायत्री ही इन समस्त देवों एवं वेदों की कारण है। इसे जाननेवाला वेद रूप बन जाता है। (1-3)

देवताओं ने प्रजापति ने पूछा, 'किस मंत्र से स्तुति किए जाने पर भगवान प्रसन्न होकर आत्मज्ञान देते हैं? तथा अपना दर्शन देते हैं?' ब्रह्मा बोले, 'जो भगवान नृसिंह ब्रह्मा, भूः, भुवः, स्वः हैं, विष्णु हैं, महेश्वर हैं, पुरुष हैं, ईश्वर हैं, सरस्वती, लक्ष्मी, गौरी, प्रकृति, विद्या, ओंकार, चारों अर्धमात्राएं, वेद, वेदांग शाखाएं, इतिहास इत्यादि सभी हैं, उन भगवान को मैं बार-बार नमस्कार करता हूं। इस प्रकार बत्तीस मंत्रों से जो भगवान की स्तुति करता है, उसे वह अपना स्वरूप दिखाते हैं। ऐसा ही करो। इसे जाननेवाला उन्हें प्राप्त करता है। यही महान ज्ञान का सार है।

पंचम खंड

देवताओं ने पुनः कहा, 'नृसिंह मंत्र के सभी इच्छाओं को पूर्ण करके मोक्ष देनेवाले महाचक्र के विषय में बताएं।' प्रजापति ने कहा, 'यह महाचक्र सुदर्शन चक्र है। यह छः अक्षरोंवाला है। इसमें छः पत्र हैं, जो छः ऋतुओं के प्रतीक हैं। इसकी नाभि से ये चक्र जुड़े हैं। इसकी नेमि माया है। इसके आठ भागों की तुलना अष्टपदा गायत्री से की जाती है। माया ने इन्हें बाहर से घेर कर बारह घेरोंवाला चक्र बनाया है। इसकी समानता बारह अक्षरोंवाले जगती छंद से की जाती है। फिर सोलह घेरोंवाला चक्र बनता है। भगवान भी सोलह कलाओं वाले हैं, अतः यह साक्षात उन्हीं का रूप है। फिर बत्तीस घेरोंवाला चक्र बनता है, इसकी तुलना बत्तीस अक्षरोंवाले अनुष्टुप छंद से होती है। यह बाहर से माया से घिरा है। वेद इसके अर हैं। छंद पत्ते हैं; जिनसे यह सभी ओर घूमता है। (1)

इस सुदर्शन चक्र की नाभि में एक अक्षरवाले नृसिंह के तारक मंत्र का न्यांस करना चाहिए।

छ: पत्तों में षडक्षर सुदर्शन मंत्र का, आठ दलों में अष्टाक्षर नारायण मंत्र का, बारह दलों में बारह अक्षरोंवाले वासुदेव मंत्र का, सोलह दलों में बिंदु सहित मातृकाओं का तथा बत्तीस दलों में मंत्रराज अनुष्टुप का न्यास करना चाहिए। यह अनुष्टुप मंत्र सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला, मोक्ष देनेवाला तथा ऋक, साम एवं यजुर्वेदमय है। अतः यह अमृतमय है। इसके पूर्व, पश्चिम, उत्तर एवं दक्षिण में क्रमशः आठ वसु, बारह आदित्य, विश्वेदेव तथा एकादश रुद्र रहते हैं। नाभि में ब्रह्मा, विष्णु, महेश तथा बगलों में सूर्य एवं चंद्र रहते हैं। ऋचाओं में भी कहा गया है—'भगवान नृसिंह परम व्योम में रहते हैं और उन्हीं में सभी देवता स्थित हैं। अतः जो इन्हें नहीं जानता, उसे ऋचा पढ़ने से कोई लाभ नहीं है। इन्हें तथा इस महा सुदर्शन चक्र का ज्ञाता यदि बालक अथवा युवक भी है, तो वह महान है और गुरु के समान है। अनुष्टुप मंत्र से हवन तथा महाचक्र राक्षसों और मृत्यु के भय से रक्षा करता है। इसे गुरु से मंत्र रूप में लेकर कंठ, बाजू या शिखा में बांधें। इस मंत्र के उपदेशक गुरु को दक्षिणा में यदि सातों द्वीपोंवाली पृथ्वी भी दे दी जाए, तो यह कम ही हैं। अतः श्रद्धानुसार जो कुछ भी दिया जाए, वह उचित है। (2)

देवताओं द्वारा पूछे जाने पर प्रजापति ने इस मंत्र का फल इस प्रकार बताया कि इस मंत्र को नित्य जपनेवाला अग्नि के समान, वायु के समान, आदित्य, सोम, सत्य, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र आदि सभी देवताओं के समान पवित्र हो जाता है। (3)

□

84. नृसिंह षट्चक्रोपनिषद

देवताओं ने सत्य के समान समस्त लोकों में व्यापक प्रजापति से नरसिंह चक्र के विषय में जानना चाहा। तब प्रजापति ने इस विषय में उन्हें बताया कि नरसिंह चक्र छ: हैं। इनमें प्रथम एवं द्वितीय चक्र में चार-चार अरे हैं, तीसरे चक्र में आठ तथा चौथे चक्र में पांच अरे हैं। पांचवें चक्र में पांच तथा छठे में आठ अरे हैं। इनके नाम क्या हैं? इस पर प्रजापति ने बताया कि इनमें पहला आचक्र, दूसरा सुचक्र, तीसरा महाचक्र, चौथा सकल लोक चक्र, पांचवां घूत चक्र तथा छठा असुरांतक चक्र है। नरसिंह चक्रों के यही छ: नाम हैं। इनके तीन वलय क्या हैं? इसका उत्तर इस प्रकार है कि प्रथम अंतर वलय है, दूसरा मध्यम वलय तथा तीसरा बाह्य वलय है। इन तीनों वलयों में मध्यम वलय बीज हैं। यही नरसिंह गायत्री है। बाह्य वलय मंत्र है। आंतरिक वलयों की संख्या छ: है। इनमें प्रथम नरसिंह वलय, दूसरा महालक्ष्मी वलय, तीसरा सरस्वती वलय, चतुर्थ काम वलय, पांचवां प्रणव वलय तथा छठा क्रोध दैवत वलय है। ये छ: नरसिंह चक्रों के छ: आंतरिक वलय हैं। (1-4)

मध्यम वलय कितने हैं? मध्यम वलय भी छ: ही हैं। 'नारसिंहाय' प्रथम चक्र का मध्यम वलय हैं, 'विद्म हे' दूसरे चक्र का, 'वज्रनखाय' तीसरे चक्र का, चतुर्थ चक्र का 'धीमहि', 'तन्न:' पांचवें चक्र का तथा 'सिंह: प्रचोदयात' छठे चक्र का मध्यम वलय है। ये ही नरसिंह चक्रों के छ: मध्यम वलय हैं। बाह्य वलय क्या हैं? छ: ही बाह्य वलय हैं। आचक्र आत्मा है, यह प्रथम का बाह्य वलय है। सुचक्र प्रियात्मा है, यह द्वितीय का बाह्य वलय है। महाचक्र ज्योति आत्मा है, जो तीसरे चक्र का बाहरी वलय है। सकल लोक रक्षण-चक्र है, जो चौथे का बाह्य वलय है। आचक्र योगात्मा है, यह पांचवें का तथा सुरांतक चक्र सत्यात्मा है, जो छठे का ब़ाह्य वलय है। ये छ: नरसिंह चक्रों के बाह्य वलय हैं। (5-6)

इनका न्यास कहां करना चाहिए—प्रथम चक्र का न्यास हृदय में करना चाहिए (इसे हृदय में रखना चाहिए)। दूसरे को सिर में, तीसरे को शिखा में, चतुर्थ को सभी अंगों में, पांचवें तथा छठे को सभी स्थानों में धारण करना चाहिए। इन छ: नरसिंह चक्रों को इन स्थानों में धारण करनेवाले को यह मंत्रराज अनुष्टुप सिद्ध हो जाता है। उस पर भगवान नरसिंह प्रसन्न होते हैं। उसे कैवल्य की प्राप्ति होती है। सभी लोक और सभी प्राणी उसके वश में हो जाते हैं। इन नरसिंह चक्रों का यहां बताए गए अनुसार अंगों में न्यास करना पवित्रता देनेवाला है। इससे साधक को ब्रह्म-ज्ञान की प्राप्ति होती है। इस प्रकार इनका अंगन्यास न करने पर भगवान नृसिंह प्रसन्न नहीं होते तथा कर्म में सिद्धि नहीं मिलती। इस नरसिंह चक्र का अध्ययन करनेवाले को वेदों के अध्ययन का ज्ञान हो जाता है। वह सभी यज्ञों को करनेवाले के समान हो जाता है। वह सभी तीर्थों में स्नान का फल प्राप्त करता है। उसे सभी मंत्रों में सिद्धि प्राप्त हो जाती है। उसका सारा शरीर पवित्र हो जाता है। वह सबका रक्षक हो जाता है। वह भूत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी, प्रेत आदि अधम एवं भयानक योनियों का नाश करने में समर्थ हो जाता है। इस प्रकार वह निर्भय हो जाता है। अत: इसका उपदेश श्रद्धाहीन व्यक्ति को कदापि नहीं देना चाहिए। (7-8)

☐

85. दक्षिणामूर्ति उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

'परमात्मा हम दोनों (गुरु एवं शिष्य) की एक साथ रक्षा करे, एक साथ हमें उपभोग प्रदान करे। हम साथ पराक्रम करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो, हम द्वेष न करें।'

ब्रह्मावर्त में महाभांडीर नामक वट के वृक्ष के नीचे महासत्र यज्ञ के लिए शौनक आदि ऋषि एकत्रित हुए थे। तत्त्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वे सब हाथों में समिधाएं लेकर चिरकाल तक जीवित रहनेवाले महर्षि मार्कंडेय के पास पहुंचे और उन्होंने पूछा, 'आप इतने लंबे समय से कैसे जीवित हैं? और कौन-सा ऐसा कारण है कि आप सदा आनंद का ही अनुभव करते हैं?' इस पर महर्षि मार्कंडेय ने बताया कि परम गोपनीय शिव तत्त्व का ज्ञान ही इस सबका कारण है। शौनक आदि ऋषियों ने पुनः प्रश्न किया, 'यह परम रहस्य शिव तत्त्व का ज्ञान क्या है? इसका देवता कौन है? मंत्र क्या है? आस्था क्या है? इस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए क्या-क्या साधन चाहिएं? इनमें क्या सामग्री चाहिए? इसके लिए समय कैसा होना चाहिए तथा उसकी प्राप्ति का स्थान क्या है?'—'जिससे दक्षिणामुख शिव के प्रत्यक्ष दर्शन हो जाते हैं, वही परम रहस्य शिव तत्त्व का ज्ञान है।' मार्कंडेय बताने लगे, 'जो इस सृष्टि की समाप्ति के समय इस संपूर्ण चराचर को अपने में लीन कर लेता है और स्वयं अपने आत्मा के आनंद के सुख से प्रसन्न रहता है वही स्वयं प्रकाशित होनेवाला इस तत्व ज्ञान का देवता है। (1-5)

'इस मंत्र के रहस्य को प्रकट करनेवाले श्लोक इस प्रकार हैं। इस मेधा दक्षिणामूर्ति मंत्र के ऋषि ब्रह्मा हैं, इसका छंद गायत्री है और देवता दक्षिणा मुख हैं उपासना में मंत्र द्वारा अंगन्यास करना चाहिए। (6)

दक्षिणामूर्ति मंत्र—

'इस मंत्र के प्रारंभ में 'ॐ' का उच्चारण करना चाहिए। इसके बाद 'नमः' कहना चाहिए। तब 'भगवते' शब्द कहना चाहिए। फिर 'दक्षिणा' के बाद 'मूर्त' शब्द रखें। इसके पश्चात 'मह्यम', 'प्रज्ञा' इन दो शब्दों को कहें। अब 'प्र' अक्षर रखें। इसके बाद वायु का बीजाक्षर (य) आएगा। वायुबीज के बाद 'च्छ' रखें अंत में अग्नि की पत्नी को रखें (अर्थात स्वाहा शब्द आएगा। स्वाहा अग्नि की पत्नी है)। यह चौबीस अक्षरों का मनुमंत्र कहा जाता है। (7)

'इन मंत्रों को सबके सामने उच्चारित नहीं किया जाता, संभवतः इसी उद्देश्य से सीधे मंत्र को न बताकर अप्रत्यक्ष रूप में कहा गया है। इन बताए गए शब्दों को एक साथ लिखने पर यह मंत्र बन

जाता है। इसी प्रकार इससे पूर्व मंत्रराज नरसिंह अनुष्टुप मंत्र में भी किया गया है। यह मंत्र इस प्रकार बनता है—

'ॐ नमो भगवते दक्षिणामूर्तए मह्यं मेधां प्रयच्छ स्वाहा।'

'इसका ध्यान इस प्रकार करें—यह दक्षिणामूर्ति, चांदी एवं स्फटिक की माला के समान स्वच्छ है। इसके हाथ में ज्ञान-मुद्रा तथा अमृत-कलश रूपी विद्या तथा मोतियों की माला है। इसके शरीर में सांप लिपटे हैं, सिर पर अर्धचंद्र है तथा तीन आंखें हैं। यह प्रशंसनीय दक्षिणामूर्ति विविध वेषों को धारण करती है। (8)

'**न्यास**—न्यास में पहले वेदों के आदि अक्षर अर्थात् 'ॐ' का उच्चारण करें। इस 'ओम' (अ उ म) में 'अ' के स्थान पर अः कहें अर्थात् इसे अः उम कहें। इसके बाद पंचवर्ण का उच्चारण करें। ('दक्षिणामूर्तिः' कहें)। फिर अतरः के बाद अंत में ॐ कहें। यही नौ अक्षरों का मनुमंत्र है। (दक्षिणामूर्तिरतर ॐ) । (9)

'ऐसे आदि भगवान शंकर हमारी भावनाओं को शुद्ध करें जो शुकदेव आदि ऋषियों से घिरे रहते हैं, जिनका एक हाथ अभयदान की मुद्रा में रहता है, जिनके अन्य दो हाथों में परशु एवं हरिण है, जिनका एक हाथ जानु पर है, सर्पों से लिपटे हैं, जो वट के नीचे बैठे हुए हैं, दूज के चंद्रमा से जिनकी जटाएं शोभा पा रही हैं, जो दूध के समान गोरे तथा तीन आंखोंवाले हैं। (10)

'फिर 'ॐ ब्लूं नमः' कहकर 'ह्रीं' 'ऐं' के बाद 'दक्षिणा' और 'मूर्तए' कहें। फिर 'ज्ञानं' 'देहि' कहकर अंत में अग्नि पत्नी का नाम लें (स्वाहा कहें) पूरा मंत्र इस प्रकार होगा—'ॐ ब्लूं नमः ह्रीं ऐं दक्षिणामूर्तए ज्ञानं देहि स्वाहा'— यह गोपनीय अठारह अक्षरोंवाला मनुमंत्र है। इसका ध्यान इस तरह करें—जो भस्म से सफेद शरीरवाले, चंद्र खंड धारण किए हुए, ज्ञान मुद्रा तथा अक्षमाला धारण किए हुए हैं। वीणा, पुस्तक एवं योगपट्ट से युक्त हैं। जो व्यास पीठ पर बैठे हैं और मुनि जिनकी सेवा कर रहे हैं, जो प्रसन्न हैं तथा सांपों के निवास-स्थान हैं, वह दक्षिणामूर्ति सदा हमारी रक्षा करें।(11-13)

'पहले तार (ॐ), परा (ह्रीं) तथा रमा बीज (श्रीं) कहें। फिर 'सांबशिवाय' कहें। अब तुभ्यं तथा अंत में अग्नि-पत्नी (स्वाहा) कहें। पूरा मंत्र ऐसे बनेगा—'ॐ ह्रीं श्रीं सांब शिवाय तुभ्यं स्वाहा'। यह बारह अक्षर मनुमंत्र है। इसमें इस प्रकार ध्यान करें—हाथों में वीणा, पुस्तक एवं अक्षमाला धारण करनेवाले, नीले मेघ के समान शोभावाले, श्रेष्ठ सर्पों के निवास, शुकदेव आदि मुनियों द्वारा सेवित और बरगद के नीचे बैठे हुए शिव की स्तुति करता हूं। (14-15)

इस मंत्र के ऋषि, छंद तथा देवता क्रमशः विष्णु, अनुष्टुप तथा दक्षिणा हैं। मंत्र से इसका न्यास करना चाहिए। इसमें 'ॐ नमो भगवते तुभ्यं' के बाद क्रमशः 'वट' 'मूल' तथा 'वासिने' कहें, फिर क्रमशः 'वागीशाय', 'महाज्ञान', 'दायिने', 'मायिने' और 'नमः' रखें। पूर्ण मंत्र इस प्रकार होगा—'ॐ नमो भगवते तुभ्यं वटमूलवासिने वागीशाय महाज्ञानदायिने मायिने नमः।' यह सभी मंत्रों में श्रेष्ठ मंत्रों का राजा अनुष्टुप मंत्र है। इसका ध्यान इस प्रकार करें—मुद्रा, पुस्तक, अग्नि तथा नागों से सुशोभित हाथोंवाले, प्रसन्न मुख, मुक्ता हार के भूषणवाले, चंद्रमा की चमकती कला के

मुकुटवाले, अज्ञान के नाशक, आदि पुरुष, अवर्णनीय, भवानी के पति, बरगद के नीचे रहनेवाले तथा परम गुरु रूपी दक्षिणामूर्ति का मैं अपनी इच्छा को पूरा करने के लिए ध्यान करता हूं। (16-19)

'शरीर के रहने पर ही 'सोऽहम्' के ज्ञान से जिस ब्रह्म का संकेत होता है, यही ब्रह्म निष्ठा है। यहां बताए गए मंत्रों को इस ब्रह्म से अलग न मानकर इनका बार-बार उच्चारण करना ही शिव-तत्त्व की प्राप्ति का साधन है। चित्त को उससे एकरूप कर देना ही परिकर (उपकरण) है। इसके लिए की जानेवाली शरीर की चेष्टाएं ही बलि हैं। स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण तीन धाम ही इसके लिए समय हैं। हृदय का सहस्त्र दल कमल ही इसका स्थान है। (20-25)

श्रद्धा सहित उन ऋषियों ने पुनः पूछा, 'इसका उदय कैसे होता है ? इसका स्वरूप क्या है ? तथा इसका उपासक कौन है ? महर्षि मार्कंडेय बोले, 'वैराग्यरूपी तेल से भरे हुए, ज्ञानरूपी पात्र में भक्ति की बत्ती जलाकर इसे अपने आत्मा में देखें। तब अज्ञानरूपी अंधकार के नष्ट होने पर इसका उदय स्वयं ही हो जाता है। वैराग्य को अरणी तथा ज्ञान को घिसनेवाली दूसरी अरणी बनाएं। इन दोनों के घर्षण से मोह के नष्ट होने पर गोपनीय रहस्य स्वयं ही प्रकट हो जाता है। घने मोह के अंधकार को नष्ट करने के लिए गूढ़ अर्थ का चिंतन करें तथा इससे ढके हुए विवेक रूपी सूर्य को प्रकट करें। अज्ञान के बंधन से बंधे हुए इस भयभीत जीव को ज्ञान से ही उसके दर्शन होते हैं तथा ज्ञान पर वह अपने वास्तविक रूप में स्थित हो जाता है। यह ब्रह्म का दर्शन करानेवाली बुद्धि ही दक्षिणा है। यही ब्रह्म का दर्शन कराने का मार्ग; अर्थात् मुख भी है। अतः शिव दक्षिणामुख भी कहलाते हैं। सृष्टि से पूर्ण इस मूर्ति की उपासना से ही ब्रह्मा ने सृष्टि करने की शक्ति प्राप्त की। इसी से उनकी इच्छा पूर्ण हुई, अतः वह इसी के उपासक हैं। जो इस परम रहस्य शिव-तत्त्व विद्या का अध्ययन करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। जो इसे जानता है, वह कैवल्य प्राप्त करता है।' (26-33)

□

86. शरभ उपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

'हम कानों से कल्याणमय शब्द सुनें और नेत्रों से कल्याणमय दृश्य देखें। स्वस्थ अंगों से तुम्हारी स्तुति करें। देवताओं द्वारा दी हुई आयु का उपभोग करें। यशस्वी इंद्र, सर्वस्व ज्ञाता पूषा, अमंगलनाशक गरुड़ तथा बृहस्पति हमारा कल्याण करें। तीनों तापों की शांति हो।'

पिप्पलादि ऋषि ने ब्रह्माजी से पूछा कि 'ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र के बीच में अधिक ध्यान करने योग्य कौन है?' इस पर ब्रह्माजी ने बताया, 'मेरे शब्दों को ध्यान से सुनो। मैं जिस परमेश्वर के शरीर से उत्पन्न हुआ हूं, वह अनंत पुण्यों के फलस्वरूप ही प्राप्त हो सकता है। विष्णु, इंद्र आदि भी मोहवश उसे नहीं जानते। वही वरण करने योग्य है, वही सबका पिता तथा परम ईश्वर है, वही ब्रह्मा को धारण करता है। सभी वेदों का निर्णय करता है तथा वही सभी देवताओं का पिता है। वह मेरा और विष्णु का भी पिता है। वह प्रशंसनीय अंतकाल में सभी लोकों का संहार करता है। वही एक सब पर शासन करनेवाला श्रेष्ठ तथा वरिष्ठ है। वही भयंकर रूप धारण करनेवाला महेश्वर है, जिसने लोकों के हत्यारे नृसिंह को मार डाला। जब रुद्र हरि को पैर पकड़कर ले जा रहे थे, तो देवताओं ने उनसे प्रार्थना की कि माधव पुरुष विष्णु का वध न करो, आप महान हैं। उन्होंने अपने नाखूनों से विष्णु को विदीर्ण किया। तब वह चर्म का वस्त्र पहननेवाले रुद्र महावीर एवं वीरभद्र के नाम से प्रसिद्ध हुए। (1-6)

'सभी कार्यों की सिद्धि के लिए एक रुद्र का ही ध्यान करना चाहिए। जो ललाट से उत्पन्न अग्नि से विश्व को भस्म करता है और पुनः सृष्टि करके उसका पालन करता है, उस रुद्र को नमस्कार है। जिसने बाएं पैर से काल को मार डाला तथा जलते हुए हलाहल विष को पी लिया, उस रुद्र को नमस्कार है। जिसके बाएं पैर में विष्णु ने पूजा में अपनी आंख चढ़ा दीं और इस पर प्रसन्न होकर जिसने विष्णु को सुदर्शन चक्र दे डाला, उस रुद्र को नमस्कार है। जिसने दक्ष के यज्ञ में देवताओं के समूह को जीतकर विष्णु को नागपाश से बांध डाला, उस रुद्र को नमस्कार है। जिसने सरलता से त्रिपुर को भस्म कर डाला, सूर्य, चंद्रमा और अग्नि जिसकी तीन आंखें हैं, जिसके सामने देवता भी पशुओं के समान आज्ञाकारी हो गए, अतः वह पशुपति कहलाए। उस रुद्र को नमस्कार है। जो मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन आदि अवतारों के लिए विष्णु को क्रम देता है, जिसने पीड़ित किए जाने पर कामदेव को भस्म कर डाला, उस रुद्र को नमस्कार है। इस प्रकार देवताओं द्वारा स्तुति किए जाने पर नीलकंठ महादेव ने दैविक, दैहिक तथा भौतिक, इन तीनों कष्टों, मृत्यु, वृद्धावस्था आदि दुःखों से देवताओं को मुक्त कर दिया। वही सभी प्राणियों का आत्मा है। वही भगवान शंकर स्वर्ग लोक, प्रजा आदि सबके रक्षक हैं। (7-15)

'विष्णु भी जिनके चरण कमलों को प्राप्त करने के लिए स्तुति करते हैं, वह भगवान महादेव मन एवं वाणी से अगोचर हैं। ऐसे भगवान शंकर नमस्कार करने पर विष्णु पर प्रसन्न हुए। जिसे प्राप्त न करके मन वाणी के साथ लौट आता है, उस आनंदस्वरूप ब्रह्म को जाननेवाला विद्वान भयभीत नहीं होता। वह अणु से भी छोटा तथा महान है और प्राणियों की हृदय गुहा में रहता है। उस साक्षी ब्रह्म को ईश्वर की कृपा से शोकरहित साधक देखता है। वशिष्ठ, शुकदेव, वामदेव आदि ऋषि तथा ब्रह्मा आदि सभी देवता हृदय में उनका ध्यान करते हैं। सनत, सुजात आदि उनके नाम की स्तुति करते हैं। वह महेश, सत्य, साक्षी, नित्य, आनंदस्वरूप तथा निर्विकल्प (जिनके स्थान पर किसी दूसरे को नहीं रखा जा सकता) हैं। अचिंतनीय शक्तिवाले उस भगवान गिरीश की अपनी बुद्धि के अनुसार सभी कल्पना करते हैं। (16-20)

'उनकी माया का मैं (ब्रह्मा) तथा विष्णु भी पार नहीं पा सकते। इस दुस्तर माया को उन्हीं की कृपा से पार किया जा सकता है। विष्णु सारे जगत के कारण हैं, वह अपने-मेरे अंशों से विश्व का पालन करते हैं। समय आने पर सब कुछ नष्ट हो जाता है, अतः यह समस्त जगत मिथ्या है। इस सब जगत को ग्रास बनानेवाले महादेव, शूलपाणि, महेश्वर, मृड (प्रशंसनीय) रुद्र के लिए नमस्कार है। सृष्टि में विष्णु सबसे पृथक और महान हैं। वे समस्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करके प्राणियों के आत्मा में रहते हुए विश्व का उपभोग करनेवाले अविनाशी हैं। जिस विष्णु को क्रमशः चार, चार, दो और पांच आहुतियां दी जाती हैं, वह मुझ पर प्रसन्न हों। (21-25)

'हवि ब्रह्म है, जिसे ब्रह्मरूपी होता द्वारा ब्रह्मरूपी अग्नि में ब्रह्म के लिए डाला जाता है। समाधि में लगे हुए योगी के लिए ब्रह्म ही जानने योग्य है। समाधि भी ब्रह्म कर्म है। जीव ही 'शर' है, जिसमें भगवान हरि सदा प्रकाशित होते हैं। अतः ब्रह्म ही शरभ है। वह साक्षात मोक्ष देनेवाला है। माया के कारण देवता भी मोहित रहते हैं। उसकी महिमा के विषय में कोई भी लेशमात्र नहीं बता सकता। पर से परब्रह्म, परब्रह्म से परमहरि हैं। ईश्वर सबसे बड़ा है। उसके समान कोई भी नहीं है। एक शिव ही सदा रहनेवाला है, अन्य सब झूठ है, अतः विष्णु आदि सभी देवताओं को त्यागकर सदाशिव का ही ध्यान करना चाहिए, वही संसार से मुक्ति देनेवाले हैं। उस महासंहारक को नमस्कार है। (26-31)

'इस पैप्पलादि महाशास्त्र का उपदेश किसी को नहीं देना चाहिए। नास्तिक, अहंकारी, निर्दयी, दुष्ट, असत्यवादी आदि को इसे कभी नहीं देना चाहिए। इसे सच्चरित्र, गुरुभक्त, सुशील, शांत, दांत, सरल लोगों को देना चाहिए। शिवभक्त, ब्रह्मकर्म में लगे हुए, उपकार माननेवाले लोग इसको प्राप्त करने के अधिकारी हैं। इसे देने योग्य पात्र न मिले, तो इसे गोपनीय रखना चाहिए। इस पैप्पालादि महाशास्त्र का अध्ययन करनेवाला तथा दूसरों को सुनानेवाला जन्म-मरण चक्र से मुक्त हो जाता है। इसका ज्ञाता अमृतत्व प्राप्त करता है। वह गर्भवास से मुक्त हो जाता है। सुरापान, सोने की चोरी, ब्रह्महत्या एवं गुरुपत्नी-गमन, इन पांच महापापों से शुद्ध हो जाता है। उसे सभी वेदों के अध्ययन का फल मिलता है। वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। इन सभी पापों एवं उत्पातों से मुक्त होकर वह भगवान शिव की समीपता प्राप्त करता है। वह फिर इस संसार में जन्म लेकर कभी लौटकर नहीं आता।

□

87. रुद्रोपनिषद

विश्वमय ब्राह्मण शिव के पास जाता है। उसे पंचाक्षर मंत्र (नमः शिवाय) का अनुभव होता है। ब्राह्मण शिव पूजा में लगा है। शिव भक्ति से विहीन ब्राह्मण, चांडाल या उपचांडाल के समान है। अधम चांडाल भी यदि शिव भक्त है, तो वह उस ब्राह्मण से श्रेष्ठ है। ब्राह्मण त्रिपुंड धारण करनेवाला होता है। शिव भक्ति से ही वह ब्राह्मण कहा जाता है। शिवलिंग की पूजा करनेवाले चांडाल के हाथ की विभूति शुद्ध होती है। गृहस्थों को सफेद विभूति धारण करनी चाहिए। तपस्वी सभी प्रकार की विभूति धारण कर सकते हैं। शिव भक्ति से युक्त विभूति देवता भी धारण करते हैं।

अग्नि, वायु, भूमि, जल और आकाश सब भस्म के रूप में हैं। इस रहस्य को समझकर इसे धारण करना चाहिए। वह ईश्वर विश्व (चारों ओर) आंखोंवाला, विश्व मुख, विश्व हस्त (चारों ओर हाथोंवाला) तथा विश्व पाद (चारों ओर पैरोंवाला) है। इस समस्त ब्रह्मांड एवं पृथ्वी को उत्पन्न करने वाला वह ईश्वर अपने हाथों से इसे झुका देता है। अतः प्राण ही शिव है। जटा एवं भस्म धारण करने पर भी वह प्राणलिंग शिव श्रेष्ठ है। जंगम (चलनेवाले प्राणी) ही शिव तथा शिव ही जंगम है। प्राणलिंगियों के पूज्य तपस्वियों में श्रेष्ठ शिव का भक्त है। चांडाल प्राणलिंगी है, अतः वह श्रेष्ठ है। इसे जाननेवाला शिव ही है। वह रुद्र या शिव कोई अन्य नहीं, प्राणलिंगी ही हैं।

यह आत्मा परम अद्वैत शिव ही है। यही शिव गुरु तथा गुरुओं का भी गुरु है। यह समस्त विश्व, विश्व मंत्र समझकर ही धारण करना चाहिए। यह जगत दैव (प्रारब्ध) के अधीन है। दैव मंत्रों को फैलाता है। अतः यह दैव ही मेरा गुरु है। गुरु द्वारा दिया गया यह अन्न परम ब्रह्म है। ब्रह्म स्वयं की अनुभूति द्वारा ही जाना जाता है। भगवान शिव गुरु हैं। गुरु शिव ही लिंग (ब्रह्म के सूचक चिह्न) हैं। दोनों के एक रूप में होने से तथा प्राण रूप होने से शिव ही गुरु हैं। जहां गुरु हैं, वहीं शिव हैं। शिव गुरुरूपी महान ईश्वर हैं। भ्रमर कीट के कार्य के समान, निरंतर शिव की पूजा में लगे हुए गुरु के समान पूजा करने से मुक्त होकर शिव के समान हो जाते हैं। भ्रमर कीट कार्य-भृंगी नामक कीड़ा अन्य कीड़ों को पकड़कर अपने घर में ले जाता है, अतः पकड़कर लाया हुआ कीड़ा भय से भृंगी को देखता रहता है। धीरे-धीरे उसे देखते रहने से उसका भय दूर हो जाता है। शिवलिंग को जल चढ़ाने से सारे पाप धुल जाते हैं। उनको संतुष्ट रखना शिव को संतुष्ट रखना है। उनके साथ रहना भी पवित्रता देता है। उनका अनादर शिव का अनादर है। अतः परम आनंद के घर शिव के पास जाना चाहिए। अतः इस परम पावन गुरु रूप शिव की शरण लें।

□

88. कालाग्नि रुद्रोपनिषद

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्य करवावहं।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः

इस कालाग्नि रुद्र उपनिषद के ऋषि, छंद और देवता क्रमशः संवर्तक अग्नि, अनुष्टुप, कालाग्नि रुद्र हैं। श्री कालाग्नि रुद्र की प्रसन्नता के लिए इसका विनियोग किया जाता है। कालाग्नि रुद्र से सनत्कुमार ने पूछा कि त्रिपुंड की विधि एवं तत्त्व क्या है ? इसमें क्या पदार्थ होता है ? कितना स्थान होता है ? कितना प्रमाण तथा कितनी रेखाएं हैं ? इसके मंत्र, देवता, शक्ति, कर्ता तथा फल कौन और क्या हैं ? इस पर भगवान कालाग्नि रुद्र ने बताया, 'अग्निहोत्र की भस्म ही त्रिपुंड का पदार्थ है। इसे 'सद्योजात' आदि पांच मंत्रों से ग्रहण करना चाहिए। इसके बाद 'अग्निरिति भस्म' इत्यादि मंत्र से इसे अभिमंत्रित करें फिर 'मानस्तोक' इस मंत्र से अंगुलियों में लें और 'मा नो महान' इस मंत्र से जल लेकर मिलाएं 'त्रयायुष जमदग्नेः' इस मंत्र से इसे सिर, ललाट तथा वक्ष (सीने में) में लगाएं। 'त्रयायुष' तथा त्रयंबक मंत्र से माथे से तीन रेखाएं लगाना ही शांभव व्रत कहा जाता है। इसका सभी वेद के जाननेवालों ने उल्लेख किया है। अतः मोक्ष के इच्छुक पुनर्जन्म से छुटकारा पाने के लिए इसे धारण करें। (1-3)

फिर सनत्कुमार ने इसका प्रमाण कितना होना चाहिए, इस विषय में पूछा तब कालाग्नि रुद्र ने बताया, 'त्रिपुंड की तीन रेखाओं में प्रथम रेखा गार्हपत्य अग्नि, रजोगुण, ओम् का 'अ' भूलोक, स्वात्मा, क्रियाशक्ति, ऋग्वेद, प्रातः सवन तथा महादेवी का रूप है। दूसरी रेखा दक्षिणाग्नि, ओम का 'उ' सत्त्वगुण, अंतरात्मा, इच्छाशक्ति, माध्यंदिन सवन, यजुर्वेद तथा सदाशिव का रूप है। तीसरी रेखा आह्वनीय अग्नि, 'म', तमोगुण, परमात्मा, ज्ञानशक्ति, सामवेद तृतीय सवन तथा महादेव रूप है। इस प्रकार कोई भी ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ या संन्यासी भस्म धारण कर सकता है। ऐसा करने वाला सभी महापापों से छूट जाता है। वह तीर्थ स्नान का फल प्राप्त करता है। वह सभी वेदों तथा देवताओं का ज्ञाता हो जाता है। सभी भोगों को भोगने के बाद उसे शिवलोक की प्राप्ति होती है। उनका फिर जन्म नहीं होता।' ऐसा कालाग्नि रुद्र ने कहा है। इसका अध्ययन करनेवाला उसी के समान बन जाता है। (4-9)

☐

89. नील रुद्रोपनिषद

प्रथम खंड

हे नीलकंठ ! मैंने स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरते हुए आपको देखा। मैंने आपको उग्र रूप में मोरपंख का मुकुट पहनकर पृथ्वी में उतरकर यहीं रहते हुए दुष्टों का संहार करते हुए देखा। इन भगवान का कंठ नीला है। इनका वर्ण विशेष प्रकार से लालिमा लिया हुआ है। यही जल के रूप में सभी औषधियों में व्याप्त हैं तथा रोग रूपी पापों को नष्ट करते हैं। यह प्राणियों के प्राण, सभी अमंगलों को दूर करने तथा इच्छाओं को पूर्ण करने के लिए आपके पास आएं।

हे समस्त विश्व के भावनास्वरूप ! संसार के क्रोध रूप ! तुम्हें हमारा नमस्कार है। तुम्हारी दोनों भुजाओं में धारण किए हुए इस धनुष को भी हम नमन करते हैं। हे हिमालय वासी ! जिस बाण को हाथ में रखते हुए आप विश्व को धारण करते हुए उसकी रक्षा करते हो, यह बाण केवल दुष्टों का विनाश करने के लिए है। इसे हमारे ऊपर मत छोड़िए। हे गिरीश ! हम अपनी मंगलमयी वाणी से आपका यशोगान करते हैं। इसी से यह जगत समस्त दुःखों से मुक्त होकर प्रसन्न रहता है।

हे मृड ! (प्रशंसा करने योग्य, शिव) तुम्हारा बाण अत्यंत कल्याणकारक है, तुम्हारा धनुष भी शिव (मंगलमय) है। आपके धनुष की डोर भी शुभ करनेवाली है। इन सबसे आप हमें जीवन देते हैं। पर्वतों में रहने पर भी आप सबका कल्याण करते हैं। आपकी जो घोर तथा पापनाशिनी मूर्ति है, वह तांबे के रंग की, लाल, भूरी तथा विशेष लाल अनेक रंगों की है। इससे आप चारों ओर प्रकाश कीजिए। हम इस मूर्ति की स्तुति करते हैं।

द्वितीय खंड

हे नीलकंठ शिव ! हमने आपके विलोहित (विशेष लाल) रूप को स्वर्ग से पृथ्वी पर उतरते हुए देखा। आपके उस अवतार को ग्वालों ने देखा फिर इस रूप को सभी प्राणियों ने देखा। इस नीली शिखाधारी कृष्ण अवतार को तथा हजारों नेत्रोंवाले वज्रधारी इंद्र, इन दोनों रूपों में आपको नमस्कार है। आपके शक्तिशाली अस्त्र-शस्त्रों को भी नमस्कार है। आपके धनुष को भी नमस्कार है। इन्हें शांत रखिए। इस बाण को हाथ से हटाकर तरकस में रख लीजिए। अपने मंगलमय सौम्य तथा शिव स्वरूप में दर्शन दीजिए।

आप सैकड़ों बाणों को एक साथ छोड़ते हैं। इन पैने मुखोंवाले बाणों को आप हमारे शुभ के लिए ही धनुष पर चढ़ाएं। शत्रुओं के संहार के पश्चात आपके धनुष की डोर ढीली हो जाए और तीर तरकस में शांत हो जाएं। पर्वतों को भी आपके बाण चूर-चूर कर देते हैं। कृपया इन्हें शांत करें। ये हमारी चारों ओर से रक्षा करते हैं। इनके द्वारा हमारे रक्षक रूप में है। पृथ्वी में रहनेवाले सर्पों को नमस्कार। अंतरिक्ष में तथा स्वर्ग में रहनेवाले सर्पों को भी हम नमस्कार करते हैं। चारों ओर

रहनेवाले सूर्य की किरणों में रहनेवाले, जल में रहनेवाले, तथा वनस्पतियों में रहनेवाले सर्पों को नमस्कार है। जो सर्प राक्षसों को बाणों के रूप में रहते हैं, उन्हें भी नमस्कार है।

तृतीय खंड

जो भगवान् शिव अपने भक्तों के लिए विष पीकर नील कंठवाले हो जाते हैं। जो विश्व के कल्याण के लिए हरिरूप में अवतार लेते हैं तथा अपने भक्तों के दुःखों को दूर करने के लिए अरुंधति रूप धारण करते हैं, उस कल्माष पुच्छ (काली पूंछवाले) भगवान् केदार नाथ के लिए हे औषधि, शांति देनेवाली बनो।

वह भगवान शिव पिंगल रंग के हैं। वह नीलकंठ ही गभ्रू एवं कर्ण हैं। वही वायु रूप में सर्वत्र व्याप्त हैं। उसी भयंकर नेत्रोंवाले शिव द्वारा सभी प्राणियों एवं देवताओं का भी संहार हुआ। अतः संसार के प्रत्येक कार्य में उन्हीं को देखना चाहिए।

इस शिव से ही समस्त प्राणियों की उत्पत्ति हुई। हम उसी की स्तुति करते हैं। उस भव को नमस्कार है। उस कामदेव के शत्रु को नमस्कार है। इस विश्वरूपी सभा को बनानेवाले शिव को नमस्कार है। उसी से अश्व, खच्चर, गदर्भ आदि की उत्पत्ति हुई। उस नीले मुकुट धारण करनेवाले को नमस्कार है।

□

90. रुद्र हृदयोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

'परमात्मा हम (गुरु-शिष्य) की साथ ही रक्षा करे। हम साथ-साथ उपभोग एवं वीरता के कार्य करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो। हम परस्पर विद्वेष न करें। तीनों प्रकार के दुःख शांत हों।'

रुद्र हृदय, कुंडली, भस्म, रुद्राक्ष तथा गणति, ये पांच उपनिषद् प्रणव के मूल तत्त्व को कहनेवाले हैं। इन्हें महावाक्य तथा ब्रह्म-ज्ञान के अग्निहोत्र मंत्र भी कहा जाता है। एक बार अपने पिता महर्षि व्यास के चरणों में प्रणाम करके श्री शुकदेव ने निवेदन किया कि समस्त वेदों में किस ईश्वर की महिमा कही गई है ? सभी देवताओं में तथा सभी ओर कौन व्याप्त है ? तथा किस ईश्वर की भक्ति से सभी देवता उन पर (शुकदेव पर) प्रसन्न हो जाएंगे ? उनके इन शब्दों को सुनकर महर्षि व्यास ने बताया, 'सभी देवताओं का आत्मा रुद्र है तथा सभी देवता शिव के ही अंश हैं। उनकी दाहिनी ओर सूर्य, ब्रह्मा तथा तीनों अग्नियां हैं। बायीं ओर उमा, विष्णु तथा चंद्रमा हैं। ये तीनों एक ही हैं; उमा विष्णु हैं और विष्णु स्वयं चंद्रमा हैं। जो गोविंद को नमस्कार करते हैं, जो भक्तिपूर्वक विष्णु की पूजा करते हैं, वे शिव की पूजा करते हैं। दोनों में कोई अंतर नहीं है। जो शिव से द्वेष करते हैं, वे विष्णु से भी द्वेष ही करते हैं तथा जो रुद्र को नहीं जानते, वे केशव को भी नहीं जानते। रुद्र ही बीज को उत्पन्न करनेवाले हैं तथा विष्णु बीज योनि हैं। रुद्र स्वयं ब्रह्मा ही हैं और ब्रह्मा ही अग्नि हैं। रुद्र में ब्रह्मा और विष्णु दोनों ही हैं और जगत अग्नि एवं चंद्रमय है। समस्त सृष्टि में सभी पुलिंग (नर) शिव ही है तथा सभी स्त्रीलिंग (मादा) उमा ही हैं। अतः सभी चराचर सृष्टि उमा और रुद्र का ही रूप है। व्यक्त जगत (दिखाई देनेवाला) उमा का रूप है तथा अव्यक्त शिव का रूप है। उमा एवं शंकर का मिला-जुला रूप विष्णु कहा जाता है। अतः इस रूप को नमस्कार करने से प्राणी परमात्मा को प्राप्त करते हैं। (1-10)

आत्मा (विष्णु), परमात्मा (शिव) तथा अंतरात्मा (ब्रह्मा), इन तीनों आत्माओं को जानकर परमात्मा का ही आश्रय लेना चाहिए। सभी भूतों (प्राणियों) का सनातन आत्मा विष्णु ही हैं। ये तीनों एक वृक्ष के समान हैं, जिसकी शाखाएं पृथ्वी तक फैली हुई हैं। इसका अगला, मध्य का तथा मूल भाग क्रमशः विष्णु, ब्रह्मा तथा महेश ही हैं। इसमें विष्णु कार्य रूप, ब्रह्मा क्रिया रूप और महेश कारण रूप हैं। एक ही मूर्ति को इस विश्व के कार्य के लिए रुद्र ने तीन रूपोंवाली बनाया है। संसार विष्णु है, धर्म रुद्र है तथा ज्ञान ब्रह्मा है। जो विद्वान सदा रुद्र नाम को जपता रहता है, वह सभी देवताओं को जपता है, अतः वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। रुद्र नर हैं और उमा नारी हैं। रुद्र ब्रह्मा हैं और उमा वाणी (सरस्वती) हैं, रुद्र विष्णु हैं और उमा लक्ष्मी हैं। अतः उन रुद्र को तथा उमा

को बार-बार नमस्कार है। रुद्र सूर्य हैं और उमा छाया हैं। रुद्र चंद्रमा हैं और उमा तारा हैं। रुद्र दिन हैं एवं उमा रात्रि हैं। रुद्र यज्ञ हैं और उमा यज्ञ की वेदी हैं। अतः रुद्र तथा उमा को बार-बार नमन है। रुद्र अग्नि हैं,तो उमा स्वाहा हैं। रुद्र वेद हैं,तो उमा शास्त्र हैं। रुद्र वृक्ष हैं,तो उमा वल्लरी (लता) हैं। रुद्र गंध हैं,तो उमा पुष्प हैं। अतः इन दोनों को पुनः-पुनः हम नमस्कार करते हैं। रुद्र अर्थ हैं तथा उमा शब्द हैं। रुद्र लिंग है तथा उमा उसकी पीठ (आधार) हैं। अतः सभी देवताओं के आत्मा रुद्र एवं उमा को पृथक्-पृथक् नमस्कार करना चाहिए। मैं भी मंत्रों से उमा एवं शिव को नमस्कार करता हूं। जहां भी हो इस अर्धनारीश्वर मंत्र को जपना चाहिए। जल में खड़े होकर इस मंत्र का पाठ करने से ब्रह्महत्या आदि महापापों से भी मुक्ति मिल जाती है। (11-25)

वह सनातन ब्रह्म सभी का आश्रय,एकमात्र तथा सच्चिदानंद रूप है। मन और वाणी भी उस तक नहीं पहुंच सकते। सबका आत्मा रूप होने से उस ब्रह्म के अलावा कोई भी वस्तु नहीं है। वह किसी से भिन्न नहीं है,अतः उसे जान लेने पर समस्त ज्ञान हो जाता है। परा एवं अपरा ये दो विद्याएं हैं। ऋग्वेद आदि चारों वेदों,शिक्षा,कल्प,व्याकरण,निरूक्त,छंद तथा ज्योतिप (वेदांग) इन सभी में बौद्धिक ज्ञान है,अतः ये अपरा विद्या कहे जाते हैं। जिस विद्या से आत्मज्ञान होता है,वह परा विद्या है। वही परम अक्षर (जिसका क्षर नाश नहीं होता) आत्मा है,जो न तो दिखाई देता है न पकड़ में आता है। वह गोत्र रूप,हाथ,कान,पांव आदि से रहित है। वह नित्य,विभु,सभी में व्याप्त,अत्यंत सूक्ष्म और अव्यय हैं। प्राणियों के कारण रूपी इस आत्मा को ज्ञानी लोग अपने ही आत्मा में देखते हैं। जो सर्वज्ञ,सर्वविद्यामय है तथा ज्ञान ही जिसके लिए तप है,उसी से यह जगत उत्पन्न होता है। जैसे रस्सी को सर्प समझ लिया जाता है,प्राणी वैसे ही इस विश्व को सत्य समझ लेते हैं। इस अक्षर ब्रह्म को जान लेने पर यह विश्व फिर मिथ्या लगने लगता है तथा इस ज्ञान से ज्ञानी मुक्त हो जाते हैं। ज्ञान से ही इस मिथ्या संसार का नाश (अज्ञान का नाश) होता है; न कि कर्म से। अतः वेदों को जाननेवाले ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण में जाना चाहिए। गुरु ही आत्मा का ज्ञान करानेवाली पराविद्या को देता है। साक्षात अक्षर ब्रह्म हृदय गुहा में ही रहता है। तब अज्ञान की महाग्रंथि (गांठ) कट जाती हैं और शिव की प्राप्ति होती है। अतः इस अमृत सत्य को मोक्ष की प्राप्ति के लिए अवश्य जानना चाहिए। ब्रह्म रूपी लक्ष्य (निशाना) को बेधने के लिए प्रणव धनुष तथा आत्मा बाण है। पूरी सावधानी से सब कुछ त्यागकर उसी में तन्मय हो जाने पर ही यह लक्ष्य वेधा जा सकता है। यह लक्ष्य एक स्थान पर नहीं, अपितु सब जगह रहनेवाला है और बाण भी सर्वगत (सब जगह रहनेवाला) है अतः इसे वेधने के लिए साधक को भी वैसा ही होना पड़ेगा। तभी शिव की प्राप्ति होगी,इसमें कोई संदेह नहीं है। (26-39)

उस ब्रह्म में चंद्रमा या सूर्य प्रकाश नहीं करते,वहां वायु और सभी देवताओं की भी पहुंच नहीं है। वह विशुद्ध तथा स्वयं प्रकाश रूप ब्रह्म साधक के चिंतन से उसे प्राप्त हो जाता है। शरीरवृक्ष के समान है,जिसमें जीव और ब्रह्म रूपी पक्षी दोनों ही रहते हैं। जीव अपने कर्मों से फलों को भोगता है,किंतु ब्रह्म केवल साक्षी के रूप में उसे देखता है। वास्तव में जीव एवं ब्रह्म दोनों एक ही हैं,किंतु माया के कारण इनमें भेद की कल्पना कर ली गई है। आकाश सब जगह एक ही होता है, किंतु घड़े में उसे घड़े का आकाश (आकाश शून्य या खाली जगह ही है) कहा जाता है तथा मठ के

ऊपर वह मठ का आकाश कहा जाता है, इसी प्रकार परमात्मा शिव और जीव में भी कल्पना की गई है, जबकि दोनों एक ही हैं। यदि इन दोनों में भेद होता, तो दोनों का 'चित्' स्वरूप ही नष्ट हो जाता। यह भेद जड़ माया के कारण हुआ है। इन दोनों की एकता तर्क तथा प्रमाण दोनों से ही सिद्ध है। अतः इस एकता का ज्ञान हो जाने पर मनुष्य शोक एवं मोह से मुक्त हो जाता है। तब वह अद्वैत परमानंद केवल शिव को प्राप्त करता है। इस समस्त संसार के निवास स्थान चिद् धन ब्रह्म का ज्ञान हो जाने पर मुनि को 'सोऽहं'—मैं वही ब्रह्म हूं, इस तत्त्व का ज्ञान हो जाता है, तब उसके सभी दुःखों का अंत हो जाता है। शरीर में स्थित उस ज्योति रूप सबके साक्षी ब्रह्म को दोषरहित लोग ही देखते हैं, माया से घिरे हुए अन्य लोग नहीं। इस पूर्ण ज्ञान के हो जाने पर जो अपने रूप को जान लेते हैं, वे आकाश के समान पूर्णरूप और सर्वव्यापक हो जाते हैं, अतः उन्हें कहीं आने-जाने की आवश्यकता नहीं रहती। उस परम ब्रह्म को जाननेवाला उसी में स्थित होकर उसी के समान बन जाता है।

□

91. गरुड़ोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाताक्षिभिर्यजत्रा
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायु:।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवा: स्वस्ति न: पूषा: विश्ववेदा:
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति न: बृहस्पतिर्दधातु ॥

ॐ शांति: शांति: शांति: ।

'हम कानों से कल्याणमय शब्द सुनें और नेत्रों से कल्याणमय दृश्य देखें। स्वस्थ अंगों से तुम्हारी स्तुति करें। देवताओं द्वारा दी हुई आयु का उपभोग करें। यशस्वी इंद्र, सर्वस्व ज्ञाता पूषा, अमंगलनाशक गरुड़ तथा बृहस्पति हमारा कल्याण करें। तीनों तापों की शांति हो।'

गरुड़ विद्या को बताता हूं। इस विद्या को ब्रह्मा ने नारद को, नारद ने वृहत्सेन को, वृहत्सेन ने इंद्र को, इंद्र ने भरद्वाज को तथा भरद्वाज ने जीवत्काम शिष्यों को बताया। इस श्री महागरुड़ ब्रह्मविद्या के ऋषि ब्रह्मा, छंद गायत्री तथा भगवान् गरुड़ देवता हैं। श्री गरुड़ की प्रसन्नता तथा समस्त विषों के नाश के लिए जप इसका विनियोग है। यह समस्त उपनिषद् सर्प आदि के विष को दूर करने के लिए की जानेवाली सिद्धि है। अत: यहां इसकी सिद्धि के लिए किए जानेवाले अनुष्ठान का परिचय दिया जा रहा है।

ॐ नम: (अंगूठों में), श्री गरुड़ाय (तर्जनी में), पक्षींद्राय (मध्यमा में), श्री विष्णुवल्लभाय (अनामिका में), त्रैलोक्यप्रपूजिताय (कनिष्ठिका में) तथा उग्रभयंकरकालानलरूपाय (करतल पृष्ठ में) इस प्रकार इस मंत्र का अंगन्यास एवं हृदयादि न्यास करना चाहिए। इसके पश्चात गरुड़ का ध्यान किया जाता है। 'स्वस्तिको दक्षिणं पादं' इत्यादि आठ मंत्रों का ध्यान में पाठ किया जाता है। सारांश में इनका अर्थ इस प्रकार है—भगवान् गरुड़ का दाहिना पैर स्वस्ति की मुद्रा में तथा बायां पैर कुंचित है। भगवान् विष्णु को वह अंत प्रिय है। अनंत वाम कटक, यज्ञसूत्र, वासुकि, तक्षक उनके कटिसूत्र तथा हार कार्कट है। पद्म एवं महापद्म उनके कानों में हैं। पौंड्र एवं कालिक उन्हें हवा करते हैं। एक पुत्र आदि उनकी सदा सेवा करते हैं। उनका कपिल वर्ण तथा आभा सोने के समान है। उनकी भुजाएं लंबी तथा कंधे चौड़े हैं। उन्होंने अनेक आभूषण धारण किए हुए हैं। वे जांघों तक सोने के रंग के, कमर तक आभावाले हैं। कंठ तक उनका रंग कुंकुम जैसा है। मुख की शोभा सैकड़ों चंद्रों के समान है। नासिका आगे से नीली तथा टेढ़ी है। सुंदर कुंडल पहने हुए हैं। मुख दांतों से विकराल तथा उज्ज्वल मुकुटवाला है। सारा शरीर कुंकुम की लालिमा लिया हुआ तथा मुख सफेद रंग का है। हे विष्णु के वाहन, तुम्हें नमस्कार है!

तीनों संध्याओं में इस प्रकार गरुड़ का ध्यान करने से समस्त विषों का नाश हो जाता है। इस ध्यान के बाद गरुड़ मंत्रों का उनके पूरे नियमों के साथ अनुष्ठान किया जाता है। जो इस गरुड़

महाविद्या का अमावस्या में अध्ययन करता है या इसे सुनता है, उसे जीवनपर्यंत सांप नहीं डसते। आठ ब्राह्मणों को इस मंत्र की दीक्षा देनेवाला एक तिनके का स्पर्श कराकर ही सांप के विष को उतार देता है। सौ ब्राह्मणों को दीक्षा देनेवाले व्यक्ति के देखने से ही विष दूर हो जाता है तथा एक हजार ब्राह्मणों को इसकी दीक्षा देनेवाला मनुष्य मन से स्मरण करके ही दूर रहता हुआ भी विष के प्रभाव को नष्ट कर देता है।

□

इस हनुमान साधना के घोर मूल मंत्र के ऋषि ईश्वर हैं। इसका छंद अनुष्टुप है तथा श्रीराम एवं लक्ष्मण इसके देवता हैं। 'सों' बीज है, 'अंजनासूनु' शक्ति है, वायुपुत्र कीलक है तथा श्री हनुमान की प्रसन्नता तथा भूः, भुवः, स्वः, लोकों में आसीन तत्त्वपद के शोधन के लिए इसका विनियोग किया जाता है। 'ॐ भूः नमः' 'ॐ भुवः नमः', 'ॐ स्वः नमः', 'ॐ महः नमः', 'ॐ जनः नमः' तथा 'ॐ तपः नमः', से करन्यास आदि किया जाता है। इसके पश्चात हनुमान का ध्यान किया जाता है, जो इस प्रकार है—वह भीमरूप हनुमान वज्र जैसे शरीरवाले हैं, उनकी आंखें बड़ी-बड़ी हैं, उनके कानों में सोने के कुंडल हैं, जो कानों के नीचे तक लटके हैं। वह दुःखी एवं विवश प्राणियों के रक्षक हैं। समुद्र लंघन के समय उनकी उद्यत पूंछ समुद्र को चंचल कर रही है। बंदरों से घिरे हुए वह भगवान् राम का ध्यान करते हुए प्रसन्न एवं शक्ति के सार लग रहे हैं।

इस मानसिक पूजा के पश्चात निम्नलिखित मंत्रों से हनुमान की पूजा करके आहुतियां दी जाती हैं।

(1) ॐ नमो भगवते दावानल ······ ह्रीं ह्रूं हुं फट् घे घे स्वाहा।

(2) ॐ नमो भगवते चंडप्रताप हनुमते ······ ह्रां ह्रीं हूं हुं फट, घे घे स्वाहा।

(3) ॐ नमो भगवते चिंतामणि हनुमते ······ ल

(4) ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ग्लां ग्लीं ग्लूं ॐ नमो भगवते पाताल गरुड़······

(5) ॐ नमो भगवते कालाग्नि रौद्र हनुमते······

(6) ॐ श्रां श्रीं श्रूं श्रं श्रौं श्रः ॐ नमो भगवते भद्राजनिक रुद्र······ वेद सिद्धि कुरु कुरु स्वाहा।

यह ज्ञान श्री रामचंद्र ने श्री महादेव को दिया। वीरभद्र ने महादेव से इसे प्राप्त किया। इसे प्रातःकालीन संध्या, दिन की संध्या तथा सायंकाल की संध्या, इन तीनों संध्याओं में पढ़ने से व्यक्ति की सभी इच्छाएं पूर्ण होती हैं।

(यह उपनिषद् भी एक प्रकार से मंत्रसिद्धि का अंग है। मंत्र को सिद्ध करने की दृष्टि से ही इसका महत्त्व है।)

□

मुद्गग तथा आंगिरस विश्वामित्र। (सृष्टि प्रलय के बाद वेद भगवान् में समा जाते हैं, तब इनके मंत्रों का जो ऋषि पहले दर्शन करता है, वही उस मंत्र का ऋषि कहा जाता है। इसी तरह गायत्री मंत्र के चौबीस अक्षरों के दर्शन इन चौबीस ऋषियों को हुए, अतः ये अपने द्वारा देखे गए अक्षरों के ऋषि हैं।)

गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप्, पंक्ति, वृहती एवं उष्णिक्, ये तीन चरणोंवाले छंद कहे जाते हैं। प्रह्लादिनी, प्रजा, विश्वभद्रा, विलासिनी, प्रज्ञा, शांता मा, कांति, स्पर्शा, दुर्गा, सरस्वती, विरूपा, विशालाक्षी, शालिनी, व्यापिनी, विमला, तमोहारिणी, सूक्ष्म अवयवा, पद्मालया, विरजा, विश्वरूपा, भद्रा, कृपा तथा सर्वतोमुखी, ये चौबीस गायत्री की शक्तियां हैं। पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, गंध, रस, रूप, स्पर्श, शब्द, वाणी, पैर, पायु, उपस्थ, त्वचा, आंख, कान, जीभ, नाक, मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त तथा ज्ञान, ये चौबीस गायत्री के प्रत्येक अक्षर के तत्त्व हैं।

चंपक, अतसी, कुंकुम, पिंगल, नील, अग्निप्रभा, उगता सूर्य, विद्युत, तारक, सरोज, सफेद मरकत मणि, शुक्ल, कुंद, चंद्रमा, शंख, पांडुनेत्र, नीला कमल, चंदन, अगरु, कस्तूरी, गोरोचन तथा कपूर इन पदार्थों के समान ही गायत्री का प्रत्येक अक्षर अत्यंत पवित्र है। इनका आश्रय लेने से समस्त पातक (पाप), उपपातक, महापातक, अगम्य गमन (जिसका परस्पर शारीरिक संबंध वर्जित होते हुए भी यदि ऐसा करें, तो उससे लगनेवाला पाप), गोहत्या, ब्रह्महत्या, भ्रूणहत्या, वीरहत्या, मानवहत्या, सारे जन्मों में की गई हत्याएं, स्त्रीहत्या, गुरुहत्या, पिता की हत्या, प्राणिहत्या, चर या अचर की हत्या, न खाने योग्य को खा लेने का पाप, दूसरे की संपत्ति के हरण का पाप, नीच के हाथ का खाना, शत्रुहत्या, चांडाल से शारीरिक संबंध आदि समस्त पापों से मुक्ति मिलती है।

जिसके सिर में ब्रह्मा हैं, चोटी के अग्र भाग में विष्णु हैं, ललाट में रुद्र हैं, नेत्रों में सूर्य-चंद्र हैं, कानों में शुक्र-बृहस्पति हैं, नासिका छिद्रों में अश्विनी कुमार हैं, दांतों तथा होंठों में दोनों संध्याएं हैं, मुख में वायु, स्तनों में वसु आदि हैं, हृदय में पर्जन्य है, उदर में आकाश है, नाभि में अग्नि है, कमर में इंद्राग्नि है, जांघों में प्रजापति है, उरु में कैलाश का मूल है, घुटनों में विश्वेदेव हैं, गुल्फ में शिशिर है, नाखूनों में पृथ्वी, वनस्पतियां आदि हैं तथा नौ ग्रह ही जिसकी अस्थियां हैं। आंतें केतु, मांस ऋतुएं हैं, संधियां (जोड़) एवं पलकों को झपकाना ही दिन एवं रात्रि है।

जो इस गायत्री रहस्य का अध्ययन करता है, उसे हजारों यज्ञों को करने का फल मिलता है। जो इसको पढ़ता है, उसके रात्रि में किए हुए पाप नष्ट होते हैं। प्रातः और दोपहर में पढ़ने से छः मास तक के किए हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। सायंकाल तथा प्रातःकाल दोनों समय इसके अध्ययन से जन्म-भर किए हुए पाप नष्ट हो जाते हैं। जो ब्रह्म को जाननेवाला इस गायत्री रहस्य को पढ़ता है, उसे साठ हजार गायत्री जप का फल मिलता है। उसे समस्त वेदों के अध्ययन का तथा सभी तीर्थों में स्नान का फल प्राप्त होता है। वह अपेय पान (न पीने योग्य पदार्थों को पीने से लगा पाप) से पवित्र हो जाता है, अभक्ष्य भक्षण से पवित्र हो जाता है तथा दुराचारिणी स्त्री के साथ सहवास उत्पन्न पाप से मुक्त हो जाता है। वह ब्रह्मचारी न भी हो, तो ब्रह्मचारी हो जाता है। हजार बार के अपेय पान से भी पवित्र हो जाता है। आठ ब्रह्मवेत्ताओं को इसकी दीक्षा देने से वह ब्रह्मलोक को प्राप्त करता है। ऐसा भगवान ब्रह्मा ने कहा है।

☐

94. सावित्री उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ अप्यायंतु ममांगानि वाक्प्राणचक्षुषः श्रोत्रमथो बलमिन्द्रियाणि च सर्वाणि सर्वं ब्रह्मोपनिषद् माहं ब्रह्म निराकुर्यां मा मा ब्रह्म निराकरोद निराकरणमस्त्वनिराकरणं मेऽस्तु। तदात्मनि निरते य उपनिषत्सु धर्मास्ते मयि संतु। ते मयि संतु।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

'मेरे अंग वृद्धि को प्राप्त हों। वाणी, प्राण, चक्षु, श्रोत्र आदि इंद्रियां तथा बल समृद्ध हों। यह उपनिषद् ब्रह्म स्वरूप जानने योग्य है। ब्रह्म मेरा परित्याग न करे। मैं ब्रह्म का परित्याग न करूं। हमारा परस्पर अनिराकरण हो। मैं उपनिषदों के अध्ययन में निरत रहूं, इनका ज्ञान मुझे प्राप्त हो। दैहिक, दैविक एवं भौतिक तीनों प्रकार के ताप नष्ट हों।'

सविता कौन है और सावित्री कौन है?—अग्नि ही सविता है और पृथ्वी ही सावित्री है, जहां अग्नि है, वहीं सावित्री है तथा जहां सावित्री है, वहीं सविता है। वे दो योनि और एक जोड़ा है। सविता कौन है तथा सावित्री कौन है?—वायु ही सविता है तथा आकाश ही सावित्री है। जहां वायु है, वहीं आकाश है तथा जहां आकाश है, वहीं वायु है। अतः दोनों दो योनि तथा एक मिथुन (जोड़ा) हैं। कौन सविता है एवं कौन सावित्री है?—यज्ञ सविता है एवं छंद सावित्री हैं। जहां यज्ञ है, वहीं छंद है एवं जहां छंद है, वहीं यज्ञ है। दोनों दो योनि एवं एक युगल हैं। सविता और सावित्री कौन हैं?—गरजनेवाले बादल सविता हैं तथा विद्युत सावित्री है। जहां गरजनेवाले बादल रहते हैं, वहीं सावित्री रहती है और जहां सावित्री रहती है, वहीं गरजनेवाले बादल रहते हैं, अतः दोनों दो योनि एवं एक युगल हैं। कौन सविता है और कौन सावित्री है?—आदित्य (सूर्य) सविता है तथा द्यौ (द्युलोक) सावित्री है। जहां आदित्य है, वहीं सावित्री है और जहां सावित्री है वहीं आदित्य है। दोनों दो योनि तथा एक युगल हैं। कौन सविता है और कौन सावित्री है? चंद्रमा सविता है और नक्षत्र सावित्री है। जहां चंद्रमा है, वहीं नक्षत्र हैं और जहां नक्षत्र हैं, वहीं चंद्रमा है। दोनों दो योनि एवं एक युगल हैं। कौन सविता है और कौन सावित्री है?—मन ही सविता है तथा वाणी ही सावित्री है। जहां मन है, वहीं वाणी है और जहां वाणी है, वहीं मन है। दोनों दो योनि एवं एक जोड़ा हैं। कौन सविता है तथा कौन सावित्री है?— पुरुष सविता तथा स्त्री सावित्री है अतः जहां पुरुष है, वहीं स्त्री है, जहां स्त्री है, वहीं पुरुष है। दोनों दो योनि तथा एक युगल हैं। (1-9)

सावित्री का प्रथम चरण 'तत्सवितुर्वरेण्यं' है। (उस सविता का वरण करने योग्य है)। अतः यहां अग्नि, जल एवं चंद्रमा ही वरण करने (अपनाने, स्वीकार करने) योग्य हैं। इस मंत्र का द्वितीय चरण 'भर्गो देवस्य धीमहि' (देव के यश का ध्यान करते हैं) यहां भर्ग अर्थात यश का अर्थ पृथ्वी, अग्नि, आदित्य एवं चंद्रमा हैं, अतः इन्हीं का ध्यान करना चाहिए। मंत्र का तीसरा चरण 'धियो यो नः प्रचोदयात्' (जो हमारी बुद्धियों को प्रेरणा दे) है। इसके अर्थ को जो स्त्री एवं पुरुष गृहस्थ में

रहकर संतान की उत्पत्ति करते हुए (या अन्य भी) जानते हैं, उनकी बार-बार मृत्यु नहीं होती; अर्थात् वे पुनर्जन्म से मुक्त हो जाते हैं। (10-13)

बल एवं अतिबल नामक विद्याओं के ऋषि विराट् पुरुष तथा छंद एवं देवता दोनों गायत्री हैं। इसके बीज, शक्ति तथा कीलक क्रमशः 'अ', 'उ' एवं 'म्' है। भूख से मुक्ति के लिए इसका विनियोग होता है। इसका अंगन्यास केवल 'क्लीं' से किया जाता है। इसमें ध्यान जिसके हाथों में अमृत है : जो संजीवनी शक्ति से युक्त हैं, जो पापों को दूर करने में कुशल हैं, जो वेदों के सार हैं, जो किरणों के समान हैं, अविकारी प्रणव तथा सूर्य के समान आकारवाली बल-अतिबल नामक देवताओं का मैं सदा ही अनुभव करता हूं। (इस प्रकार के ध्यान के बाद 'ॐ ह्रीं बले' इत्यादि मंत्र का अनुष्ठान किया जाता है। इससे व्यक्ति को भूख नहीं सताती, वह उसके वश में हो जाती है) इन विद्याओं को जाननेवाला धन्य हो जाता है। वह सावित्री के लोक को प्राप्त करता है।

□

95. सरस्वती रहस्योपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविराम ऐधि वेदस्य न आणीस्थः । श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रात् संदधाम्यमृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु । अवतु माम्अवतु वक्तारमवतु वक्तारम् ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

'हे परमात्मा, मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो, मेरा मन वाणी में प्रतिष्ठित हो, तुम मेरे समक्ष प्रकट होओ । मुझे वेदों का ज्ञान दो । मैं सुने हुए ज्ञान को न भूलूं । इस अध्ययन में मैं रात-दिन एक कर दूं, मैं ऋत एवं सत्य बोलूं । मेरी रक्षा करो । मेरे गुरु की रक्षा करो । हम दोनों की रक्षा करो । दैहिक, दैविक तथा भौतिक, तीनों प्रकार के ताप (कष्ट) शांत हों ।'

ऋषियों ने भगवान् आश्वलायन की पूजा करके उनसे पूछा, 'भगवन्, वह कौन-सा ज्ञान है, जिससे 'तत्' शब्द से सूचित किए जानेवाले उस परम ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है ? उस ज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार होती है ? और आपको किस विधि से उपासना करने पर यह तत्त्व ज्ञान हुआ ? कृपया इस विषय में विस्तार से बताएं ।' इस पर आश्वलायन ने बताया, 'हे ऋषियों ! मैंने बीज मंत्र और ऋचाओं के सहित दस श्लोकोंवाली सरस्वती की स्तुति की है और इसी के जप से यह सिद्धि प्राप्त की है ।' इस उत्तर को सुनने पर ऋषियों ने पुनः पूछा, 'हे सुंदर व्रत करनेवाले आश्वलायन ऋषि ! इस सरस्वती के मंत्र को आपने कैसे प्राप्त किया ? किसके ध्यान से इसकी प्राप्ति हुई ? जिससे आपने भगवती सरस्वती को प्रसन्न किया ?'

इन प्रश्नों के उत्तर में ऋषि आश्वलायन ने बताना आरंभ किया, 'इस दस श्लोकी सरस्वती महामंत्र का ऋषि मैं आश्वलायन स्वयं हूं, इसका छंद अनुष्टुप् है तथा इसकी देवता भगवती वागीश्वरी हैं। इसका बीज 'वाक्', शक्ति (देवीवाच) एवं कीलक 'प्रणोदेवी' है। भगवती वागीश्वरी को प्रसन्न करने के लिए इसका विनियोग किया जाता है । इस उपासना में श्रद्धा, मेधा, प्रज्ञा, धारणा, वाग्देवता एवं महा सरस्वती इन शब्दों से करन्यास, अंगन्यास आदि किया जाता है । (1-4)

'हिम, कपूर, मोती या चंद्रमा की प्रभा के समान शोभावाली, शुभ करनेवाली, सोने के समान पीले रंग के चंपा के पुष्पों की माला से सुशोभित, उभरे हुए पुष्ट स्तनोंवाली ! सुंदर अंगोंवाली वाणी (सरस्वती) देवी को मैं सिद्धि प्राप्त करने के लिए नमस्कार करता हूं। इस प्रकार ध्यान करना चाहिए ।

(1) 'प्रणो देवी' इस मंत्र के ऋषि भरद्वाज, छंद गायत्री तथा देवता सरस्वती हैं । प्रणव (ॐ) ही इसकी बीज, शक्ति तथा कीलक है । मनोकामना की पूर्ति के लिए इसका विनियोग किया जाता है । मंत्र से ही इसमें अंगन्यास आदि किया जाता है ।

'वेदांत का तत्त्व ही जिसका स्वरूप है, नाम एवं रूप दोनों प्रकार का जगत् जिससे आत्मावाला है, वह सरस्वती मेरी रक्षा करे। विभिन्न विद्याओं का दान देने से शोभा युक्त वह सरस्वती स्तुति करनेवालों की रक्षा करती है। वह अन्न की स्वामिनी है। वह साधकों को अन्न एवं बुद्धि प्रदान करे।

(2) 'आ नो दिवः' इस मंत्र के ऋषि अत्रि हैं, इसमें छंद त्रिष्टुप् है और देवता सरस्वती है। इस मंत्र में बीज, शक्ति तथा कीलक तीनों 'ह्रीं' हैं। मनोकामना पूर्ण करने के लिए इसका विनियोग होता है। मंत्र से ही अंगन्यास किया जाता है।

'अपने अंगों एवं उपांगों के साथ चारों ही वेदों में जिसका गणगान किया जाता है, वह अद्वैत ब्रह्म की शक्ति माता सरस्वती मेरी रक्षा करे।'

'हमारी उपासना से देवी सरस्वती ज्योतिर्मय स्वर्गलोक से पर्वतों के समान बादलों के बीच से होकर हमारे यज्ञ में आएं और हमारे प्रजा के स्तोत्रों से प्रसन्न हों। वह अपनी अच्छा से इन सुख प्रदान करनेवाले स्तोत्रों को सुनें।'

(3) 'पावकानः', इस मंत्र के ऋषि मधुछंदा हैं, छंद गायत्री है तथा देवता सरस्वती हैं। 'श्री' इस मंत्र में बीज, शक्ति एवं कीलक है। कामना की सिद्धि के लिए इसका विनियोग किया जाता है। इसी मंत्र द्वारा इसमें भी अंगन्यास किया जाता है।

'जो सरस्वती अक्षरों में, शब्दों में तथा वाक्यों में उनके अर्थ सहित व्याप्त हैं, जिनका आदि (उत्पत्ति) एवं अंत नहीं है तथा जो अनंत रूपोंवाली हैं, वह देवी मेरी रक्षा करें।'

'जो सबको पवित्र करनेवाली हैं, जो अन्न और कर्म द्वारा प्राप्त होनेवाले धन की कारण हैं, वह देवी सरस्वती हमारे यज्ञ में आने की इच्छा करें।

(4) 'चोदयित्री०' इस मंत्र के ऋषि मधुछंदा हैं, छंद गायत्री है और देवता सरस्वती हैं। इसमें बीज, शक्ति एवं कीलक तीनों ही 'ब्लूम' है। इच्छा-पूर्ति के लिए ही इसका विनियोग किया जाता है तथा अंगन्यास इसी मंत्र से किया जाता है।

'जो सरस्वती देवताओं के लिए भी अध्यात्म एवं अधिदेवस्वरूपा हैं तथा जो हमारे ऊपर बोलनेवाली शक्ति के रूप में विद्यमान हैं, वह सरस्वती हमारी रक्षा करें।'

'जो सुंदर एवं प्रिय बोलने की प्रेरणा देती हैं और जो सुंदर बुद्धिवाले श्रेष्ठ लोगों के कर्तव्य का बोध कराती हैं, वह सरस्वती हमारे इस यज्ञ को धारण करें।'

(5) 'महो०' इस मंत्र के ऋषि मधुच्छंदा हैं, छंद गायत्री है तथा देवता सरस्वती हैं। बीज, शक्ति एवं कीलक 'सौः' है। इसी मंत्र से न्यास किया जाता है।

'जो अंतर्यामी आत्मा के रूप में तीनों लोकों को नियंत्रित करती हैं तथा जो रुद्र, आदित्य आदि सभी देवताओं के रूप में स्थित हैं, वह सरस्वती देवी मेरी रक्षा करें।'

'नदी के रूप में उत्पन्न होकर प्रवाह से वह सरस्वती अपने कार्यों का परिचय देती हैं तथा अपने समुद्र के समान जल को व्यक्त करती हैं। यही सरस्वती सबको कर्तव्य बुद्धि प्रदान करती हैं।'

(6) 'चत्वारि वाक्०' इस मंत्र के ऋषि दीर्घतमा, छंद त्रिष्टुप् तथा देवता सरस्वती हैं। इस मंत्र में बीज, शक्ति तथा कीलक 'ऐं' है। इसी मंत्र से अंगन्यास किया जाता है।

'जो सरस्वती ज्ञानरूपी आंतरिक नेत्रोंवाले प्राणियों के समक्ष अनेक रूपों में प्रकट होती हैं, इस प्रकार सर्वव्यापक वह सरस्वती मेरी रक्षा करें।

'परा, पश्यंती, मध्यमा एवं वैखरी वाणी के ये चार चरण हैं। ज्ञानी लोग इन्हें सही रूप में जानते हैं। परा, पश्यंती एवं मध्यमा हृदय गुहा में स्थित रहती हैं, अतः ये प्रकट नहीं होतीं। केवल वैखरी ही बोलने के रूप में प्रयोग में आती है।'

(7) 'यद्वाग्वदंति०' इस मंत्र के ऋषि भार्गव, छंद त्रिष्टुप् तथा देवता सरस्वती हैं। इसमें बीज, शक्ति तथा कीलक 'क्लीं' है। इसी मंत्र से न्यास किया जाता है।

'जो आत्मा निर्विकल्पक होते हुए भी नाम, जाति, गुण आदि आठ रूपों में प्रकट होती है, वह सरस्वती मेरी रक्षा करें।'

'जो सरस्वती दिव्य (अलौकिक, स्वर्गीय) भावों को व्यक्त करती हैं, देवताओं को आनंद प्रदान करती हैं तथा अज्ञानियों को ज्ञान देती हैं, इस प्रकार यज्ञ में विराजमान होनेवाली सरस्वती सभी दिशाओं को संपन्न करती हैं। ऐसी सरस्वती का परम स्थान कहां है?

(8) 'देवी वाचम्०' इस मंत्र के ऋषि भार्गव, छंद त्रिष्टुप तथा देवता सरस्वती हैं। बीज, शक्ति एवं कीलक 'सौः' है। इसी मंत्र से अंगन्यास किया जाता है।

'व्यक्त एवं अव्यक्त वाणियों में सभी वेद आदि जिसके यश के गीत गाते हैं, वह सभी इच्छाओं को पूर्ण करनेवाली कामधेनु-रूपी सरस्वती मेरी सभी इच्छाओं को पूरा करती हुई रक्षा करें।'

'वह सरस्वती वाणी रूप में देवताओं से उत्पन्न होनेवाली हैं। इसी का प्राणी अनेक रूपों में उच्चारण करते हैं। वह कामधेनु के समान हैं, वह सुख-संपत्तियां प्रदान करती हैं। इन श्रेष्ठ स्तुतियों से वह हमारे समक्ष प्रकट हों।'

(9) 'उतत्व०' इस मंत्र के ऋषि बृहस्पति, छंद त्रिष्टुप् तथा देवता सरस्वती हैं। इसमें बीज, शक्ति एवं कीलक तीनों ही 'सः' है। इसी मंत्र से अंगन्यास एवं करन्यास किया जाता है।

'जिसके ज्ञान से सारे सांसारिक बंधन मिथ्या प्रतीत होने लगते हैं और योगी बंधनों से मुक्त होकर परम ब्रह्म को प्राप्त करते हैं, वह सरस्वती मेरी रक्षा करें।'

'इस वाणी देवी को कुछ लोग देखकर भी अनदेखा कर देते हैं और कुछ सुनकर भी अनसुना कर देते हैं। कुछ विरले ही ऐसे भाग्यशाली होते हैं, जिनके सामने वह पति की कामना करनेवाली पत्नी द्वारा समस्त वस्त्रों को उतार देने के समान अपने स्वरूप को प्रकट कर देती हैं।'

(10) 'अंबितमः' इस मंत्र के ऋषि गृत्समद हैं, छंद अनुष्टुप् है तथा देवता सरस्वती हैं। इसका बीज, शक्ति और कीलक 'ऐं' है। इसमें इसी मंत्र से करन्यास आदि किया जाता है।

'इस नाम रूपात्मक जगत् में सर्वत्र उसी को देखते हुए जिस ब्रह्मरूपिणी सरस्वती का योगी लोग ध्यान करते हैं, वह मेरी रक्षा करें।'

'हे सरस्वती ! तुम माताओं में, नदियों में तथा देवियों में सबसे बड़ी हो, तुम हमें प्रशंसा योग्य तथा सम्मत्तिशाली बनाओ । (5-35)'

(महर्षि आश्वलायन को इन्हीं दस मंत्रों से तत्त्वज्ञान हुआ था, जिसका उपनिषद् के प्रारंभ में उल्लेख हुआ है । इनमें मंत्र के ऋषि, छंद आदि के बाद सरस्वती का ध्यान तथा बाद में मंत्र दिए गए हैं ।)

'हे सरस्वती ! तुम ब्रह्मा के मुखरूपी कमलों के वन में हंस-वधू के समान घूमती रहती हो, अतः हे सफेद अंगोंवाली सरस्वती, तुम नित्य मेरे मानस में विचरण करो । हे शारदा देशवासिनी, मैं नित्य तुम्हारी स्तुति करता हूं, मुझे विद्या का दान दो ! अक्षमाला, सूत्र अंकुश एवं पास धारण करनेवाली तथा मोतियों के हारों से सुशोभित सरस्वती सदा मेरी वाणी में विद्यमान रहें । शंख के समान कंठवाली सभी आभूषणों से युक्त वह महासरस्वती मेरी जिह्वा के अग्र भाग में सदा निवास करें । जो श्रद्धा, धारणा, मेधा तथा ब्रह्मा की प्रियतमा हैं, वह शांति आदि गुणों को देनेवाली सरस्वती अपने भक्तों की जीभ में सदा निवास करती हैं । जिनके कुंतल (बाल) चंद्रलेखा से अलंकृत हैं, उन सांसारिक संतापों को शांत करनेवाली नदी के समान सरस्वती को मैं नमस्कार करता हूं । जो कवित्व शक्ति, भय से मुक्ति, भोग या मोक्ष चाहता है, वह ऊपर कहे गए दस श्लोकों से नित्य सरस्वती की पूजा करता है । उसे नित्य इस प्रकार सरस्वती की अर्चना करने से केवल छः मास में ही काय में सिद्धि प्राप्त होती है । इसके परिणामस्वरूप मधुर ललित अक्षरोंवाली गद्य एवं पद्य दोनों ही रूपोंवाली वाणी उसके मुख से स्वतः ही फूटने लगती है । सरस्वती की कृपा से साधक बिना किसी से सुने या पढ़े ही सभी ग्रंथों के अर्थों को समझने लगता है । इसमें कोई संदेह नहीं है । सरस्वती ने स्वयं इस संबंध में ये शब्द कहे हैं । मैंने (आश्वलायन ने) यह सनातन आत्म विद्या को स्वयं ब्रह्मा से प्राप्त किया है, अतः मैं सदा ब्रह्म ज्ञान से संपन्न रहता हूं । यही मेरी सिद्धि का रहस्य है । (36-46)

'सत्त्व, रजस् एवं तमस् इन तीन गुणों की प्रधानता से प्रकति रची गई । जैसे दर्पण में प्रतिबिंब होता है, वैसे ही इस प्रकृति में चेतन की छाया सत्य जैसे लगती है । उसी चेतन के प्रतिबिंब से यह तीन प्रकार की प्रतीत होती है । प्रकृति के कारण ही तुम्हें यह शरीर मिलता है । सत्त्व गुण का अंश अधिक होने से प्रकृति माया कही जाती है । उस माया में दिखाई देनेवाला प्रतिबिंब ही चेतन अर्थात् अजन्मा ब्रह्म है । यह माया सर्वज्ञाता ब्रह्म की आज्ञा का पालन करती है । माया को अपने अधीन रखना अद्वितीय तथा सबका ज्ञाता होना ही ब्रह्म की पहचान है । यह ब्रह्म सभी लोकों का साक्षी है । यही सृष्टि को बनाने, न बनाने या अन्य कार्य करने में पूर्ण रूप में समर्थ है । माया की विक्षेप एवं आवरण नाम की दो शक्तियां हैं । इनमें विक्षेप शक्ति लिंग शरीर से ब्रह्मांड तक सबकी सृष्टि करती है तथा दूसरी आवरण नामक शक्ति द्रष्टा एवं दृश्य तथा ब्रह्म को ढक लेती है, जो संसार का कारण है । वह लिंग देहरूपी बंधन देनेवाली है । इस कारणरूपी प्रकृति में जब चेतन का प्रतिबिंब पड़ता है, तो जीव की उत्पत्ति होती है । इस आवरण शक्ति के नष्ट हो जाने पर जीव इस अंतर को जान जाता है, अतः वह जीव नहीं रह जाता (वास्तविकता ज्ञात होने पर वह अपने स्वरूप को जान जाता है तथा रह्म में मिल जाता है) । सृष्टि एवं ब्रह्म को ढक लेनेवाली आवरण शक्ति के कारण इसके वश

में हुआ ब्रह्म अपने वास्तविक रूप में नहीं जान पड़ता, आवरण हटते ही ब्रह्म और सृष्टि का अंतर स्पष्ट हो जाता है। वस्तुतः विकार ब्रह्म में नहीं आता; केवल सृष्टि में ही आता है। 'आस्ति' (है), 'भाति' (सुशोभित है), 'प्रिय' 'नाम' और 'रूप' ये पांच अंश हैं, इनमें 'आस्ति', 'भाति' तथा 'प्रिय'—ये प्रथम तीन ब्रह्म के स्वरूप हैं तथा 'नाम' एवं 'रूप', ये दो जगत् के स्वरूप हैं। इन जगत् के भेदों से संबंध रखने पर ही ब्रह्म विश्व के रूप में प्रकट होता है। (47-58)

'साधक सदा बाहरी-भीतरी दोनों रूपों में समाधि में रहें। हृदय में सविकल्प और निर्विकल्प दो प्रकार की समाधि होती हैं। दृश्यानुविद्ध एवं शब्दानुविद्ध के भेद से सविकल्प समाधि दो प्रकार की होती है। चित्त में समाधि में काम आदि विकार उत्पन्न होते हैं। ये सब विकार दृश्य हैं और आत्मा उनका साक्षी होता है। यही दृश्यानुविद्ध सविकल्पक समाधि कही जाती है। जब समाधि में साधक सोचने लगता है कि मैं अद्वैत स्वरूप हूं, आसक्ति रहित तथा स्वयं प्रकाश हूं—इस प्रकार का चिंतन शब्दानुविद्ध सविकल्प समाधि कही जाती है। निर्विकल्प समाधि में साधक की स्थिति वायु रहित स्थान में रखे हुए अविचल दीपक के समान हो जाती है। इस हृदय के भीतर होनेवाली समाधि के दो रूप हैं। ऐसे ही बाहर भी किसी वस्तु में चित्त एकाग्र हो जाने पर समाधि लग जाती है। द्रष्टा एवं दृश्य की बुद्धि से प्रथम प्रकार की समाधि लगती है। जिससे प्रत्येक वस्तु में उसके नाम एवं रूप से अलग केवल चेतन ही प्रतीत होता है, वह दूसरे प्रकार की समाधि है। जिसमें चैतन्य के रस से स्तब्ध अवस्था होती है, वह तीसरी समाधि है। इन्हीं समाधियों में समय बिताना चाहिए। देह का अभियान नष्ट हो जाने पर परमात्मा के ज्ञान से मन जहां-जहां जाता है, वहीं परम तत्त्व प्रतीत होता है। तब हृदय के सारे बंधन नष्ट हो जाते हैं सारे संदेह मिट जाते हैं और उस सुख के समुद्र के दर्शनों से सारे कर्मों का भी नाश हो जाता है। जो ज्ञानी जीव एवं ब्रह्म के इस माया के कारण कल्पित भेद को जान जाता है, वह मुक्त हो जाता है, इसमें कोई संशय नहीं। (59-68)

□

96. देवी उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमातक्षिर्भिर्यजत्रा
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनुभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।
स्वस्ति न इंद्रोवृद्धश्रवा स्वस्ति न पूषाः विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नः बृहस्पतिर्दधातु।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

'हम कानों से कल्याणमय वचन सुनें, नेत्रों से कल्याणमय चीजों को देखें और दृढ़ अंगोंवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करें। इंद्र हमारा कल्याण करें, पूषा हमारा कल्याण करें। अमंगलनाशक गरुड़ और बृहस्पति हमारा कल्याण करें। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दुःख शांत हों।'

सारे देवताओं ने देवी के पास जाकर पूछा, 'हे महादेवी, आप कौन हैं ?' इस पर देवी बोलीं, 'मैं ब्रह्मस्वरूपिणी हूं। यह प्रकृति एवं पुरुषवाला जगत् मेरे कारण ही उत्पन्न हुआ है। मैं शून्य (कुछ भी नहीं) भी हूं और अशून्य भी हूं। मैं आनंदरूपिणी भी हूं तथा अनानंदरूपिणी भी। मैं विज्ञान भी हूं और अविज्ञान भी हूं। मैं ब्रह्म भी हूं और उससे भिन्न भी हूं। मैं आकाश, पृथ्वी आदि पांच महाभूत भी हूं और इनसे भिन्न भी हूं। मैं ही समस्त जगत् हूं। मैं वेद भी हूं और अवेद भी हूं। मैं ही विद्या और अविद्या हूं। मैं अजा (उत्पन्न न होनेवाली) भी हूं और अनजा भी हूं। मैं ही रुद्रों, वसुओं, आदित्यों तथा विश्व देवों के रूपों से संचरण करती हूं। मैं ही मित्रावरुण, इंद्राग्नि तथा अश्विनी कुमारों का पालन करती हूं। मैं ही सोम, त्वष्ट्रा, पूषा, भग, तेजस्वी विष्णु, ब्रह्मा, प्रजापति आदि को धारण करती हूं। मैं हवि प्रदान करने वाले यजमान के लिए संपत्तियों को धारण करती हूं। मैं धनों के साथ चलनेवाली राट्री नामक देवता हूं, मैं ही विश्व का कारण हूं तथा समुद्रों में व्याप्त जल मेरा ही रूप है। इस रहस्य का ज्ञाता देवी के लोक को प्राप्त करता है। (1-7)

तब वे देवता बोले, 'हे देवी ! महादेवी ! कल्याणमयी !, तुम्हें नमस्कार है। तुम प्रकृति हो, समस्त शुभ कार्यों को करनेवाली तथा एक नियत स्थितिवाली हो, तुम्हें नमस्कार है। वह देवी तप से जलते हुए अग्नि के वर्ण की है। सुकर्म फलों की प्राप्ति के लिए हम उसकी प्रार्थना करते हैं। हम अज्ञान के नाश के लिए उस दुर्गा देवी की शरण में जाते हैं। उस देवी ने वाणी के सभी रूपों को उत्पन्न किया है। प्राणी इसके एक भेद का उच्चारण करते हैं। यह कामधेनु के समान सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाली भवगती हमारी स्तुतियों से प्रसन्न होकर हमारे पास आए। काल का नाश करनेवाली, जिसकी वेदों ने स्तुति की है, वैष्णवी, स्कंद की माता (शिव शक्ति), सरस्वती, अदिति तथा दक्ष-पुत्री नाम से विख्यात उस पवित्र तथा कल्याणमयी देवी को हम नमस्कार करते हैं। हम उस महालक्ष्मी को जानते हैं, उस सर्वसिद्धि का ध्यान करते हैं और वह देवी हमारी बुद्धि को अच्छी

प्रेरणा दे। हे दक्ष, आपकी कन्या अदिति ने अमर देवताओं को जन्म दिया। काम, योनि, कमला, इंद्र, गुहा, वर्ण, मातरिश्वा, मेधा, यह समस्त जगत भगवती की मूल विद्या है। यही भगवती परमात्मा की शक्ति है। यही विश्व को मोहित करनेवाली है। यही श्री महाविद्या है। जो इसे जानता है, वह शोक मुक्त हो जाता है। हे मां भगवती ! हम तुझे नमस्कार करते हैं, हमारी सब प्रकार से रक्षा करो। (8-17)

'यह भगवती ही आठों वसु, नौ रुद्र, बारह आदित्य तथा सोमपान करनेवाले तथा न करनेवाले विश्वेदेव हैं। यही राक्षस, असुर, पिशाच, यक्ष एवं सिद्ध है। यही सत्त्व, रजस् एवं तमोगुण है। यही ब्रह्मा, विष्णु एवं रुद्र है। प्रजापति, इंद्र एवं मनु है। यही ग्रह, नक्षत्र एवं ज्योति है। यही कला, काठ आदि एवं कालरूपिणी है। यह दुःखों को हरनेवाली, मुक्ति एवं मुक्ति देनेवाली है। यह अनंत, विजय रूप, शुद्ध, शरण देनेवाली तथा कल्याणमय है। इस देवी का बीज मंत्र 'ह्रीं' है, जो सभी इच्छाओं को पूर्ण करनेवाला है। इसी एक अक्षर का शुद्ध चित्तवाले ज्ञान के भंडार योगी सदा ध्यान करते हैं। भगवती का नवार्ण मंत्र (ॐ) ऐं ह्रीं चामुंडायै विच्चै) महान् आनंद देनेवाला है। मैं हृदय कमल के मध्य में रहनेवाली प्रातःकालीन सूर्य के समान आभावाली, पाश एवं अंकुश धारण करनेवाली, वरदान तथा अभय की मुद्रावाली, तीन नेत्रोंवाली, लाल वस्त्र पहननेवाली और भक्तों की इच्छाएं पूर्ण करनेवाली भगवती का ध्यान करता हूं। हे महान् भयों और कष्टों का नाश करनेवाली करुणामूर्ति ! मैं तुम्हें नमस्कार करता हूं। ब्रह्मा आदि भी नहीं जानते अतः वह अज्ञेया कही जाती है, उसका अंत नहीं मिलता, अतः अनंता कही जाती है, उसके जन्म का पता नहीं है, अतः अजा कही जाती है, एक ही होकर सर्वत्र व्याप्त होने से 'एका' तथा अनेक रूपोंवाली होने से नैका (अनेका) कही जाती है। अतः वह अज्ञेया, अनंता, अलक्ष्या अजा, एका एवं नैका कही जाती है। (18-26)

'मह भगवती मंत्रों की मातृका, शब्दों का अर्थ, ज्ञानों में चिन्मय अती तथा शून्यों में शून्यसाक्षिणी है। जिससे बढ़कर कुछ नहीं है, वही यह दुर्गा है। बुराइयों का नाश करनेवाली दुर्गा को मैं भवसागर से पार होने के लिए नमस्कार करता हूं। इस उपनिषद् का प्रातःकाल का अध्ययन रात्रि के, सायंकाल का दिन के पापों को नष्ट करता है। दोनों बार पढ़नेवाला निष्पाप हो जाता है। आधी रात में पढ़ने से वाणी को सिद्धि मिलती है। नई मूर्ति में पढ़ने से देवता पास रहते हैं। प्राण-प्रतिष्ठा में जपने से मूर्ति में प्राण प्रतिष्ठा होती है। मंगलवार की अमावस्या में महादेवी के पास जप से महामृत्यु से तारण होता है। इसे जाननेवाला महामृत्यु से तर जाता है। (27-32)

□

97. बहु ऋचोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ वाङमे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविराम एधि। वेदस्य न आणीस्थ: श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेना-होरात्रात्संदधाम्यमृतं वदिष्यामि।. सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु। वक्तारवतु वक्तारम्।

ॐ शांति: शांति: शांति:।

सृष्टि से पूर्व केवल देवी ही थीं। उन्होंने जगत् की रचना की। वही काम-कला एवं शृंगार कला नाम से जानी जाती हैं। उन्होंने ही विष्णु, ब्रह्मा, रुद्र, गांधर्व, मरुदगण, अप्सराएं एवं किन्नरों की रचना की। उन्होंने ही सभी योग्य पदार्थ, सभी प्रकार के प्राणी, स्थावर-जंगम (चराचर-सृष्टि) तथा मानव की रचना की। वही अपरा शक्ति हैं। वही शांभवी आदि विद्या हैं। वही अक्षर तत्त्व हैं। वही तीनों प्रकार के शरीरों (स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण) तथा तीनों अवस्थाओं (स्वप्न, जागृति एवं सुषुप्ति) में व्याप्त हैं। देश, काल (समय एवं दूरी) एवं वस्तु में विद्यमान होने पर भी ये उनका स्पर्श नहीं कर सकते। वही सबमें चेतना रूप में हैं। केवल वही आत्मा हैं, अन्य सब असत्य हैं। वही ब्रह्म का ज्ञान करानेवाली तथा सत्, चित् एवं आनंद रूप हैं। वही त्रिपुरसुंदरी, बाहर-भीतर व्याप्त तथा स्वयं प्रकाश रूप हैं। मैं, तुम, विश्व, देवता आदि सब वही त्रिपुरसुंदरी हैं। भगवती ललिता ही सत्य हैं, वही परम ब्रह्म हैं। अस्ति, नास्ति आदि को त्यागकर स्वरूप को ग्रहण करने पर जो शेष रहता है, वही परम तत्त्व कहा जाता है। (1-6)

प्रकृष्ट (श्रेष्ठ) ज्ञान ही ब्रह्म है। 'मैं ब्रह्म हूं' इत्यादि वाक्यों में उसी ब्रह्म को बताया जाता है। 'तत्त्वमसि'—तुम वह हो, 'अयमात्मा ब्रह्म'—यह आत्मा ब्रह्म है आदि वाक्यों में उसी परम विद्या का वर्णन किया जाता है। यही षोडशी श्री विद्या या पंद्रह अक्षरोंवाली देवी के ही श्री महात्रिपुरसुंदरी, बाला, अंबिका, बगला, मातंगी, स्वयंवर कल्याणी, भुवनेश्वरी, चामुंडा, चंडी, वाराही, तिरस्कारिणी, राजमातंगी, शुकश्यामला, लघुश्यामला, अश्वारूढ़ा, प्रत्यंगिरा, धूमावती, सावित्री: सरस्वती, गायत्री, ब्रह्मानंद कला इत्यादि नाम हैं।

कभी नष्ट न होनेवाले परम आकाश में जहां देवता निवास करते हैं, वहीं ऋचाएं भी विद्यमान हैं। जो इसे नहीं जानता, वह यदि ऋचाओं का अध्ययन करता भी है, तो यह व्यर्थ है। इसको जानने पर, वही स्थान भी प्राप्त होता है।

□

98. सौभाग्यलक्ष्मी उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविराम एधि, वेदस्य न आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रात्संदधाम्यमृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवसु। वक्तारमवतु वक्तारम्।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

'हे परमात्मा, मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो, मेरा मन वाणी में प्रतिष्ठित हो, तुम मेरे समक्ष प्रकट होओ। मुझे वेदों का ज्ञान दो। मैं सुने हुए ज्ञान को न भूलूं। इस अध्ययन में मैं रात-दिन एक कर दूं, मैं ऋत एवं सत्य बोलूं। मेरी रक्षा करो। मेरे गुरु की रक्षा करो। हम दोनों की रक्षा करो। दैहिक, दैविक तथा भौतिक, तीनों प्रकार के ताप (कष्ट) शांत हों।'

प्रथम खंड

देवताओं ने भगवान आदिनारायण से सौभाग्यलक्ष्मी विद्या के विषय में जानना चाहा, तो भगवान बोले, 'आप सब सावधान होकर सुनें। यह तुरीय ही नहीं, अपितु तुरीयातीत अवस्था से भी परे सबसे भयंकर मंत्ररूपी आसन पर बैठनेवाली है, जो पीठों एवं उपपीठों पर सुशोभित देवताओं से घिरी हुई है। इस प्रकार की चार भुजाओंवाली लक्ष्मी का श्री सूक्त की पंद्रह ऋचाओं से ध्यान करना चाहिए। इन ऋचाओं के ऋषि अंगिरा, आनंद, कर्दम और विचलित हैं। प्रथम तीन ऋचाओं में अनुष्टुप् फिर चौथे में वृहती, पांचवें-छठे में त्रिष्टुप्, सातवें से चौदहवें तक अनुष्टुप् तथा पंद्रहवें में प्रस्तार पंक्ति छंद है। सभी का देवता श्री और बीज अग्नि है। इनमें 'का सोऽस्मि' शक्ति है। 'हिरणमयायै', 'चंद्रायै', 'रजतस्रजायै', 'हिरण्यस्रजायै', 'हिरण्यवर्णायै', 'हिरण्यायै', इन शब्दों के प्रारंभ में 'ॐ' तथा अंत में 'नमः' लगाकर न्यास करना चाहिए। फिर इस प्रकार ध्यान करना चाहिए—लाल कमल पर विराजमान कमल के पराग के समान रंग की लक्ष्मी अभय मुद्रा में हैं। उनके हाथों में ताजे कमल हैं और वह मणि आदि से अलंकृत हैं, ऐसी समस्त भुवनों की माता सरस्वती हमारी श्री को बढ़ाएं।

पीठ में कर्णिका के अंदर साध्य (कार्य) तथा श्री बीज लिखें। आठ, बारह तथा सोलह दलों के बीज में श्री सूक्त की आधी-आधी ऋचा लिखें। भूमि पर बने वृत्त में फलश्रुति ऋचा लिखें और सोलह दलों के कमल के बीच से 'अ' से 'स' तक वर्णों को लिखें। सबसे ऊपर वषट् एवं त्वरिता के बीज के साथ श्री बीज लिखें। पहले आवरण की पूजा यंत्रों द्वारा, दूसरे की पद्मनिधियों द्वारा, तीसरे की लोकपालों द्वारा तथा चौथे आवरण की पूजा वज्र आदि आयुधों द्वारा होती है। फिर ऋचाओं से आह्वान के बाद सोलह हजार जप से पुरश्चरण किया जाता है। इस सौभाग्यलक्ष्मी के एकाक्षर मंत्र में भृगु ऋषि, नीचृद गायत्री छंद तथा श्री देवता हैं। बीज भी श्री है तथा इसी से अंगन्यास भी होता है। 'यथाद॰' इस श्लोक से ध्यान किया जाता है। इसमें भी तीन वृत्तों का

रमापीठ बनाकर अष्टदल कमल की कर्णिका में साध्य के साथ श्री बीज लिखें। फिर ओंकार एवं अंत में 'यै' लगाकर विभूति, उन्नति आदि नौ शक्तियों की पूजा करें। अंगन्यास द्वारा प्रथम आवरण की पूजा करें, द्वितीय आवरण में वासुदेव संकर्षण आदि की क्रमशः पूजा करें, तृतीय आवरण में वालक्य आदि की तथा चतुर्थ में इंद्र आदि की पूजा करें। इसमें बारह लाख जप होता है। (1-14)

श्री लक्ष्मीवरदा, विष्णुप्रिया आदि नामों से शक्ति पूजा की जाती है। निष्काम उपासकों को ही श्री विद्या की सिद्धि होती है, किसी कामना से उपासना करने पर कभी सिद्धि नहीं मिलती।

द्वितीय खंड

देवताओं द्वारा तुरीय माया द्वारा बताए गए तत्त्वों के विषयों में पूछे जाने पर भगवान आदिनारायण बोले, 'योग से ही योग की वृद्धि होती है, अतः योग से ही योग को जानना चाहिए। योग के प्रति सावधान रहनेवाला योगी लंबे समय तक सुख प्राप्त करता है। निद्रा को वश में करके अल्प भोजन करनेवाला योगी सुविधावाले एकांत स्थान में विरक्त होकर प्राणायाम का अभ्यास करता है। मुख से वायु को खींचकर नाभि में अपान के साथ इसका संयोग करते हैं। फिर अंगूठों, अंगुलियों तथा हथेलियों से कानों, आंखों एवं नाक को बंद करके प्राणायाम में प्रणव का चिंतन करता हुआ योगी आत्मा से साक्षात्कार करता है। इस अभ्यास से एक अवस्था आने पर सुषुम्ना से प्रणव का आहत नाद सुनाई देता है। अनाहत चक्र में ध्वनि सुनने पर अनेक घोष सुनाई देते हैं। तब शरीर में दिव्यता, सुगंध आदि लक्षण आ जाते हैं। शून्य में ध्वनि सुनने पर योगाभ्यास करने से इच्छा शक्ति में प्रेरित होकर प्राण स्वाधिष्ठान चक्र को भेदकर सुषुम्ना में चला जाता है। पद्मासन के दृढ़ होने पर विष्णु ग्रंथि के भेदन से परम आनंद मिलता है। प्राण के नाड़ी से घर्षण पर भेरी का तथा मणिपूरक चक्र को भेदने पर मृदंग का शब्द होता है। प्राण वायु के महाशून्य में जाने पर सभी सिद्धियां तथा इसके द्वारा तालुचक्र के भेदन से चित्त का आनंद मिलता है। (1-9)

'साधना के अंत में शब्द रूप में प्रणव स्वयं प्रकट होता है। तब चित्त उसी में लीन हो जाता है। मायामय शरीर ब्रह्मा को समर्पित हो जाता है। जो योगी आत्मा को सर्वव्यापक मानता हो योग पर विजय प्राप्त करे। निर्विकल्पक समाधि से कैवल्य में स्थिति हो। यहां योगी अहंभाव तथा माया से मुक्त होकर शोक मुक्त हो जाता है। पानी में नमक के समान आत्मा का परमात्मा में लीन हो जाना ही समाधि है। मन, बुद्धि आदि की शून्यता तथा दुःखहीन अवस्था समाधि है। शरीर के चलने पर भी चित्त की निश्चलता एवं ध्यानमय अवस्था समाधि है। इस स्थिति में मन जहां भी जाता है, उसे ब्रह्म ही देखता है, उसके लिए सर्वत्र ब्रह्म ही है। (10-19)

तृतीय खंड

देवताओं द्वारा नौ चक्रों के विषय में पूछे जाने पर आदिनारायण बोले, 'मूलाधार में स्थित ब्रह्मचक्र तीन घेरोंवाला है। वहां मूलकंद में अग्नि के समान कुंडलिनी शक्ति का ध्यान करें। वहीं कामरूप पीठ है, जो सभी कामनाओं को पूर्ण करनेवाला है। दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र है। इसके मध्य में छः दलवाले कमल में पश्चिम को मुखवाले लाल लिंग का ध्यान करें। वहीं जगत् को आकर्षित करने की सिद्धि देनेवाला उड्डयाण पीठ है। तीसरा सर्प के समान टेढ़ा नाभि-चक्र है। उसमें बिजली तथा करोड़ों उगते सूर्यों के समान कुंडलिनी का ध्यान करें। जागृत होने पर यह अत्यंत शक्तिशाली

सभी सिद्धियां देती है। चौथा मणिपूरक या हृदय-चक्र है। इसमें ज्योतिर्मय लिंग जैसी हंस कला का ध्यान करें। यह सारे लोकों को वश में करती है। कंठचक्र चार अंगुल का है। इसके बाएं इड़ा, दाएं पिंगला एवं दोनों के बीच सुषुम्ना का चिंतन करें। तालुचक्र अमृत के प्रवाह वाला है। इसमें शून्य के ध्यान से चित्त शून्य में रत होता है। सातवां अंगूठे जैसा भू चक्र है। वहां ज्ञानमय दीप शिखा का ध्यान करने से वाणी की सिद्धि होती है। ब्रह्मरंध्र निर्वाण चक्र है। वहां सुई की नोक के समान धुएं की लकीर का चिंतन करें। यही मोक्ष देनेवाला जालंधर पीठ भी है। नौवां आकाश चक्र है। वहां ऊपर मुखवाले सोलह दलोंवाले कमल के बीच तीन मुखोंवाली कर्णिका में झुकी हुई शक्ति का ध्यान करें। यही पूर्ण गिरि पीठ है। इस उपनिषद के नित्य अध्ययन से साधक अग्नि एवं वायु के समान पवित्र होकर सभी धन, संपत्ति, स्त्री, पुत्र, पशु, सेवक आदि प्राप्त करके मोक्ष पाता है।

□

99. त्रिपुरोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ वाङ्मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठिमाविराम एधि, वेदस्य न आणीस्थः श्रुतं मे प्रहासीरनेनाधीतेनाहोरात्रात् संदधाम्यमृतं वदिष्यामि। सत्यं वदिष्यामि। तन्मामवतु। तद्वक्तारमवतु। अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

'हे परमात्मा, मेरी वाणी मन में प्रतिष्ठित हो, मेरा मन वाणी में प्रतिष्ठित हो, तुम मेरे समक्ष प्रकट होओ। मुझे वेदों का ज्ञान दो। मैं सुने हुए ज्ञान को न भूलूं। इस अध्ययन में मैं रात-दिन एक कर दूं, मैं ऋत एवं सत्य बोलूं। मेरी रक्षा करो। मेरे गुरु की रक्षा करो। हम दोनों की रक्षा करो। दैहिक, दैविक तथा भौतिक, तीनों प्रकार के ताप (कष्ट) शांत हों।'

अज्ञान के कारण माने गए स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण शरीर, तीन पुर हैं। ज्ञान, विज्ञान एवं सम्यक् ज्ञान तीन पथ हैं। अ से क्ष तक अक्षर हैं। इन सबको किसी महान् और सदा रहनेवाली शक्ति के अधीन समझना चाहिए। नौ शक्तियां, नौ चक्र, योग की नौ अवस्थाएं तथा इनकी नौ योगिनियां इसी परमात्मा से प्रकाशित होती हैं। इन चक्रों के आधार नौ भद्राएं तथा नौ मुद्राएं भी इसी पर आश्रित हैं। सर्वप्रथम नौ भद्राओं के रूप में एक ही प्रधानता थी। इंद्रियां, प्राण, अंतःकरण के उन्नीस तत्त्वों के रूप में भी यही थी। फिर चालीस शक्तियों के रूप में भी यही विद्यमान थी। यह माता के समान ब्रह्मज्ञान के लिए मुझमें प्रवेश करे। इस माया प्रपंच के पहले यही ज्योति होती है। इसके नाश होने पर भी वही ब्रह्मरूप शेष रहता है। अपने से अलावा कुछ भी न देखकर स्वयं को ब्रह्म रूप में देखनेवाला योगी परम प्रकाश से आनंदित होता है। तब वह अद्वैत परमात्मा में स्थित हो जाता है। क्रिया, ज्ञान एवं इच्छा-शक्ति रूपी रेखाएं हैं, जागृत् आदि अवस्थाएं स्थान हैं; लोचन, कंठ, हृदय एवं सहस्रसार चक्र हैं, भूः, भुवः, स्वः लोक हैं। सत्त्व आदि गुणों में पुनः प्रत्येक के तीन भेद हैं और इनका आश्रय परमात्मा है, उसके साथ रहनेवाली चित् शक्ति कामरूप में विद्यमान है। इसके साथ तदंतिका, मानिनी, मंगला आदि पंद्रह आवरण देवता हैं। इन्हें जाननेवाला योगी श्रीचक्र को तृप्त करके शरीर अंत में परमधाम प्राप्त करता है।

यह मूल विद्या काम, योनि, कामकला, इंद्र, वायु आदि रूपोंवाली विश्व माता है। इस विद्या के ज्ञान से योगी अमृतत्व तत्त्व को प्राप्त करता है। यही क्षण से लेकर कला तक के समय को तथा ईश्वर को धारण करती है। योगी इसी के आश्रय से चित्त को शुद्ध करते हैं। हृदय-कमल में सूर्य-चंद्र से युक्त स्तनबिंबवाली, नीचे मुखवाली तथा सभी सुंदर अंगोंवाली परमात्मा की कामकला का ध्यान करने से इच्छाएं पूर्ण होती हैं, किंतु सकाम ध्यान से पुनर्जन्म नहीं छूटता। इस प्रकार भोग बुद्धि को त्यागकर सभी वर्ण के साधक पुण्यलोक प्राप्त करते हैं। ऐसा न करने पर विश्वमाता उससे अपनी सिद्धियों को गुप्त रखकर जन्मचक्र में घूमते रहने के लिए छोड़ देती है।

निष्काम भावना से इस शक्ति का ध्यान करने से मोक्ष प्राप्त होती है। ऐसे उपासकों की ज्ञान आदि की हवि से तृप्त होकर उपासकों को अपने में मिलाकर स्थित हो जाती है। चारों वेद तथा चौंसठ कलाएं जिस शक्ति का गान करती हैं, वही इस उपनिषद में वर्णित है। यह श्रेष्ठ विद्या है।

□

100. सीता उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्रा
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषाः विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नः बृहस्पतिर्दधातु ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

'हम कानों से कल्याणमय वचन सुनें, नेत्रों से कल्याणमय चीजों को देखें और दृढ़ व स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करें। इंद्र हमारा कल्याण करें, पूषा हमारा कल्याण करें। अमंगलनाशक गरुड़ और बृहस्पति हमारा कल्याण करें। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दुःख शांत हों।'

देवताओं ने प्रजापति ने पूछा, 'सीता कौन हैं ? उनका क्या रूप है ?' तब प्रजापति बोले, 'सीता मूल प्रकृति हैं। सीता शब्द तीन शक्तियों को बताता है। 'स' सत्य, अमृत, सोम एवं प्राप्ति सूचक, 'ता' विस्तार एवं लक्ष्मी रूप तथा 'ई' संपूर्ण विश्व के कारण विष्णु की योगमाया है। यह माया अपने अनेक आभूषणों से युक्त होकर व्यक्त होती है। प्रसन्न होने पर यह बुद्धि बनकर बोध कराती है। वह अपने व्यक्त रूप में पृथ्वी से जनक के हल के अग्र भाग से प्रकट हुई। इसका प्रथम रूप शब्द ब्रह्मरूप है। तीसरा 'ई' का रूप अव्यक्त रूप है, यह शौनकीय तंत्र का वर्णन है। सदा भगवान राम के समीप रहने के कारण सीता जगत् की आधार हैं। वही सभी प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति एवं संहार करनेवाली हैं। ब्रह्मवादी इन्हें प्रणव रूप मूल प्रकृति कहते हैं। वह सभी वेदों, देवों, लोकों, धर्मों आदि के रूप में तथा सबकी आधार हैं। वही महालक्ष्मी हैं। वही चेतन-अचेतन प्राणियों में आत्मा रूप में हैं। अपने गुणों के विभाग से वही देवता, ऋषि, मनुष्य, गंधर्व, असुर, राक्षस आदि रूपों में हैं। वही महाभूतों, इंद्रियों, मन, प्राण आदि के रूप में कही जाती हैं। (1-10)

वही इच्छा, क्रिया तथा साक्षात् शक्ति के रूप में प्रकट होती हैं। इच्छा शक्ति रूप में भी वह तीन रूपों में हैं। श्री, भू एवं नीला देवी के रूप में वे मंगल रूपिणी, प्रभाव रूपिणी तथा सोम-सूर्य-अग्नि रूपिणी हैं। सोम रूप में वह औषधियों आदि को प्रकट करती हैं। देवताओं को यज्ञ का फल देती हैं। देवताओं को अमृत से तथा प्राणियों को अन्न आदि से जीवन देती हैं। वही सूर्य आदि लोकों को प्रकाश देती हैं। वही घड़ी, पल, दिन, पखवाड़ा, वर्ष आदि से मनुष्य को दीर्घायु बनाती हैं। पल से कल्प तक जगत् चक्र को वही वश में रखती हैं। अतः वही प्रकाश और काल के रूप में भी हैं। वही प्राणियों में अग्नि, अन्न, भूख, प्यास आदि रूपों में, देवताओं में, सुख के रूप में तथा औषधियों में शीत-उष्ण आदि रूपों में बाहर-भीतर सर्वत्र व्याप्त हैं। देवी के रूप में वह लोकों की रक्षा करती हैं और लक्ष्मी रूप में प्रकट होती हैं। सागरों एवं सात द्वीपोंवाली पृथ्वी के रूप में

वह भूदेवी हैं और वही प्रणव की आत्मा हैं। नीला देवी के रूप में वह सभी औषधियों एवं प्राणियों का पोषण करती हैं। वही पृथ्वी के नीचे इसके आधार जल के रूप में हैं। उनका क्रिया-शक्तिवाला रूप विष्णु के मुख से नाद-शक्ति के रूप में प्रकट हुआ। नाद से बिंदु, बिंदु से ओंकार तथा ओंकार से राम वैखानस पर्वत हुआ है। उससे कर्म एवं ज्ञान की अनेक शाखाएं निकलती हैं। (11-20)

'ऋक्, यजु: एवं साम तीन वेद हैं। कार्य सिद्धि के लिए चार नाम कर लिए गए हैं। यज्ञ में तीनों ही वेदों का उपयोग होता है। अथर्ववेद इन्हीं तीनों का रूप है। ऋग्वेद की इक्कीस, यजुर्वेद की एक सौ नौ, सामवेद की एक हजार तथा अथर्ववेद की पांच शाखाएं मानी जाती हैं। वैखानस प्रत्यक्ष दर्शन है। अत: ऋषि लोग इसी को श्रेष्ठ मानते हैं। कल्प, व्याकरण, शिक्षा, निरुक्त, ज्योतिष एवं छंद ये छ: वेद के अंग हैं। इनका भी वेदों के साथ ही अध्ययन होता है। इतिहास-पुराण को अनुपांग कहा गया है। वास्तुवेद, धनुर्वेद, गांधर्व वेद, दैविक तथा आयुर्वेद को उपवेद कहा जाता है। दंडनीति, वार्ता आदि भी स्वयं प्रकाशित विद्याएं हैं। (21-31)

'विष्णु की वाणी तीन वेदों के रूप में वैखानस ऋषि के हृदय में प्रकट हुई। वैखानस ने इसे तीनों वेदों के रूप में व्यक्त किया। यह ब्रह्मरूपी क्रिया-शक्ति है। यह भगवान की इच्छा मात्र से अनेक रूपों को प्रकट करती है। दिखाई देनेवाला विश्व इसी का रूप है। यह शांत, तेजोमयी, व्यक्त-अव्यक्त का कारण है। इसके रूपों का वर्णन नहीं किया जा सकता। यह भगवान से अभिन्न उनकी आज्ञाकरिणी तथा उत्पत्ति, पालन एवं संहार का कारण है। इच्छा-शक्ति भी तीन प्रकार की है, यही योग शक्ति बनकर प्रलयकाल में भगवान के दाहिने वक्षस्थल पर श्रीवत्स के रूप में विश्राम करती है। भोग-शक्ति के रूप में यह कल्प वृक्ष आदि नौ निधियों में विश्राम करती है। भक्तों एवं योगियों को यह विभिन्न प्रकार के भोग प्रदान करती है। यही पूजा की सामग्रियों, तीर्थों, जलों आदि को उत्पन्न करती है। वीर शक्ति चार भुजाओंवाली वर मुद्रा एवं कमल से युक्त है। मुकुट, आभूषणों से सुशोभित इस रूप का सफेद हाथी रत्नजड़े अमृत कलशों से अभिषेक करते हैं। ब्रह्मा आदि देवता चारों ओर खड़े होकर वेदों सहित उसकी स्तुति करते हैं। यह अणिमा आदि से युक्त है। अप्सरा आदि इसकी सेवा करती हैं। भृगु आदि ऋषि पूजा करते हैं। सूर्य एवं चंद्रमा दीपक के समान उसके समीप प्रकाश करते हैं। यह दिव्य सिंहासन पर कमल में बैठती है। सभी देवताओं द्वारा पूजित प्रसन्न मुख यह समस्त कार्यों की कारण रूपी वीर लक्ष्मी हैं'। (32-37)

□

101. राधा उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते ।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
ॐ शांति : शांति : शांति : ।

'वह ब्रह्म पूर्ण है, यह जगत् भी पूर्ण है । उस पूर्ण ब्रह्म से इस पूर्ण (जगत) की उत्पत्ति हुई है, अतः उस पूर्ण ब्रह्म से यदि इस पूर्ण (जगत) को पृथक् भी कर दें तो पूर्ण ही शेष रहता है ।'

सनक आदि ऋषियों ने उपासना करने के बाद ब्रह्मा से पूछा, 'भगवन् ! कौन परम देवता है ? उसकी क्या-क्या शक्तियां हैं ? तथा इनमें कौन शक्ति सृष्टि का कारण है ?' इस पर ब्रह्मा बोले, 'पुत्रो ! यह परम गोपनीय रहस्य है । इसे प्रत्येक व्यक्ति को नहीं बताना चाहिए । आस्थावान्, गुरुभक्त ब्रह्मचारी के अतिरिक्त किसी अयोग्य व्यक्ति को इस विद्या को बताने से पाप का भागी होना पड़ता है । भगवान् कृष्ण ही परम देव हैं । वे छः ऐश्वर्योंवाले हैं । गोप-गोपियों द्वारा सेवित तथा वृंदा द्वारा आराधित यह वृंदावनाधीश ही एक मात्र ईश्वर हैं । वही नारायण सभी ब्रह्मांडों के स्वामी, नित्य एवं पुराण पुरुष हैं । उनकी आह्लादिनी, संधिनी, ज्ञान, क्रिया आदि अनेक शक्तियां हैं, जिनमें आह्लादिनी शक्ति श्रेष्ठ है । यही राधा हैं, जिनकी कृष्ण भी पूजा करते हैं । इन्हीं राधा को गंधर्वा भी कहा जाता है । इन्हीं से लक्ष्मी भी उत्पन्न हुई हैं । रस के सागर कृष्ण की लीला के लिए एक होते हुए भी राधा-कृष्ण दो रूपों में विभक्त हुए हैं ।

यही सर्वेश्वर कृष्ण की सर्वेश्वरी हैं, सनातन विद्या हैं तथा कृष्ण के प्राणों की देवी हैं । देवता भी एकाग्र होकर इनका ध्यान करते हैं । इनकी गति को कोई नहीं जानता । यह जिस पर प्रसन्न हो जाती हैं, तो समझो मोक्ष उसकी हथेली में आ गया । इन्हें जाने बिना कृष्ण की उपासना करनेवाला सबसे बड़ा मूर्ख है । वेद भी राधा के इन नामों को गाते हैं—राधा, रसेश्वरी, रम्या, कृष्ण मंत्र की देवता, सर्वाद्या, सर्ववंद्या, वृंदावन विहारिणी इत्यादि । इन नामों को पढ़नेवाला जीवन्मुक्त हो जाता है । घर, आभूषण, शैय्या, मित्र, सेवक आदि की शक्ति ही संधिनी शक्ति है । इच्छा शक्ति माया है । यह सत्त्व आदि तीन गुणोंवाली शक्ति ही जगत का कारण है । यह अविद्या बनकर जीव को बंधन में डाल देती है । क्रिया शक्ति भगवान् की लीला-शक्ति है ।

जो इस उपनिषद् को पढ़ता है, वह अव्रती भी हो, तो व्रती हो जाता है । वह वायु आदि सभी देवताओं के समान पवित्र हो जाता है । वह राधा-कृष्ण का प्रिय होकर जहां तक देखता है, सबको पवित्र कर देता है ।

□

102. तुलसी उपनिषद्

तुलसी उपनिषद् के ऋषि नारद, छंद अथर्वांगिरस एवं देवता अमृता तुलसी हैं। बीज सुधा है, शक्ति वसुधा है तथा कीलक नारायण है। यह तुलसी सांवले शरीरवाली है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद एवं कल्प क्रमशः इसके रूप, मन, प्राण एवं हाथ हैं। इसका वर्णन पुराणों में है। यह अमृत से उत्पन्न रस की मंजरी के समान अनेकों रसों एवं भोगों को देनेवाली है। यह विष्णु की प्रिया है, मृत्य-जन्म से मुक्त करनेवाली है, दर्शनों से ही पाप नष्ट करनेवाली, स्पर्श से पवित्र करनेवाली, वंदना करने पर रोग नष्ट करनेवाली, सेवन से मृत्यु नाशक, विष्णु में चढ़ाने से विपत्ति नाश करनेवाली, खाने से प्राणशक्ति देनेवाली, परिक्रमा से निर्धनता दूर करनेवाली, जड़ में लीपने से महापाप नष्ट करनेवाली तथा सूंघने से अंदर के मैल को नष्ट करनेवाली है। इसे जाननेवाला सच्चा वैष्णव है। इसे व्यर्थ न तोड़ें, देखने पर परिक्रमा करें, रात्रि में न छुएं, पर्वों में न तोड़ें और जो पर्व में तोड़ेगा तो विष्णु का अपमान करेगा। तुलसी, विष्णुप्रिया एवं अमृता को हम अपनी श्रद्धा देते हैं। हम तुलसी को जानते हैं, विष्णुप्रिया का ध्यान करते हैं और अमृता हमारी बुद्धि को प्रेरणा दे।

हे क्षीरसागर की पुत्री अमृता, तुम अमृत देनेवाली हो अतः संसार से मेरा उद्धार करो। तुम आनंदमय हो, लक्ष्मी की सखी हो तथा अत्यंत दुर्लभ हो। अपने अभयमुद्रावाले हाथों से मुझ पर कृपा करो। तुम वृक्ष न होकर भी वृक्ष के रूप में हो, तुम मेरा अज्ञान दूर करो। हे तुलसी! तुम अतुलनीय रूपवाली, करोड़ों तुलाओं से बढ़कर तथा अजरा (देवी) हो, केवल हरि ही तुम्हारी तुलना कर सकते हैं। केवल तुम्हीं जगत् माता, विष्णुप्रिया, देवताओं की पूज्या तथा मोक्ष देनेवाली हो। तुम्हारी छाया में लक्ष्मी, जड़ में विष्णु तथा चारों ओर सभी देवता, सिद्ध, चारण, नाग आदि रहते हैं। तुम्हारी जड़ के चारों ओर ही सभी तीर्थ तथा मध्य में ब्रह्मा रहते हैं। अगले भाग पर सभी वेद, शास्त्रोंवाली उस तुलसी को मैं नमस्कार करता हूं।

तुम्हें नारद प्रणाम करते हैं। तुम विष्णु का मन हो। ब्रह्मा के आनंद के आंसुओं से तुम्हारा जन्म हुआ है तथा तुम्हारे प्रत्येक अंग में अमृत है। तुम वृंदावन में विहार करती हो। तुम्हीं सब पापों का प्रायश्चित्त हो, मुझे भयंकर संसार सागर से पार करो। तुम देवों, पितरों तथा ऋषियों को प्रिय हो। बिना तुलसीवाला श्राद्ध पितरों को नहीं मिलता, तुलसी-पत्र के बिना की गई पूजा राक्षसी पूजा है, इससे विष्णु प्रसन्न नहीं होते। बिना तुलसी के कोई भी यज्ञ, दान, तर्पण, तीर्थ, श्राद्ध आदि नहीं करना चाहिए। तुलसी की माला से किया गया जप सारी इच्छाएं पूरी करता है। इसे न जाननेवाला ब्राह्मण चांडाल से भी नीच है।

यह ज्ञान विष्णु ने ब्रह्मा को, ब्रह्मा ने नारद, सनक आदि को, सनक आदि ने वेद व्यास को, व्यास ने शुकदेव को, शुकदेव ने वामदेव को, वामदेव ने मुनियों को तथा मुनियों ने मनुष्यों को दिया। इसे जाननेवाला स्त्रीहत्या, वीरहत्या, महाभय और महादुःखों से मुक्त होकर बैकुंठ प्राप्त करता है। □

103. नारायण उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

'परमात्मा हम दोनों (गुरु एवं शिष्य) की एक साथ रक्षा करे, एक साथ हमें उपभोग प्रदान करे। हम साथ ही पराक्रम करें। हमारा अध्ययन तेजस्वी हो, हम द्वेष न करें।'

पुरुषरूपी नारायण को सृष्टि उत्पन्न करने की इच्छा हुई। सर्वप्रथम नारायण से प्राण की उत्पत्ति हुई। फिर मन तथा सभी इंद्रियां पैदा हुईं। समस्त विश्वं को धारण करनेवाले आकाश, वायु, अग्नि, जल एवं पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। नारायण से ही रुद्र, इंद्र, प्रजापति, बारह आदित्य, रुद्र, वसु तथा सभी छंद उत्पन्न हुए। ये सब नारायण से ही पैदा होते हैं, उन्हीं में पलते हैं तथा उन्हीं में मिल जाते हैं। इस ऋग्वेद के सिर के समान श्रेष्ठ ज्ञान का विद्वान अध्ययन करते हैं। नारायण नित्य हैं। वही ब्रह्मा, शिव, इंद्र, काल, दिशाएं, उपदिशाएं, ऊपर, नीचे, अंदर तथा बाहर सब कुछ है। भूत, भविष्य, निष्कल, निरंजन, निर्विकल्प, अवर्णनीय एवं शुद्ध वही एक नारायण ही हैं। इसे जाननेवाला विष्णु में मिल जाता है। इस यजुर्वेद के सिर के समान श्रेष्ठ ज्ञान का ज्ञाता भी उन्हें प्राप्त करता है। (1-2)

पहले 'ॐ' फिर 'नमः' कहे इसके बाद नारायण कहे (अर्थात 'ॐ नमो नारायण' कहे)। 'ॐ' यह एकाक्षर मंत्र है, 'नमः' में दो अक्षर हैं और 'नारायण' में पांच अक्षर हैं। इन सबसे आठ अक्षरों का नारायण मंत्र होता है। यही नारायण का अष्टाक्षर मृत्यु का नाशक मंत्र है। इसके साथ ही इससे संतान, धन आदि की प्राप्ति के बाद अमृतत्व प्राप्त होता है। यह सामवेद के सिर के समान है। इसके ज्ञान से अमृतत्व प्राप्त होता है। 'अ', 'उ' तथा 'म' से बने ॐ के जप से योगी संसार के बंधनों से मुक्त होकर अमृतत्व प्राप्त करता है। आठ अक्षर के नारायण मंत्र के जप से बैकुंठ प्राप्त होता है। हृदय कमल में विद्युत् की आभा जैसा ब्रह्म ही देवकी पुत्र, मधुसूदन, पुंडरीकाक्ष, विष्णु तथा अच्युत कहा जाता है। सभी प्राणियों में रहनेवाले नारायण ही सबके कारण हैं। उनका कोई भी कारण नहीं है। यह अथर्व सिर है। इसका प्रातः का अध्ययन रात्रि में किए हुए तथा सायंकाल का अध्ययन दिन में किए पापों को नष्ट करता है। इन दोनों समयों में पढ़ने से साधक निष्पाप हो जाता है। दोपहर में सूर्य की ओर मुख करके पढ़ने से पांच महापापों से मुक्ति तथा सभी वेदों एवं पुराणों के अध्ययन का फल मिलता है। अंत में साधक को नारायण का सायुज्य (शरीर से भगवान में मिल जाना) मिलता है।

□

104 सूर्य उपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमातक्षिर्भिर्यजत्रा
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धाश्रवाः स्वस्ति नः पूषाः विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्ताक्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नः बृहस्पतिर्दधातु।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

'हम कानों से कल्याणमय वचन सुनें, नेत्रों से कल्याणमय चीजों को देखें और दृढ़ अंगोंवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करें। इंद्र हमारा कल्याण करें, पूषा हमारा कल्याण करें। अमंगलनाशक गरुड़ और बृहस्पति हमारा कल्याण करें। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दुःख शांत हों।'

सूर्य के विषय में अथर्ववेदीय मंत्रों की व्याख्या की जाती है। इनके ऋषि, देवता तथा छंद क्रमशः ब्रह्मा, आदित्य तथा गायत्री हैं। हंस बीज है, हल्लेखा शक्ति है तथा सृष्टियुक्त आकाश कीलक है। चारों पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) की सिद्धि के लिए इनका विनियोग होता है। छः स्वरों पर बैठे हुए बीज सहित छः दलोंवाले लाल कमल पर स्थित सात घोड़ों के रथ में सोने समान रंगवाले सूर्य, चार भुजाओंवाले हैं। दो हाथों में कमल है। एक हाथ से अभय की, दूसरे से वरदान की मुद्रा बनी है। ऐसे समय चक्र को चलाने वाले सूर्य को जाननेवाला ही ब्राह्मण होता है।

उस सविता का यश वरेण्य (वरण करने योग्य) है, हम उसका चिंतन करते हैं, जो हमारी बुद्धियों को प्रेरित करे। सूर्य समस्त जगत् का आत्मा है, उसी से समस्त प्राणी, यज्ञ, मेघ, अन्न तथा आत्मा उत्पन्न होते हैं। हे आदित्य ! तुम्हें नमस्कार है, क्योंकि तुम्हीं प्रत्यक्ष कर्ता, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ऋक्, यजुष्, साम एवं अथर्ववेद तथा सभी छंद हो।

आदित्य से वायु, भूमि, जल, ज्योति, आकाश, दिशाएं, देवता तथा वेद उत्पन्न होते हैं। आदित्य ही ब्रह्मांडों को तपाता है। वही ब्रह्म, अंतःकरण, पांचों प्राण, पांचों ज्ञानेंद्रियां, पांचों कर्मेंद्रियां तथा इन दसों के विषय भी है। वही अनंत ज्ञान एवं विज्ञान से युक्त है।

हे सूर्य ! तुम्हें नमस्कार है, मुझे मृत्यु से बचा लो। तेजस्वी सूर्य ही विश्व का कारण है, उसे नमस्कार है। सभी प्राणी सूर्य से ही उत्पन्न होते हैं, उसी से पलते हैं तथा उसी में लय हो जाते हैं। जो सूर्य हैं, वही मैं भी हूं। सूर्य ही हमारे नेत्र हैं, वह हमें देखने की शक्ति दे। हम आदित्य को जानते हैं, हजारों किरणोंवाले का ध्यान करते हैं, वह सूर्य हमें प्रेरणा दे। सविता सामने-पीछे, उत्तर-दक्षिण, ऊपर-नीचे सभी ओर से व्याप्त है। वह हमारे लिए सब कुछ उत्पन्न करे और हमें लंबी आयु दे। 'ॐ' में एक, 'घृणि' में दो, सूर्य में दो तथा आदित्यों में तीन अक्षर हैं, इन्हीं से सूर्य का अष्टाक्षर (आठ अक्षरोंवाला) मंत्र बनता है।

इस उपनिषद् का नित्य जप करनेवाला ब्रह्मज्ञानी बनता है। इसे सूर्य की ओर मुख करके जपने से महारोगों का भय नष्ट होता है। निर्धनता दूर होती है, अभक्ष्य भक्षण तथा असत्य भाषण के पाप नष्ट होते हैं। दोपहर में सूर्य की ओर मुख करते हुए पढ़ने से पांच महापापों से मुक्त हो जाता है। इस सावित्री विद्या की कहीं भी किसी के सामने प्रशंसा नहीं करनी चाहिए। जो भाग्यशाली इसे प्रातःकाल पढ़ता है, उसके सौभाग्य की वृद्धि होती है, पशुधन बढ़ता है एवं उसे वेदों का अर्थ ज्ञात होता है। इसे तीनों समय पढ़ने से सैकड़ों यज्ञों का फल मिलता है। हस्त नक्षत्र में सूर्य होने पर इसका जप महामृत्युंजय का नाश करता है।

□

105. भावनोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षिभिर्यजत्राः
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः।
स्वस्ति न इंद्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषाः विश्ववेदाः
स्वस्ति नस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्ति नः बृहस्पतिर्दधातु ॥

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः।

'हम कानों से कल्याणमय वचन सुनें, नेत्रों से कल्याणमय चीजों को देखें और दृढ़ अंगोंवाले स्वस्थ शरीर से ईश्वर की स्तुति करते हुए अपनी आयु को ईश्वर के प्रति समर्पित करते हुए व्यतीत करें। इंद्र हमारा कल्याण करें, पूषा हमारा कल्याण करें। अमंगलनाशक गरुड़ और बृहस्पति हमारा कल्याण करें। दैहिक, दैविक और भौतिक तीनों प्रकार के दुःख शांत हों।'

गुरु परम शक्ति है। नौ छिद्रोंवाले शरीर में नौ चक्र हैं। वारा ही पितारूप तथा कुरुकुल्ला माता रूप हैं। चारों पुरुषार्थ सागर तथा देह नौ रत्नों का द्वीप है। नौ मुद्राएं इसकी मुख्य शक्तियां हैं। त्वचा आदि सात धातुओं से युक्त संकल्प कल्पवृक्ष है। तेजस्वी जीव उद्यान है। जीभ द्वारा चखे जानेवाले मीठा, खट्टा, कड़ुवा, कसैला, नमकीन और तीखा ये छः रस हैं। कुंडलिनी ज्ञानशक्ति का घर है। इच्छा शक्ति महात्रिपुर सुंदरी है। साधक होता (हवन करनेवाला) है, ज्ञान अध्वर्य तथा ज्ञेय हवि है। ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय में अभिन्नता ज्ञात होना श्री चक्र की पूजा है। भाग्य सहित श्रृंगार आदि नौ रस अणिमा आदि सिद्धियां हैं। काम, क्रोध आदि आठ शक्तियां हैं। पृथ्वी आदि महाभूत तथा इंद्रियां आदि सोलह विकार शक्तियां हैं। बोलना, चलना आदि आठ शक्तियां हैं। इड़ा, पिंगला आदि चौदह नाड़ियां चौदह देवता हैं। प्राण, अपान आदि दस वायु, सर्प, सिद्धिपद आदि देवता हैं। इन दस वायुओं के कारण रेचक, पूरक, शोषक आदि पांच रूपों में ग्रहण किया जाता है। ये मनुष्य में चारों प्रकार से लिए गए अन्न को पचाते हैं। शीत-उष्ण, सुख-दुःख, इच्छाएं, तीनों गुण ही वशिनी आदि आठ शक्तियां हैं। शब्द, स्पर्श आदि पांच विषय पांच फूलों के बाण तथा मन ईख का धनुष है। वश में होना ही बाण है, अनुराग, बंधन तथा द्वेष अंकुश हैं। अव्यक्त, महत्, अहंकार, कामेश्वरी, वज्रेश्वरी एवं भगमालिनी भीतरी त्रिकोण के आगेवाले देवता हैं। पंद्रह तिथियों के रूप में समय की गणना श्रद्धारूपी पंद्रह देवता हैं। वज्रेश्वरी एवं भगमालिनी में कामेश्वरी सत्, चित्, एवं आनंद रूप पूर्ण परमात्मा है।

इन देवताओं से एक हो जाना ही कर्तव्य है। ऐसी भावना पूजा है। भीतरी तथा बाहरी के रूप को पहचानना आह्वान है। इन दोनों कारणों को एक रूप में ग्रहण करना आसान है। लाल एवं सफेद पदों (योग की विशेष अवस्था में) को एक करना पाद्य (भगवान के पांव धोने का जल) है। शिष्यों को सदानंद, दाय उदानंद स्थिति का उपदेश अर्घ्य है। स्वयं स्वच्छ एवं सिद्ध ही आचमन जल है।

सारे देह में 'चित्' की ज्योति का अनुभव स्नान है। चित् शक्ति का प्रकाशित होना वस्त्र है। इच्छा आदि के सत्ताईस भेद तथा ब्रह्मनाड़ी सुषुम्ना ही ब्रह्मसूत्र है। अपने से भिन्न वस्तु का स्मरण न करना ही विभूषण है। ब्रह्ममय स्वच्छ परिपूर्ण आत्मा का ध्यान सुगंध है। मन स्थिर होने पर विषयों का अनुसंधान पुष्प है और उन्हीं को स्वीकार करना धूप है। प्राणायाम में प्राण-अपान की एकता से सत्, चित्, उल्का के समान आकाश शरीर ही दीपक है। अपने अलावा अन्य विषयों में मन का न जाना नैवेद्य है। तीन अवस्थाओं को एक करना तांबूल है। मूलाधार से ब्रह्मरंध्र तक तथा ब्रह्मरंध्र से मूलाधार तक आना-जाना प्रदक्षिणा है। तुर्यावस्था नमस्कार है। देह को शून्य मानकर परमात्मा में लय होना बलि (भोग देना) है। इस प्रकार कर्तव्य-अकर्तव्य से उदासीन होकर लीन चिंतन ही होम है। स्वयं उस परमात्मा के चिंतन में डूब जाना ही ध्यान है।

केवल तीन मुहूर्त तक भी ऐसा ध्यान करनेवाला जीवन्मुक्त हो जाता है। वह ब्रह्म ही हो जाता है। उसके कार्य चिंतन करने पर बिना प्रयत्न के ही सिद्ध हो जाते हैं। वही शिव योगी कहा जाता है।

□

इस उपनिषद् को महान् उपनिषद् भी कहा जाता है। तब एकमात्र नारायण ही था। ब्रह्मा, ईशान, जल, अग्नि, वायु, आकाश, पृथ्वी, नक्षत्र, सूर्य, आदि कोई भी नहीं थे। अकेला वह नर (नारायण) ही था। ध्यान में उसके ललाट से पसीना गिरा, वही जल बना। यही हमारा सुनहरा अन्न है। तब चतुर्मुख ब्रह्मा हुआ। उसने पूर्व को मुख किया 'भूः' इस व्याहृति से ऋग्वेद, गायत्री छंद; पश्चिमाभिमुख (पश्चिम को मुख) होकर 'भूः' से त्रिष्टुप् छंद एवं यजुर्वेद, उत्तराभिमुख होकर 'भुवः' से जगती छंद एवं सामवेद तथा दक्षिणाभिमुख होकर 'जनः' व्याहृति से अनुष्टुप् छंद एवं अथर्ववेद को कहा।

वह परम, नित्य, विश्व, नारायण, हरि हजारों मुखों तथा हजारों नेत्रोंवाला विश्व को उत्पन्न करनेवाला है। वह ऋषिरूपी संसार का स्वामी, समुद्र में सोनेवाला विश्वरूप एवं परम पुरुष है। उसी के आश्रय से विश्व जीवित है। वह हृदय के आकाश में नीचे मुख किए हुए कमल के समान लटका हुआ है और अपनी शक्तियों से क्रियारत है। वहां चारों ओर लपलपानेवाली अग्नि की ज्वाला है। उसके बीच में एक छोटी ज्वाला अणीय में स्थित है। इसी ज्वाला के बीच में परमात्मा रहता है, जिसे ब्रह्म, ईशान, अक्षर, परम स्वराट् आदि नामों से जाना जाता है।

इस महान उपनिषद को पढ़नेवाला ब्राह्मण यदि श्रोत्रिय न हो, तो श्रोत्रिय हो जाता है और यदि उपनीत न हो, तो उपनीत हो जाता है। वह अग्नि, वायु, सूर्य, चंद्रमा तथा सत्य के समान पवित्र हो जाता है। सभी देवों का ज्ञाता हो जाता है। उसे सभी तीर्थों के स्नान का, सभी यज्ञों का, साठ हजार गायत्री जप का, हजारों इतिहास-पुराण अध्ययन का तथा दस हजार प्रणव जप का फल मिलता है। वह जहां तक देखता है, लोग पवित्र हो जाते हैं। उसकी सात पीढ़ियां पवित्र हो जाती हैं। निश्चित रूप में उसे अमृतत्व प्राप्त होता है।

देवता स्वर्ग में आए। उन्होंने हाथों को ऊपर उठाकर स्तुति करते हुए रुद्र से कहा, 'भूः', 'भुवः', 'स्वः' क्रमशः आपके आदि, मध्य और सिर हैं, आप ही विश्वरूप तथा ब्रह्म हैं। दो प्रकार से या तीन प्रकार से दिया गया होम या न दिया गया, सर्व (सब कुछ) असर्व, विश्व-अविश्व, किया-न-किया, पर-अपर तथा परमधाम सब आप ही हैं। हमें अमृत प्राप्त हो और आपको जानें। हम आपको नमस्कार करते हैं। आप ही अमृत, सोम, सूर्य तथा जगत् को धारण करते हैं। आप ही ग्राह को ग्राहक से, भाव को भाव से तथा सूक्ष्म को सूक्ष्म से ग्रसते हैं। हे महाग्रास, आपको नमस्कार है।

□

107. चाक्षुष उपनिषद्

इस चाक्षुष (आंखों-संबंधी) विद्या को पढ़ने से ही इसकी सिद्धि हो जाती है। यह विद्या आंखों के रोगों को नष्ट करनेवाली है। इससे नेत्र ज्योति तेज होती है। इस चाक्षुषी विद्या के ऋषि अहिर्बुध्न्य हैं, छंद गायत्री तथा देवता सूर्य हैं। नेत्र-रोगों से छुटकारा पाने के लिए इसका विनियोग होता है। मंत्र निम्नलिखित है—

चक्षु, चक्षु, चक्षु तेज स्थिर हो। मेरी रक्षा करो, रक्षा करो। शीघ्र चक्षु रोगों को शांत करो, शांत करो। हे सूर्य, मुझे तेज को दिखाओ, दिखाओ। जैसे मैं अंधा न होऊं, वैसा ही करो, वैसा ही करो। कल्याण करो-करो। मेरे पूर्व जन्म में किए गए जिन दुष्कर्मों से चक्षु प्रतिरोध हो रहा है, उन्हें सभी को निर्मूल करो, निर्मूल करो। चक्षुतेज देनेवाले दिव्य भास्कर को नमस्कार है। करुणाकर अमृत (सूर्य) को नमस्कार है। सूर्य को नमस्कार है। आंखों के तेज सूर्य को नमस्कार। खेचर (आकाश में चलनेवाला) को नमस्कार। महान को नमस्कार। रजस् को नमस्कार। तमस् को नमस्कार। मुझे असत् से सत् की ओर ले जाओ। मुझे अंधकार से प्रकाश की ओर ले जाओ। मुझे मृत्यु से अमरता की ओर ले जाओ। भगवान उष्ण (सूर्य) शुचि (पवित्रता) रूप हैं। भगवान् हंस (सूर्य) शुचि के प्रतिरूप हैं।

इस चाक्षुषमती का नित्य अध्ययन करनेवाले को नेत्र-रोग नहीं होते। उसके कुल में कोई भी अंधा नहीं होता। आठ ब्राह्मणों को इसकी दीक्षा देने से विद्या सिद्ध होती है।

विश्वरूप जातवेदा तपती ज्योति के समान तथा सुनहरे रंग के विश्व के कारण उग्ररूप से तपते हुए प्राणियों के कल्याण के लिए ये भगवान सूर्य उदय होते हैं। भगवान आदित्य को नमस्कार है। उनकी आभा दिनों रूपी भार का वहन करने (ढोने)वाली है। मेधा (बुद्धि) से प्रेम करनेवाले ऋषि सूर्य के पास जाकर प्रार्थना करने लगे, 'इस अंधकार को नष्ट करिए, हमारी आंखों को प्रकाश दीजिए। तमोगुण के बंधन में पड़े हुए हम प्राणियों को ज्ञान का प्रकाश दीजिए। पुंडरीकाक्ष को नमस्कार। पुष्करेक्षण को नमस्कार। अमलेक्षण, कमलेक्षण, विश्वरूप और महाविष्णु (सब सूर्य के नाम) को नमस्कार।

□

108. कलि संतरणोपनिषद्

शांतिपाठ :

ॐ सह नाववतु । सह नौ भुनक्तु । सह वीर्यं करवावहै ।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै ।

ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ।

'परमात्मा हम (गुरु-शिष्य) की साथ ही रक्षा करें । हम साथ-साथ उपभोग एवं वीरता के कार्य करें । हमारा अध्ययन तेजस्वी हो । हम परस्पर विद्वेष न करें । तीनों प्रकार के दुःख शांत हों ।'

द्वापर युग के अंत में एक बार नारद ब्रह्मा के पास गए और बोले, 'भगवन्, पृथ्वी में घूमता हुआ मैं 'कलि' के प्रभाव से कैसे मुक्त रह सकता हूं, इसका उपाय बताइए ।' इस पर ब्रह्मा ने कहा, 'तुमने बड़ी अच्छी बात पूछी है । समस्त वेदों का परम गोपनीय रहस्य तुम्हें बताता हूं, इसे सुनो । इसी से तुम कलियुग के संसार से मुक्त हो जाओगे । भगवान आदिपुरुष नारायण के नाम का उच्चारण करने से कलि के दोष नष्ट हो जाते हैं ।' नारद बोले, 'वह कौन-सा नाम है ?' ब्रह्मा बोले, 'यह नाम इस प्रकार है—

हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

इन सोलह नामों से कलिमल का नाश होता है । सभी वेदों में भी इससे बढ़कर कोई उपाय नहीं है । इन सोलह कलाओं के ज्ञान से जीव का अज्ञान नष्ट हो जाता है । उससे ब्रह्म प्रकाशित होता है, जैसे बादलों के हटने पर सूर्यदर्शन होता है । 'इसकी क्या विधि है ?' नारद के प्रश्न पर ब्रह्मा बोले, 'इसकी कोई भी विधि नहीं है । शुद्ध-अशुद्ध किसी भी अवस्था में इसे जपने से ब्रह्म की सलोकता, समीपता, सरूपता तथा सायुज्यता प्राप्त होती है । इसके साढ़े तीन करोड़ जप से ब्रह्महत्या, वीरहत्या तथा स्वर्ण चोरी के पाप छूट जाते हैं । पितरों, देवताओं तथा मनुष्यों के प्रति किए गए अपकार से पवित्र हो जाता है । सभी धर्मों (नियमों, आचरणों) के परित्याग का पाप छूट जाता है और पवित्रता प्राप्त होती है ।

□

डायमंड पॉकेट बुक्स के लोकप्रिय प्रकाशन

स्पर्श से सुखी प्राकृतिक चिकित्सा—रेकी

लेखक—मुखदीपक मलवई

ईश्वर ने तो सबको स्वस्थ रहने के लिए ही बनाया है, बीमारियां तो हम स्वयं पैदा करते हैं। रेकी की सहायता से आप अपने एवं अपने मित्रों के रोग बिना किसी दवाई के ठीक कर सकते हैं।

मूल्य 60/-

तंत्र शक्ति और साधना

विश्व विख्यात ज्योतिषी एवं लेखक डॉ. भोजराज द्विवेदी द्वारा लिखी गई एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक। जिसकी सहायता से आप तन्त्र शक्ति की साधना करके अपनी सब इच्छा पूरी कर सकते हैं।

मूल्य 50/-

यंत्र-शक्ति और साधना

यंत्र शक्ति की साधना करके आप अपने व अपने मित्रों, सहयोगियों के समस्त रोगों को दूर करके सुख, सुविधा एवं स्वास्थ्य प्राप्त कर सकते हैं। विश्व-विख्यात लेखक डॉ. भोजराज द्विवेदी द्वारा लिखी गई एक अनुपम पुस्तक। मूल्य 50/-

मंत्र-शक्ति और साधना

इस उपयोगी पुस्तक की सहायता से आप जान सकते हैं कि किस मंत्र को सिद्ध करके आप अपने किस रोग या कष्ट से मुक्ति पा सकते हैं। मंत्रों की उपयोगिता सम्बन्धी डॉ. भोजराज द्विवेदी की एक अनुपम पुस्तक।

मूल्य 50/-

हिप्नोटिज़्म

किसी को भी हिप्नोटाइज करके आप उससे मनोवांछित कार्य करवा सकते हैं, किसी रोगी का रोग दूर कर सकते हैं, व अपने व्यक्तित्व को आकर्षक बना सकते हैं। डॉ. भोजराज द्विवेदी द्वारा लिखी गई एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक। मूल्य 50/-

मनुस्मृति

समाज को चार वर्णों एवं मनुष्यजीवन को चार आश्रमों में बांट कर हमारे समाज को दिशा-निर्देश देने वाले आचार्य मनु के सिद्धान्तों को सिखाने वाली एक अत्यन्त उपयोगी एवं संग्रहणीय पुस्तक।

मूल्य 30/-

कीरो हस्त रेखाएं

विश्व-विख्यात भविष्यवक्ता कीरो द्वारा लिखी गई हस्त रेखाओं की सम्पूर्ण जानकारी देने वाली एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक।

मूल्य 30/-

कीरो नक्षत्र विज्ञान मूल्य 25/-

कीरो अंक विज्ञान मूल्य 25/-

वृहद् हस्तरेखा

पं. राधाकृष्ण श्रीमाली द्वारा हस्त रेखा पर लिखी गई अत्यन्त उपयोगी जानकारी देने वाली एक महत्त्वपूर्ण पुस्तक। मूल्य 35/-

अंक ज्योतिष 30/-

ज्योतिष और रत्न 30/-

प्रश्न ज्योतिष 30/-

वृहद वात्स्यायन कामसूत्र

सैक्स सम्बन्धी अत्यन्त उपयोगी जानकारी देने वाली एक ऐसी महत्त्वपूर्ण पुस्तक, जिसे पढ़कर आप अपना वैवाहिक जीवन सफल बना सकते हैं। युवक-युवतियों के लिए एक पठनीय एवं संग्रहणीय पुस्तक।

मूल्य 30/-

कॉमर्शियल वास्तु

व्यावसायिक दृष्टिकोण से इस पुस्तक में कई महत्त्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किया गया है, जैसे कार्यालय का प्रवेश द्वार किधर हो, मालिक कहां और किस दिशा में मुंह करके बैठे, कर्मचारी कहां और किस दिशा में बैठे, दुकान का सेल काउंटर किधर हो ताकि फर्म को ज्यादा लाभ हो, कोर्ट केस की फाइलें कहां रखें ताकि मुकदमा जरूर जीतें। डॉ. भोजराज द्विवेदी द्वारा लिखी गई एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक।

मूल्य 150/-

कोई भी 3 पुस्तकें एक साथ मंगवाने पर डाक-व्यय फ्री। V.P.P. से पुस्तकें मंगवायें। ऑर्डर के साथ 20/- एडवांस डाक टिकट के ज़रूर भेजें।

इसलिए बोड़मजी इसलिए

अशोक चक्रधर

गुड मार्निंग टुडे पर सप्ताह में दो बार हास्य व्यंग्य के कवि अशोक चक्रधर द्वारा हास्य व्यंग्य की नई कविताओं का अनुपम उपहार।

मूल्य 40/-

अनुभूत यंत्र, मंत्र, तंत्र और टोटके

डा. भोजराज द्विवेदी द्वारा यंत्र, मंत्र, तंत्र और टोटकों की जानकारी देने वाली एक असाधारण पुस्तक।

मूल्य 100/-

अन्य पुस्तकें:
- तंत्र शक्ति और साधना 50/-
- मंत्र शक्ति और साधना 50/-
- यंत्र शक्ति और साधना 50/-

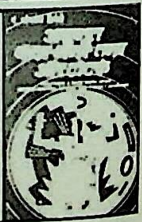

डायमण्ड पाकेट बुक्स प्रा. लि. X-30, ओखला इन्डस्ट्रियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली-110020

डायमंड पॉकेट बुक्स के लोकप्रिय प्रकाशन
अपना स्वास्थ्य अब आपकी मुट्ठी में

अपना स्वास्थ्य अपने हाथ

प्राकृतिक तरीके से कैसे थोड़ा-सा संयम, थोड़ा-सा व्यायाम और कुछ नुस्खे, बिना दवा के 100 वर्ष तक निरोगी रहने की एक रामबाण औषधि-जैसी पुस्तक। एक बार पढ़ लें और फिर जीवन भर स्वस्थ और नीरोग रहें। एक ऐसी पुस्तक जिसकी आपको बरसों से तलाश थी।

मूल्य 30/-

भोजन द्वारा स्वास्थ्य

भोजन को सही मात्रा में सही समय पर खाकर आप ज्यादा चुस्त और स्वस्थ जीवन कैसे जी सकते हैं। कैलोरीज़ की व्यवस्था और मोटापा घटाने के सरल उपाय। स्वस्थ जीवन का रहस्य।

मूल्य 40/-

रेकी

रजनीकांत उपाध्याय की रेकी (स्पर्श चिकित्सा) पर अद्भुत प्रयोग की एक सम्पूर्ण पुस्तक जिससे केवल स्पर्श से प्राकृतिक इलाज के प्रयोग प्रस्तुत किये गए हैं। अब तक प्रकाशित पुस्तकों में सर्वश्रेष्ठ।

मूल्य 60/-

लेडीज स्लिमिंग कोर्स

इस पुस्तक की मदद से स्लिम ट्रिम बनिए और चुस्ती से अपना शरीर आकर्षक एवं जीवन सुखी बनाइये।

मूल्य 30/-

योगासन और स्वास्थ्य

योगासनों द्वारा स्वस्थ बने रहने के लिए आचार्य भगवान देव की अनुपम कृति। स्वयं को सुन्दर, चुस्त और फुर्तीला और आकर्षक बनाए रखने के लिये यह पुस्तक आपका समुचित मार्ग दर्शन करेगी।

मूल्य 40/-

गर्भवती व शिशुपालन

पहली बार जब नारी गर्भवती होती है, अपने बच्चे की मां बनने की सुखद कल्पना उसे रोमांचित कर देती है। लेकिन इस रोमांच के साथ ही उसके कंधों पर आ जाता है भार— शिशु की देखभाल, पालन-पोषण का। गर्भकाल की समस्याओं तथा शिशु के पालन-पोषण सम्बन्धी समस्याओं के समाधान के लिए यह पुस्तक बेहद उपयोगी है।

मूल्य 30/-

एक्यूपंक्चर गाइड

रोगों के निवारण के लिए प्राचीन काल से चली आ रही ऐसी चिकित्सा पद्धति जिसमें न तो दवाओं की आवश्यकता होती है और न पैसा खर्च करने की। किसी मेडिकल कॉलेज में न जाकर इस पुस्तक द्वारा ही आप इस चिकित्सा पद्धति को सीख कर अपना और दूसरों का भला कर सकते हैं।

मूल्य 30/-

एक्यूप्रेशर गाइड

एक्यूप्रेशर एक अद्भुत चिकित्सा प्रणाली। थोड़े से अभ्यास से आप भी बिना पैसा खर्च किए रोगों को ही दूर नहीं कर सकते बल्कि उन असहाय और निर्धन रोगियों को भी रोग मुक्त कर सकते हैं जिनके पास न तो अस्पताल जाने की सुविधा है और न इलाज पर खर्च करने के लिए पैसा ही है।

मूल्य 30/-

मंत्र शक्ति से रोग निवारण

प्रस्तुत पुस्तक में रोग निवारण मंत्रों को प्रमुख स्थान दिया गया है। यथासम्भव छोटे मंत्रों को चुना गया है, और उन्हें प्रभावकारी बनाने की सर्वविधि की खोज की गई है। आस्था और विश्वास के साथ सम्बंधित रोग के मंत्र को सिद्ध कर प्रयोग करेंगे तो सफलता अवश्य मिलेगी। मूल्य 30/-

स्वमूत्र चिकित्सा

बहुत ही उपयोगी चिकित्सा पद्धति है, जिसमें आपको किसी डॉक्टर के या हकीम के पास नहीं जाना पड़ता। अपना एवं अपने मित्रों का आप बड़ी सफलता से इलाज कर सकते हैं।

मूल्य 30/-

कोई भी 3 पुस्तकें एक साथ मंगवाने पर डाक-व्यय फ्री। V.P.P. से पुस्तकें मंगवायें। ऑर्डर के साथ 20/- एडवांस डाक टिकट के ज़रूर भेजें।

रेमिडियल वास्तु शास्त्र

डॉ. भोजराज द्विवेदी

अपने भवन या व्यावसायिक प्रतिष्ठान में बिना तोड़ फोड़ के वास्तु द्वारा फेर बदल कर अपना जीवन सुखमय बनायें व अपना व्यापार बढ़ायें।

मूल्य 150/-

क्रिकेट कैसे खेलें

चरणपाल सिंह सोबती की क्रिकेट व क्रिकेट के नियमों की जानकारी देने वाली एक विशिष्ट पुस्तक, उनके अनुभव और खेल की तकनीक पर सर्वश्रेष्ठ पुस्तक।

मूल्य 30/-

डायमण्ड पाकेट बुक्स प्रा. लि. X-30, ओखला इन्डस्ट्रियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली-110020

डायमंड पॉकेट बुक्स के लोकप्रिय प्रकाशन

स्पर्श चिकित्सा के अद्भुत रहस्य रेकी—सुब्रह्मण्यम

बिना किसी दवाई के प्रयोग के स्वस्थ रहने का एक सरल उपाय। सबके लिए उपयोगी।
मूल्य ९९/-

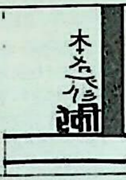

मार्शल आर्ट

बिना किसी शस्त्र के केवल अपने हाथ-पांव की सहायता से अपने दुश्मनों पर विजय पाने का एक सरल तरीका। युवक-युवतियों के लिए एक उपयोगी पुस्तक।
मूल्य 50/-

शतरंज कैसे खेलें

शतरंज एक सशक्त मनोरंजक खेल होने के साथ-साथ मस्तिष्क के विकास का एक अद्भुत साधन भी है। सरल व सरस भाषा में लिखी गई शतरंज सिखाने वाली एक उपयोगी पुस्तक।
मूल्य 30/-

चाणक्य नीति

महामात्य चाणक्य ने एक विशाल एवं शक्तिशाली भारत का सपना देखा व उसे पूरा किया। चाणक्य नीति के मूल्यवान सूत्रों का एक अनुपम संग्रह।
मूल्य 30/-

हृदय-रोग : कारण और इलाज

डॉ० सतीश गोयल द्वारा लिखी गई इस उपयोगी पुस्तक में हृदय रोगों-सम्बन्धी समस्त जानकारियां दी गई हैं। बीमारी के कारणों, लक्षणों और सावधानियों के बारे में विस्तार से चर्चा की गई है।
मूल्य 30/-

ब्लड प्रैशर : कारण और इलाज

ब्लड प्रैशर क्या है ? यह क्यों होता है ? एवं इससे कैसे बचा जा सकता है।—इन विषयों पर डॉ० सतीश गोयल ने विस्तार से चर्चा की है। सदा स्वस्थ रहने के लिए एक उपयोगी पुस्तक।
मूल्य 30/-

कैंसर : कारण और इलाज

लोग कहते हैं कि जिसे कैंसर हो जाए उसकी मौत निश्चित है, लेकिन वास्तव में ऐसा है नहीं। इस उपयोगी पुस्तक में आप इस घातक रोग सम्बन्धी लक्षण जानकर इस बीमारी की रोकथाम कर सकते हैं।
मूल्य 30/-

मधुमेह

मधुमेह एक भयानक रोग है और जिसे यह रोग हो जाता है, वह घुल-घुलकर अपने प्राण गंवा देता है। लेकिन इस उपयोगी पुस्तक की सहायता से आप न सिर्फ बीमारी के लक्षण ही जान सकते हैं, बल्कि इससे बच भी सकते हैं।
मूल्य 30/-

मैरिज मैनुअल

नव विवाहित पति-पत्नी के लिए एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक। सैक्स-सम्बन्धी पूरी जानकारी देने वाली एक उपयोगी अनुपम रचना। विवाह के अवसर पर नवदम्पति को उपहार स्वरूप देने योग्य।
मूल्य 30/-

सैक्स एजूकेशन पर अन्य पुस्तकें
वृहद वात्स्यायन कामसूत्र 30
सैक्स और पति पत्नी 25
सैक्स समस्याएं और समाधान 30

सम्पूर्ण वास्तुशास्त्र

'सम्पूर्ण वास्तुशास्त्र' पहली पुस्तक है, जिसमें भवन-स्थापत्य कला पर विस्तृत अनुसंधान किया गया है। नए मकान का प्रवेश द्वार किधर हो ? द्वारवेध किसे कहते हैं, कितने प्रकार के होते हैं ? भवन में जल-स्थान कहां, किधर होना चाहिए ? पाकशाला में अग्नि-स्थान कहां हो ? इन सभी पहलुओं पर अंतर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान लेखक डॉ. भोजराज द्विवेदी ने व्यावहारिक चित्रों के साथ पुस्तक को बहुत ही सुन्दर ढंग से संवारा-संजोया है। मूल्य 150/-

कोई भी 3 पुस्तकें एक साथ मंगवाने पर डाक-व्यय फ्री। V.P.P. से पुस्तकें मंगवायें। ऑर्डर के साथ 20/- एडवांस डाक टिकट के जरूर भेजें।

मनचाही संतान कितनी आसान

मनचाही संतान कितनी आसान लड़का या लड़की

मनचाही संतान कैसे प्राप्त करें इस पुस्तक में यह विस्तारपूर्वक समझाया गया है।
मूल्य 30/-

हिप्नोटिज्म

डा. भोजराज द्विवेदी द्वारा सम्मोहन विज्ञान पर एक ऐसी पुस्तक जिसकी आपको तलाश थी।
मूल्य 50/-

डायमण्ड पाकेट बुक्स प्रा. लि. X-30, ओखला इन्डस्ट्रियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली-110020

डायमंड पाकेट बुक्स द्वारा प्रकाशित

स्वास्थ्य, योग सैक्स एजुकेशन व महिलोपयोगी पुस्तकें

स्वस्थ्य

चुम्बक चिकित्सा	30.00
मोटापा कैसे घटाएं	20.00
कद कैसे लम्बा करें	20.00
मधुमेह : कारण, इलाज	30.00
कैंसर : कारण, इलाज	30.00
हार्ट अटैक : कारण, इलाज	30.00
ब्लड प्रैशर कारण और इलाज	30.00
एक्यूपंचर गाइड	40.00
पारिवारिक होम्योपैथिक गाइड	40.00
आयुर्वेदिक औषधियां	30.00
ऐलोपैथिक गाइड	45.00
स्वमूत्र चिकित्सा	20.00
एड्स	20.00
एक्यूप्रेशर गाइड	30.00

महिलापयोगी पुस्तकें

मनचाही सन्तान कितनी आसान	30.00
लेडीज हैल्थ गाइड	40.00
गर्भ व शिशु पालन	30.00
बेबी, हैल्थ गाइड	20.00
ब्यूटी गाइड	40.00
बच्चों के सुन्दर नाम	25.00
घरेलू इलाज	25.00
लेडीज संगीत	25.00
कद कैसे लम्बा करें	20.00
मोटापा कैसे घटाएं	20.00
स्तन सौंदर्य	20.00
डायमंड कुकरी गाइड	25.00
आचार, मुरब्बे, चटनी	25.00
शाकाहारी व्यंजन	25.00
मांसाहारी व्यंजन	25.00
नाश्ते के व्यंजन	25.00
मेंहदी से शृंगार	20.00
लेडीज स्लिमिंग कोर्स	30.00

सैक्स एजुकेशन सीरीज

मैरिज मैनुअल (युवा दम्पति के लिए सैक्स गाइड)	30.00
मेडिकल सैक्स गाइड	30.00
वृहद् समस्याएं और समाधान	25.00
सैक्स और पति पत्नी	25.00
सैक्स के 101 सवाल	25.00
सैक्स समस्याएं और उनकी औषधियां	25.00
सैक्स और स्त्री पुरुष	25.00
सैक्स पावर कैसे बढ़ाएं	25.00
सैक्स शक्ति कैसे बढ़ाएं	25.00
संभोग शक्ति कैसे बढ़ाएं	25.00
तंत्र शक्ति साधना और सैक्स	30.00

डाक व्यय प्रति पुस्तक 5/- कोई सी तीन पुस्तकें मंगवाने पर डाकव्यय फ्री।
आर्डर के साथ 10/- एडवांस डाक टिकट भेजें, पुस्तकें V.P.P. से मंगवायें।
डायमंड पाकेट बुक्स, X-30, ओखला इन्ड्रस्टियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली-110020

डायमंड पाकेट बुक्स द्वारा प्रकाशित

हास्य, व्यंग, जोक्स की श्रेष्ठ पुस्तकें

जोक्स सीरीज	
अकबर बीरबल के जोक्स	25.00
तेनाली राम की सूझबूझ	25.00
पार्टी जोक्स	25.00
शेखचिल्ली के लतीफे	25.00
टॉप जोक्स	25.00
हुल्लड़ के जोक्स	25.00
तबस्सुम ही तबस्सुम	30.00
पति पत्नी के जोक्स	25.00
फिल्मी जोक्स	25.00
मिडनाइट जोक्स	25.00
चुटकुले ही चुटकुले	25.00
प्रेमी प्रेमिकाओं के जोक्स	25.00
हास परिहास	20.00
मुल्ला नसरुद्दीन	25.00
लम्बे साइज में	
सलेक्टिड जोक्स	20.00
लेटेस्ट जोक्स	20.00

अशोक चक्रधर	
खिड़कियां	40.00
इसलिए बौड़म जी इसलिए	40.00
ए जी सुनिए	40.00
रंग जमा लो	25.00
तमाशा	25.00
अशोक चक्रधर के चुटपुटकुले	20.00
भोले भाले	20.00
हंसो और मर जाओ	20.00
सो तो है	20.00
प्रीतगोविन्द	
अगड़म बगड़म	20.00
हुल्लड़ मुरादाबादी	
हज्जाम की हजामत	20.00
हुल्लड़ के जोक्स	20.00
हुल्लड़ के कहकहे	20.00
हुल्लड़ मुरादाबादी की श्रेष्ठ हास्य व्यंग्य रचनाएं	20.00
त्रिवेणी	20.00
ढूंढते रह जाओगे	25.00
सबके सब पागल हैं	40.00

काका हाथरसी	
मेरा जीवन-ए वन	30.00
खिलखिलाहट	2500
हास्य वर्णमाला	20.00
काका के व्यंग्य बाण	25.00
काका काकी के लव लेटर्स	25.00
काका के प्रहसन	25.00
काका तरंग	25.00
काका के चुटकुले	25.00
काका की महफिल	25.00
हंसी के गुब्बारे	25.00
काका की फुलझड़ियां	15.00
काका की चौपाल	25.00
काका काकी की नोंक-झोंक	15.00
मीठी-मीठी हंसाइयां	15.00
काकाकी विशिष्ट रचनाएं	15.00
काका के कारतूस	25.00
काका का दरबार	25.00
काका शतक	25.00
जय बोलो बेईमान की	15.00
यार सप्तक	25.00
लूट नीति मंथन करो	25.00

डाक व्यय प्रति पुस्तक 5/- कोई सी तीन पुस्तकें मंगवाने पर डाकव्यय फ्री।
आर्डर के साथ 10/- एडवांस डाक टिकट भेजें, पुस्तकें V.P.P. से मंगवायें।
डायमंड पाकेट बुक्स, X-30, ओखला इन्ड्रस्टियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली-110020

डायमंड पाकेट बुक्स द्वारा प्रकाशित

ज्योतिष और तंत्र-मंत्र की उपयोगी पुस्तकें

राधाकृष्ण श्रीमाली		**कीरो**		वृहद हस्तरेखा विज्ञान	50.00
वृहद हस्त रेखा	35.00	कीरो नक्षत्र विज्ञान	30.00	हिप्नोटिज्म	50.00
ज्योतिष और लाटरी	20.00	कीरो अंक विज्ञान	30.00	कालसर्प योग शांति	100.00
अंक ज्योतिष	30.00	कीरो हस्त रेखाएं	40.00	यज्ञ कुण्ड मण्डप सिद्धि	100.00
भृगु संहिता	60.00	**डा० भोजराज द्विवेदी**		महालक्ष्मी पूजा व दीपोत्सव	25.00
मंत्र शक्ति	20.00	कमर्शियल वास्तु	120.00	पांव तले भविष्य	100.00
नक्षत्र विज्ञान	30.00	सम्पूर्ण वास्तुशास्त्र	100.00	नाम बदलिये भाग्य बदलिये	100.00
तंत्र रहस्य	30.00	पर्यावरण वास्तु	120.00	अंत्येष्टिकर्म पद्धति	60.00
प्रश्न ज्योतिष	30.00	रेमेडियल वास्तु (बिना तोड़-फोड़)	150.00	षटपंचाशिका (प्रश्न विज्ञान)	60.00
तंत्र शक्ति	30.00	वास्तु जिज्ञासाएं एवं समाधान	120.00	**आचार्य सत्यानन्द**	
स्वप्न ज्योतिष	30.00	अपनी जन्म पत्रिका आप बनाएं	30.00	व्यावहारिक वास्तु शास्त्र	100.00
भारतीय ज्योतिष	30.00	ज्योतिष प्रश्नोत्तरी	25.00	**पं. गोपाल शर्मा**	
मंत्र शक्ति से रोग निवारण	30.00	वक्री ग्रह	30.00	सुगम वास्तु शास्त्र	50.00
ग्रहगोचर	30.00	अनुभूत यंत्र मंत्र तंत्र और टोटके	100.00	**दयानन्द वर्मा**	
दशाफल दर्पण	30.00	ज्योतिष और धनयोग	40.00	पामिस्ट्री गाईड	20.00
मंत्र शक्ति से कामना सिद्धि	30.00	ज्योतिष में भवन, वाहन और कीर्ति योग	40.00	ध्यान योग	2000
शरीर सर्वांग लक्षण	30.00	ज्योतिष और राजयोग	40.00	सफलता की सीढ़ियां	20.00
तंत्र शक्ति साधना और सैक्स	30.00	ज्योतिष और विवाह योग	40.00	श्रीमद्भगवत गीता	60.00
रमल विज्ञान	30.00	ज्योतिष और संतान योग	40.00	**उर्मिला शर्मा**	
यंत्र शक्ति	30.00	ज्योतिष और आयुष्य योग	40.00	ज्योतिष और पति पत्नी का चुनाव	25.00
ज्योतिष सीखिये	30.00	ज्योतिष और रोग विचार	40.00	**नितीश शर्मा**	
स्तोत्र शक्ति	30.00	मंत्र शक्ति और साधना	50.00	मुखाकृति विज्ञान	25.00

डाक व्यय प्रति पुस्तक 5/- कोई सी तीन पुस्तकें मंगवाने पर डाकव्यय फ्री।
आर्डर के साथ 10/- एडवांस डाक टिकट भेजें, पुस्तकें V.P.P. से मंगवायें।
डायमंड पाकेट बुक्स, X-30, ओखला इन्ड्रस्टियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली-110020

डायमंड पाकेट बुक्स में ओशो का अलौकिक साहित्य

संभोग से समाधि की ओर-I
संभोग से समाधि की ओर-II
संभोग से समाधि की ओर-III
संभोग से समाधि की ओर IV
रजनीश ध्यान योग
मिट्टी के दीये
गीता : विज्ञान, कला, अध्यात्म
गीता : समस्त योगों का सार
गीता : मनोविज्ञान का परम शास्त्र
गीता : योग विज्ञान
साक्षी कृष्ण और रासलीला
कृष्ण : साधना रहित सिद्धि
कृष्ण और हंसता हुआ धर्म
कृष्ण : गुरु भी सखा भी
कृष्ण : जिज्ञासा, खोज, उपलब्धि
शिव साधना
शिव दर्शन
दिया अमृत पाया जहर
सम्बोधि के क्षण
राम खुमारी
अभिनव धर्म
करुणा और क्रान्ति
ध्यान की कला
ध्यान और प्रेम
मुक्ति बोध
साधना सूत्र : हेरत हेरत हे सखी
साधना सूत्र : आत्मा का कमल
साधना सूत्र : हृदय संगीत
अमृत की दिशा
सम्भावनाओं की आहट
शून्य का दर्शन
प्रार्थना के बीज
नये समाज की खोज
मैं धर्मिकता सिखाता हूं, धर्म नहीं
योग सूत्र : एक वैज्ञानिक दृष्टि
योग सूत्र : आन्तरिक अनुशासन
योग सूत्र : प्रज्ञा और समाधि
योग सूत्र : सदगुरु समर्पण
योग सूत्र : नींद, स्वप्न और बोध
योग सूत्र : अहंकार और समर्पण
योग सूत्र : बुद्धों का मनोविज्ञान
योग सूत्र : समाधि के दो रूप
जीवन संगीत
ध्यान एक शून्य गगन
भीतर का दीया
उपनिषद-शून्य संवाद
एकमात्र उपाय : जागो

भक्ति : विराट का अनुभव
भक्ति : निराकार से एकाकार
भक्ति : जीवन रूपांतरण की कला
भक्ति : शून्य की झील में प्रेम का कमल
परम प्रेम रूपा भक्ति
सहज योग : साक्षी और प्रेम
सहज योग : ध्यान और प्रेम
सहज योग : प्रार्थना और आनंद
सहज योग : महाक्रान्ति अभी और यहीं
साधना के आयाम
कुंडलिनी और तंत्र
कुंडलिनी यात्रा
कुंडलिनी जागरण और शक्तिपात
कुंडलिनी और सात शरीर
जात हमारी ब्रह्म है
सुखिया सब संसार दुखिया दास कबीर
जित देखूं तित तूं
जोतहिं जोति समानी
बोलै शेख फरीद
क्या मेरा क्या तेरा
मन लागा यार फकीरी में
सत भाषे रैदास
निरगुन का बिसराम
मीरा के प्रभु गिरधर नागर
प्रभु की पगडंडियां
साधना पथ
स्वर्णिम भारत
भारत के जलते प्रश्न
धर्म और राजनीति
शिक्षा : नये प्रयोग
अस्वीकृति में उठा हाथ
नयी क्रान्ति की रूपरेखा
विचार क्रान्ति
गांधी पर पुनर्विचार
हरि ओउम तत्सत्
ओउम शांति:शांति:शांति:
ओउम मणि पद्म हुंम
एक महान् चुनौती : मनुष्य का स्वर्णिम भविष्य
ध्यान दर्शन
नव संन्यास क्या
क्रान्तिसूत्र
झुक आई बदरिया सावन की
पिया मिलन की आस
मेरा मुझमें कुछ नहीं
होनी होय सो होय
लाली मेरे लाल की

डीलक्स संस्करण
सम्भोग से समाधि की ओर (सम्पूर्ण संस्करण)
जस पनिहार धरे सिर गागर
नाम सुमिर मन बावरे
ज्योति से ज्योति जले
समाधि के नृत्य गीत
का सोवे दिन रैन
एक ओंकार सतनाम
मैं मृत्यु सिखाता हूं
आत्मपूजा उपनिषद्-भाग-1
आत्मपूजा उपनिषद्-भाग-2
समाधि की सुराही
दुख के पार
मौलिक क्रान्ति
जीवन अमृत
मौन संगीत
सन्तो मगन भया मन मेरा
गुरु परताप साध की संगति
प्रेम-रंग-रस ओढ़ चदरिया
अरी, मैं तो नाम के रंग छकी
झरत दसहूं दिस मोती
मनमधुकर खेलत वसन्त
अजहूं चेत गंवार
अवसर बीता जाए
ज्यों की त्यों धरि दीन्हीं चदरिया
अथातो भक्ति जिज्ञासा
भक्ति : विराट से मैत्री
भक्ति : परम क्रान्ति
भक्ति : ध्यान की मधुशाला
सत्य की पहली किरण
सुमरिन मेरा हरि करे
उड़ियो पंख पसार
पाथेय
ओशो सम्बन्धी
(स्वामी अगेह भारती)
ओशो गाथा
ओशो के संग कुछ अनमोल क्षण
विचारों के फूल
ओशो की मधुशाला में बच्चन
मेरी रजनीशपुरम यात्रा
एक ओशो शिष्य की अन्तर्यात्रा
शांति की खोज- (उर्मिला)
एक फक्कड़ मसीहा : ओशो
—स्वामी ज्ञानभेद

डायमंड पाकेट बुक्स (प्रा.) लि.
X-30, ओखला इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-2, नई दिल्ली-110020

108 उपनिषद

10

डायमंड पाकेट बुक्स